हिन्दी के प्रगतिशील कवि

निराला से वेणु गोपाल तक लगभग सौ प्रगतिशील कवियों की
सर्वेक्षणमूला कृतीक्षा

डॉ. रणजीत

पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा.) लिमिटेड
नई दिल्ली अहमदाबाद बम्बई

अनुक्रम

प्रस्तावना

प्रगतिशील कविता आधुनिक हिन्दी कविता की एक महत्वपूर्ण और जीवन्त धारा है। इस पर किये गये अपने शोध के सिलसिले में ही मुझसे यह पुस्तक भी लिखी गयी। एक तरह से यह उस शोधप्रबंध की पूरक पुस्तक है, उसमें समग्र रूप से प्रगतिशील कविता का विवेचन किया गया था और इसमें प्रगतिशील कविता के प्रमुख स्रष्टाओं के कृतित्व पर अलग-अलग विचार किया गया है।

'प्रगतिशील कवि' शब्द को मैंने थोड़े व्यापक अर्थ में लिया है, सिर्फ 'प्रगतिवादी कवि' के अर्थ में नहीं। यही कारण है कि मेरी इस धारणा में प्रगतिवादी कवि तो आ ही जाते हैं, उनके आसपास के वे सब कवि भी आ जाते हैं, जिनके काव्य का मूलस्वर मानववादी, आस्थाशील और अग्रगामी है—चाहे वे विचारों से पूरे मार्क्सवादी हों या नहीं।

कवियों के कृतित्व पर विचार साधारणतः उनके रचना-क्रम में ही किया गया है, ताकि प्रत्येक कवि के सृजन-स्वर में आये हुए परिवर्तनों को लक्षित किया जा सके। फिर यह विचार अधिकतर महत्वपूर्ण कविताओं को केन्द्र बना कर किया गया है और इस तरह विवेचन की इकाई कवि की किन्हीं अमूर्त उपलब्धियों को नहीं, मूर्त उपलब्धिपूर्ण कविताओं को बनाया गया है। हां विवेचन का परिचयात्मक और सर्वेक्षणात्मक स्वर अवश्य दार्शनिक समीक्षा पढ़ने के अभ्यासी विद्वानों को अखर सकता है, पर हिन्दी काव्य के सामान्य पाठक इसे उपयोगी और आस्वाद्य पायेंगे, इसी विश्वास के बल पर इस पुस्तक को प्रकाशित किया जा रहा है।

इस पुस्तक में मैंने प्रमुख-गौण, छोटे-बड़े कोई सौ के लगभग हिन्दी कवियों की रचनाओं पर टिप्पणियां की हैं। साधारण, गौण और अमहत्वपूर्ण कवियों को भी विवेचन का विषय बनाने का विरोध कई समीक्षक कर सकते हैं। 'हिन्दी की प्रगतिशील कविता' के बारे में भी ऐसी आलोचना डॉ. नगेन्द्र से लेकर कई साधारण समीक्षकों तक ने की है कि उसमें मैंने बहुत से अख्यात-नाम कवियों की पंक्तियां उद्धृत कर दी हैं। इस आलोचना पर मैंने विचार किया है, अपनी जगह पर सही होते हुए भी इस आलोचना के पीछे जो दृष्टि है, वह मुझे स्वीकार्य नहीं लगी। अभिजात और शिष्ट साहित्यिक दृष्टि से

हो सकता है 'हिन्दी के प्रगतिशील कवि' शीर्षक के नीचे आठ-दस प्रमुख प्रगतिशील कवियों की चर्चा ही (और शेष के प्रति एक उपेक्षापूर्ण चुप्पी ही) उचित मानी जाय, पर अपने बारे में मेरी धारणा इतनी ऊंची नहीं है, कि अन्य कवियों की चर्चा करने से इस डर से कतराऊं कि इससे कहीं मेरे लेखन की गरिमा न खंडित हो जाय! जिस कवि ने हिन्दी की प्रगतिशील काव्य-धारा के विकास में थोड़ा-बहुत भी योग दिया है, मेरा मन कहता है कि कम से कम उसकी चर्चा तो की ही जानी चाहिए—चाहे उस पर कोई कड़ी समीक्षात्मक टिप्पणी ही क्यों न करनी पड़े। कोई चाहे तो इसे मेरा 'उदारतावाद' कहे, मुझे कोई आपत्ति नहीं है, क्योंकि मैं ऐसे किसी संकीर्ण राजनीतिक मतवाद से अपने को बंधा हुआ नहीं पाता कि इस भले से शब्द का प्रयोग भी मुझे गाली लगे। पर यह उदारता, सिद्धान्तहीन नहीं है, इस बारे में अपने भीतर कम से कम मैं तो आश्वस्त हूं।

पुस्तक में परिशिष्ट रूप से कुछ टिप्पणियां अन्य धाराओं के प्रमुख कवियों की प्रगतिशील कविताओं पर भी देना चाहता था, पर इसका आयतन वैसे ही काफी बढ़ गया है, इसलिए वह इरादा छोड़ दिया।

—रणजीत

७ नवम्बर १९७२

पूर्वपीठिका

हिन्दी में प्रगतिशील कविता का विकास

एक विहगावलोकन

हिन्दी के प्रमुख प्रगतिशील कवियों के कृतित्व पर विचार करने से पहले, यह उचित ही होगा कि हिन्दी में प्रगतिशील काव्य के जन्म और विकास की प्रक्रिया पर एक विहंगम दृष्टिपात कर लिया जाय।

हिन्दी कविता में प्रगतिशील आन्दोलन का प्रारंभ किस वर्ष से माना जाय, इस सम्बन्ध में विद्वानों में काफी मतभेद है। डॉ. नामवर सिंह और श्री ललित मोहन अवस्थी उसका आरंभ १६३० से मानते हैं।[1] श्री ललित मोहन अवस्थी के अनुसार हिन्दी में प्रगतिशील आन्दोलन के प्रारंभकर्त्ता साम्यवादी नहीं, गैर-साम्यवादी—ऐसे गैर-साम्यवादी जिनमें से कई आगे चलकर साम्यवाद-विरोधी तक हो गये—थे। इनमें गया प्रसाद शुक्ल सनेही त्रिशूल, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', सुमित्रानन्दन पन्त, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' और भगवती चरण वर्मा प्रमुख हैं। इन लोगों ने १६३० के आसपास ही सामाजिक यथार्थ, रूस में समाजवादी क्रांति का अभिनन्दन, साम्यवाद का स्वागत, अध्यात्मवाद के विरुद्ध मानवतावाद की महत्ता आदि विषयों पर काव्यरचना आरंभ कर दी थी। अवस्थी जी के साक्ष्य के अनुसार त्रिशूल जी ने तो १६२१ में ही लिखा था:

कुछ को मोहन भोग बैठ कर हों खाने को
कुछ सोयें अधपेट तरस दाने-दाने को
कुछ तो लें अवतार स्वर्ग का सुख पाने को
कुछ आयें बस नरक भोग कर मर जाने को
श्रम किसका है, मगर कौन हैं मौज उड़ाते
हैं खाने को कौन, कौन उपजा कर लाते?

---

१. देखिये नामवर सिंह की पुस्तक 'आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियां' इलाहाबाद, ५४, पृ. ६० और श्री ललित मोहन अवस्थी का लेख 'प्रगतिवादी हिन्दी काव्य', माध्यम, फरवरी ६५, पृ. ३०.

प्रगतिशील काव्य-सृजन के प्रारंभिक इतिवृत्त के संदर्भ में अन्य ध्यान देने योग्य तथ्य इस प्रकार हैं :

निराला जी की 'बादल राग' कविता १९२३ में, 'भिक्षुक' १९२४ से २७ के बीच तथा 'तोड़ती पत्थर' १९३७ में लिखी गयी थी।[२]

श्री सुमित्रानन्दन पन्त की युगान्त में संकलित 'द्रुत झरो', 'मानव', 'बांसों का झुरमुट' आदि कविताएं १९३४ से १९३६ के बीच लिखी गयीं।

श्री रामधारी सिंह दिनकर की रेणुका में संकलित कविता 'कस्मैदेवाय' १९११ में और 'ताडव' तथा 'कविता की पुकार' १९३३ में लिखी गयीं।[३]

'नवीन' जी की 'विप्लव गायन' डॉ. लक्ष्मी नारायण दुबे के अनुसार १९२५ में लिखी गयी।[४] परन्तु प्रताप मंडल के एक पुराने सदस्य और नवीन जी के सहयोगी श्री देवीदत्त मिश्र इसे १९३० की रचना मानते है।[५] नवीन जी की 'अनलगान' मार्च ३६ में और 'जूठेपत्ते' जुलाई ३७ में लिखी गयी।[६]

श्री आरसी प्रसाद सिंह की 'रक्तपर्व', जिसमें स्पष्ट शब्दों में साम्यवाद का जयघोष किया गया है, जनवरी १९३४ मे लिखी गयी।

श्री रामेश्वर 'करुण' के व्रज भाषा में लिखे हुए सात सौ प्रगतिशील दोहों का संकलन करुण सतसई १९३४ में लाहौर से प्रकाशित हुआ था। इन दोहों में स्पष्ट शब्दों मे सम्पत्ति पर वैयक्तिक अधिकार समाप्त कर साम्यवाद लाने का आह्वान किया गया था।[७] लेकिन उनकी खड़ी बोली की कविताएं काफी बाद की हैं।

---

२. माध्यम, फरवरी ६५, पृ. ३३.

३. देखिए उनका संकलन 'चक्रवाल' पृ. ५, २० और २१.

४. देखिए उनका शोध प्रबंध 'बालकृष्ण शर्मा नवीन : व्यक्तित्व एवं काव्य', पृ. ४५६.

५. वही पृ. २१६.

६. वही पृ. ४६१.

७. देखिए श्री व्रजकिशोर चतुर्वेदी का लेख 'प्रगतिवादी काव्य पर एक दृष्टि', 'अवन्तिका', जनवरी ५४ का काव्यालोचनांक, पृ. २२१. करुण सतसई के कुछ दोहे इस प्रकार हैं :

जब लौं श्रम औ उपज को, होत न साम्य विभाग
बुझे बुझाये किमि कहो, यह अशान्ति की आग।
सुनियत कूकर आपके, दूध-जलेवी खांहि,
हम सब कृषक मजूर हा, कूकर हू सम नांहि।
ह्वै न, भयो, ह्वै हैं नहीं, साम्यवाद सम आन
जग की व्याधि अगाध को, सांचो सही निदान।

हिन्दी के अलग-अलग विद्वान समीक्षकों ने प्रथम प्रगतिशील कवि होने का गौरव भी अलग-अलग रचनाकारों को दिया है। डॉ. नगेन्द्र श्री सुमित्रानन्दन पन्त को ही हिन्दी में प्रगतिवाद के प्रथम कवि मानते हैं।[८] पर नन्द दुलारे जी यह प्रवर्तक-पद अंचल जी को देना चाहते हैं।[९] डॉ. प्रकाशचन्द्र गुप्त श्री रामधारी सिंह दिनकर को प्रथम प्रगतिवादी कवि और 'हुंकार' को प्रथम प्रगतिवादी काव्यकृति मानते हैं।[१०] श्री ललित मोहन अवस्थी, जैसा कि प्रारम्भ में संकेत किया ही जा चुका है, श्री गयाप्रसाद शुक्ल त्रिशूल जी को हिन्दी का प्रथम प्रगतिशील कवि स्वीकार करते हैं और श्री व्रजकिशोर चतुर्वेदी श्री रामेश्वर करुण को।[११]

इन सब तथ्यों से दो बातें स्पष्ट होती हैं। एक तो यह कि प्रगतिशील कविता के प्रथम स्रष्टा तो यद्यपि त्रिशूल जी ही थे तथापि हिन्दी के पहले प्रगतिशील कवि होने का गौरव पन्त जी को ही दिया जाना चाहिए। क्योंकि पन्त जी ही एक ऐसे कवि थे, जिन्होंने हिन्दी में प्रगतिशील काव्य-सृजन की एक वास्तविक परम्परा का प्रवर्तन किया। फिर वे अपने समसामयिक प्रगतिशील कवियों की अपेक्षा अधिक व्यवस्थित रूप से प्रगतिशील चिन्तन से प्रभावित और उसकी मूल सृजनात्मक चेतना से अधिक सम्पृक्त कवि भी थे।

और दूसरी यह कि यद्यपि छिटपुट प्रगतिशील कविताओं की रचना १९३० से भी काफी पहले से होने लगी थी, तथापि एक सशक्त धारा के रूप में प्रगतिशील कविता की सत्ता १९३६ से ही अनुभव की जाने लगी। हिन्दी में ही नहीं अधिकांश भारतीय भाषाओं के साहित्य में भी प्रगतिशील आन्दोलन का वास्तविक और विधिवत प्रारंभ १९३६ से ही होता है। हिन्दी में यही वह वर्ष है, जिसमें स्वयं छायावाद के एक प्रमुख स्तंभ ने युगान्त लिख कर, छायावादयुग के अन्त और नये युग के प्रारंभ की विधिवत घोषणा की। हिन्दी कविता और साहित्य में प्रगतिशील आन्दोलन का प्रारंभ १९३६ से मानने के

---

८. देखिए उनका लेख 'प्रगतिवाद' उनकी पुस्तक आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियां में.

९. देखिए उनका लेख 'प्रगतिशील साहित्य' उनकी पुस्तक आधुनिक साहित्य में.

१०. डॉ. कृष्णलाल हंस को लिखे अपने १२-२-७० के पत्र में, संदर्भ डॉ. कृष्णलाल हंस की पुस्तक प्रगतिवादी काव्य साहित्य हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, १९७१, पृ. १८१.

११. वही लेख अवन्तिका के जनवरी ५४ के अंक में.

कई और भी कारण हैं। इनमें से सबसे महत्वपूर्ण यह है कि 'अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ' का निर्माण इसी वर्ष हुआ और उसका पहला अधिवेशन भी, जो समसामयिक साहित्य-संसार की एक महत्वपूर्ण घटना थी, इसी वर्ष सम्पन्न हुआ।

यह तो हुई हिन्दी कविता में प्रगतिशील आन्दोलन की शुरुआत की बात। अब उसके अब तक के विकास पर एक नजर डाली जाय। इस विकास के सम्यक् अध्ययन के लिए हम उसे चार निश्चित दौरों या युगों में विभाजित कर सकते हैं: ये दौर वास्तव में हिन्दी की प्रगतिशील कविता के विकास की चार अवस्थाएं हैं, जिनमें से होकर वह गुजर रही है:

१. पहला दौर (१९३६ से १९४७ तक)
२. दूसरा दौर (१९४७ से १९५१ तक)
३. तीसरा दौर (१९५१ से १९६२ तक)
४. चौथा दौर (१९६२ से अब तक)

प्रगतिशील कविता का पहला दौर कविता में प्रगतिशील आन्दोलन के प्रारंभ से लेकर भारतीय जनता के औपनिवेशिक स्वराज्य प्राप्ति तक चलता है। यह वह युग है, जिसमें भारतीय जनता प्रमुखतः अपने तात्कालिक उद्देश्य —राष्ट्रीय स्वाधीनता—के लिए संघर्ष कर रही थी। इसलिए इस युग की प्रगतिशील कविता का मूलस्वर राष्ट्रीय और साम्राज्य-विरोधी है। बल्कि वस्तुस्थिति यह है कि इस युग में हिन्दी कविता की राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्य-धारा और प्रगतिशील काव्यधारा एक दूसरी के इतनी निकट आ गयी कि कहीं-कहीं उनमे अन्तर करना कठिन हो गया। राष्ट्रीय रुझान के प्रगतिशील कवि, दिनकर और नवीन, मूलतः इसी युग के कवि हैं।

यह युग प्रगतिशील कविता का पहला युग था, इसलिए उसकी कविता मे ऐसी बहुत सी प्रवृत्तियां भी विद्यमान रहीं, जिनका प्रगतिशील आन्दोलन से कोई अनिवार्य संबंध नहीं है और जिन्हें बाद की प्रगतिशील कविता ने स्वीकार नहीं किया। ऐसी प्रवृत्तियों में विध्वंसवाद और अराजकतावाद, कुत्सित यथार्थवाद और यौनवाद प्रमुख हैं। क्योंकि इस युग के अधिकांश प्रगतिशील कवि मध्यम वर्ग से आये हुए भावुक कवि थे, इसलिए एक ओर तो उन्होंने क्रान्ति की 'विपथगा' और 'दिगम्बरि' के रूप में कल्पना की तथा भविष्य की किसी सृजनात्मक धारणा के बिना ही 'उथल-पुथल' मचाने की कोशिश की, तो दूसरी ओर फ्रायड के प्रभाव में जन-स्वाधीनता के साथ-साथ कभी-कभार यौन-स्वाधीनता की धारणा को भी वाणी दी। चिन्तन की दृष्टि

से इस युग की अधिकांश कविता—पन्त जी की कविताओं को छोड़ कर—अधिक परिपक्व नहीं दिखाई देती। हां, विविधता अवश्य उसमें पर्याप्त है।

इस युग के द्वितीय चरण, दूसरे महायुद्ध काल की प्रगतिशील कविताओं में फासिस्ट-विरोध मुखर हुआ है। यहीं से प्रगतिशील कविता में अन्तरराष्ट्रीयता बोध की परंपरा प्रारंभ होती है, जो आगे के दौरों में निरन्तर विकसित होती गयी।

इस दौर में प्रकाशित प्रगतिशील कविता के प्रमुख संकलनों में निराला के कुकुरमुत्ता, अणिमा, बेला और नये पत्ते; पन्त के युगान्त, युगवाणी और ग्राम्या; दिनकर के रेणुका, हुंकार, सामधेनी और कुरुक्षेत्र; सुमन के हिल्लोल, जीवन के गान और प्रलय सृजन; अंचल के किरण-वेला और करील तथा नरेन्द्र शर्मा के लाल निशान, प्रभातफेरी और हंसमाला का उल्लेख किया जा सकता है।

हिन्दी की प्रगतिशील कविता का दूसरा दौर मोटे तौर पर औपनिवेशिक स्वराज्य से भारतीय गणराज्य की घोषणा तक का दौर है। साम्यवादी दल की दृष्टि से, जिसकी नीतियों का प्रगतिशील आन्दोलन पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा, देखा जाय तो यह वह दौर है जो उसके द्वारा ५१ में नये कार्यक्रम की स्वीकृति के साथ समाप्त होता है। यह वह युग है जिसमें नयी बनी राष्ट्रीय सरकार ने, अंग्रेज-अमेरिकी पूंजी पर बहुत अधिक आश्रित होने के कारण, भारत में जनवादी आन्दोलन को, जो औपनिवेशिक स्वराज्य की अपनी उपलब्धि से ही सन्तुष्ट नहीं था, भीषण दमन से कुचलने के प्रयत्न किये और उसे अधिक कटु और क्रान्तिकारी ही नहीं, कट्टर और संकीर्ण भी बना दिया। तेलंगाना का किसान-विद्रोह इसी युग की एक प्रमुख घटना है। कांग्रेसी शासन के इन आरंभिक वर्षों में सामान्य रूप से जन-आन्दोलन और विशेष रूप से किसान-मजदूर आन्दोलन का दमन अपनी चरम सीमा पर पहुंच गया। स्वयं भारत सरकार द्वारा प्रकाशित आंकड़ों के अनुसार उसके शासन के पहले तीन वर्षों में पुलिस और फौज ने जनता पर १६८२ बार गोली चलाई, ३७८४ लोगों को जान से मारा, १०,००० को जख्मी किया, ५०,००० को जेलों में बन्द किया और जेलों के अन्दर ८२ राजबन्दियों को गोली से उड़ा दिया।[1]

प्रगतिशील आन्दोलन इन परिस्थितियों से अप्रभावित नहीं रह सकता था। राष्ट्रीय स्वाधीनता की प्राप्ति का जनता के अन्य वर्गों की तरह प्रगतिशील लेखकों ने स्वागत किया[2] और आशा की कि स्वाधीनता और सांस्कृतिक

---

१. देखिए रजनी पामदत्त : भारत : वर्तमान और भावी, दिल्ली, ५६, पृ. २८८.

२. देखिए अक्तूबर ४७ के हंस में सितम्बर में हुए अखिल भारतीय हिन्दी

निर्माण का एक नया युग प्रारंभ होगा। पर जब नयी सरकार ने जनता पर अंधाधुंध दमन करना और स्पष्ट पूंजीवादी नीतियों पर चलना शुरू किया तो प्रगतिशील लेखकों में उसके प्रति कटुता की भावनाएं बढने लगीं। शीघ्र ही सरकार ने जन आन्दोलनों के साथ-साथ जनवादी सांस्कृतिक आन्दोलनों पर भी हमला बोल दिया। जन नाट्य संघ और प्रगतिशील लेखक संघ भी इस दमन की लपेट में आ गये। सभी प्रान्तों से इन संघों के सदस्य कलाकारों और लेखकों की बिना वारंट गिरफ्तारियों और बिना मुकदमा नजरबंदियों की खबरें आने लगीं।

इन सब परिस्थितियों के परिणाम-स्वरूप इस युग की प्रगतिशील कविता में जहां एक सधा हुआ क्रान्तिकारी स्वर, एक दृढ़ता और सुस्पष्टता मिलती है, वहां कविता को राजनीतिक और राजनीतिक संघर्षों तक सीमित करने की प्रवृत्ति तथा एक प्रकार की सैद्धान्तिक कट्टरता और कलाहीन सिद्धान्त-कथन की प्रवृत्ति भी उसमें मुखर है।

तत्कालीन प्रगतिशील कविता और उसकी प्रशंसक प्रगतिशील समीक्षा की इस चिन्ताजनक स्थिति पर प्रकाश डालते हुए श्री शिवदान सिंह चौहान ने लिखा था: "किसी गहरी अनुभूति की कलात्मक अभिव्यंजना के बिना भी कविता में यदि 'सही' मानवतावादी दृष्टिकोण या सही वामपक्षीय विचार पद्यबद्ध हैं, तो उन हल्की तुकबन्दियों को 'भी 'नये युग' की कविता घोषित करने में हमारे कतिपय आलोचक संकोच नहीं करते और समझते हैं कि कोरे साधारणीकृत विचारों, सिद्धान्तों और वक्तव्यों में 'आगे बढ़ते जाने' या 'लड़ते जाने' के गर्वोक्तिपूर्ण उद्‌गारों और 'अंधेरा-सबेरा' की टकसाली चित्र-कल्पनाओं को यान्त्रिक ढंग से जोड़ कर तुकों की बंदिश बांध देने या मुक्त छंद के रूप में लिख देने भर से ही कविता में 'प्रगति तत्व' पैदा हो जाता है।" वास्तव में इस युग की प्रगतिशील कविता का एक बड़ा हिस्सा प्रगतिशील चेतना का उन्मेश न रह कर, साम्यवादी दल की तत्कालीन नीतियों की उद्घोषणाएं मात्र रह गया था।

इस युग की कविता में केदार की युग की गंगा, शैलेन्द्र की न्योता और चुनौती, शील की एक पग और उदय पथ की अधिकांश कविताएं और नागार्जुन तथा रामविलास की अधिकांश सामयिक व्यंग-कविताएं आ जाती हैं।

कुल मिला कर इस दूसरे दौर की प्रगतिशील कविता में सामाजिक यथार्थ

प्रगतिशील लेखक सम्मेलन के प्रस्ताव तथा नवम्बर और दिसम्बर ४७ के हंस के अंकों में प्रकाशित भवानी प्रसाद मिश्र, नरेन्द्र शर्मा तथा गिरिजा कुमार माथुर आदि की कविताएं।

के कुछ प्रभावशाली चित्र खींचे गये और कुछ तिलमिला देने वाले सामाजिक और राजनीतिक व्यंग लिखे गये। इस युग की कविता में एक सीधी चोट है, जो कई बार कलाविहीन वक्तव्यों में बदल जाती है, पर कई बार प्रभावित भी करती है।

हिन्दी की प्रगतिशील कविता का तीसरा दौर उस समय से शुरू होता है, जब राष्ट्रीय सरकार की घरेलू और विदेश नीति में थोड़ा परिवर्तन आता है और वह अपेक्षाकृत उदार घरेलू नीति तथा मोटे तौर पर साम्राज्यवाद-विरोधी विदेश नीति अपनाती है। १९५०-५१ में अधिकांश साम्यवादी राजबंदियों को छोड़ दिया जाता है तथा बंगाल और मद्रास राज्यों में जनवादी संगठनों पर से प्रतिबंध हटा लिये जाते हैं। १९५२ में बालिग मताधिकार के आधार पर पहला आम चुनाव हुआ। धीरे-धीरे नेहरू सरकार ने सोवियत संघ और चीन के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध बनाये और अन्तरराष्ट्रीय शान्ति के लिए वह अधिकाधिक महत्व-पूर्ण भूमिका अदा करने लगी। परिणाम स्वरूप अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ ने अपने पाचवें अधिवेशन में, जो १९५३ में दिल्ली मे हुआ, प्रगति-शील आन्दोलन को एक अधिक व्यापक और उदार स्वरूप देने का प्रयत्न किया। इन्हीं सब परिस्थितियों में हिन्दी की प्रगतिशील कविता ने एक नयी और उदार मानववादी अवस्था में प्रवेश किया। क्रान्ति की भावनाओं के साथ-साथ अफ्रेशियाई एकता की भावना, विश्वशान्ति की उत्कट आकांक्षा और एक संवेदनशील उदार मानववाद के स्वर उसमें मुखर होने लगे। साथ ही उसकी शिल्पचेतना भी विकसित हुई। ५१ में प्रकाशित दूसरा सप्तक में संकलित शमशेर और नरेश मेहता की कविताएं इस नयी प्रगतिशील कविता का पहला सशक्त प्रतिनिधित्व करती हैं।

इस युग की प्रगतिशील कविता स्वच्छन्दतावादी कविता और नयी कविता के कुछ महत्वपूर्ण तत्वों को अपने भीतर समेट कर आगे बढ़ी। इसलिए न तो संवेदनशीलता और न शिल्प-सजगता के अभाव की शिकायत उससे की जा सकती है। कविता में राजनीति को सर्वाधिक महत्व देने का आग्रह कम हुआ और जीवन को उसकी जटिलता और समग्रता में चित्रित करने की प्रवृत्ति बढ़ी।

इस तीसरे दौर की कविता के अन्तर्गत नागार्जुन की सतरंगे पंखों वाली और प्यासी पथराई आंखें, केदार की लोक और आलोक, सुमन के विश्वास बढ़ता ही गया और पर आंखें नहीं भरीं, नीरज के प्राणगीत और दर्द दिया है, वीरेन्द्र मिश्र का लेखनी बेला, गजानन माधव मुक्तिबोध का चांद का मुंह टेढ़ा है, नरेश मेहता की दूसरा सप्तक की कविताएं तथा बन पाखी सुनो, गिरिजा कुमार माथुर के धूप के धान और शिला पंख चमकीले, भवानी प्रसाद मिश्र

का गीत फरोश, शमशेर की दूसरा सप्तक की कविताएं, कुछ कविताएं तथा कुछ और कविताएं तथा दुष्यन्त कुमार के सूर्य का स्वागत और आवाजों के घेरे आदि कविता संकलन आ जाते है।

हिन्दी की प्रगतिशील कविता का चौथा दौर सामाजिक इतिहास की दृष्टि से भारत-चीन संघर्ष की घटना से और साहित्येतिहास की दृष्टि से नयी कविता के दौर की समाप्ति से शुरू माना जा सकता है। सन् ६२ में चीन के साथ संघर्ष में भारतीय सेनाओं की पराजय और बाद में चीन द्वारा एकतरफा पीछे हटने की कार्यवाही ने भारत के राष्ट्रीय स्वाभिमान को गहरी चोट पहुंचायी। भारत-चीन संघर्ष ने न केवल भारत-चीन मैत्री और सद्भाव के एक लम्बे दौर को समाप्त कर दिया, वरन भारत के साम्यवादी आन्दोलन पर भी एक गहरा आघात किया। भारत के साम्यवादी एक ऐसे गंभीर वैचारिक संकट में आ पड़े, जैसे में वे अभी तक कभी नही पड़े थे। यद्यपि भारतीय साम्यवादी दल की राष्ट्रीय परिषद ने भारत के साथ संघर्ष के लिए चीन की सरकार को दोषी ठहराया, पर इस संबंध में साम्यवादियों में गहरे मतभेद उत्पन्न हो गये। भारत के साथ इस संघर्ष के बाद ही अन्तरराष्ट्रीय कम्युनिस्ट आन्दोलन में चीन ने रूस की कुछ स्थापित और अब तक मान्य सैद्धान्तिक स्थितियों की खुली आलोचना और निन्दा शुरू की। दो बड़े समाजवादी देशों के बीच के सैद्धान्तिक मतभेदों ने तमाम दुनियां के साम्यवादियों और प्रगतिशील जनवादियों को प्रभावित किया। इन्हीं प्रभावों में भारत का साम्यवादी दल, पहले दो और बाद मे तीन साम्यवादी दलों में विभाजित हुआ। तरुण-विद्रोह का एक नया रूप नक्सलवाद सामने आया। इस युग की अन्य प्रमुख राष्ट्रीय-अन्तरराष्ट्रीय घटनाओं में लाल-बहादुर शास्त्री का प्रधान मंत्रित्व, पाकिस्तान के साथ युद्ध और ताशकन्द सम-झौता, १९६७ के चुनाव में पहली बार कांग्रेस के एकाधिकार का टूटना और अनेक प्रान्तों में गैर-कांग्रेसी सरकारों का निर्माण, १९६९ में राष्ट्रपति के पद के चुनाव मे पहली बार कांग्रेस के आधिकारिक उम्मीदवार की हार और वामपक्षी विरोधी दलों द्वारा समर्थित श्री गिरि की विजय, कांग्रेस का विभाजन और अगले चुनावों मे इंदिरा गांधी के नेतृत्व में कांग्रेस का और भी मजबूत होकर शासनारूढ़ होना, चैकोस्लोवाकिया में सोवियत सैनिक हस्तक्षेप तथा भारतीय महाद्वीप में एक नये स्वतंत्र गणराज्य बांग्लादेश का जन्म प्रमुख हैं।

इन सभी घटनाओं ने इस दौर की प्रगतिशील कविता को प्रभावित किया। इस दौर के तरुण प्रगतिशील कवियों ने अपने-अपने समूहों को कुछ नयी संज्ञाएं दीं और अपने-अपने ढंग से नयी कविता की 'निष्क्रियता', 'अनुभूतियों की प्रामाणिकता' और 'असम्पृक्ति' के विरुद्ध सीधी सम्पृक्ति के साथ अपने सामने की जिन्दगी का साक्षात्कार किया और उसे, बिम्ब-धर्मी मुहावरे से हट कर, कमी-

कभी एक सपाट-बयानी के साथ भी प्रस्तुत किया। इन नयी संज्ञाओं में 'युयुत्सु कविता', 'आज की कविता' और 'प्रतिश्रुत कविता' ये तीन संज्ञाएं आपेक्षिक रूप से अधिक प्रचलित रहीं।

तीसरे दौर में नयी कविता के वर्चस्व के कारण प्रगतिशील कवियों की राजनीतिक चेतना में भी एक तरह का भोथरापन-सा आ गया था, वह सातवें दशक में नयी कविता के मिथ के टूटते-टूटते समाप्त होने लगा। नवयुवक कवियों की एक पूरी की पूरी पीढ़ी 'नयी कविता' से अपने को अलग घोषित करती हुई प्रगतिवाद के प्राथमिक दौर जैसे उत्साह के साथ कुंठाहीन स्वर में फिर से राजनीति को कविता का विषय बनाने लगी।

इस दौर की प्रगतिशील कविता में विद्रोह के तीन स्तर देखे जा सकते हैं: जनवादी विरोध, कुछ जिम्मेदार विद्रोह और एक दुस्साहसिकतापूर्ण समग्र विद्रोह। क्रान्तिकारी हिंसा को इससे पहले कभी कविता के केन्द्र में स्थापित करने की ऐसी कोशिश नहीं की गयी, जैसी इस युग के एक विद्रोही ग्रूप ने की है।

कुल मिला कर सातवें दशक की प्रगतिशील कविता अधिक प्रखरता पूर्वक राजनीतिक होकर भी निश्चित राजनीतिक दलों और सिद्धान्तों के दबाव से पांचवें दशक की कविता की अपेक्षा अधिक मुक्त है। बड़े से बड़े साम्यवादी देश के नेताओं की आलोचना और यहां तक कि भर्त्सना करने की हिम्मत और गुंजाइश उसने प्राप्त कर ली। दो-तीन या और भी अधिक अन्तरराष्ट्रीय तथा राष्ट्रीय साम्यवादी मतवादों के विकल्प के सामने रहने से नवयुवक प्रगतिशील कवि को अपनी रुझान और रुचि के अनुकूल मतवाद को स्वीकार करने या हर मुद्दे पर स्वयं सोच कर फैसला करने की जैसी गुंजाइश इस युग में रही, वैसी पहले कभी नहीं थी।

समसामयिक 'अकविता' आदि काव्यान्दोलनों के प्रभाव-स्वरूप इस युग की प्रगतिशील कविता में कभी-कभी शब्दों की निरर्थक संयोजना, वास्तविक दुनियां के अमूर्तिकरण और कुत्सापूर्ण शब्दावली के प्रयोग की प्रवृत्ति भी दिखायी देती है।

इस दौर की कविता के अन्तर्गत राजीव सक्सेना का आत्म निर्वासन, रणजीत का इतिहास का दर्द, जुगमंदिर तायल का सूरज सब देखता है, मृत्युंजय उपाध्याय का किन्तु, श्रीराम शलभ का कल सुबह होने से पहले, हरीश भादानी का सुलगते पिंड, केदारनाथ अग्रवाल का आग का आईना और भारतभूषण अग्रवाल का एक उठा हुआ हाथ और धूमिल का संसद से सड़क तक आदि संकलनों के अतिरिक्त कुमारेन्द्र पारस नाथ सिंह, विजेन्द्र, अजित पुष्कल, आदि अनेक तरुण कवियों की छिट-पुट कविताएं आ जाती हैं।

प्रगतिशील कवियों का वर्गीकरण

हिन्दी के प्रगतिशील कवियों का वर्गीकरण मुख्यतः चार आधारों पर किया जा सकता है : पीढ़ियों के आधार पर, वर्ग-स्थिति के आधार पर, सामाजिक चेतना के आधार पर और रुझान के आधार पर।

सबसे पहले तो हम १९३६ से लेकर आज तक के सब प्रगतिशील कवियों को चार पीढ़ियों में विभाजित करके देख सकते हैं। पहली पीढ़ी में पन्त, निराला, दिनकर और नवीन आते हैं। इन्हें मोटे तौर पर प्रगतिशील आन्दोलन के पहले दशक (३६ से ४५) के कवि कहा जा सकता है। इनके काव्य में हमें प्रगतिशील आन्दोलन की प्रारंभिक कमजोरियां—अध्यात्मवाद, विध्वंसवाद और अराजकतावाद आदि—मिलती हैं। दूसरी पीढ़ी में नागार्जुन, केदार, सुमन, त्रिलोचन, शैलेन्द्र, रांगेयराघव, राम विलास आदि कवि आते हैं, जिन्होंने मोटे तौर पर १९४५ के बाद लिखना शुरू किया। इन्हें हम मुख्यतः प्रगतिशील आन्दोलन के दूसरे दशक (४६-५५) के कवि कह सकते हैं। वैसे भी प्रगतिशील कविता का दूसरा दौर प्रमुखतः इन्हीं कवियों के कंधों पर से आगे बढ़ा था। एक प्रखर राजनीतिक चेतना इस पीढ़ी के कवियों की प्रधान विशेषता है। तीसरी पीढ़ी में एक ओर मुक्तिबोध, शमशेर, नरेश मेहता और गिरिजा कुमार जैसे कवि आते हैं तो दूसरी ओर नीरज, वीरेन्द्र मिश्र जैसे गीतकार। चौथी पीढ़ी में उन नवयुवक कवियों को शामिल किया जा सकता है, जिन्होंने मोटे तौर पर सन् साठ के बाद ही जम कर लिखना शुरू किया जैसे धूमिल, शलभ, मृत्युंजय, जुगमंदिर, हरीश भादानी, विजेन्द्र आदि।

पीढ़ियों के आधार पर वर्गीकरण की सबसे बड़ी सीमा यह है कि इनके बीच समय की कोई निश्चित रेखा नहीं खींची जा सकती। पहली दोनों पीढ़ियों के कई कवि अब तक सक्रिय हैं और तीसरी पीढ़ी में भी गिने जा सकते हैं। जैसे नागार्जुन और केदार। फिर पहली पीढ़ी के पन्त और निराला तथा दिनकर और नवीन का युग्म एक दूसरे से इतना भिन्न है कि उन्हें एक पीढ़ी में रखने से विवेचन की किसी आवश्यकता की पूर्ति नहीं होती। लगभग यही बात तीसरी पीढ़ी के एक तरफ शमशेर, गिरिजा कुमार, मुक्तिबोध आदि

के और दूसरी तरफ नीरज, वीरेन्द्र मिश्र आदि के बारे में भी कही जा सकती है।

वर्गीकरण का दूसरा आधार हो सकता है: कवियों की वर्गस्थिति। इस आधार पर हम इन कवियों को चार वर्गों में विभाजित कर सकते हैं:

१) मुख्यतः मजदूर वर्ग के कवि—जैसे नागार्जुन, शैलेन्द्र, शील, सुदर्शन चक्र आदि।
२) मुख्यतः किसान वर्ग के कवि—जैसे निराला, केदार, त्रिलोचन, रामविलास आदि।
३) निम्न मध्यम (पेट्टी बूर्ज्वा) वर्ग के कवि—जैसे शमशेर, नीरज, अंचल, सुमन आदि; और
४) राष्ट्रीय मध्यम (नेशनल बूर्ज्वा) वर्ग के कवि—जैसे पन्त, दिनकर, नवीन।

इस विभाजन का गहरा मार्क्सवादी स्वर प्रभावित करता है। पर इसकी सबसे बड़ी सीमा यह है कि यह बहुत निश्चित नहीं है। किसी एक प्रगतिशील कवि के वर्ग-संदर्भों को निश्चयात्मक स्वर में नहीं बताया जा सकता। इसीलिए मैंने प्रमुखतः मजदूर वर्ग के कवि आदि कहा है। फिर सवाल उठता है कि यदि हम किसी प्रगतिशील कवि को किसान वर्ग का कवि कहते हैं, तो हमारा क्या अभिप्राय है ? एक अभिप्राय यह हो सकता है कि उसका जन्म किसान वर्ग में हुआ। पर किसान वर्ग में जन्मे सभी कवियों का दृष्टिकोण एक हो, यह बिल्कुल जरूरी नहीं है। जन्म का आधार मार्क्सवादी समीक्षा में मान्य नही है। दूसरा अभिप्राय यह भी हो सकता है कि उसका दृष्टिकोण किसान वर्ग का है। परन्तु अगर वह वास्तव में प्रगतिशील कवि है तो उसके दृष्टिकोण को हम 'किसान वर्ग का दृष्टिकोण' नही कह सकते। क्योंकि 'किसान वर्ग का दृष्टिकोण' साधारणतया प्रगतिशील नही होता। अपनी इन दो सीमाओं के कारण यह विभाजन भी बहुत उपयुक्त नहीं है।

प्रगतिशील कवियों के वर्गीकरण का तीसरा आधार उनकी सामाजिक चेतना की प्रखरता हो सकता है। यह तथ्य है कि इनमें से कुछ कवियों की सामाजिक चेतना इतनी विकसित है कि उन्हें सीधे-सीधे मार्क्सवादी कवि कहा जा सकता है। पर कुछ कवि यद्यपि प्रगतिशील हैं, और मार्क्सवाद से थोड़े बहुत प्रभावित भी हैं, तथापि उन्हें मार्क्सवादी नही कहा जा सकता। इसलिए इस आधार पर हम सभी प्रगतिशील कवियों को सजग मानववादी (या मार्क्सवादी) और सहज मानववादी इन दो वर्गों में विभाजित कर सकते हैं। पहले वर्ग में नागार्जुन, केदार, शैलेन्द्र, शील, रामविलास आदि कवि आयेंगे

और दूसरे में पन्त, निराला, गिरिजा कुमार, भवानी प्रसाद, नीरज, वीरेन्द्र मिश्र आदि।

पर इस वर्गीकरण की एक सीमा तो यह है कि इसमें कवियों के विचारों के आधार पर उनके मूल्यांकन की ओर झुकाव का खतरा है। पर किसी कवि का सम्यक् मूल्यांकन उसके विचारों के आधार पर नहीं किया जा सकता। विचारक रूप में वह कवि बहुत प्रगतिशील हो सकता है, पर ऐसा भी हो सकता है कि उसके इस दृष्टिकोण की सम्यक् अभिव्यक्ति उसकी कविताओं मे न हुई हो। या यों कहें उसका यह विचारक रूप सुन्दर कविताओं के निर्माण मे काम न आ सका हो। कई बार यह भी होता है कि कवि के विचार अलग तरह के होते हैं, और संस्कार अलग तरह के। ऐसी स्थिति में उसकी कविताएं सस्कारों के ही अधिक अनुकूल होती हैं, विचारों के नही। इसलिए जिन कवियों को विचारों की दृष्टि से हम सजग मानववादी कहें, वे सस्कारो की दृष्टि से रूमानी या प्रयोगशील हो सकते हैं।

वर्गीकरण की दूसरी सीमा यह है कि इसमें सहज मानववादी वर्ग इतना बड़ा है कि उसमें बिल्कुल भिन्न प्रवृत्तियों के कवि एक साथ आ जाते हैं।

इसलिए इसी वर्गीकरण का थोड़ा परिवर्तित और संशोधित रूप हो सकता है, रुझान के आधार पर वर्गीकरण। इस आधार पर सबसे पहले हम सभी प्रगतिशील कवियों को दो बड़े वर्गों में विभाजित कर सकते हैं: केन्द्रीय वर्ग के कवि और परिधि-वर्गो के कवि। केन्द्रीय वर्ग में वे कवि आयेंगे जिनकी अधिकांश कविताएं सामाजिक-यथार्थ और सामाजिक-राजनीतिक संघर्ष की भावनाओं और विचारों से पूर्ण हैं। अर्थात् जिनकी मूल रुझान सामाजिक यथार्थवादी है। इस वर्ग में सामाजिक चेतना की प्रखरता के आधार पर ऊपर किये हुए वर्गीकरण के 'सजग मानववादी' कवि आ जायेंगे, उनको छोड़ कर जो विचारों से तो मार्क्सवादी हैं, पर रुझान उनकी सामाजिक यथार्थवादी नही है, जैसे शमशेर। और उस वर्ग के कवियों के अतिरिक्त इस वर्ग में जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द जैसे कवि भी आ जायेंगे, जिन्हें वैचारिक-दृष्टि से भले ही पूरे मार्क्सवादी नही कहा जा सके, पर जिनकी मूल रुझान सामाजिक यथार्थवादी है।

केन्द्रीय वर्ग के कवियों में हम श्री रामेश्वर करुण, नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन, जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द, रांगेय राघव, उपेन्द्रनाथ अश्क, शैलेन्द्र, रामविलास शर्मा, शील, महेन्द्र भटनागर, सुदर्शनचक्र, इन्दीवर, मलखान सिंह, पद्मसिंह शर्मा कमलेश, हरिनारायण विद्रोही, मानसिंह राही, प्रकाश उप्पल, मुकुल, चन्द्रदेव, मनुज, सिद्धनाथ कुमार, विद्यासागर अरुण, अशान्त त्रिपाठी आदि के नाम ले सकते हैं। इस वर्ग के कवियों को फिर उनकी

विशिष्ट रुझानों के आधार पर दो तीन उपवर्गों में विभाजित किया जा सकता है : जैसे आंचलिक और प्राकृतिक रुझान के कवि : केदार नाथ अग्रवाल, त्रिलोचन, रामविलास आदि; राजनीतिक रुझान के कवि : शैलेन्द्र, शील, सुदर्शन चक्र, हरिनारायण विद्रोही, मानसिंह राही आदि और व्यंगकार : नागार्जुन, शैलेन्द्र, चन्द्रदेव आदि।

परिधि के कवियों को फिर चार वर्गों में बांटा जा सकता है :

(१) छायावादी-अध्यात्मवादी रुझान के कवि : पन्त, निराला, उदयशंकर भट्ट।

(२) राष्ट्रीय-रूमानी रुझान के कवि : दिनकर और नवीन।

(३) रूमानी रुझान के कवि : शिवमंगल सिंह सुमन, अंचल, नरेन्द्र शर्मा, नीरज, वीरेन्द्र मिश्र, गंगाराम पथिक आदि।

(४) प्रयोगशील रुझान के या नये प्रगतिशील कवि : मुक्तिबोध, नरेश मेहता, गिरिजा कुमार माथुर, शमशेर, भवानी प्रसाद मिश्र, भारत भूषण अग्रवाल, वीरेन्द्र कुमार जैन, दुष्यन्त कुमार, राम दरश मिश्र, हरिनारायण व्यास, नेमिचन्द जैन, केदार नाथ सिंह, आदि।

समसामयिक कविता की 'प्रतिश्रुत पीढ़ी' आदि के कवि भी इसी वर्ग के अन्तर्गत रखे जा सकते हैं। और या सातवें दशक के प्रगतिशील कवियों का एक अलग वर्ग भी बनाया जा सकता है।

छायावादी-अध्यात्मवादी रुझान के कवि

जैसा कि पिछले अध्याय में कहा जा चुका है, इस वर्ग के प्रगतिशील कवियों में प्रमुख पन्त जी, निराला जी और भट्ट जी हैं। ये कवि पहले छायावादी रहे हैं और अध्यात्मवाद का प्रभाव इन पर अन्त तक रहा है। लेकिन इन दोनो रुझानों के बावजूद इनके काव्य-सृजन का एक बड़ा अंश हिन्दी की प्रगतिशील कविता का एक महत्वपूर्ण अंग है।

यद्यपि ये तीनों कवि एक ही वर्ग में रखे गये हैं और छायावाद तथा अध्यात्मिक झुकाव इनकी सामान्य विशेषताएं हैं, तथापि अन्य विशेषताओं की दृष्टि से इनका कृतित्व एक-दूसरे से पर्याप्त अलग और व्यक्तित्व-सम्पन्न है।

सुमित्रानंदन पन्त

हिन्दी के प्रगतिशील कवियों में पन्त जी का महत्व असाधारण है। छायावाद के एक प्रमुख स्तंभ होने के साथ ही वे हिन्दी कविता में प्रगतिशील आन्दोलन के भी प्रवर्तक कवियों में से हैं। साधारणतया पन्त जी के काव्य-जीवन को तीन युगों में विभाजित किया जाता है : छायावादी युग, प्रगतिवादी युग और अरविन्दवादी युग[1] और यद्यपि दिनकर जी का यह कहना ठीक है कि पन्त जी का यह विकास बहुत ही क्रमिक ढंग से हुआ, उनमें विचारों का अस्वाभाविक परिवर्तन कभी नही आया[2] तथापि इसमें कोई संदेह नही कि प्रारंभ मे वे छायावादी थे, बीच में उनका अधिक झुकाव यथार्थवाद और प्रगतिवाद की ओर रहा और अन्त मे अरविन्द दर्शन की ओर अधिक हो गया।

---

१. गोपाल कृष्ण कौल ने इन्हें क्रमशः सौन्दर्य युग, प्रगति युग, और अध्यात्म युग कहा है, देखिए उनका लेख. पन्त की रचनाओं के तीन युग, शचीरानी गुर्टू द्वारा संपादित पुस्तक सुमित्रानंदन पन्त : काव्य कला और जीवन दर्शन, दिल्ली, ५१.

२. दिनकर : पन्त, प्रसाद और मैथिलीशरण, पृ. १०२.

यह ठीक है कि जब वे प्रगतिवाद के कवि बने तब भी उन्होंने पूरी तरह से मार्क्सवादी दर्शन स्वीकार नहीं किया और अब, जब वे अरविन्दवाद से प्रभावित हैं, तब भी मार्क्सवाद के प्रभावों से पूरी तरह मुक्त नहीं हुए हैं। वास्तव में छायावाद से पल्ला छुड़ाने के बाद का उनका सम्पूर्ण काव्य भौतिकवाद और अध्यात्मवाद के, राजनीति और संस्कृति के, एक तरफ मार्क्स और दूसरी तरफ गांधी तथा अरविन्द के बीच समन्वय के प्रयत्न का काव्य है; यह अलग बात है कि प्रारंभ में इस समन्वय में भी भौतिकवाद पर उनका आग्रह अधिक रहा और बाद में अध्यात्मवाद पर।

यद्यपि पन्त के प्रगतिकाव्य का प्रारंभ युगान्त से ही माना जाता है पर युगान्त से पहले सन् ३२ में प्रकाशित गुंजन में भी बीज रूप में हमें कवि की यह नयी प्रवृत्ति मिल जाती है। राहुल जी ने बताया है कि पूरन चन्द जोशी से (जो बाद में भारतीय साम्यवादी दल के महामंत्री भी रहे) पन्त जी का सम्पर्क १९२४ के आसपास ही हो गया था, लेकिन उनके विचारों का प्रभाव पन्त पर १९३० के लगभग ही पड़ना आरंभ हुआ, जब वे लम्बी बीमारी के बाद स्वास्थ्य-लाभ कर कालाकांकर के राजा साहब के मेहमान बन कर धारनपुर नामक गांव में रहने लगे। यहीं उन्होंने मार्क्सवाद की पुस्तकें पढ़नी शुरू कीं।[३] 'गुंजन की दो तीन कविताओं में कवि जीवन के अगले मोड़ के बीज देखे जा सकते हैं। उदाहरण स्वरूप जनवरी और फरवरी १९३२ में लिखी उनकी कविताएं 'तप रे मधुर मधुर मन' 'मैं नहीं चाहता चिर सुख' और 'देखूं सबके उर की डाली' देखी जा सकती हैं। ये कविताएं कवि की बदलती हुई मनस्थिति की, और कवि के काव्य-जीवन में आने वाले एक नये मोड़ की प्रतीक हैं। गुंजन से प्रारंभ हुआ कवि-जीवन का यह नया मोड़, युगान्त में और भी स्पष्ट अभिव्यक्ति पाता है।

युगान्त (३६, जिसमें कवि की ३४ से ३६ में लिखी हुई कविताएं संकलित हैं) वास्तव में पन्त के काव्य जीवन के छायावादी युग का अन्त है और प्रगतिशील युग का प्रारंभ। संकलन की ३३ कविताओं में से सात-आठ छायावादी (चंचल पग दीप शिखा के, विद्रुम और मरकत की छाया, मंजरित आम्रवन छाया में, वह विजन चांदनी की घाटी, वह लेटी है तरु-छाया में, खोलो मुख से घूंघट, तितली और संध्या) कविताओं को छोड़ कर शेष सभी कविताओं में कवि ने अपने नये जीवन-दर्शन को अभिव्यक्ति दी है। अधिकांश कविताओं में यह अभिव्यक्ति प्राकृतिक बिम्बों और प्रतीकों के सहारे हुई है। कुछ में

३. राहुल सांकृत्यायन : हिन्दी के युग प्रवर्तक कवि पन्त, शचीरानी गुर्टू द्वारा संपादित वही पुस्तक, पृ. ४४-४५.

सीधा सादा विचार-कथन भी है। जैसे 'ताज' और 'बापू के प्रति' की अधिकांश पंक्तियों में। उदाहरण स्वरूप 'बापू के प्रति' की ये पंक्तियां :

सहयोग सिखा शासित जन को
शासन का दुर्वह हरा भार
होकर निरस्त्र, सत्याग्रह से
रोका मिथ्या का बल प्रहार
बहु भेद विग्रहों में खोई
ली जीर्ण जाति क्षय से उबार
तुमने प्रकाश को कह प्रकाश
औ' अन्धकार को अन्धकार।

'बापू के प्रति' कविता में ध्यान देने की बात यह है कि यहां गांधी जी को एक 'शुद्ध बुद्ध आत्मा केवल', एक आध्यात्मिक शक्ति के रूप में ही अधिक देखा गया है और उनके क्रान्तिकारी नहीं, क्रान्ति-शामी रूप को ही अधिक उभारा गया है। उन्होंने शासितों को सहयोग सिखा कर शासन के दुर्वह बोझ को वहन करने योग्य बना दिया, उद्दाम-काम जन क्रान्ति को रोक कर जीवन-इच्छा को आत्मा के वश में रख लिया, जनशोषण की बढ़ती हुई यमुना को नत, पद-प्रणत और शान्त कर दिया, आदि-आदि।

युगान्त में पन्त के प्रगतिशील सृजन की उपलब्धियां हैं—'द्रुत झरो जगत के जीर्णपत्र,' 'बांसों का झुरमुट,' 'मानव' और 'सृष्टि' कविताएं। 'द्रुत झरो' में भावोपयुक्त शब्दावली में पुराने पत्तों का झर जाने के लिए आह्वान किया गया है :

द्रुत झरो जगत के जीर्ण पत्र
हे स्रस्त ध्वस्त हे शुष्क शीर्ण
हिमताप पीत, मधुवात भीत
तुम वीत राग जड़ पुराचीन

ताकि

कंकाल-जाल जग में फैले
फिर नवल रुधिर पल्लव-लाली
प्राणों की मर्मर से मुखरित
जीवन की मांसल हरियाली।

'बांसों का झुरमुट' में छायावादी कौशल के साथ कवि ने अपने नये जीवन-

दर्शन को सुन्दर अभिव्यक्ति दी है। बहुत थोड़े शब्दों में, दो ही तीन छोटे-छोटे वाक्यों में सम्पूर्ण वातावरण की संश्लिष्ट योजना कविता की बहुत बड़ी विशेषता है :

बांसों का झुरमुट
संध्या का झुटपुट
हैं चहक रही चिड़ियाँ
टी-वी-टी-टुट्-टुट् ।

पर यह संश्लिष्ट योजना केवल प्राकृतिक वातावरण की ही नहीं है, मानवीय यथार्थ को भी इसी वाक्लाघव के साथ प्रस्तुत किया गया है :

ये नाप रहे निज घर का मग
कुछ श्रमजीवी घर डगमग डग
भारी है जीवन, भारी पग !

कविता के अन्त में कवि कामना करता है कि,

गा सके खगों सा मेरा कवि
विश्री जग की, संध्या की छवि
गा सके खगों सा मेरा कवि
फिर हो प्रभात-फिर आवे रवि

बीच की एकाध पंक्ति के ढीलेपन के बावजूद पन्त जी की यह कविता एक सशक्त और पूर्ण कविता है।

'सृष्टि' शायद कवि के तत्कालीन (और बाद के भी) जीवन-दर्शन की सर्वाधिक प्रतिनिधि अभिव्यक्ति है। जीवन को यहाँ एक चेतन शक्ति के रूप में, एक लाइफ फोर्स के रूप मे, रूपायित किया गया है और इसके लिए प्रतीक चुना गया है बीज का :

मिट्टी का गहरा अंधकार
डूबा है उसमें एक बीज
वह खो न गया मिट्टी न बना
कोदों, सरसों से क्षुद्र चीज
उस छोटे उर में छिपे हुए
हैं डाल पात औ स्कंध-मूल
गहरी हरीतिमा की संसृति
बहु रूप रंग फल और फूल

बंदी उसमें जीवन अंकुर
जो तोड़ निखिल जग के बंधन
पाने को है निज सत्व—मुक्ति
जड़ निद्रा से जग, बन चेतन !

प्राकृतिक और मानवीय प्रगति को देखने की यह एक दृष्टि है, जो यद्यपि बर्गसां के दर्शन से प्रभावित है, मार्क्स के दर्शन से नहीं, तथापि मूलतः प्रगतिशील ही है।

'मानव' में आकर प्रकृति का वह कवि, जिसने अपने प्रारंभिक उन्मेष में 'द्रुमों की मृदु छाया' के लिए 'बाला के बाल-जाल' की उपेक्षा की थी, प्रकृति की आराधना छोड़ कर मनुष्य की अर्चना करने लगता है। कविता में मनुष्य के शरीर और मन का जो रेखाकार प्रस्तुत किया गया है, वह मनुष्य के प्रति एक पवित्रता और गरिमा का भाव जगाता है :

यौवन-ज्वाला से वेष्टित तन
मृदुत्वच, सौन्दर्य प्ररोह अंग
न्यौछावर जिन पर निखिल प्रकृति
छाया प्रकाश के रूप रंग

युगान्त की कविताओं को ध्यान से पढ़ते हुए, एक महत्वपूर्ण बात, जिस पर दृष्टि जाती है, यह है कि यद्यपि कवि ने अनेक कविताओं में जीर्ण-पुरातन को ध्वस्त करने की और पावक कण बरसाने की बात कही है और बहिरंतर क्रान्ति का आह्वान किया है तथापि उसका जोर यहां भी 'ज्योत्स्ना' की तरह ही मनः क्रान्ति पर ही अधिक है।[४] मनुष्य उसके लिए 'नश्वर रजकण नहीं,' एक चिरन्तन और दिव्य स्फुलिंग है, वह मिट्टी के गहरे अंधकार के बंधन तोड़ कर अपना सत्व—मुक्ति पाने के लिए जागता है। युगान्त की एक कविता में उनका यह आग्रह स्पष्ट हो जाता है :

सुन्दरता का आलोक स्रोत
है फूट पड़ा मेरे मन में
जिससे नव जीवन का प्रभात
होगा फिर जग के आंगन में

---

४. शान्तिप्रिय द्विवेदी : पन्त का युगान्त, सुमित्रा नन्दन पन्त : काव्य कला और जीवन दर्शन (सं. गुर्टू) पृ. २५६.

सुन्दरता का संसार नवल
अंकुरित हुआ मेरे मन में
जिसकी नव मांसल हरीतिमा
फैलेगी जग के गृह वन में।

ऐसी स्थिति में श्री शान्ति प्रिय द्विवेदी का यह कथन मूलतः सही है कि युगान्त में कवि ने मदान्ध भौतिकवाद के प्रतिकूल प्रकाशमान मानववाद को प्रतिष्ठित किया है और उसे अध्यात्म के परम तत्व का सम्बल दिया है।[5]

युगवाणी (३९) पन्त जी के प्रगति काव्य का दूसरा संकलन है। पन्त जी ने स्वयं लिखा है युगवाणी तथा ग्राम्या में मेरी क्रान्ति की भावना मार्क्सवादी दर्शन से प्रभावित ही नहीं होती, उसे आत्मसात करने का भी प्रयत्न करती है।[6] युगवाणी में कवि ने 'युग के गद्य को वाणी देने का प्रयत्न' किया है। संकलन की ८३ कविताओं को कई वर्गों में बांटा जा सकता है।

सबसे पहले प्रकृति संबंधी कविताओं को लिया जा सकता है। युगवाणी में संगृहीत कवि की प्रकृति संबंधी रचनाएं दो प्रकार की हैं। एक वे जिनमें उन्होंने प्रकृति का आलम्बन रूप में वर्णन किया है। जैसे 'झंझा में नीम', 'दो मित्र', 'ओस के प्रति', 'जलद', 'कैलीफोर्निया', 'पापी' आदि कविताएं। ऐसी कविताओं में प्रकृति को छायावादी भावभूमि से ही देखा गया है, हां शैली जरूर छायावादी कुहासे से दूर, सरल और सहज, पर गद्यात्मक है।

पर युगवाणी की प्रकृति सबंधी अधिकांश कविताएं दूसरी तरह की हैं। इनमें प्रकृति-वर्णन साध्य नहीं है। इन कविताओं में प्रकृति मात्र मानव-समस्याओं पर चिंतन की सामग्री प्रस्तुत करती है। ऐसी कविताओं को मानव-संदर्भी प्रकृति-कविताएं कहा जा सकता है। ऐसी कविताओं में 'बदली का प्रभात,' 'पलाश', 'पलाश के प्रति', 'गंगा का प्रभात', 'गंगा की सांझ', 'मधु के स्वप्न,' 'आम्रविहग', 'प्रकृति के प्रति' आदि को गिनाया जा सकता है। इन कविताओं में कवि प्रारंभ तो प्रकृति वर्णन से करता है, पर कविता के अन्त की ओर जाते-जाते कभी तो मानव-समस्याओं पर चिन्तन करने लगता है, कभी प्रकृति के उपादानों से जीवन में परिवर्तन लाने का आह्वान करने लगता है, ऐसी शुभ कामना करने लगता है कि 'जीवन की आकांक्षाओं का ऐसा सौन्दर्य जो प्रकृति में प्राप्त होता है, वैसा 'मानव भी उपयोग कर सके' (पलाश के प्रति) और कभी प्रकृति के सौंदर्य को देखते-देखते इस बात पर दुःखी हो उठता है कि बिचारे

५. वही, पृ. २५७.
६. मैं और मेरी कला, गुर्टू की पुस्तक में संकलित, पृ. ७.

'भाव से जर्जर' मनुष्य के पास अवसर ही कहां हैं कि वह मुख 'प्रकृति-मुख' देखे (बदली का प्रभात)। वह प्रकृति से कहता है :

हार गई तुम
प्रकृति
रच निरुपम
मानव कृति
निखिल रूप रेखा स्वर
हुए निछावर
मानव के तन मन पर

(प्रकृति के प्रति)

तीसरे वर्ग में वे कविताएं आती हैं, जिनमें युगान्त से अलग हट कर कवि का भौतिकता के प्रति आग्रह और उस पर मार्क्सवादी द्वन्द्वात्मकता का प्रभाव व्यक्त हुआ है। पदार्थ और चेतना में से पदार्थ पर, रूप और भाव में से रूप पर, जोर देने वाली कविताओं में 'वस्तु सत्य', 'रूप सत्य', 'कर्म का मन', 'मानव-पशु', 'रूप का मन', 'घननाद', 'जीवन-मांस' आदि का नाम लिया जा सकता है। ये कविताएं इस बात की प्रमाण हैं कि यद्यपि युगवाणी में भी कवि भौतिक और आध्यात्मिक मे समन्वय चाहता है तथापि यहा निश्चित रूप से इस समन्वय में भी भौतिक का पलड़ा भारी है। 'रूप सत्य' की प्रारंभिक पंक्तिया हैं :

मुझे रूप ही भाता
प्राण रूप ही मेरे उर में
मधुर भाव बन जाता
मुझे रूप ही भाता
जीवन का चिर सत्य
नहीं दे सका मुझे परितोष
मुझे ज्ञान से वस्तु सुहाती
सूक्ष्म बीज से कोप।

और कर्म का मन में कवि कहता है :

रूप जगत की प्रति छाया यह
भाव जगत मानस का निश्चित
गत युग का मृत सगुण आज
मानव-मन की गति करता कुंठित
अतः कर्म को प्रथम स्थान दो

भाव जगत कर्मों से निर्मित
निखिल विचार, विवेक, तर्क
भवरूप कर्म को करो समर्पित

'घननाद' की ये पंक्तियां स्पष्ट नाद करती हैं।

व्यर्थ विचारों का संघर्षण
अविरत श्रम ही जीवन-साधन
लोह-काष्ठ-मय, रक्त-मांस-मय
वस्तु रूप ही सत्य चिरन्तन।

संकलन की तीन चार कविताओं में मार्क्सवादी द्वन्द्वात्मकता की भी अभिव्यक्ति हुई है। जैसे 'भूतदर्शन', 'आह्वान', 'द्वन्द्व' और 'क्रान्ति' में। इन कविताओं में पन्त जी जीवन की द्वन्द्वात्मकता को स्वीकार करते हैं, कुरूप, कुत्सित और प्राकृत का सुन्दर और संस्कृत के साथ गले मिलने के लिए आह्वान करते हैं (आवाहन) और क्रांति की द्वन्द्वात्मकता पर प्रकाश डालते हैं :

तुम अंधकार, जीवन को ज्योतित करती
तुम विष हो, उर में मधुर सुधासी झरती
तुम मरण, विश्व में अमर चेतना भरती
तुम निखिल भयंकर भीति जगत की हरती

चौथा वर्ग उन कविताओं का है, जिनमें सामाजिक यथार्थ के, मार्क्सवादी सिद्धान्तों से प्रभावित और बहुत कुछ अमूर्त से चित्र हैं : जैसे 'कृषक', 'धनपति, 'श्रमजीवी', 'मध्यवर्ग', 'साम्राज्यवाद' आदि कविताएं। इन कविताओं में, कहीं-कहीं एकाध छूनेवाली पंक्ति के सिवाय, अधिकतर सिद्धान्त-कथन ही पद्यबद्ध किया गया है।

सामाजिक यथार्थ के ही वर्ग में इन कविताओं से मिलती जुलती पर इनसे कुछ अधिक भावप्रवण दो और कविताएं हैं जो नारी-जागरण से संबंधित है : 'नारी' और 'नर की छाया'। इन कविताओं में पूंजीवादी समाज में नारी की *दयनीय स्थिति को इंगिति दी गयी है और काम-भावना को सामाजिक मान्यता* दिलवाने की मांग की गयी है।

पांचवें वर्ग में उन कविताओं को लिया जा सकता है जिनमें धरती और मानव के प्रति पन्त जी का सहज राग व्यक्त हुआ है। ये कविताएं युगवाणी की अधिकांश विचार-प्रधान कविताओं से अपने सहज मानववाद और अपनी रागात्मकता के कारण कुछ अलग हैं। 'दो लड़के', 'मानवपन' और 'पुष्प-प्रसू' ऐसी ही कविताएं हैं।

'दो लड़के' लघुता पर दृष्टिपात, मानव के प्रति राग और सरल भाषा की दृष्टि से महत्वपूर्ण है :

मेरे आंगन में (टीले पर है मेरा घर)
दो छोटे से लड़के आ जाते हैं अक्सर
नंगे तन, गदबदे, सांवले, सहज छबीले
मिट्टी के मटमैले पुतले पर फुर्तीले
जल्दी से टीले के नीचे उधर उतर कर
वे चुन ले जाते कूड़े से निधियां सुन्दर
सुन्दर लगती नग्न देह मोहती नयन-मन
मानव के नाते उर में भरता अपनापन।

'मानवपन' में धरती के प्रति कवि का राग व्यक्त हुआ है :

इस धरती के रोम रोम में भरी सहज सुन्दरता
इसकी रज को छू प्रकाश, बन मधुर विनम्र निखरता
पीले पत्ते, टूटी टहनी, छिलके कंकर पत्थर
कूड़ा कर्कट सब कुछ भू पर लगता सार्थक सुन्दर·

साधारणता और लघुता के प्रति कवि के इस राग का पूरा महत्व तब स्पष्ट होता है, जब हम इन पंक्तियों को कवि के पिछले छायावादी सृजन की पृष्ठभूमि में रख कर देखते हैं—जहां असाधारणता और सुन्दरता ही उसका मन मोहती थी। कवि की बदली हुई दृष्टि को ये पंक्तियां बड़े सहज ढंग से व्यक्त करती हैं।

'पुष्प-प्रसू' में भी धरती का एक राग-भीना बिम्ब है :

ताक रहे हो गगन ?
मृत्यु नीलिमा गहन गगन
अनिमेष, अचितवन, काल-नयन ?
निःस्पन्द, शून्य, निर्जन, निःस्वन !
देखो भू को
जीव प्रसू को
हरित भरित
पल्लवित, मर्मरित
कुंजित, गुंजित
कुसुमित भू को।

छठे वर्ग की कविताओं में पन्त जी की समन्वय भावना को अभिव्यक्ति मिली है : ऐसी कविताओं में 'समाजवाद-गांधीवाद', 'संकीर्ण भौतिकवादियों से', 'मन के स्वप्न' और 'भूत जगत' के नाम लिये जा सकते हैं। 'समाजवाद-गांधीवाद' में कवि दोनों वादों के महत्व को स्वीकार करता है :

साम्यवाद ने दिया विश्व को नव भौतिक दर्शन का ज्ञान
अर्थ शास्त्र औ, राजनीतिगत विशद ऐतिहासिक विज्ञान
साम्यवाद ने दिया जगत को सामूहिक जनतंत्र महान
भव जीवन के दैन्य-दुःख से किया मनुजता का परित्राण

और

गांधीवाद जगत में आया ले मानवता का नव मान
सत्य, अहिंसा से मनुजोचित नव संस्कृति करने निर्माण
गांधीवाद हमें देता जीवन पर अन्तर्गत विश्वास
मानव की निस्सीम शक्ति का मिलता उससे चिर आभास

'संकीर्ण भौतिकवादियों से' कविता में भौतिकता का नाम रट कर आत्मवाद पर हंसने वालों को कवि ने उत्तर दिया है :

हाड़ मांस का आज बनाओगे तुम मनुज समाज ?
हाथ पांव संगठित चलावेंगे जग-जीवन-काज ?
दया-द्रवित हो गये देख दारिद्र्य असंख्य तनों का
अब दुहरा दारिद्र्य उन्हें दोगे निरुपाय मनों का

स्तालिन युग में सोवियत संघ में साम्यवाद की जो परिणति हुई, उसे कवि ने इन पंक्तियों में बहुत सटीक ढंग से व्यक्त कर दिया है।

सातवें वर्ग की कविताओं 'युग उपकरण' और 'नयी संस्कृति' में कवि ने भावी मानव समाज के बारे में अपनी कल्पना को अभिव्यक्ति दी है। इनमें भी कवि का भौतिक और अध्यात्म के बीच समन्वय का प्रयत्न प्रकट होता है।

इन वर्गों के अतिरिक्त पांच कविताओं में बापू, कार्लमार्क्स, निराला और महावीरप्रसाद द्विवेदी को श्रद्धांजलियां अर्पित की गई हैं और तीन—'युगवाणी', 'नव दृष्टि' और 'वाणी' में कवि ने अपनी काव्य दृष्टि को, कविता के प्रति अपने दृष्टिकोण को व्यक्त किया है। 'नव दृष्टि' इनमें महत्वपूर्ण है :

खुल गये छंद के बंध प्रास के रजत पाश
अब गीत मुक्त औ युगवाणी बहती अयास
बन गये कलात्मक भाव जगत के रूप-नाम
जीवन संघर्षण देता सुख लगता ललाम

युगवाणी के बारे में दिनकर जी ने लिखा है : "युगवाणी असल में पन्त जी के आन्तरिक संघर्ष की वाणी है। यह उनकी उस मनोदशा की कविता है जब वे मार्क्स और गांधी के बीच झटके खा रहे थे; जब वे भूत और आत्मा के द्वन्द्व से ग्रसित थे, जब वे राजनीति और संस्कृति (लगभग धर्म के अर्थ में) में से प्रत्येक को आवश्यक और प्रत्येक को अपर्याप्त समझ कर किसी द्विधा की स्थिति में ठहरे हुए थे।"[7]

यह ठीक है कि युगवाणी में पन्त जी अध्यात्मवाद और भौतिकवाद, गांधीवाद और मार्क्सवाद में समन्वय का प्रयत्न कर रहे थे, पर यह कहना गलत है कि वे इन दोनों के बीच झटके खा रहे थे या किसी द्विधा की स्थिति में ठहरे हुए थे। जैसा कि ऊपर दिखाया गया है युगवाणी की अधिकांश कविताओं में कवि ने भावसत्य की अपेक्षा रूप-सत्य पर निश्चित तौर पर अधिक जोर दिया है,[8] और समसामयिक जीवन की अनेक समस्याओं का विश्लेषण उसने मार्क्सवादी दर्शन के आधार पर किया है, इसलिए यह कहा जा सकता है कि उनके समन्वयवाद में भी भूत तत्त्व का मेल अधिक है, जब कि युगान्त में स्थिति दूसरी ही थी।

काव्यात्मकता युगवाणी की कम ही कविताओं में है। अधिकांश ऊष्माहीन विचार-कथन ही हैं :

मानव जीवन, प्रकृति संचालन में विरोध है निश्चित
विजित प्रकृति को कर उसने की विश्व सभ्यता स्थापित
देश काल स्थिति से मानवता रही सदा ही बाधित
देश काल स्थिति को वश में कर, करना है परिचालित

हां कहीं-कहीं प्रकृति-संबंधी बिम्ब अवश्य प्रभावशाली हैं। 'मधु के स्वप्न' नामक कविता प्राकृतिक बिम्बों की दृष्टि से बहुत सम्पन्न है। उसमें दृश्य-रंगीन बिम्बों के अतिरिक्त गंध-बिम्बों की भी सुन्दर योजना की गयी है।

---

७. दिनकर : पन्त, प्रसाद और मैथिलीशरण, पृ. १०६.

८. उन्होंने स्वयं उन दिनों (४१) स्वीकार किया है कि "समन्वय के सत्य को मानते हुए भी मैं जो वस्तु दर्शन (आब्जेक्टिव फिलासफी) के सिद्धान्त पर इतना जोर दे रहा हूं इसका यही कारण है कि परिवर्तन काल में भाव दर्शन (सब्जेक्टिव फिलासफी) की—जो कि अभ्युदय और जागरण युग की चीज है—उपयोगिता प्रायः नष्ट हो जाती है"।—आधुनिक कवि—२, पर्यालोचन, पृ. २५.

चौहान जी के अनुसार युगवाणी में दो प्रमुख अभाव हैं। एक तो उसमें भावात्मक तन्मयता नहीं है और दूसरे उसका स्वर यूटोपियन (स्वप्निल) है, उसमें यथार्थवाद का अभाव है।[९]

ग्राम्या (४०) पन्त जी के प्रगति काव्य का तीसरा और अन्तिम संकलन है। युगान्त और युगवाणी में कवि ने जिस नवीन जीवनदर्शन को अमूर्त, विचारात्मक अभिव्यक्ति दी है, उसे ही ग्राम्या की कुछ कविताओं में एक मूर्त, बिम्बात्मक रूप मिला है। ग्राम्या की अधिकांश कविताएं, जो संकलन के नाम करण की उचितता सिद्ध करती हैं, ग्राम्य जीवन से संबंधित हैं। इन कविताओं मे ग्राम्य-जीवन के दैन्य-दुःख, जड़ता-विषाद और मस्ती-उल्लास-उन्मुक्तता—ग्राम्य-यथार्थ के दोनों पहलुओं को वाणी मिली है। अपने 'निवेदन' में पन्त जी ने कहा है कि "इनमें पाठकों को ग्रामीणों के प्रति केवल बौद्धिक सहानुभूति ही मिल सकती है"। कई आलोचकों ने इस 'बौद्धिक सहानुभूति' शब्द को बहुत खींचातानी है और इस पंक्ति को पन्त जी की इस आत्म-स्वीकृति के अर्थ में लिया है कि ग्रामीणजनों से उन्हें कोई हार्दिक सहानुभूति नहीं है, औपचारिक या झूठी सहानुभूति है। पर बौद्धिक का प्रयोग पन्त जी ने हार्दिक के विलोम के रूप में नहीं किया। उनका अर्थ अगली पंक्तियों से बिल्कुल स्पष्ट है: "ग्राम्य जीवन में मिलकर, उसके भीतर से ये अवश्य नही लिखी गई हैं। ग्रामों की वर्तमान दशा में वैसा करना केवल प्रतिक्रियात्मक साहित्य को जन्म देना होता।" मतलब यह कि उन्होंने ग्रामीणजनों के जीवन के प्रति वैसी सहानुभूति नही व्यक्त की है, जैसी गुप्त जी की रचनाओं में देखने को मिलती है—अहा ग्राम्य जीवन भी क्या है, क्यों न इसे सबका मन चाहे। उनके दारिद्र्य और जड़तापूर्ण जीवन को गौरवान्वित नहीं किया है, उनके प्रति सहानुभूति के बावजूद उनके जीवन का आलोचनात्मक वर्णन किया है, एक शब्द में उनके जीवन को गांधीवादी-आदर्शीकरणवादी नही, मार्क्सवादी-आलोचनात्मक दृष्टि से देखा है।[१०]

ग्राम्या की अनेक कविताओं में ग्राम्य यथार्थ की यह आलोचनात्मक अभिव्यक्ति हुई हैं: 'ग्राम-कवि', 'ग्राम', 'ग्राम-दृष्टि', 'ग्रामचित्र', 'कठपुतले', 'वे आखें', 'गाव के लड़के, 'वह बुड्ढा', 'ग्राम देवता', 'नहान' आदि कविताओं के नाम इस संदर्भ में लिये जा सकते हैं। एक ऐसे जीवन की—

---

९. देखिये शिवदान सिंह चौहान: 'सुमित्रानंदन पन्त: एक प्रगतिवादी का विकास,' हंस, दिसम्बर, ४०.

१०. इस संबंध में पन्त जी ने आधुनिक कवि की भूमिका में पूरा स्पष्टीकरण किया है, देखिए—आधुनिक कवि—२, पर्यालोचन, पृ. २८.

जहां दैन्य-जर्जर असंख्य-जन
पशु जघन्य क्षण करते यापन
कीड़ों से रेंगते मनुज शिशु
जहां अकाल वृद्ध है यौवन।

—ग्राम कवि

और जहां लोग कठपुतलों का जीवन जीते हैं :

ये छायातन, ये मायाजन,
विश्वास मूढ़ नर नारी गण
चिर रूढ़ि रीतियों के गोपन
सूत्रों में बंध करते नर्तन

—कठपुतले

यथार्थ स्थिति इन कविताओं में उभारी गयी है। लेकिन इस आलोचनात्मक दृष्टि के बावजूद ग्राम्या की कविताओं में हार्दिकता का अभाव नहीं है। उदाहरण के लिए 'वह बुड्ढा' और 'वे आंखें' ली जा सकती हैं। एक उजड़े हुए किसान की डरावनी आंखों का यह चित्र कितना मर्मस्पर्शी है।

अन्धकार की गुहा सरीखी उन आंखों से डरता है मन
भरा दूर तक उनमें दारुण, दैन्य-दुःख का नीरव रोदन
फूट रहा उनसे गहरा आतंक, क्षोभ, शोषण, संशय, भ्रम
डूब कालिमा में उनकी कंपता मन, उनमें मरघट का तम

और निर्मम शोषण ने जिसे मानव से पशु बना दिया है, उस बुड्ढे का यह रूप ?

खड़ा द्वार पर लाठी टेके वह जीवन का बूढ़ा पंजर
चिमटी उसकी सिकुड़ी चमड़ी हिलते हड्डी के ढांचे पर
उभरी ढीली नसें जाल सी सूखी ठठरी से हैं लिपटीं
पतझर में ठूंठे तरु से ज्यों सेनी अमरबेल हो चिपटी

सौन्दर्यवादी पन्त का यह कितना यथार्थवादी और कितना उपयुक्त उपमान है। यह बूढा पन्त जी के हृदय पर कैसी छाया छोड़ कर जाता है।

काली नारकीय छाया निज छोड़ गया वह मेरे भीतर
पैशाचिक सा कुछ : दुःखों से मनुज गया उसमें शायद मर

लेकिन ग्राम्या में जीवन के केवल इसी पक्ष को नहीं, उसके उल्लास और उन्मुक्तता वाले पक्ष को भी वाणी मिली है। पन्त ने यदि ग्राम को इस रूप में देखा है :

मानव दुर्गति की गाथा से ओतप्रोत मर्मांतक
सदियों के अत्याचारों की सूची यह रोमांचक

तो उसके इस रूप को भी भुलाया नहीं है :

मनुष्यत्व के मूल तत्व ग्रामों ही में अन्तर्हित
उपादान भावी संस्कृति के भरे यहां हैं अविकृत

यही कारण है कि उन्होंने आधुनिका का उपहास किया है और गांव की मजदूरिन के प्रति श्रद्धा निवेदित की है। मतलब यह कि ग्राम्य-यथार्थ को उन्होंने उसके द्वन्द्वात्मक रूप में, उसके मृत और मृयमाण तथा जीवन्त और संभावनाशील दोनों पक्षों को देखते हुए, बिम्बित किया है। दूसरे पक्ष की दृष्टि से ग्राम्या की 'ग्रामयुवती', 'ग्राम नारी', 'धोबियों का नृत्य', चमारों का नाच', 'कहारों का रुद्र नृत्य', 'मजदूरनी के प्रति' आदि कविताएं द्रष्टव्य हैं। इनमें से 'ग्रामयुवती', 'धोबियों का नृत्य' और 'चमारों का नाच' ग्रामीण जीवन के उल्लास और मस्ती की अभिव्यक्ति की दृष्टि से, गत्यात्मक बिम्बों की दृष्टि से तथा अपने रूमानी-स्वच्छन्दतावादी तत्व के कारण संकलन की श्रेष्ठ कविताओं में गिनी जा सकती हैं। 'ग्राम युवती' में पन्त जी का वह शब्द कौशल फिर देखने को मिलता है, जो उनकी छायावादी कविताओं की विशेषता रहा है। पन्त के प्रगति युग की अधिकांश कविताओं के विपरीत इस कविता में एक मूर्त और गत्यात्मक बिम्ब बहुत सुघड़ता के साथ हमारे सामने उभरता है :

सरकाती-पट
खिसकाती लट
शरमाती झट
वह नमित दृष्टि से देख उरोजों के युग घट !

पर कविता का अन्त उसी उल्लास भरे वातावरण में नहीं होता, जिसमें उसका प्रारम्भ हुआ था। ग्राम्य जीवन के इस उल्लास को देखते-देखते कवि का मन चिन्तनशील हो उठता है और यह कह उठता है :

रे दो दिन का उसका यौवन
सपना छिन का रहता न स्मरण
दुःखों से पिस
दुर्दिन में घिस
जर्जर हो जाता उसका तन
ढह जाता असमय यौवन धन

'धोबियों का नृत्य' और 'चमारों का नाच' की लय-ताल युक्त पंक्तियों में भी ग्राम्य जीवन के इसी उल्लास को अभिव्यक्ति मिली है :

अररर...
मचा खूब हुल्लड़ हुड़दंग
उछल कूद बकवाद झड़प में
खेल रही खुल हृदय उमंग
यह चमार चौदस का ढंग

पर कवि इस मस्ती के मूल को भी समझता है : अन्त में यहां भी उसका स्वर चिन्तनशील हो उठता है :

ये समाज के नीच अधम जन
नाच कूद कर बहलाते मन
वर्गों के पद दलित चरण ये
मिटा रहे निज कसक-कुढ़न
कर उच्छृंखलता, उद्धतपन

ग्राम्य यथार्थ की जिस द्वन्द्वात्मकता की बात मैंने ऊपर कही है, उसकी एक ही कविता में व्यंगपूर्ण अभिव्यक्ति 'ग्राम देवता' में देखी जा सकती है :

हे ग्राम देवता, भूति ग्राम!
तुम कोटि बाहु वर हलधर, वृष वाहन बलिष्ठ
मित असन, निर्वसन, क्षीणोदर, चिर सौम्य शिष्ट
शिर स्वर्ण-शस्य मंजरी मुकुट गणपति वरिष्ट
वाग्युद्ध वीर, क्षण क्रुद्ध धीर नित कर्मनिष्ठ

और दूसरा :

हे ग्राम देवता रूढ़ि धाम
तुम स्थिर परिवर्तन रहित, कल्पवत एक याम
जीवन संघर्षण-विरत, प्रगति पथ के विराम...
विजया, महुआ, ताड़ी, गांजा पी सुबह शाम
तुम समाधिस्थ नित रहो, तुम्हें जग से न काम
पंडित, पंडे, ओझा, मुखिया औ साधु सन्त
बतलाते रहते तुम्हें स्वर्ग-अपवर्ग पन्थ
जो था, जो है, जो होगा, सब लिख गये ग्रन्थ
विज्ञान-ज्ञान से बड़े तुम्हारे मंत्र-तंत्र।

ग्राम्य यथार्थ के बाद ग्राम्या की कविताओं का दूसरा प्रमुख विषय प्रकृति है। दो कविताओं 'ग्राम श्री' और 'संध्या के बाद' में ग्राम्य प्रकृति को सुन्दरता से चित्रित किया गया है। प्रकृति चित्रण में भी ग्राम्य वातावरण का निर्माण तो 'ग्राम श्री' की सरल, अनलंकृत शब्दावली से हो जाता है, पर कुल मिला कर प्रकृति का वर्णन इसमें एक ऐसी शैली में किया गया है जो द्विवेदी युगीन इतिवृत्तात्मकता की याद दिलाती है।

'संध्या के बाद' (ग्राम्य प्रकृति की दृष्टि से तो उतनी नही, जितनी ग्राम्य जीवन के यथार्थ की दृष्टि से) संकलन की एक महत्वपूर्ण कविता है। कविता का प्रारंभ छायावादी शैली में होता है ('वृहद जिह्म विरलथ केंचुल सा') पर आगे चल कर वह यथार्थवादी शैली अपना लेती हैं:

बिरहा गाते गाड़ी वाले भूंक भूंक कर लड़ते कूकर
हुआं हुआं करते सियार, देते विपण्ण निशि वेला को स्वर

और अन्त में कवि बनिये के माध्यम से समाजवादी चिन्तन करते हुए कविता को समाप्त करता है। शाम के समय के एक उदास और यथार्थ ग्रामीण वातावरण के कारण यह कविता महत्वपूर्ण है।

ग्राम्या की लगभग सभी प्रकृति कविताओं की, जिनमें 'खिड़की से', 'रेखाचित्र', 'दिवास्वप्न', 'सौदर्य कला', 'स्वीट पी', 'गुलदावदी' आदि के नाम लिये जा सकते हैं, सबसे बड़ी कमजोरी यह है कि इनमें वस्तु-परिगणन का लोभ पन्त जी को इतना अधिक रहा है कि पाठक ऊबने लगता है। 'खिड़की से' में पन्त जी अपने ज्योतिष-ज्ञान के और 'सौन्दर्य कला' में अपने बागवानी-पांडित्य के अतिरिक्त कुछ भी व्यक्त नही कर पाये हैं। 'दिवास्वप्न' तो शब्दावली और उसमें अभिव्यक्त पलायन वृत्ति दोनों दृष्टियों से एक छायावादी कविता है। लगभग सभी प्रकृति कविताओं में अन्त तक जाते जाते कवि चिन्तनशील हो उठता है और प्रकृति को छोड़ कर मानवीय संबंधों पर विचार करने लगता है, यह पन्त जी की एक स्थायी आदत है, जिसका प्रारंभिक रूप उनकी छायावादी कविताओं—'नौका विहार' और 'एक तारा' आदि में भी मिलता है।

ग्राम्या की तीन चार कविताएं नारी जीवन से संबंधित हैं: 'स्त्री', 'आधुनिका', 'मजदूरनी के प्रति', 'नारी'। वैसे 'ग्राम युवती', 'ग्राम नारी', 'ग्राम वधू' और 'नहान' भी नारी जीवन से संबधित हैं। 'ग्राम युवती' और 'ग्राम नारी' को छोड़ कर सभी कविताएं साधारण है। आधुनिक नागरिकाओं की तुलना में 'ग्राम नारी' में पन्त जी ने नारीत्व के अपने आदर्श के अधिक दर्शन किये हैं। ग्रामीण नारी का एक मूर्त चित्र इस कविता में उभारा गया है, जो नारी सुलभ लज्जा से वेष्टित होते हुए भी कर्मनिष्ठ है, जिसकी क्षुधा और जिसका

काम श्रम से मर्यादित है और जो यद्यपि दैन्य और अविद्या के तम से पीड़ित है, तथापि स्नेह, शील, सेवा और ममता की मूर्ति होने के नाते पन्त जी की आदर्श मानवी के अभाव की पूर्ति कर रही है।

गुंजन से ही चली आ रही, पन्त जी की शुभ कामना काव्य की परम्परा की भी कुछ कड़ियां ग्राम्या में मिल जाती हैं: 'उद्बोधन', 'नव इंद्रिय' 'विनय' ऐसी ही कविताएं हैं।

संकलन की तीन चार कविताएं गांधी जी और उनसे संबंधित प्रश्नों पर हैं: 'महात्मा जी के प्रति', 'चरखा गीत', 'बापू', 'अहिंसा', 'सूत्रधर'। जैसा कि स्वयं कवि ने निवेदन में स्वीकार भी किया है 'बापू' और 'महात्मा जी के प्रति' में तथा 'चरखा गीत' और 'सूत्रधर' में एक विचार वैषम्य दिखाई देता है. कवि के अनुसार यदि आज और कल दोनों को देखा जाय तो यह विरोध नहीं रहेगा। चरखा गीत और बापू में गांधी जी और उनके सिद्धान्तों के प्रति श्रद्धा निवेदित की गयी है और महात्मा जी के प्रति तथा अहिंसा में उनकी प्रशंसा करते हुए भी उनके पराभव का स्वागत किया गया है:

गत आदर्शों का अभिभव ही मानव आत्मा की जय
अतः पराजय आज तुम्हारी जय से चिर लोकोज्वल

और

बन्धन बन रही अहिंसा आज जनों के हित
वह मनुजोचित निश्चित, कब ? जब जन हों विकसित

'महात्मा जी के प्रति' मे गांधी जी के सिद्धान्तों पर पहली बार कवि ने मार्क्सवादी दृष्टि से विचार किया है। गांधी जी के सिद्धान्तों को वे मानव आत्मा की उच्चता के प्रतीक मानते हैं, पर 'आज' की समस्याओं का सुलझाव उनमें नहीं है, क्योंकि वस्तु विभव पर ही भाव विभव अवलम्बित है, पहले सामाजिक आर्थिक परिस्थितियों को बदलना जरूरी है, तभी लोगों के मन और उनकी आत्माएं विकसित हो सकती हैं।

'कवि किसान' और 'वाणी' में कवि ने कविता के प्रति अपनी बदली हुई दृष्टि को अभिव्यक्ति दी है। अब वह अपने आप को मानव के निष्ठुर अन्तर को जोतने वाले, और उसमें 'ज्योति-पंख नवबीज' बोने वाले किसान के रूप में कल्पित करता है। अब उसके सामने वाणी की सार्थकता यही है:

तुम वहन कर सको जन मन में मेरे विचार
वाणी मेरी क्या तुम्हें चाहिए अलंकार...
ज्योतित कर जनमन के जीवन का अंधकार
तुम खोल सको मानव उर के निःशब्द द्वार।

शेप कविताओं में 'भारत माता' और 'द्वन्द्व प्रणय' उल्लेखनीय हैं। 'भारत माता' में ग्रामवासिनी भारत माता का एक सुन्दर विपण्ण चित्र है :

दैन्य जड़ित अपलक नत चितवन
अधरों में चिर नीरव रोदन
युग युग के तम से विपण्ण मन
वह अपने घर में प्रवासिनी !

'द्वन्द्वप्रणय' नर नारी के स्वाभाविक स्वर्गिक आकर्षण का, प्रेम की उन्मुक्ति का गीत है, कविता की मूल भाव-भूमि स्वच्छन्दतावादी है, पर यह वह स्वच्छन्दतावाद है, जो बच्चन आदि छायावादोत्तर कवियों में दिखाई देता है, और जो अपने क्रान्तिकारी रूप में प्रगतिवाद के नजदीक पहुंच गया है।

कुल मिला कर ग्राम्या की, युगवाणी की तुलना में क्या विशेषताएं हैं ?

एक तो यह कि युगवाणी में सामाजिक यथार्थ के जो चित्र कवि ने खींचे थे वे लगभग सब के सब अमूर्त और सिद्धान्त-विवेचन से बोझिल थे। ग्राम्या में उसने केवल भारतीय जनता के पचहत्तर प्रतिशत को, भारतीय ग्रामीण जनों को, अपनी कविता का विषय ही नहीं बनाया, उनके जीवन-यथार्थ के विभिन्न रूपों को मूर्त बिम्बों में भी रूपायित किया है। ग्राम्या में युगवाणी की तुलना में सिद्धान्त-कथन काफी कम और कवित्व काफी ज्यादा है।

दूसरे, आत्मिक और भौतिक के जिस समन्वय पर युगवाणी में काफी जोर दिया गया है, वह ग्राम्या में कम हो गया है।[११] साथ ही गांधी जी और उनके सिद्धान्तों के प्रति ग्राम्या में पहली बार कवि की आलोचनात्मक दृष्टि व्यक्त हुई है। वास्तव में ग्राम्या में कवि के चिन्तन और भावबोध पर मार्क्सवाद का प्रभाव पहले से कहीं अधिक दिखाई देता है।

श्री शिवदान सिंह चौहान के शब्दों में ग्राम्या पन्त जी की अनुपम कृति है। यह कदाचित अतिशयोक्ति न होगी कि विश्व साहित्य में आज तक किसी कवि ने ग्राम-जीवन का प्रगतिशील दृष्टि से इतना विशद, इतना मार्मिक चित्रण नहीं किया।[१२]

वास्तव में ग्राम्या पन्त के प्रगति-काव्य का सर्वश्रेष्ठ और अन्तिम संकलन है। उसके बाद के पन्त-काव्य पर एक ओर तो अरविन्दी अध्यात्म का और

---

११. युगवाणी में इससे संबंधित चार कविताएं हैं, जब कि ग्राम्या में सिर्फ एक : संस्कृति का प्रश्न.

१२. हंस, दिसम्बर ४०.

दूसरी ओर अतृप्त यौन भावना से उद्भूत बिम्बों का[13] प्रभाव इतना अधिक है कि कभी कभार लिखी गयी उनकी इक्की दुक्की प्रगतिशील कविताओं तथा भौतिकवाद और अध्यात्मवाद के समन्वय के दर्शन के मूल में स्थित कवि की विश्वकल्याण और जनहित की शुभ कामनाओं के अतिरिक्त उसमें बहुत कम ऐसे तत्व हैं, जिन्हें प्रगतिशील दृष्टि से मूल्यवान कहा जा सके।

परवर्ती काव्य

जैसा कि पन्त जी ने स्वयं कहा है, ४२ के आसपास द्वितीय महायुद्ध की पैशाचिकता, और भारत में असहयोग आन्दोलन के सिलसिले में हुई पाशविक नृशंसता ने हिंसात्मक क्रान्ति के प्रति उनका सारा उत्साह और मोह समाप्त कर दिया।[14] उनकी लम्बी अस्वस्थता ने भी उनकी पुरानी मनःस्थिति के पुनरावर्तन

---

१३. कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं :

(क) *छाया निभृत गुहाएं उन्मद*
रति के सौरभ से समुच्छ्वसित
—*हिमाद्रि*, स्वर्ण किरण

(ख) *स्वर्ण-वाष्प का घन लटका*
जघनों के माणिक सर में
—*स्वर्ण निर्झर*, स्वर्ण किरण

(ग) सत्य और मुक्ति को भी उन्होंने इस तरह रूपायित किया है :
अर्ध विवृत जघनों पर तरुण सत्य के शिर धर
लेटी थी वह दामिनी सी रुचि गौर कलेवर
गगन भंग से लहराए मृदु कच अंगों पर
वक्षोजों के खुले घटों पर ललित सत्य-कर
—ऊषा, स्वर्ण किरण

(घ) *अग्नि वीर्य गर्भस्थ योनि थी रज की उर्वर*
—*विकास क्रम*, वाणी

(च) धरती के जघनों के बीच फैली घाटियां
—खोज, कला और बूढ़ा चांद

(छ) *सिन्धु तरंगें, पंक सनी टांगों में बहती धरा-योनि की दुर्गन्ध धो धो कर*
कड़वाती मुंह बिचकाती, पछाड़ खाती रहती हैं
—घर, कला और बूढ़ा चांद

१४. *मैं और मेरी कला*, शिल्प दर्शन, पृ० १५०.

में योग दिया। इन्ही दिनों उन्होंने अरविन्द-दर्शन का भी अध्ययन किया। परिणाम स्वरूप वे फिर अपने प्रारंभिक ज्योत्स्ना वाले आध्यात्मिक मानववाद के एक किंचित बदले हुए रूप की ओर आकर्षित हुए, जिसे वे स्वयं अन्तश्चेतना-वादी नव मानववाद कहते हैं,[१५] और जो मोटे तौर पर अरविन्दवाद ही है। ग्राम्या के बाद के समस्त पन्त काव्य की मूल चेतना यही अरविन्दवाद है।

लेकिन उनके परवर्ती काव्य में बीच-बीच में कुछ ऐसी कविताएं भी मिलती हैं, जिनका मूलस्वर केवल अध्यात्मवादी न होकर भौतिक और आध्यात्मिक के समन्वय का है, सामाजिक और मनः क्रांति दोनों पर जोर देने का है। ये ही कविताएं प्रगतिशील दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इन कविताओं की आध्यात्मिक रुझान के बावजूद इनकी प्रगतिशीलता से इनकार नही किया जा सकता। हालांकि यह ठीक है कि पन्त के परवर्ती काव्य में ये इनी गिनी प्रगतिशील कविताएं वैसी ही हैं, जैसे सहारा रेगिस्तान में कहीं कही मिलने वाले मरुद्वीप; ऐसे उद्यान, जिन पर आसपास के रेगिस्तानी वातावरण का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है—आध्यात्मिक धूल की पर्तें जिनके पत्तों, फूलों और फलों पर गहरी जमी हुई हैं। फिर इन सब कविताओं का मूलतः एक ही विषय है: भौतिक और आध्यात्मिक का समन्वय। विषय की यह एकरसता पन्त जी की परवर्ती प्रगतिशील कविताओं के महत्व को काफी प्रभावित करती है।

स्वर्ण किरण और स्वर्ण धूलि (४७ में प्रकाशित, ४५-४६ में रचित) में कवि का ऐसा प्रत्यावर्तन हुआ कि युगवाणी और ग्राम्या में वस्तुसत्य और रूप-सत्य को चेतना-तत्व और भाव-सत्य से अधिक महत्व देने वाले पन्त जी कहने लगे:

सामाजिक जीवन से कहीं महत् अन्तर्मन जीवन
वृहत विश्व-इतिहास, चेतना गीता किन्तु चिरन्तन

—*स्वर्णोदय*, स्वर्ण किरण, पृ. १२४.

यही नही वे उस सामाजिक समता को, जिसके लिए वे अब तक संघर्षशील दिखाई देते थे, 'कटु विष' तक कहने लगे:

आज अभाव शक्तियां जग में कांटे बोती हैं पग पग में
सामाजिक समता का कटु विष दौड़ रहा जन जन की रग में

—*चिन्तन*, स्वर्ण किरण, पृ. २५.

स्वर्ण किरण और स्वर्ण धूलि में विषय वस्तु की दृष्टि से ही नहीं, शिल्प

---

१५. उत्तरा, प्रस्तावना पृ. ८.

शैली की दृष्टि से भी पन्त जी की कविता का ह्रास हुआ है। इन संकलनों की अधिकांश कविताएं लगभग कवित्व से रहित और कहीं कहीं पलायनी भक्ति-भाव और आध्यात्मिकता से भरी हुई[16] होने के कारण आधुनिक पाठक को बिल्कुल ऊबा देने वाली हैं।

फिर भी स्वर्ण किरण की 'नोआखाली के महात्मा जी' और 'स्वर्णोदय' तथा स्वर्ण धूलि की 'पतिता', 'परकीया', 'मनुष्यत्व', आदि कविताएं प्रगतिशील दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। पर इनमें से भी अधिकांश सिर्फ विषय-चयन की दृष्टि से ही उल्लेखनीय हैं, कवित्व की दृष्टि से बहुत साधारण स्तर की कविताएं हैं। हां 'स्वर्णोदय' जरूर अपवाद है।

'स्वर्णोदय' अपने समस्त आध्यात्मिक चिन्तन, और आध्यात्मिक परिणति के बावजूद एक ऐसी कविता है, जिसमें कुछ निश्चित मानववादी और प्रगतिशील तत्व हैं। सम्पूर्ण मानव जीवन का—बचपन से बुढ़ापे तक का—जो रागभीना चित्र इसमें प्रस्तुत किया गया है वह कवि के मानववाद का प्रतीक है। कविता का चिन्तन भी, अपनी आध्यात्मिक परिणति के बावजूद इसका प्रमाण है कि मानवीय समस्याएं और मानवीय संघर्ष कवि के हृदय और मस्तिष्क को कितना दोलित करती हैं और उसे मानवीय भविष्य की कितनी चिन्ता है। कविता में रह रह कर यह स्वर गूंजता है:

जो अपने में सीमित, मरते रहते प्रतिक्षण
जग के प्रति जीवित, करते चिर मृत्यु का वरण
खोल मरण के द्वार, अमर प्रांगण में आओ!

'स्वर्णोदय' के लिए नगेन्द्र जी ने कहा है कि यह इन नवीन संग्रहों की सबसे महान रचना और पन्त की गुरुतम कृतियों में से एक है। इसमें मानव की जीवन यात्रा, जन्म, शैशव, प्रौढ़ि, वार्धक्य और देहान्त का गंभीर मनोवैज्ञानिक, दार्शनिक एवं काव्यात्मक विवेचन है। परिस्थितियों की अनेकरूपता के कारण इसका क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है और कवि ने जीवन के भिन्न भिन्न पहलुओं का समर्थ चित्रण कर अपनी परिपक्व प्रतिभा का परिचय दिया है। वास्तव में इस कविता में एक प्रकार की महाकाव्य-गरिमा है।[17]

---

१६. *प्राप्त नहीं जो ऐसे साधन, करो पुत्र दारा का पालन*
पौरुष भी जो नहीं कर सको, जन मंगल, जनगण परिचालन
आओ प्रभु के द्वार! —कुंठित, स्वर्ण धूलि

१७. नगेन्द्र: पन्त का नवीन जीवन दर्शन, गुर्टू की पुस्तक 'सुमित्रानन्दन पन्त काव्य और जीवन दर्शन', पृ. २६२.

युगान्तर (४८, युगान्तर सहित संकलन का पूरा नाम युगपथ है) की गांधी जी की शहादत से सबंधित कुछ कविताओं में देश को जाति और धर्मगत विद्वेष से मुक्त करने की सदिच्छा व्यक्त हुई है, और धरती पर गांधी युग के अवतरण का स्वप्न कवि ने देखा है। गाधी जी से संबंधित इन कविताओं के अतिरिक्त 'जागरण', 'कवीन्द्र रवीन्द्र के प्रति' और 'स्वर्णगीत' में भी मनुष्य के प्रति कवि की चिन्ता और कवि का मानववाद व्यक्त हुआ है। पर पूरा संकलन पिछले दोनों संकलनों की तरह ही अध्यात्मवादी कुहासे से भरा है।

उत्तरा (४९) की भूमिका में अब भी वे राजनीति और संस्कृति, भौतिकवाद और अध्यात्मवाद, मार्क्सवाद और अरविन्दवाद, जड़ और चेतन, समतल और उर्ध्व, लोक संगठन और मनःसंगठन के समन्वय की बात करते हैं, लेकिन जैसे इसी प्रकार के समन्वय की बात करते हुए भी युगवाणी और ग्राम्या में उनका जोर वस्तु सत्य पर था, उसी तरह यद्यपि अब भी वे बात दोनों के समन्वय की करते हैं पर स्पष्ट ही उनका जोर अध्यात्मवाद पर ही है। यहां तक कि वे सहस्रों वर्षों के अध्यात्म-दर्शन की सूक्ष्म-सूक्ष्मतम झंकारों से रहस-मौन निनादित भारत के एकांत मनोगगन में मार्क्स और एंगेल्स के विचार-दर्शन की गूंजों को बौद्धिकता के 'शुभ्र अंधकार' के भीतर रेंगने वाले झींगुरों की रुंधी हुई झनकारों से अधिक महत्व नहीं देते और भारतीय अध्यात्मवाद और मार्क्सवाद के बीच हिमालय के शिखर और ऊंट जितना अन्तर मानते हैं।[१८]

प्रगतिशील दृष्टि से उत्तरा की गीत विहग, निर्माणकाल और जीवनदान कविताएं महत्वपूर्ण हैं। गीत विहग में कवि अपने आपको नवमानवता के गायक पक्षी के रूप में कल्पित करता है जो मनः क्षितिज के पार मौन शाश्वत की प्रज्वलित भूमि का ज्योतिवाह बन कर आता है। गहरी आध्यात्मिकता के बावजूद कवि की मानवता को बदलने की अदम्य आकांक्षा इस कविता में व्यक्त हुई है।

मैं मानव प्रेमी, नव भू स्वर्ग बसाकर
जन धरणी पर देवों का विभव लुटाता।

"निर्माण काल' में भी भूत-अध्यात्म के समन्वय के दर्शन को अभिव्यक्ति देते हुए मानवता के जन्म का प्रभावक बिम्ब खींचा गया है:

घू धू कर जलता जीर्ण जगत
लिपटा ज्वाला में जन अन्तर

---

१८. उत्तरा, प्रस्तावना, पृ. २४.

तम के पर्वत पर टूट रही
विद्युत प्रभात सी ज्योति प्रखर

'जीवनदान' में मानवहित के लिए पन्त जी की आत्मदान की भावना व्यक्त हुई है और कवि ने अपने आदर्श जीवन को वाणी दी है :

वह जीवन जिसमें ज्वाला हो, मांसल आकांक्षा हो मादन
जिसमें अन्तर का हो प्रकाश जिसमें समवेत हृदय स्पन्दन
मैं उस जीवन को वाणी दूं जो नव आदर्शों का दर्पण
जीवन रहस्यमय भर देता जो स्वप्नों से तारापथ मन
जीवन रक्तोज्ज्वल, करता जो नित रुधिर- शिराओं में गायन।

अतिमा (५५) में पन्त जी का स्वर्ण- काव्य लगभग वैसी ही परिपक्व अवस्था में आ जाता है, जैसी में उनका प्रगति-काव्य युगान्त और युगवाणी के बाद ग्राम्या में आया था। यहां आकर उनके स्वर्ण-काव्य की भाषा का उबड़-खाबड़पन थोड़ा कम हुआ है और सहजता आयी है। बातें अब भी आध्यात्मिक हैं पर अब वे थोड़ी बहुत समझ में आती हैं। स्वर्णकिरण, स्वर्ण धूलि आदि से गुजरते हुए जब हम अतिमा तक पहुंचते हैं तो ऐसा लगता है कि बहुत देर तक तंग घाटियों में चलने के बाद जैसे कोई मैदान आया हो। अतिमा की 'नव जागरण', 'सोन जुही','यह धरती कितना देती है','केंचुल', 'विद्रोह के फूल', 'पतझड़', 'दीपरचना', 'नेहरू युग', 'संदेश', 'अभिवादन' आदि कविताएं अपने आध्यात्मिक निष्कर्षों के बावजूद प्रगतिशील दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं।

'नवजागरण' में हृदय की उस मुक्तावस्था का प्रभावशाली वर्णन है, जब 'विषय मधुमज्जित' मन मधुकर स्वप्नों से उन्मन होकर जाग उठता है, दिशाओं के ज्योति-दल खुल जाते हैं और मानव आत्मा से विगत निशाओं का अवगुंठन उठने लगता है। 'सोनजुही' जीवन की उर्ध्वगति की एक प्रतीक है जो मानव को मानवता का पथ दिखा सकती है। 'आः धरती कितना देती है' में यह 'जीव चैतन्यवाद' और भी अधिक सफलता और सहजता के साथ व्यक्त हुआ है, सेम की फलियों का यह बिम्ब कितना राग भीना है :

पतली-चौड़ी फलियां—उफ उनकी क्या गिनती
लम्बी लम्बी अंगुलियों सी, नन्हीं नन्हीं
तलवारों सी, पन्ने के प्यारे हारों सी
झूठ न समझें चन्द्र कलाओं सी नित बढ़ती
सच्चे मोती की लड़ियों सी ढेर ढेर खिल
झुंड झुंड झिलमिल कर कचपचिया तारों सी।

कविता में पैसे जड़ता के प्रतीक हैं जो बोने पर कोई फल नहीं देते और 'बीज' जीवन के, जो फूलते फलते हैं। अन्त में कवि की कामना है :

रत्न प्रसविनी है वसुधा अब समझ सका हूँ
इसमें सच्ची समता के दाने बोने हैं,
इसमें मानव-ममता के दाने बोने हैं
जिससे उगल सके फिर धूल सुनहली फसलें
मानवता की—जीवन श्रम से हंसें दिशाएं।

'केंचुल' इस सत्य की अभिव्यक्ति है कि यद्यपि पुरानी रूढियां-रीतियां-सिद्धान्त समय के साथ मृत होकर अपनी ऐतिहासिक उपयोगिता खो बैठते हैं, तथापि उनके केंचुल लोगों के मनों पर रह जाते हैं और उन्हें भयभीत किये रहते हैं : समय आगे बढ़ जाता है लोग उसे नहीं देखते उसके स्मृतिचिह्नों-केंचुलों-से डरते रहते हैं :

रस्सी राख हुई कब की जल, गई न मन की रीती ऐंठन
रूढ़ि रीति मर्यादाओं के मिटते सहज न भावुक बंधन
काल सर्प कब इन्हें झाड़ कर, सरक, गया बढ़ चुपके आगे
चरणहीन स्मृति चिह्न छोड़ निज, ये भूक्षत से पड़े अभागे

'सन्देश' भी 'यह धरती कितना देती है' की तरह सीधी सरल हिन्दी में लिखी हुई एक महत्वपूर्ण कविता है। कवि जीवन से 'निराश सा दुःख-स्वप्नों की छाया से पीड़ित देर तक सोया रहा। जब उठा तो उसकी छाती पर असंतोष का बोझ था, मन में न जाने कौन सा अन्तर्मंथन चल रहा था, अवसाद घुमड़ रहा था और जीवन अस्त-व्यस्त विश्रृंखल और फीका लग रहा था—पर तभी उसकी दृष्टि खिड़की से आकर फर्श पर पड़ती हुई जाड़े की धूप के एक 'दर्पण-टुकड़े' पर पड़ी। वह धूप का टुकड़ा इस कविता में चेतना शक्ति के प्रतीक के रूप में आया है। यह धूप कवि को विषाद से मुक्त करती है :

मैं क्षण भर में मन के विषाद को भूल गया
वह धूप स्निग्ध चेतना स्पर्श सी लगी मुझे
ज्यों राजहंस उतरा हो खिड़की के पथ से
मेरा मन दुविधा मुक्त हो गया, दुःख भूल
घन के घेरे से निकल चांद हंस उठता ज्यों
मैं मन की कुंठित कूपवृत्ति से बाहर हो,

चिन्ताओं के दुर्बोध भंवर से निकल शीघ्र
पाहुन प्रकाश के निरवधि क्षण में डूब गया
सुनहली धूप के करतल के शाश्वत लय में

धूप का, 'प्रकृति की महदात्मा' का, एक प्रतीक के रूप में एक पवित्रता-भरा वर्णन इस कविता की सबसे बड़ी विशेषता है।

वाणी की प्रगतिशील दृष्टि से उल्लेखनीय कविताओं में 'विकासक्रम', 'रूपं देहि', 'जयं देहि' और 'अग्निदेश' प्रमुख हैं। 'विकासक्रम' में कवि तुच्छ शलभ की तारा बनने की अभिलाषा को नहीं रोकने का आदेश देता है, 'रूपंदेहि' में ग्रामवासियों को जीवन वैभव से परिचित करके 'रूप' देने की मांग करता है और 'जयं देहि' मे नगरवासियों को 'भाव' देना चाहता है। रूप और भाव यहां भी क्रमशः बाह्य और आन्तरिक सम्पन्नता के ही पर्याय हैं। 'अग्निदेश में' केवल भौतिक समृद्धि को अधूरी कह कर उसे आत्मिक समृद्धि से पूर्ण बनाना चाहता है।

कला और बूढ़ा चांद (५९) में कवि पहली बार तथाकथित नयी कविता की शैली, खासतौर से उसकी छन्द, लयहीन गद्यात्मक शैली अपनाता है। प्रगतिशील दृष्टि से इसकी एक ही कविता 'मूर्धन्य' को महत्वपूर्ण कहा जा सकता है:

ओ इस्पात के सत्य
मनुष्य की नाड़ियों में बह
उसके पैरों तले बिछ
लोहे की टोपी बन उसके सिर पर मत चढ़
सिर पर फूलों का ही मुकुट शोभा देता है!

स्पष्ट है कि इस्पात का सत्य यहां भौतिक मूल्य ही है जिसे कवि साधन मानता है, साध्य नहीं बनाना चाहता।

रजत शिखर, शिल्पी और सौवर्ण में पन्त जी के काव्य-रूपक संगृहीत हैं। **रजत शिखर** (५१) के काव्य रूपकों में 'फूलों का देश' और 'उत्तरशती' महत्वपूर्ण हैं। दोनों की विषयवस्तु भौतिक और आध्यात्मिक का समन्वय है। 'फूलों का देश' में कवि, वैज्ञानिक और विद्रोही जनों के माध्यम से पन्त जी ने बहिरन्तर क्रान्ति का संदेश दिया है। इसी संदर्भ में युग निर्माण के कार्य में कलाकार की भूमिका भी उन्होंने स्पष्ट की है:

कलाकार हूं मैं, पर जीवन संघर्षण से
विरत नहीं हूं... देखो मेरी स्वप्न निमीलित
आंखों में भावी का स्वर्णिम बिम्ब पड़ा है

और वह 'स्वर्ग की वेणी से इन्द्र धनुष को छीन कर धरा के तिमिर-पाश में उसे. गूंथ जाना' चाहता है, देवों की विभूति से जीवन कर्दम में मनुष्यत्व का पद्म खिलाना चाहता है। वह युग युग के अभिशापित और शोषित जन के साथ रहना चाहता है, उनका पक्ष ग्रहण करना चाहता है, बशर्ते कि

अगर साथ रहने देंगे जनगण के नायक।

यहां पन्त जी ने इस बात पर चोट की है कि यद्यपि वे जनगण के साथ हैं पर जनगण के कुछ नायक (निश्चित ही यहां संकीर्णतावादी नेताओं और कुत्सित समाजशास्त्रीय आलोचकों की ओर संकेत है जो) उन्हें जनगण के साथ नहीं रहने देना चाहते। इसमें संदेह नहीं कि कुत्सित समाजशास्त्रीय आलोचना ने उन्हें धीरे-धीरे मार्क्सवाद से और भी अधिक दूर कर दिया है।

'उत्तरशती' में पन्त जी ने बीसवीं सदी के पूर्वार्ध के संघर्ष-संग्राम की पृष्ठ-भूमि में उसके उत्तरार्ध में एक नवीन स्वर्णयुग के आरम्भ की कामना और कल्पना को वाणी दी है। इस रूपक में पन्त जी का युद्ध-विरोधी और शान्ति-वादी रूप बड़ी प्रखरता से व्यक्त हुआ है। कविता में कवि ने रूस, नये चीन और नये एशिया का, शान्तिवादी शक्तियों के रूप में अभिनंदन किया है :

रक्त क्रान्ति के शोणित के सागर में उठकर
चमक रहा लोहिताक्ष नक्षत्र नवोदित
युग के नभ में अंगारक सा महत् महोज्वल
भूमि पुत्रवत, मातृधरा के वैभव में स्मित
युग युग के शोषित जनगण का स्वर्ण भूतिप्रद

मानवीय निर्माण शक्ति और मनुष्य के स्वर्णिम भविष्य के प्रति एक दृढ़ आस्था इस रूपक की एक-एक पंक्ति में भरी हुई है। बीसवीं सदी के उत्तरार्ध में उभर कर सामने आते हुए इस नये विश्व-यथार्थ का यह बुलन्द चित्र वास्तव में प्रभावक है :

जूझ रहे हैं लौह संगठन युग जड़ता को
वज्र मुष्टियों के प्रहार से जाग्रत करने
नव शोणित से वैर-स्नात करने भू का मुख
परिवर्तित करने जग के कटु मान चित्र को
टकराती हैं नव्य चेतना की हिल्लोलें
युग मन की निश्चेष्ट बधिर पाषाण शिलों पर
हाहाकारों से जय घोषों से समुच्छसित
विश्व क्रान्ति की ओर सतत आरोहण करतीं।

शिल्पी (५२) और सौवर्ण (द्वि. सं. ६३) के दो रूपक ध्वंस-शेष और दिग्विजय प्रगतिशील दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं।

'ध्वस शेष' में आणविक युद्ध के बाद भी नवजीवन-निर्माण के अपने स्वप्न को पन्त जी ने रूपायित किया है। पन्त जी का दृढ़ मानववादी स्वर इस रूपक में अभिव्यक्त हुआ है। आणविक युद्ध के बाद के विध्वंस का एक प्रभावशाली चित्रण इस रूपक की सबसे बड़ी विशेषता है :

प्रलय वलाहक सा घिर घिर कर विश्व क्षितिज में
गरज रहा संहार घोर संचित कर नभ को
महाकाल का वक्ष चीर निज अट्टहास से
शतशत दारुण निर्घोषों में प्रतिध्वनित हो
अगणित भीषण वज्र कड़क उठते अम्बर में
लपलप, तड़ित शिखाएं टूट रहीं धरती पर
महानाश किटकिटा रहा कटु लौह दन्त निज
विकट धूम्र वाष्पों के श्वासोच्छ्वास छोड़ कर

—ध्वंसशेष, शिल्पी, पृ. ५८.

और इस महानाश के तांडव में उन्हें मानव जीवन के रक्षण की चिन्ता है :

कैसे हाय, रहेगा विद्युत ताड़ित भू पर
कोमल मांसल शोभादेही दुर्बल जीवन
जिसके मुख पर खेला करती मुकुलों की स्मिति
चितवन में पलती ओसों की मौन सजलता
जिसके उर में स्वर्ग-धरा का चेतन वैभव
क्रीड़ा करता रहस भावनाओं में दोलित

—शिल्पी, पृ. ६२.

लेकिन परमाणु युद्ध के इस महानाश को पन्त जी मनुष्य के भावी अंतर्बाह्य स्वर्णोदय की पृष्ठभूमि मात्र समझते हैं। उन्हें विश्वास है कि इसके बाद मानव सभ्यता नये शिखरों पर अवरोहण करेगी, एक ऐसी सभ्यता का निर्माण होगा जिसमें धनिकों और श्रमिकों का दुर्धर्ष संघर्ष हमेशा के लिए समाप्त हो जायेगा, इस आणविक विनाश को वे रुद्र-दृष्टि से मृकल्मष के भस्मीभूत होने के रूप में ही देखते हैं। उन्हें प्रकृति की सृजन शक्ति पर विश्वास है, इसीलिए उनका पुरुष प्रकृति से कहता है :

अविनाशी है तत्व अखिल, अविनाशी हम हैं
अविनाशी है अमर चेतना क्षर जीवों की

नाश नहीं होता विकास-प्रिय अमृत सत्य का
मिथ्या का संहार अवश्यंभावी जग में
पुनः निभृत नेपथ्य लोक में निज कौशल से
नवल सृष्टि तुम सृजन करोगी महाकाश से

और विश्वास है मानव की शक्ति और उसके भविष्य में :

जूझ रहे अणु के दानव से भू के जनगण
जूझ रहे हैं महानाश से अपराजित जन

निश्चय ही 'ध्वंसशेष' हिन्दी में अपने विषय पर लिखा हुआ अपने जैसा अकेला काव्य-रूपक है।

'दिग्विजय' जैसा कि पन्त जी ने सौवर्ण के विज्ञापन में सूचितकिया है, प्रथम अन्तरिक्ष यात्री यूरी गागारिन की अन्तरिक्ष यात्रा की प्रेरणा से लिखा गया है। लेकिन वह केवल मानव की अन्तरिक्ष विजय का ही नहीं, 'जीवन सत्य की बहिरन्तर विजय' का काव्य-रूपक है। अन्तरिक्ष में उड़ते हुए मानव की अनुभूतियों की प्रभावशाली अभिव्यक्ति इस रूपक में हुई है :

रजत-नील प्रभ स्वप्न लोक में विचर रहा हूं
शुभ्र शान्ति के भाव मौन निस्वर सागर में
डूब रही निःस्पंद चेतना-भारहीन हो
उच्च वायुओं की पवित्रता में अवगाहित
मन तन्मय हो रहा निखिल का महत स्पर्श पा
भार मुक्त तन तैर रहा आनंद राशि में

—दिग्विजय, सौवर्ण, पृ. ६५.

अन्तरिक्ष से 'नील ध्वनि' सुनकर लौटा हुआ यात्री, पन्त जी के लिए भौतिक और आत्मिक के आदर्श समन्वय का प्रतिनिधि है। मानवीय सामर्थ्य में विश्वास इस रूपक की एक-एक पंक्ति में बसा हुआ है।

पर कुल मिला कर पन्त जी एक काव्यरूपककार के रूप में अधिक सफल नहीं कहे जा सकते। उनके काव्य-रूपकों में कथानक, सुसंबद्धता और सुनिश्चित प्रभाव का लगभग अभाव रहता है। उनके पात्रों में व्यक्तित्व का अभाव है, वे युवक, युवती, स्वर, कवि, कलाकार, मनोवैज्ञानिक आदि ही है। उनके काव्य-रूपक विचारों के ही ताने बाने हैं, रागतत्व का उनमें आपेक्षिक अभाव है। उनके काव्य-रूपक काव्य-रूपक के अपने रूपविधान की सार्थकता सिद्ध नहीं करते।[१९]

---

१९. देखिए सिद्धनाथ कुमार : हिन्दी एकांकी की शिल्पविधि का विकास, कानपुर, ६६, पृ. ३७०-३७१.

यहां पन्त जी के आध्यात्मिक काव्य या स्वर्ण काव्य पर समग्रता से थोड़ा विचार किया जा सकता है। पन्त जी के इस काव्य में व्यक्त आध्यात्मिकता के स्वरूप पर विचार करते हुए नगेन्द्र जी कहते हैं : "यह आध्यात्मिकता साम्प्रदायिक अथवा धार्मिक नहीं है और न यह रहस्यवादी ही है। यह आध्यात्मिकता मनोवैज्ञानिक है। इसका संबंध सूक्ष्म चेतना से है। पन्त जी आत्मा को चेतना का सूक्ष्म रूप मानते हैं। आत्मा का मानवीय हृदय की विभूतियों से रहित शुद्धबुद्ध अथवा निर्लिप्त रूप पन्त जी को अग्राह्य है। उन्होंने जिस आध्यात्मिक चेतना की कल्पना की है, उसमें भौतिकता का परिष्कार है, तिरस्कार नहीं; उन्नयन है, दमन नहीं।"[२०]

पन्त जी के परवर्ती काव्य पर विचार करते हुए डा. विश्वंभरनाथ उपाध्याय ने भी लिखा है कि विचार की दृष्टि से पन्त जी का चिन्तन रहस्यवादी होते हुए भी प्रत्येक रहस्यवादी की तरह पन्त जी भी मानव-कल्याण के समर्थक हैं। उनके काव्य में शान्ति, सहानुभूति, आशा और आस्था के स्वर प्रबल हैं। विश्व-युद्ध का पन्त जी ने दृढ़ शब्दों में विरोध किया है। प्रयोगवाद द्वारा प्रचारित अनास्था, कुंठा, पस्त-हिम्मती तथा अवसाद के स्वरों के विरुद्ध पन्त जी भावी मानवता की विजय के गायक हैं। वे मनुष्य की निम्न वृत्तियों के निन्दक और सात्विक वृत्तियों को कला में मूर्तित करने वाले कवि हैं। वे निर्माण के प्रबल समर्थक और उसके प्रति आशावान हैं। पन्त जी के परवर्ती काव्य में प्रगति के ये स्वर अभिनंदनीय हैं।"[२१]

वास्तव में पन्त जी जब अपने स्वर्ण-काव्य में ब्रह्म के, नव्य चेतना के मानवीय मन में अवरोहण और अवतरण की बात करते हैं तो उसका प्रगतिशील आलोचकों की समझ में न आना, समझ में आता है पर जब वे मानव मन के उर्ध्व आरोहण की बात करते हैं, अहं, घृणा, द्वेष, संकीर्णता और स्वार्थ से उसकी मुक्ति की बात करते हैं, सामाजिक क्रान्ति के साथ ही मानसिक क्रान्ति और मनःसंस्कार की बात करते हैं, तब कतिपय प्रगतिशील आलोचकों का उन पर कोप समझ में नही आता। क्योंकि यद्यपि मार्क्सवाद के अनुसार सर्वांगीण क्रान्ति का पहला कदम सामाजिक-आर्थिक ढांचे को बदलना है, तथापि उसके बाद भी मनःसंस्कार की आवश्यकता से वह इनकार नही करता, न कर ही सकता है; पन्त जी अगर दोनों काम साथ ही साथ करना चाहते हैं तो इसके लिए उन्हें प्रतिगामी नहीं कहा जा सकता। पन्त जी एक साहित्यकार हैं और एक साहित्यकार का मूल काम सामाजिक-आर्थिक

२०. नगेन्द्र : पन्त का नवीन जीवन दर्शन, गुर्टू की पुस्तक, पृ. २८०.
२१. आधुनिक हिन्दी कविता, पृ. ४२०.

क्रान्ति करना नहीं, उसके अनुकूल मानसिक संस्कार देना होता है। इसलिए चाहे उनके मन:सस्कारों के उद्देश्यों से पूरी तरह सहमत न हुआ जाय, उन्हें इस कारण प्रतिगामी नहीं कहा जा सकता।

पन्त जी का अध्यात्मवाद न तो मध्यकालीन अध्यात्मवाद की तरह पलायनवादी है और न वह शंकर के वेदान्त की तरह इस संसार को माया मानता है। इस देश, इस धरती और इस संसार के प्रति राग इसीलिए उनकी आध्यात्मिक कविताओं में भी मिलता है। भारत की प्राकृतिक सुषमा का चित्रण भी उनमें व्यापक पैमाने पर हुआ है।

फिर कवि के चिन्तन से असहमत होते हुए भी उसकी उस सदिच्छा की प्रशंसा करनी होगी, जो उनके नूतन काव्य में सर्वत्र व्याप्त है। वे अब भी मानवीय आशा, आकांक्षा, उत्साह और पुरुषार्थ के गायक हैं। चाहे उनका चिन्तन भ्रमित हो, पर मानव-प्रेम की उनकी भावना का मूल्य कम नहीं है।"[22] स्वप्न चित्रण, भावी मानवता के स्वप्नों का अंकन पन्त जी की परवर्ती कविताओं की एक प्रमुख विशेषता है।"[23]

अब प्रश्न उठता है कि समग्र रूप से पन्त के प्रगति-काव्य की क्या शक्तियां और सीमाएं हैं? उदाहरण के तौर पर निराला की तुलना में? एक बात तो यह कि निराला के काव्य-जीवन में कोई एक ऐसा निश्चित युग नहीं आया, जिसे हम प्रगति-युग कह सकें, उनमें प्रगतिशील तत्व उसी तरह ढूंढ़ने होते हैं, जिस तरह पन्त जी के परवर्ती काव्य में। पर पन्त जी एक निश्चित समय तक स्पष्टता पूर्वक प्रगतिशील जीवन दर्शन के गायक रहे हैं। दूसरी यह कि निराला का परवर्ती काव्य प्रगतिशील कम, यथार्थवादी ज्यादा रहा है। यथार्थवाद प्रगतिशीलता का एक तत्व है, पर सभी तरह का यथार्थवाद प्रगतिशील नही होता। फिर निराला का प्रगतिशील काव्य अधिकांश मे उनके मानसिक विक्षेप और विघटन के दिनों की सृष्टि है, पर पन्त ने पूरी मानसिक स्वस्थता के साथ उसे रचा है। यही कारण है कि निराला के काव्य में व्यंग-विद्रूप और कटुता अधिक है, जब कि पन्त के काव्य में स्वस्थ विचारणा। निराला का स्वर निराशावादी अधिक है पर पन्त जी की पक्ति पंक्ति में आशावाद है।

पन्त के प्रगति काव्य की एक उपलब्धि यह है कि वह संकीर्ण राजनीतिकता से मुक्त है। उन्होने अपने युग की समस्याओं को कभी केवल राजनीतिक समस्याओं के रूप में देखने की संकीर्णता नही बरती, वे उन्हें अधिक व्यापक परिप्रेक्ष्य में देखते हैं :

---

२२. विश्वंभरनाथ उपाध्याय : आधुनिक हिन्दी कविता, पृ. ४२३-२४.

२३. विश्वंभरनाथ उपाध्याय : पन्त जी का नूतन काव्य और दर्शन, पृ. ७४०.

राजनीति का प्रश्न नहीं रे आज जगत के सम्मुख
अर्थसाम्य भी मिटा न सकता मानव जीवन के दुःख
आज वृहत सांस्कृतिक समस्या जग के निकट उपस्थित
खण्ड मनुजता को युगयुग की होना है नव निर्मित
—ग्राम्या, संस्कृति

उन्होंने एक जगह यह भी लिखा है : मेरा दृढ़ विश्वास है कि केवल राजनीतिक आर्थिक हलचलों की बाह्य सफलता द्वारा ही मानव जाति के भाग्य (भावी) का निर्माण नहीं किया जा सकता। इस प्रकार के सभी आन्दोलनों को परिपूर्णता प्रदान करने के लिए ससार में एक व्यापक सांस्कृतिक आन्दोलन को जन्म लेना होगा जो मानव चेतना के आर्थिक, राजनीतिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक—सम्पूर्ण धरातलों में मानवीय सन्तुलन तथा सामंजस्य स्थापित कर आज के जनवाद को विकसित मानववाद का स्वरूप दे सकेगा।"[२४] इसमें संदेह नहीं कि ऐसा वे भौतिकवाद-आध्यात्मिकवाद के समन्वय के अपने सिद्धान्त के कारण ही कहते हैं, इसलिए यह स्वीकार करना होगा कि जहां यह परिप्रेक्ष्य की व्यापकता उनकी विशेषता है, वहां ऐसे समन्वय का प्रयत्न उनकी विफलता भी है।

निराला में अध्यात्मवाद और प्रगतिवाद दो बिलकुल अलग-अलग धाराओं के रूप में चलते रहे जिनके बीच कोई तुक बिठाना मुश्किल है। निराला का मानसिक विक्षेप ही उनके बीच का सेतु है, लेकिन पन्त के साथ ऐसी बात नहीं है, उनमें दोनों में समन्वय का एक सुचिंतित प्रयास है।

पन्त जी के प्रगति काव्य की एक और विशेषता, जिस की ओर संकेत श्री शिवदान सिंह चौहान ने किया है, यह है कि जहां अधिकांश प्रारंभिक प्रगतिशील कविताओं में क्रान्ति के नाम पर एक 'ध्वंसवाद' की ही अभिव्यक्ति हुई है (उदाहरणार्थ नवीन, दिनकर और भगवतीचरण वर्मा के तत्कालीन काव्य में) वहां पन्त जी के काव्य में उसके सृजनात्मक पक्ष पर अधिक जोर दिया गया है, भावी वर्गहीन मानव समाज की उनके पास एक स्पष्ट कल्पना रही है[२५] इस संबंध में स्वयं पन्त जी ने उस प्रारंभिक प्रगतिशील कविता की सीमाओं की ओर यह कह कर अच्छा संकेत किया है : "उसका सौन्दर्य बोध पूंजीवादी तथा मध्यवर्गीय भावना की प्रतिक्रियाओं से पीड़ित रहा। उसका भावोद्वेग किसी जनवादी यथार्थ तथा जीवन सौन्दर्य को वाणी देने के बदले केवल धनपतियों और मध्यवृत्ति वालों के प्रति विद्वेष और विक्षोभ उगलता रहा।"[२६] पन्त जी का

---

२४. प्रस्तावना, उत्तरा, पृ. ७.
२५. देखिए चौहान : युग वाणी और ग्राम्या, साहित्यानुशीलन, पृ. १८१.
२६. देखिए पन्त : रश्मि बंध की भूमिका.

प्रगतिकाव्य इस जीवन-सौन्दर्य की दृष्टि से पूर्ण है। प्रगतिशील कविता को यह भी उनकी देन है।[२७] यद्यपि इस विशेषता के साथ जुड़ी हुई उनके प्रगति काव्य की यह सीमा भी है कि उसमें आवेश और आवेग का लगभग अभाव है। एक ठण्डी चिन्तनशीलता ही उसमें मिलती है।

निराला की तुलना में पन्त के प्रगतिकाव्य की जिस एक और विशेषता को रेखांकित किया जा सकता है, वह यह है कि जहां निराला मे हमें प्रगतिशील कविता का बिम्बात्मक—सामाजिक यथार्थवादी—रूप ही मिलता है, वहां पन्त मे हमें उसके दोनों रूप बिम्बात्मक और वैचारिक प्राप्त होते हैं। पर पन्त के प्रगतिकाव्य की सबसे बड़ी सीमा भी यही है कि उसमें अमूर्त सिद्धान्त कथन ही अधिक है।

निराला और पन्त के समस्त काव्य को ध्यान में रख कर सोचें तो निराला का काव्य एक ऐसे विद्रोही का काव्य है, जिसका विद्रोह यद्यपि आवेगपूर्ण, अचिंतित और दिशाहीन है, पर जिसने झुकना नही सीखा, भले ही टूट गया और पन्त मे हमें एक ऐसे सुचिन्तित विरोधी के दर्शन होते हैं, जो तर्क के बल पर लेकिन अधिकतर ऊष्माहीन विरोध प्रकट करता है।

डा. नगेन्द्र का कहना है कि वास्तव में पन्त का प्रकृत मार्ग छायावाद-अध्यात्मवाद ही था। मार्क्स के जीवन दर्शन ने बीच में उन्हें कुछ समय के लिए आकृष्ट करके अपने सहज मार्ग से हटा अवश्य दिया, पर वे उस आकर्षण के समय भी अपनी आध्यात्मिक चेतना को भूल नही पाये, **युगवाणी** और **ग्राम्या** में भी उन्होंने एकान्त भौतिकवाद का विरोध किया और भौतिक-आध्यात्मिक के समन्वय पर बल दिया। मार्क्सवादी विश्वासों के लिए जो काठिन्य और दृढ़ता अपेक्षित है, वह पन्त के व्यक्तित्व में नही है।[२८] बात कुछ हद तक सही है। श्री वेडेकर ने भी पन्त जी के प्रगतिकाव्य पर विचार करते हुए यही कहा है कि यह ठीक है कि पन्त जी मार्क्सवाद से प्रभावित हुए, और अनेक कविताओं में जिन्हें प्रचारात्मक पद्य ही कहना चाहिए, उन्होंने मार्क्सवादी सिद्धान्तों को छन्दोबद्ध किया पर मनुष्य की उनकी जो धारणा है, वह वस्तुगत होते हुए भी पूरी तरह मार्क्सवादी धारणा नहीं है। उस पर आधुनिक यूरोपीय जीव-चैतन्य-वादी दर्शन का, विशेषकर बर्गसा के 'वाइटलिज्म' का बहुत प्रभाव है।[२९]

खैर जो भी हो, इसमें संदेह नही कि पत जी हिन्दी की प्रगतिशील कविता

---

२७. देखिए उपाध्याय, आधुनिक हिन्दी कविता : सिद्धान्त और समीक्षा, पृ. ३८२.
२८. देखिए पन्त का नवीन जीवन दर्शन, गुर्टू की पुस्तक में, पृ. २७६.
२६. देखिए उनका लेख, पन्त का मानववाद, गुर्टू की पुस्तक, पृ. २७२.

के एक शलाका-पुरुष रहे हैं। हिन्दी की प्रगतिशील कविता अपने इस पहले सशक्त प्रवक्ता के महत्व को कभी कम करके नहीं देखेगी।

सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला

पन्त जी की तरह निराला जी भी छायावाद के प्रमुख स्तंभों और प्रगतिशील कविता के सूत्रधारों में से एक हैं। लेकिन निराला जी पन्त जी की तरह, छायावाद का युगान्त घोषित कर प्रगतिवाद में दीक्षित नहीं हुए। उनके विचारों और विश्वासों में उस तरह का कोई बड़ा परिवर्तन नहीं आया। वे अपने छायावादी-अध्यात्मवादी विश्वासों में ही, और उनके बावजूद प्रगतिशील रहे हैं। इसीलिए डा. विश्वभरनाथ उपाध्याय ने उन्हें मूलतः मानवतावाद के कवि बताते हुए कहा है कि उन्होने लगभग एक ही समय 'तुम और मैं' जैसी अद्वैतवादी और 'भिक्षुक' जैसी यथार्थवादी कविताएं लिखीं।[30]

निराला जी की कविता में प्रगतिशील प्रवृत्तियां बीज रूप में परिमल में ही (जो २४ से २७ के बीच रची हुई कविताओं का संकलन है और जिसका प्रकाशन १९३० में हुआ) मिलने लगती हैं। परिमल की 'बादल राग', 'भिक्षुक', 'विधवा', 'कण', 'जागो फिर एक बार', 'शिवाजी का पत्र' आदि कविताओं में एक नवीन जागरण के स्वर हैं, हालाकि परिमल का मूल स्वर छायावादी ही था, इसमें कोई संदेह नही। निराला की प्रारंभिक प्रगतिशील कविताओं में हम 'भिक्षुक', 'विधवा' और 'बादल राग' को गिना सकते हैं। 'भिक्षुक' और 'विधवा' मे समाज के दो शोषित और पददलित अंगों के प्रति कवि ने अपनी हार्दिक सहानुभूति व्यक्त की है। 'भिक्षुक' का चित्र वास्तव में मर्मस्पर्शी है, क्योंकि वह किसी अभिजातवर्गीय कवि की बौद्धिक सहानुभूति से प्रेरित कल्पना-चित्र नहीं, एक ऐसे कवि द्वारा चित्रित-यथार्थ-चित्र है, जिसने स्वयं भिक्षुक की सी स्थिति में जीवन के अनेकों वर्ष काटे हैं।[31]

'विधवा' कविता में पददलित और शोषित हिन्दू नारी का करुण चित्र, एक पवित्रता के सस्पर्श के साथ खींचा गया है:

> वह इष्ट देव के मंदिर की पूजा सी
> वह दीप शिखा सी शान्त-भाव में लीन
> वह क्रूर काल-ताण्डव की स्मृति रेखा सी
> वह टूटे तरु की छुटी लता सी दीन

---

३०. निराला का साहित्य और साधना, पृ. ३५.

३१. देखिए विश्वभरनाथ उपाध्याय, निराला का साहित्य और साधना, पृ. ९८.

लेकिन यह कविता दलित भारत की विधवा पर आंसू बहाने और ईश्वर की जैसी इच्छा कह कर बात समाप्त करने तक सीमित नहीं रही है। छायावादी निराला में भी देव के प्रति विद्रोह की भावना बीज रूप में विद्यमान है :

देव, अत्याचार कैसा घोर कठोर है
क्या (तुम ने) कभी पोंछे किसी के अश्रुजल
या किया करते रहे सब को विकल!

'बादल राग' अपनी ओजस्विता, प्रखरता और त्वरा की दृष्टि से परिमल की सर्वश्रेष्ठ कविता कही जा सकती है। बादल निराला जी का प्रिय काव्य विषय रहा है।[32]

'बादल राग' की ६ कविताओं में से छठी कविता केवल उनकी अत्यन्त लोक प्रिय कविता ही नहीं है, अपनी क्रान्तिकारी व्यंजना और उदात्त स्वर-सौन्दर्य में भी वह अनुपम है। बादल समीर के सागर पर ऐसे तैरता है, जैसे *अस्थिर सुख पर दुःख की छाया,* उसकी रणभेरी का गर्जन सुनकर धरती के गर्भ में सोये हुए अंकुर फूट निकलते हैं, उसकी मूसलाधार वर्षा से धरती सिहर उठती है और वज्र-हुंकार सुनकर संसार हृदय थाम लेता है। वह पर्वतों पर वज्र-प्रहार करके उन्हे क्षत-विक्षत कर देता है, लेकिन छोटे-छोटे पौधे उसे हाथ हिला हिला कर बुलाते हैं क्योंकि 'विप्लव रव से छोटे ही हैं शोभा पाते'।[33]

वास्तव मे इस कविता में बादल, एक ऐसे क्रान्तिकारी का प्रतीक है जिसके आतंक से धनिकों की अट्टालिकाएं कांपने लगती हैं और जो अपनी रणभेरी की हुंकार से पददलित शोषितों को जागरण का संदेश देता है, और जिसे—

जीर्ण बाहु है शीर्ण शरीर
तुझे बुलाता कृषक अधीर
ऐ विप्लव के वीर!
चूस लिया है उसका सार
हाड़ मात्र ही है आधार
ऐ जीवन के पारावार!

'बादल राग' कविता कला और संदेश दोनों दृष्टियों से महत्वपूर्ण हैं।

---

३२. डा. रामविलास ने तो यहां तक कहा है कि अगर निराला जी की बादल-संबंधी सभी कविताएं एक जगह एकत्र की जायं तो एक अच्छा-खासा संग्रह तैयार हो सकता है—रामविलास, निराला, पृ. ५५.

३३. रामविलास, वही, पृ. ५६.

उसमें व्यक्त कवि की शब्द-निर्माण की क्षमता, सामासिक पद्धति और सामा-
मय-अर्थयुक्त दीर्घ पदावली-रचना निराला की काव्य-क्षमताओं को रेखांकित
करती है।

३६ के बाद निराला की कविता पर प्रगतिशील आन्दोलन और सामा-
जिक यथार्थवाद के प्रभाव अधिक मुखर होने लगे। ३८ में उनका अनामिका
(द्वितीय) नामक सकलन प्रकाशित हुआ। इस संकलन की 'सरोज स्मृति'
(३५), 'दान' (३५), 'वनवेला' (३७), 'तोड़ती पत्थर' (३७) और 'सहज'
(३८) आदि कविताओं में यह प्रवृत्ति अधिक उभर कर सामने आती है।

'तोड़ती पत्थर' इलाहाबाद की एक सड़क-मजदूरिन का प्रभावशाली और
यथार्थ चित्र है। अपनी बिम्बात्मकता में यह चित्र ग्राम्या के श्रेष्ठ बिम्बों से
टक्कर लेता है :

श्याम-तन भर बंधा यौवन
नतनयन, प्रिय-कर्म-रत मन
गुरू हथौड़ा हाथ
करती बार बार प्रहार
सामने तरु मालिका, अट्टालिका, प्राकार !

'सरोज स्मृति' में कवि ने अपने निजी जीवन के संघर्षों और आशाओं-
आकाक्षाओं को अभिव्यक्ति दी है। वास्तव में यह एक सुन्दर शोकगीत है।

'दान' कविता में उस ढोंगी धर्म पर व्यंग है, जिसमें बंदरों को तो पूए खिलाये
जाते हैं, और आदमी भूखों मरता है। श्री मन्नारायण जपने वालों और शिव
पर बारहों मास पानी बहाने वालों पर कवि का व्यंग तिलमिला देने वाला है :

झोली से पुए निकाल लिये
बढ़ते कपियों के हाथ दिये
देखा भी नहीं उधर फिर कर
जिस ओर रहा वह भिक्षु इतर
चिल्लाया किया दूर मानव
बोला मैं धन्य श्रेष्ठ मानव

'वन वेला' मे पैसे और सत्ता पर पलने वाली प्रतिष्ठा पर व्यंग इस तरह
किया गया है :

फिर लगा सोचने यथा सूत्र
मैं भी होता यदि राज पुत्र...

ये होते जितने विद्याधर मेरे अनुचर
मेरे प्रसाद के लिए विनत-शर उद्यत-कर
मैं देता कुछ, रख अधिक. किन्तु जितने पेपर
सम्मिलित कंठ से गाते मेरी कीर्ति अमर
जीवन चरित्र
लिख अग्रलेख अथवा छापते विशाल-चित्र

और उन ढोंगी नेताओं पर किया गया यह व्यंग आज भी सही है, जो पूंजीवादी होते हुए भी समाजवाद की 'ओष्ठ्य सेवा' करते है :

इतना भी नहीं, लक्षपति का भी यदि कुमार
होता मैं, शिक्षा पाता अरब-समुद्र पार
देश की नीति के मेरे पिता परम पंडित
एकाधिकार रखते भी धन भर अविचल-चित
होते उग्रतर साम्यवादी करते प्रचार
चुनती जनता राष्ट्रपति उन्हें ही सुनिर्धार

साथ ही 'राष्ट्र कवियों' को भी नहीं छोड़ा गया है :

पैसों में दस दस राष्ट्रीय गीत रच कर उन पर
कुछ लोग बेचते गा गा कर गर्दभ-मर्दन स्वर !

१६४० के आसपास निराला के काव्य में एक नया मोड़ आता है, इसके बाद एक ओर तो कवि में यथार्थवादी और जनवादी आग्रह बढ़ते जाते हैं, उसके स्वर में एक तीखी व्यंगात्मकता आ जाती है, और दूसरी ओर मानसिक अस्वस्थता, विश्रृंखलता और अध्यात्मवादी प्रवृत्तियां अधिकाधिक मुखर होती जाती हैं। निराला जी की युद्ध कालीन कविताओं की यथार्थवादिता की चाहे जितनी प्रशंसा की गयी हो,[३४] लेकिन यह स्वीकार करना ही होगा कि इससे पहले के निराला के प्रगतिशील काव्य में जो स्पष्टता, उदारता, प्रखरता और ओज है, न केवल वह बाद की कविताओं में नहीं मिलती, बल्कि एक विशेष प्रकार की असंगति और बिखराव भी उनमें दिखाई देता है। ऐसी स्थिति में श्री रमेशचन्द्र मेहरा का उनके परवर्ती काव्य को उनके मानसिक विक्षेप का काव्य कहना गलत नहीं लगता।[३५] फिर भी निराला के परवर्ती प्रगतिशील

---

३४. देखिये : रामविलास, निराला, पृ. १७२-७८.
३५. निराला का परवर्ती काव्य, पृ. २५-२७.

काव्य की दो प्रमुख उपलब्धियों की उपेक्षा नहीं की जा सकती—व्यंग-कुशलता और जनभाषा का प्रयोग।

एक प्रगतिशील कविता के रूप में उनकी ४२ में प्रकाशित 'कुकुरमुत्ता' की बहुत प्रशंसा की गयी है। लेकिन इस कविता के उद्देश्य की अस्पष्टता इसी से स्पष्ट है कि इसमें किस पर व्यंग किया गया, इस पर हिन्दी के लगभग सभी समीक्षकों के अलग अलग मत हैं। कुकुरमुत्ता एक छोटी सी कहानी पर आधारित कविता है। एक नवाब ने अपने बाग में तरह-तरह के फूल पौधे लगाये। उनमें फारस के गुलाब भी थे। पास ही एक कुकुरमुत्ता भी उग आया। नवाब की मालिन की बेटी गोली और नवाब की बेटी बहार में दोस्ती थी। बाग में एक दिन दोनों ने गुलाब और कुकुरमुत्ते को साथ-साथ देखा। गोली ने कुकुरमुत्ते उखाड़ लिये और उनका कबाब बनाकर बहार को खिलाया। कबाब उसे इतना लजीज लगा कि उसने घर आकर नवाब से इसकी चर्चा की। नवाब ने माली से कुकुरमुत्ते लाने के लिए कहा पर अब बाग में और कुकुरमुत्ते नहीं थे। नवाब ने गुस्से में माली को हुक्म दिया कि गुलाबों की जगह कुकुरमुत्ते उगाये जायं। लेकिन माली ने क्षमा मांगते हुए कहा कि कुकुरमुत्ते उगाये नहीं जा सकते। वे तो अपने आप ही होते हैं। कविता में इस कहानी के सिलसिले में ही कुकुरमुत्ता गुलाब को गालियां सुनाता है, उसे खाद का खून चूसने वाला कैपिटलिस्ट कहता है, और अपनी तारीफों के पुल बांधता है—अपने आपको सर्वव्यापी और सर्वशक्तिमान बताता है। यही इस कविता का कथ्य है।

श्री प्रकाशचन्द्र गुप्त ने कुकुरमुत्ता को दीन-हीन-शोषित जनता का प्रतीक माना है और गुलाब को शोषक अभिजात वर्ग का। रामरतन भटनागर ने उन्हें क्रमशः देशी और विदेशी संस्कृति से जोड़ा है।[३६] बच्चन सिंह ने प्रकाशचन्द्र गुप्त वाले प्रतीकों को तो ज्यों का त्यों स्वीकार कर लिया है, पर साथ ही कविता का उद्देश्य साम्यवाद पर प्रहार करना और यह बताना कि साम्यवादी बकवादी हुआ करते हैं, माना है।[३७] श्री धनंजय वर्मा ने कुकुरमुत्ता के व्यंग को विविधक्षेत्रीय कहा है, उनके अनुसार जो भी वर्ग कुकुरमुत्ता के प्रति मोह दिखा कर उसे अपना प्रतीक मानेगा, वही व्यंग का शिकार होगा।[३८] श्री रमेशचन्द्र मेहरा के ख्याल से कुकुरमुत्ता में निराला जी एक ओर तो पूंजीवाद के विरुद्ध व्यंग करते हैं और साम्यवाद का समर्थन करते हैं, पर दूसरी ओर साम्यवाद की पश्चिमी कल्पना पर व्यंग

---

३६. कवि निराला : एक अध्ययन, पृ. २०९-१०.

३७. क्रान्तिकारी कवि निराला, पृ. १४४-४६.

३८. धनंजय वर्मा, निराला : काव्य और व्यक्तित्व, पृ. १७८.

करते हुए एक प्रकार के भारतीय वेदान्ताश्रयी साम्यवाद के हिमायती नजर आते हैं। उनका कुकुरमुत्ता सर्वहारा वर्ग का प्रतीक है, पर वे शिक्षा-संस्कृति-हीन सर्वहारा वर्ग को नये मानवीय विकास के लिए उपयुक्त नहीं मानते। इसलिए वे उसके मुंह से खूब बढ़ी-चढ़ी बातें कहला कर उसे हास्यास्पद बना देते हैं।[३९] डा. विश्वंभरनाथ उपाध्याय के अनुसार गुलाब उच्च वर्ग का, सौन्दर्य और सुरुचि का, समृद्धि और सम्मान का प्रतिनिधि है और कुकरमुत्ता घोर यथार्थ का नमूना है। कुत्सित, अनगढ़, भदेस वस्तुओं का महत्व कम नहीं होता, अधिक होता है, यह दिखाया गया है किन्तु प्रतिक्रिया की झोंक में कवि कहीं-कहीं बहुत कुछ अनर्गल कह गया है।[४०]

श्री इन्द्रनाथ मदान का[४१] खयाल है कि "कुकुरमुत्ता निम्न वर्ग, उपयोगितावाद या समाजवाद आदि का उतना प्रतीक नहीं है, जितना वह निराला का प्रतीक है।...कुकुरमुत्ता निराला की आत्मा है, जो इन दिनों गहरी चोट खा कर सब पर प्रहार करने के लिए बाधित हो जाती है।" इस सबंध में उन्होंने गंगा प्रसाद पाण्डेय द्वारा उल्लिखित इस बात की ओर भी ध्यान दिलाया है कि उन दिनों विशाल भारत के संपादक निराला को पागल सिद्ध करने का काम जोर शोर से कर रहे थे।[४२]

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के अनुसार कुकुरमुत्ता की व्यंजना यह है कि न पुराना गुलाब, और न नया कुकुरमुत्ता ही आधुनिक सांस्कृतिक आदर्श की पूर्ति कर सकते हैं। हमारी वर्तमान संस्कृति कुकुरमुत्ता की भूमिका से उठ कर नयी सृष्टि और नया विकास करेगी, तब हम एक नयी संस्कृति ला सकेंगे। नया गुलाब ही पुराने गुलाब का स्थान ले सकता है।[४३]

इस सारी अस्पष्टता और खींचतान कर अर्थ बिठाने की कोशिश का मूल कारण यह है कि कुकुरमुत्ता यद्यपि एक निश्चित उद्देश्य को लेकर लिखी गयी रचना है, तथापि उसमें विचारों और शैली का बिखराव और विशृंखलता इतनी है कि कोई भी प्रतीक-विधान पूरी तरह से ठीक नहीं बैठता। मूल बात से दूर जाने की, केन्द्रापगामी, प्रवृति इतनी अधिक है कि बिना किसी प्रसंग के निराला जी टी. अॅस. ईलियट, वेन जोइन, फ्रायड, लीटन आदि के नाम लेकर

---

३९. निराला का परवर्ती काव्य, पृ. ६२-६३.
४०. निराला का साहित्य और साधना, पृ. १६३.
४१. आधुनिक कविता का मूल्यांकन पुस्तक में निराला पर लेख, पृ. २८५.
४२. देखिए गंगा प्रसाद पाण्डेय: महाप्राण निराला, पृ. २००.
४३. कवि निराला को श्रद्धांजलि, रसवन्ती, निराला विशेषांक, कृतित्व खंड, अप्रैल मई-६२, पृ. १२६.

पाठकों को आतंकित करने का व्यर्थ प्रयत्न करते हैं। ऐसी असंगत तुकबंदियों की भरमार है—जिनका कोई अर्थ निकाल पाना काफी कठिन है, जैसे :

काम जो मुझसे सधा है
शेर भी उससे गधा है

या, *कास्मोपलीटन और मेट्रोपालीटन*
जैसे हो फ्रायड लीटन
फैंटेसी और फलसफा
जरूरत और हो रफा
सरसता में फ्राड
कैपिटल में जैसे लेनिनग्राड

और, *यहीं से यह सब हुआ*
जैसे अम्मा से बुआ

अंग्रेजी शब्दों की भरमार तथा असंगत, अर्थहीन तुकों और विचारों के बिखराव ने एक अच्छी हो सकने वाली व्यंगकविता की मिट्टी पलीद कर दी है।

वैसे कविता का मूल कथ्य वास्तव में वही है, जिसकी ओर संकेत श्री प्रकाशचन्द्र गुप्त और विश्वंभरनाथ उपाध्याय ने किया है। निराला जी ने कुकुरमुत्ता को निम्न मेहनतकश वर्ग का प्रतिनिधि मान कर ही चित्रित किया है, और पूरी कविता को ध्यान से पढ़ने के बाद हम इसी निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि कुकुरमुत्ता की दर्भपूर्ण उक्तियों में उस पर कोई व्यंग नहीं है, जैसा कि धनंजय वर्मा और रमेशचन्द्र मेहरा ने अनुमान लगाया है। कुकुरमुत्ता की ये दर्भपूर्ण उक्तियां एक ओर तो यह संकेत करती हैं कि सम्पूर्ण मानवीय उपलब्धियां मेहनतकश निम्न वर्ग की ही मेहनत से प्राप्त हुई हैं और दूसरी तरफ इनसे यह भी सिद्ध होता है कि निराला जी हिन्दी में अभी अभी शुरू हुए प्रगतिशील आन्दोलन को एक संकीर्ण उपयोगितावादी आन्दोलन मात्र समझे थे।" कुकुर-

---

४४. श्री निरजन का भी कहना कि कुकुरमुत्ता दीन वर्ग का प्रतिनिधि हो सकता है, लेकिन दुनिया से गुलाब उड़ा दिये जायं, यह बात ठीक नहीं बैठती। उपयोगितावाद के विकृत रूप को स्वीकार करने पर ही ऐसी कल्पना सार्थक लगेगी। शायद निराला जी ने प्रगतिवाद को इसी तरह का उपयोगितावाद समझा था। इसलिए कुकुरमुत्ता का व्यंग जहां गुलाब को मारता है वहां खुद उसे भी हास्यास्पद बना देता है।—नया साहित्य, निराला विशेषांक.

मुत्ता के माध्यम से निराला जी की निम्न वर्गीय अक्खड़ता और प्रतिक्रिया-जन्य मसीहाई अहमन्यता भी व्यक्त हुई है, यही कारण है कि कहीं-कहीं उनकी उक्तियां हास्यापद हो उठी हैं।

'कुकुरमुत्ता' के लिए कुल मिला कर डा. विश्वंभरनाथ उपाध्याय का यह कथन गलत नहीं है कि कुकुरमुत्ता में न तो व्यंग ही निखर सका है और न उसका कोई स्तर ही है, प्रयोग नवीन अवश्य है, परन्तु अवांछनीय नवीनता, ग्राह्य प्राचीनता से भी हानिकर हो जाती है। ऐसा लगता है कि जैसे निराला विरोधों के बीच से गुजर कर प्रत्येक वस्तु का उपहास करते हुए अपने प्रति किये गये अत्याचारों का बदला लेना चाहते हैं। साहित्य प्रतिशोध व प्रति-क्रिया के तूफान में उड़ कर आया हुआ गालियों, कुत्सित प्रवृत्तियों, भद्दे चित्रों और मनमानी व्यंजनाओं का ढेर नहीं होता। कुकुरमुत्ता की कविताओं मे छन्द, भाषा, किसी का परिष्कार नही दिखायी देता।...अपनी कुत्सा-प्रियता के कारण 'कुकुरमुत्ता एक आदर्श व्यंग नही बन पाया।'[४५]

अणिमा (४३) की एक व्यंग कविता 'चूंकि यहां दाना है,' प्रगतिशील दृष्टि से एक महत्वपूर्ण कविता है। कविता में पूंजीवादी सभ्यता पर व्यंग है, जिसका मूलाधार ही पैसा हो गया है:

चूंकि यहां दाना है
इसीलिए दीन है, दीवाना है,
लोग हैं महफिल है
नगमें हैं, साज है, दिलदार हैं, दिल है
शम्मा है, परवाना है
चूंकि यहां दाना है।

निराला का अगला संकलन है बेला। संकलन का 'आवेदन' जनवरी, १९४३ में लिखा गया, पर संकलन प्रकाशित १९४६ में हुआ। गीतों के अलावा बेला में निराला जी की उर्दू की सी शैली में लिखी हुई गजलें भी संकलित हैं। सरल और मुहावरेदार भाषा का प्रयोग कहीं-कहीं काफी कुशलता से किया गया है। संकलन की अधिकांश रचनाएं यद्यपि छायावादी-अध्यात्मवादी हैं, पर कुछ में निराला की यथार्थवादी और किसी-किसी में प्रगतिशील रुझान का पता भी लगता है। इन कविताओं में से दो तीन कविताओं को छोड़ कर शेष को खींचतान कर ही कविता की अभिधा दी जा सकती है। उन दो तीन

---

४५. निराला का साहित्य और साधना, पृ. १६६.

में 'काले काले बादल छाये, न आये वीर जवाहर लाल', 'जल्द जल्द पैर बढ़ाओ आओ,' और 'तू कभी न ले दूसरी आड़,' को गिना जा सकता है। पहली कविता में वीर जवाहर लाल की सहायता की प्रतीक्षा में खड़ी जनता का चित्र है :

मंहगाई की बाढ़ बढ़ आयी, गांठ की छूटी गाढ़ी कमाई
भूखे नंगे खड़े शरमाये, न आये वीर जवाहर लाल
कैसे हम बच पायें निहत्थे, बहते गये हमारे जत्थे
राह देखते ही भरमाये न आये वीर जवाहर लाल

(बेला, पृ. ८)

दूसरी में सामाजिक परिवर्तन का आह्वान और भावी समाज का एक रेखा-चित्र है :

आज अमीरों की हवेली, किसानों की होगी पाठशाला
धोबी, माली, चमार, तेली, खोलेंगे अंधेरे का ताला
एक पाठ पढ़ेंगे, टाट बिछाओ, जल्द जल्द पैर बढ़ाओ, आओ-आओ

(बेला, ६२)

तीसरी में मानवीय-साहस का आह्वान है, मनुष्य को ऐसा पहाड़ बन जाने के लिए कहा गया है, जिसमें सैकड़ों पेड़-पौधे फूलें और झरने फूटें।

इन कविताओं के अतिरिक्त शेष गजलों में भी, कहीं-कहीं किसी-किसी शेर में कोई इक्का-दुक्का प्रगतिशील विचार प्रकट कर दिया गया है। जैसे यह बहुउद्धृत पंक्ति :

भेद कुल खुल जाय यह सूरत हमारे दिल में है
देश को मिल जाय, जो पूंजी तुम्हारे मिल में है

(बेला, ५९)

लेकिन यदि इस पंक्ति को पूरी गजल के संदर्भ में देखा जाय तो इसे एक थेगली ही कहना होगा, क्योंकि इस गजल की अन्य पंक्तियों में ऐसी बेहूदी तुकबंदिया भी है :

ताक पर है नमक-मिर्चा लोग बिगड़ें या बनें
सीख क्या होगी पराई जब पिसाई सिल में है

(बेला, ५९)

अन्य यथार्थवादी कविताओं में, (मैं ऊपर कह चुका हूं कि उन्हें कविताएं खींच-तान कर ही कहा जा सकता है,) निराला का विक्षेप अभिव्यक्त हुआ है, व्यंग की कोशिश बेहूदी और उलजलूल पंक्तियों के सिवा कुछ नही दे सकी है। अर्थहीन पंक्तियों की भरमार और फूहड़ तुकबंदियां देख कर मन स्तंभित रह जाता है। एक दो उदाहरण काफी है :

(१) *टूटी बांह जवाहर की रनजित लट छूटी पंडित की*
लोगों की निधि विधि ने लूटी किस्मत फूटी पंडित की
कब से ये दल बादल घेरे, यह बिजली आंख तरेरे
झंडे ले लेकर निकली थी और बहूटी पंडित की

(बेला, ३६)

(२) *एक आंख शिक्षा की हेठी से, देखने लगी उसे अमेठी से*
कहा खुबल कर छोटा भूधर।
एक आंख तरुणी की जो पड़ी, कहा यहां नहीं कामना सड़ी
इससे मैं हूं कितनी सुन्दर।

(बेला, ४५)

अगले संकलन नये पत्ते (४६) की भी अधिकांश कविताओं में निराला के मानसिक विक्षेप की छाप है। बिखराहट और असम्बद्धता ने कई कविताओं को कविताएं नहीं रहने दिया है (उदाहरण के लिए 'आंख आंख का कांटा हो गयी', 'खेल' आदि रचनाएं देखी जा सकती हैं) हां कहीं-कहीं कवि का व्यंग-पूर्ण यथार्थवादी स्वर अवश्य प्रभावित करता है।

संकलन की प्रगतिशील दृष्टि से उल्लेखनीय कविताओं में 'मास्को डायेलोग्स', 'राजे ने अपनी रखवाली की', 'देवी सरस्वती', 'कुत्ता भौंकने लगा,' 'डिप्टी साहब आये' और 'मंहगू मंहगा रहा' के नाम लिये जा सकते हैं।

'मंहगू मंहगा रहा' एक सुन्दर व्यंग कविता है—पंडित नेहरू पर बहुत चुभता हुआ व्यंग निराला जी ने किया है :

आजकल पंडित जी देश में विराजते हैं
माता जी को स्विटजरलैण्ड में
तपेदिक के इलाज के लिए छोड़ा है
बड़े भारी नेता हैं...
कुइरीपुर गांव में व्याख्यान देने को
आये हैं मोटर पर

एम. ए. और बैरिस्टर
बड़े बाप के बेटे
मिलों के मुनाफे खाने वालों के अभिन्न मित्र
देश के किसानों, मजदूरों के भी अपने सगे

'आजकल पंडित जी देश में विराजते हैं,' यह एक पंक्ति ही कितनी व्यंजना पूर्ण है कि ये पंडित जी कहलाने वाले महोदय वैसे तो ज्यादातर इंग्लैण्ड में ही रहते है, पर आजकल जनता पर विशेष कृपा कर अपने ही देश में विराज रहे हैं।

'मास्को डायेलाग्स' समाजवादी या अपने आपको समाजवादी कहने वाले, नेताओं पर व्यंग है। उनके हिन्दी-अज्ञान को भी निशाना बनाया गया है। 'राजे ने अपनी रखवाली की' सामन्ती व्यवस्था के यथार्थ को उद्घाटित करती है। धर्म, सभ्यता, साहित्य, इतिहास आदि सब सामन्ती व्यवस्था में राजा के स्वार्थ की पूर्ति के साधन मात्र बन कर रह जाते हैं:

कितने ब्राह्मण आये
पोथियों में जनता को बांधे हुए
कवियों ने उसकी बहादुरी के गीत गाये
लेखकों ने लेख लिखे
ऐतिहासिकों ने इतिहास के पन्ने भरे

'देवी सरस्वती' को विश्वंभरनाथ उपाध्याय ने नये पत्ते का नगीना कहा है।[४६] लेकिन यह लम्बी कविता किसी एक केन्द्रीय भाव या कथ्य के अभाव में अधिक सफल नही हो सकी है। छायावादी शैली में लिखी हुई इस कविता में कुछ ऋतु-चित्र और किसान-जीवन के हर्ष-विषाद को रूपायित करने वाले कुछ यथार्थ चित्र अवश्य प्रभावित करते हैं।

'कुत्ता भोंकने लगा' में कृषक के दयनीय जीवन का एक यथार्थ चित्र उभारा गया है। शीत के प्रकोप से उसकी खेती नष्ट हो चुकी है। अधिकारी वर्ग को उससे कोई सहानुभूति नही। केवल उसका कुत्ता उससे सहानुभूति प्रकट करता है।

'डिप्टी साहब आये' विद्रोह की ओर बढ़ते हुए भारतीय किसान का एक रूप हमारे सामने रखती है। युगो से सहता आने वाला किसान संघबद्ध होकर जमींदार और थानेदार की बेगार और उनके अनुचित दबाव के विरुद्ध आवाज उठा रहा है।

---

४६. निराला का साहित्य और साधना, पृ. १७०.

यहां यह कहना अनुचित न होगा कि नये पत्ते की इन उल्लेखनीय कविताओं में से भी अधिकांश कसावट की कमी और सपाटता के कारण साधारणता के स्तर से अधिक ऊपर नहीं उठ पाती।

निराला के अगले संकलनों अर्चना (५०), आराधना (५३) और गीतगुंज (५४) में उनके काव्य का मुख्य स्वर अध्यात्मवादी हो गया है। इन संकलनों की अधिकांश कविताएं भक्तिपरक प्रार्थनाएं और विनय-गीत हैं, लेकिन फिर भी बीच-बीच में कोई कोई कविता प्रगतिशील भावभूमि की भी मिल जाती है।

इन संकलनों की प्रगतिशील कविताओं में 'पथ पथ पर बेमौत न मर' (अर्चना) और 'मानव जहां बैल घोड़ा है' (आराधना) उल्लेखनीय हैं।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि यद्यपि निराला मूलतः एक छायावादी-रहस्यवादी-अध्यात्मवादी कवि थे, उनका जीवन दर्शन वेदान्त से बहुत प्रभावित था तथापि उनमें मानववादी तत्व इतने प्रबल थे कि उन्होंने हिन्दी कविता के प्रगतिशील आन्दोलन के विकास में भरपूर योग दिया।

निराला ने स्वयं अपनी कविता की दो प्रमुख विशेषताएं मानी हैं : मौलिकता और पौरुष[४७]। निराला पौरुष और ओज के कवि हैं। डा० रामविलास शर्मा ने उनकी कविता की तीन प्रमुख विशेषताओं की ओर संकेत किया है : निर्माण कौशल—रचना विधान की कुशलता, चित्रमयता और समाहार शक्ति —न्यूनतम सामग्री के उपयोग से अधिकतम बात करने की क्षमता तथा शब्द-योजना का कसाव और गठन।[४८]

निराला का महत्व भाषा की दृष्टि से भी कम नहीं है। उन्होंने हिन्दी भाषा को न जाने कितनी भाव-भंगिमाएं दी हैं। 'बादल राग' का सा औदात्य; 'भिक्षुक', 'तोड़ती पत्थर', 'सरोज स्मृति' की सी संवेदना और मार्मिकता, 'कुकुरमुत्ता', 'मंहगू मंहगा रहा' की सी खानगी और चुहल; अणिमा, आराधना और अर्चना के गीतों की सादगी और प्रांजलता; तथा बेला की सरलता और सफाई निराला की भाषा की विभिन्न मुद्राएं हैं।[४९]

श्री विश्वंभरनाथ उपाध्याय ने निराला को प्रगतिवादी प्रयोगवाद के सर्व प्रथम कवि कहा है।[५०] वास्तव में वे प्रगतिवादियों और प्रयोगवादियों, दोनों के प्रेरणास्रोत रहे हैं।

---

४७. देखिए उनका 'पन्त और पल्लव' निबंध.

४८. निराला, पृ. १८८.

४९. शिवकुमार मिश्र, नया हिन्दी काव्य, पृ. २०.

५०. आधुनिक हिन्दी कविता : सिद्धान्त और समीक्षा, पृ. ३८४.

उदयशंकर भट्ट

भट्ट जी ने भी अपने काव्य सृजन का प्रारंभ छायावाद की छाया में किया और यद्यपि प्रगतिशील आन्दोलन का उनकी कविता पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा, पर इससे उनकी छायावादी-अध्यात्मवादी रुझान समाप्त नहीं हुई। वास्तव में वे एक महज मानववादी कवि थे।

प्रगतिशील दृष्टि से उनके युगदीप, यथार्थ और कल्पना, अमृत और विष, मानसी और इत्यादि काव्य संकलन विचारणीय हैं। इन संकलनों में उनकी कुछ छायावादी और कुछ प्रगतिशील भावभूमि की कविताएं संकलित हैं।

पूर्वापर उनके युगदीप और यथार्थ और कल्पना का संयुक्त संकलन है। भूमिका में कवि ने प्रगतिवाद में आस्था प्रकट करते हुए भी 'भारतीय परंपरा से प्राप्त विवेक के सुसंस्कृतालोक' को महत्व दिया है। संकलन के पूर्वार्द्ध में छायावादी भाव भूमि के विभिन्न स्तरों की कविताएं हैं—पर उत्तरार्द्ध में कुछ प्रगतिशील कविताएं भी संकलित हैं। लगभग सभी कविताएं साधारण स्तर, सपाट शैली और परंपरित प्रगतिवादी बिम्बों और प्रतीकों की कविताएं हैं। प्रगतिशील भावभूमि की उल्लेखनीय कविताएं हैं: 'जीवन का पावन दीप लिए'; 'वर्ष मास दिन घड़ी बिपल'; 'समय के सभी साथ जीवन बदलते, समय को बदलता हुआ तू चला चल'; 'प्रलय में, तिमिर में, तूफान में भी—कदम ये रुके हैं न रुक पायेंगे ही'; 'मैं पंथी'; 'ये तूफानी चरण जवानी के'; 'स्वतंत्रता मिली'; 'दफ्तर का बाबू'; 'लाहौर आग की लपटों में'; 'ये पचास वर्ष व्याल चाल के प्रबुद्ध श्वांस' आदि। इन कविताओं में जीवन के प्रति, और साम्यवाद की ओर समाज के भावी विकास के प्रति, आस्था और आशा का स्वर, सर्वत्र व्यक्त हुआ है। 'पथिक' का बिम्ब बहुत सी कविताओं में प्रयुक्त हुआ है। पन्त जी की अनेक प्रगतिशील कविताओं के से एक निस्तेज और निस्फूर्त 'शुभकामनावाद' के दर्शन यत्र-तत्र हो जाते हैं।

आगे की सदियों में कोई विषम वाद-संवाद न हो
मानव की दाढ़ों में मानव के रुधिर बिन्दु का स्वाद न हो
जीवन में विवेक हो, सुख हो, हर हित का प्रतिवाद न हो
साम्यवाद हो, विश्वबंधुता, हर्षोत्कर्ष; विषाद न हो

(पूर्वापर, पृ. ६६)

'दफ्तर का बाबू' और 'लाहौर आग की लपटों में' में कवि की चित्रण क्षमता व्यक्त हुई है। 'स्वतंत्रता मिली' में आजादी पर प्रसन्नता व्यक्त करने के साथ ही साथ उसके बाद की स्थिति पर भी प्रकाश डाला गया है।

अमृत और विष भट्ट जी की युद्धकालीन प्रगतिशील कविताओं का संकलन है, जिसमें छायावादी शब्दावली में प्रगतिशील भावनाओं को अभिव्यक्त किया गया है। छन्द के प्रवाह के बावजूद कहीं कहीं दुरूह शब्दावली कविताओं की गति में बाधा डालती है। संकलन की उल्लेखनीय कविताओं में 'आज उठ अंगार में शृंगार कर मेरी जवानी', 'आज उबलते जग कराह में खौल रहे अरमान किसी के', 'सैनिक की मृत्युशैया पर', 'सैनिक', 'बंगाल', 'रिफ्यूजी', 'दलित' आदि प्रमुख हैं।

'सैनिक' में युद्ध के बाद युद्ध के मैदान का दृश्य और एक घायल सैनिक की मानसिक स्थिति को सुन्दरता से अंकित किया गया है। 'बंगाल', रिफ्यूजी' और 'दलित' में शोषित और दलित जीवन के कुछ हृदय-द्रावक यथार्थ चित्र हैं। 'लुई सुई और शैंकाई' एक जापानी पत्नी और चीनी पति के बीच चीन पर जापान के आक्रमण के बाद के संघर्ष और प्रेम की कथा है। कविता में आक्रान्ता और आक्रान्त दोनों को समान मान कर आक्रान्ता की देशभक्ति और आक्रान्त की देशभक्ति को एक ही बराबर महत्व देते हुए जापान की ओर से चीन पर बमबारी में मरने वाली लुईसुई की देशभक्ति की प्रशंसा की गयी है। इस कविता को अविवेकपूर्ण राष्ट्रवाद की कविता ही कहा जा सकता है— प्रगतिशीलता से इसका कुछ लेना देना नहीं है।

मानसी की शब्दावली और छन्द छायावादी संस्कारों से पूर्ण है। संकलन की प्रगतिशील कविताओं मे 'मानव', 'आडम्बर' 'जिज्ञासा' और 'गीत' प्रमुख हैं। 'मानव' मानव का गौरव-गायन है। 'आडम्वर' मनुष्य को उसके लौकिक सुखों से दूर भटकाने वाले अध्यात्मवाद का विरोध है :

यह अध्यात्मवाद नीरस के
जीवन की है मंजु कहानी
जहां ईश्वर के बल पर नर
करता घर जानी मनमानी
पूर्व जन्म की पूर्व कर्म की
उलझन में जग को भटकाता
आलस भोग और कर्मों की
दलदल फैला उसे गिराता

'जिज्ञासा' में भी इस जगत और जीवन को माया कहने वाले दर्शन का विरोध है—प्रकृति के सुन्दर चित्रों द्वारा इस विरोध को प्रभावशाली बनाया गया है :

क्या थिर पृथ्वी, अचल नाग ये
कुसुमित वन, सौरभ का झोंका
कल निर्झर जलराशि, पहाड़ी
नदियां, रार, धोखा, सब धोखा ?

'गीत' में समय के साथ बदलने की अपेक्षा समय को अपने साथ बदलने के मानवीय गौरव को अभिव्यक्त किया गया है। श्री विनय मोहन शर्मा के शब्दों में :

"'मानसी' मानव को अपनी शक्ति का विश्वास दिलाना चाहती है और वर्तमान कर्म-क्षेत्र में साहस के साथ प्राकृतिक नियमों के पालन की प्रेरणा देती है। वह मनुष्य जीवन को आंसुओं में डुबो कर तिनके सा बहा देना नहीं चाहती; उसमें सुख, सौन्दर्य और अह्लाद की बस्ती बसा कर भूलोक ही में स्वर्ग उतारना चाहती है।"

इत्यादि की प्रगतिशील भावभूमि की कविताओं में 'आत्मनिवेदन', 'कवि कर्म', 'कवि', 'मृत्युंजय', 'क्रान्ति', 'नये मोड़ पर आप खड़ा नर', 'मनविहग', 'मानव के विजय दीप', 'दूर न उससे मंजिल', 'जागरण का गान हूं', 'अभी दूर मंजिल', 'नये राष्ट्र को वाणी दो' आदि का नाम लिया जा सकता है।

इन कविताओं में मानव के गौरव का गायन और मानवीय भविष्य के प्रति एक सुदृढ़ आस्था का स्वर मिलता है। कई कविताओं में प्रगतिशील और अध्यात्मवादी भावनाओं को साथ जोड़ कर कविता का ताना बाना बुना गया है—अपने बाहर निकल कर जनता और जनार्दन के प्रति एक साथ समर्पण भावना व्यक्त की गयी है :

मेरे स्वर याचक के लघु-लघु थके-थके
तुम हो विराट पूत, ब्रह्मनाद स्वयंभूत...
मेरी सरकंडे की कलम, ज्ञान भी मेरा कम...
थोड़ा सा वित्त है, पावन निमित्त है
असली बहुत थोड़ा है, हंसिया हथौड़ा है
लिखता हूं यही बहुत, मूल्य तो अनुग्रहगत
कहीं एक कोने में पड़ा रहूं, चरणों से जुड़ा रहूं
जनता के जनार्दन के, साधक अराधन के
मेरे स्वर याचक के लघु-लघु थके-थके ।

'कविकर्म' और 'कवि' कविताओं में कविता के और कविकर्म के प्रति कवि के प्रगतिशील दृष्टिकोण को अभिव्यक्ति मिली है।

कणिका भट्ट जी के मुक्तकों का, जिनमें अधिकतर रुबाइयाँ हैं, संकलन है। इनेगिने मुक्तकों को छोड़ कर सब मुक्तक बहुत साधारण स्तर के हैं, भाषा की जो समाहार शक्ति और जो कसाव मुक्तकों की विशेषता होती है, उसके दर्शन कणिका में बहुत कम होते हैं। कवि की अन्य कविताओं की तरह ही कणिका के विषय भी मानव-गौरव आस्था, रहस्यभावना, प्रकृति-प्रेम, साधारण जीवन व्यवहार आदि हैं। कुछ मुक्तक अवश्य सुन्दर बन पड़े हैं :

हार हृदय की कमजोरी है, सत्य नहीं है
स्वाभाविक हो रुदन किन्तु वह पथ्य नहीं है
आज मनुज का यह संकट कोई नया नहीं है
कब संकट के पार मनुज यह गया नहीं है

लेकिन ऐसे दो चार ही मुक्तक कणिका में मिल सकते हैं।

इस प्रकार भट्ट जी का प्रगतिशील काव्य उनके स्वयं के सृजन में पर्याप्त महत्व रखते हुए भी कुल मिला कर हिन्दी के प्रगतिशील काव्य में अधिक महत्व का नहीं है। साधारणता के स्तर से वह यदा-कदा ही ऊपर उठ पाता है।

३

राष्ट्रीय-रूमानी रुझान के कवि

हिन्दी के दो महत्वपूर्ण प्रगतिशील कवि नवीन और दिनकर ऐसे कवि हैं जिनकी मूल रुझान तो छायावादोत्तर रूमानवादी है, पर जिन्होंने हिन्दी की राष्ट्रीय काव्य-धारा में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया है। वास्तव में उनका प्रगतिशील काव्य उनके राष्ट्रीय काव्य का ही एक अंग है। पर उनका राष्ट्रीय काव्य मैथिलीशरण जी आदि कवियों के राष्ट्रीय काव्य से इस अर्थ में भिन्न है कि उन पर गांधीवादी राष्ट्रीयता का कम और वामपक्षी-क्रान्तिवादी राष्ट्रीयता का अधिक प्रभाव रहा है। ये दोनों कवि ऐसे हैं जो प्रसिद्ध तो अपने राष्ट्रीय और क्रान्तिवादी काव्य के लिए हैं, पर हैं मूलतः रूमानी कवि। इसीलिए इन्हें सिर्फ राष्ट्रीय रुझान के प्रगतिशील कवि न कह कर मैंने राष्ट्रीय-रूमानी रुझान के प्रगतिशील कवि कहना पसन्द किया है।

नवीन और दिनकर की इस मूल उभयनिष्ठ विशेषता के अतिरिक्त और भी ऐसी कुछ विशेषताएं हैं, जो दोनों मे न्यूनाधिक समान रूप से प्राप्त होती हैं। इनमें से एक है : ध्वंसवाद। प्रगतिशील कविता के प्रारंभिक दौर में आये हुए ध्वसवाद का प्रतिनिधित्व प्रधानतया ये ही दो कवि करते हैं।

बाल कृष्ण शर्मा 'नवीन'

नवीन क्रान्तिकारी रोमेंटिसिज्म के फक्कड़ और मस्तमौला कवियों में अन्यतम हैं। उन्हें वादों के किसी चौखटें में रखना संभव नहीं है।[1] आध्यात्मिक

---

१. बच्चन जी ने उन्हे 'छायावाद' में स्थान दिलाने के लिए छायावाद की परिधि को व्यापक करने की आकांक्षा व्यक्त की है। देखिए ज्ञानपीठ पत्रिका, जून १९६४, पृ. २०. श्री रवीन्द्र भ्रमर के विचार से वे 'वाद-विमुक्त' कवि हैं। उनमें रीतिकालीन कौशल और शृंगार है, द्विवेदी युगीन अभिधा और इतिवृत्तात्मकता है, छायावाद की रूमानियत और अलंकृति है, प्रगतिवादी विचारणा, आक्रोश और परदुःख कातरता है। अतः उन्हें मन की मौज और मस्ती का कवि कहना अधिक न्यायसगत है। देखिए : आलोचना—३३, पृ. २१४.

दार्शनिकता, प्रेम-सौंदर्य और राष्ट्रीयता-प्रगतिशीलता उनके व्यक्तित्व के तीन सोपान है। इसलिए उन्हें प्रगतिशील कवियों के रूमानी रुझान वाले वर्ग में भी रखा जा सकता है, आध्यात्मिक रुझान वाले वर्ग में भी और राष्ट्रीय रुझान वाले वर्ग में भी।

कुंकुम (३९) नवीन जी की कविताओं का पहला संग्रह है। दो कविताओं ('पराजय गीत' और 'विप्लव गायन', जिन्हें प्रगतिशील भाव भूमि की रचनाएं कहा जा सकता है) के अतिरिक्त संकलन की तीन कविताएं तो क्रमशः गणेश शंकर, दयानन्द और द्विजेन्द्र ठाकुर के विषय में लिखी हुई पुराने ढंग की अविकसित राष्ट्रीयतावादी कविताएं हैं और शेष सब छायावादी या द्विवेदी युगीन ढंग की प्रेम और सौंदर्य की, काव्यात्मकता की दृष्टि से बहुत साधारण स्तर की, अभिव्यक्तियां। तीन चार व्रज भाषा में और व्रज भाषा के ही लोकप्रिय छंदों में लिखी हुई रीतिकालीन ढंग की कविताएं भी हैं।

'पराजय गीत' महात्मा गांधी के असहयोग आन्दोलन को अचानक वापस लिये जाने पर राष्ट्रीय आन्दोलन के अग्रगामी तत्वों की प्रतिक्रिया को वाणी देती है :

आज खंग की धार कुंठिता है खाली तूणीर हुआ
विजय पताका झुकी हुई है, लक्ष्य-भ्रष्ट यह तीर हुआ

'विप्लव-गायन' नवीन जी की बहुत प्रसिद्ध कविता है। प्रगतिशील आन्दोलन के आरम्भिक काल में लिखी हुई यह कविता वास्तव में अराजक ध्वंसवाद की कविता है :

कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ जिससे उथल पुथल मच जाए
एक हिलोर इधर से आए, एक हिलोर उधर से आए
प्राणों के लाले पड़ जाएं, त्राहि-त्राहि स्वर नभ में छाए
नाश और सत्यानाशों का धुंआधार जग में छा जाए
बरसे आग, जलद्-जल जाएं, भस्मसात भूधर हो जाएं
पाप-पुण्य सदसद् भावों की धूल उड़ उठे दांये-बांये
नभ का वक्षस्थल फट जाए, तारे टूक टूक हो जाएं
कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ, जिससे उथल पुथल मच जाए।

'विप्लव गायन' वास्तव में नवीन और दिनकर के अराजक सर्वनाशवाद की एक प्रतिनिधि कविता कही जा सकती है। यह एक ऐसा ध्वंसवाद है जो पाप और पुण्य, सद् और असद् में कोई अन्तर नहीं करते हुए सब के नष्ट हो जाने की कामना करता है। ऐसे ध्वंसवाद और प्रगतिशील क्रान्तिवाद में स्पष्ट

अन्तर है। प्रगतिशील आन्दोलन के प्रारंभिक वर्षों में प्रगतिशील कही जाने वाली इन कविताओं के विषय में यही कहा जा सकता है कि वर्तमान जीवन की विषमताओं और अत्याचारों के विरुद्ध विद्रोह करते हुए कवि विक्षोभ में सारे संसार के नष्ट हो जाने की कामना करने लगता है, उसके विद्रोह का आवेश उसे विवेक से दूर ले जाता है।

'विप्लव-गायन' सात स्टेंजों की एक कविता है, जिसके प्रथम तीन स्टेंजों में कवि का आह्वान है और शेष चार में कवि की ओर से इस आह्वान का उत्तर। लेकिन कविता के पूर्वार्द्ध में जो प्रवाह और गति है न तो वह कविता के उत्तरार्द्ध में आ पायी है और न उत्तरार्द्ध पूर्वार्द्ध के साथ किसी जीवन्त कड़ी से जुड़ा हुआ ही है। सच तो यह है कि कविता का उत्तरार्द्ध बिल्कुल अलग-थलग और पूर्वार्द्ध के साथ असंगत लगता है।

अपलक (प्रकाशन: ५१, रचनाकाल ३५-४८) नवीन जी के रूमानी और भक्तिभाव पूर्ण गीतों का संकलन है। दो तीन गीत ऐसे भी हैं, जिन्हें प्रगतिशील भावभूमि की रचनाएं कहा जा सकता है। जैसे 'हम चले जा रहे हैं जग में', 'जग की छाती पर तिमिर भार' और 'निराशा क्यों हियमथित करे'। कहने की आवश्यकता नहीं कि ये भी साधारण स्तर की रचनाएं हैं। अपलक की भूमिका प्रगतिवादी समीक्षा सिद्धान्त को आंशिक मान्यता देते हुए, उसके विरोध में लिखी गयी है। लेकिन एक बात कहनी होगी कि वैचारिक विभ्रम के बावजूद प्रगतिवाद के 'कुत्सित समाजशास्त्रीय' पक्ष (और उन दिनों हिन्दी आलोचना में उसका यही गलत पक्ष मुखर होकर आया था) का खण्डन बड़ी कुशलता से किया गया है। शेली की 'वेस्टविंड' की एक पंक्ति के आधार पर नवीन जी ने शेली का जो कुत्सित समाजशास्त्रीय विश्लेषण प्रगतिवादी समीक्षा का उदाहरण प्रस्तुत करने के लिए किया है, वह मनोरंजक ही नहीं, वास्तव में कुत्सित समाजशास्त्रीय विश्लेषण का एक सही उदाहरण भी है।

अपने गीतों के संबंध में जो कुछ नवीन जी ने भूमिका में कहा है, उससे सम्यक् समीक्षा उनके इन गीतों की नहीं हो सकती: 'आलोचक बंधु इन गीतों में यदि कोई तत्व की बात न पाएं तो मुझे आश्चर्य न होगा। मुझे स्वयं ये गीत यों ही से लगते हैं।'

क्वासि (५२) नवीन जी की कविताओं का तीसरा संकलन है, जिसमें उनकी ३६-४६ के बीच की रचनाएं संकलित हैं। अपलक की तरह क्वासि में भी एक लम्बी भूमिका है, जिसके पूर्वार्द्ध में हिन्दी की कुत्सित समाजशास्त्रीय आलोचना पद्धति पर व्यंग किये गये हैं, और बिना डा. रामविलास शर्मा का नाम लिये, उनकी तत्कालीन आलोचना की कुछ असंगतियां प्रकट की गयी हैं। लेकिन भूमिका का उत्तरार्द्ध पूरे द्वन्द्वात्मक वस्तुवादी दर्शन के

खंडन और उसकी जगह 'भारतीय साहित्य और संस्कृति की मूल विशेषता' अध्यात्मवाद के मंडन से संबंध रखता है। यहां मार्क्सवादी दर्शन को कुछ गलत और कुछ सही समझ कर उसकी असंगत आलोचना की गयी है।

छायावादी और उत्तर-छायावादी रूमान तथा वैष्णवी भक्तिभावपूर्ण अध्यात्मवादी और कहीं कहीं रहस्यवादी भावना ही इन गीतों का विषय है। यद्यपि अधिकांश कविताएं कारागार में लिखी गयी हैं तथापि एकाध को छोड़ कर[2] यथार्थ जीवन की विषमताओं और संघर्षों का कोई चिह्न इन कविताओं में नहीं मिलता।

हम विषपायी जनम के में नवीन जी की कुंकुम क्वासि-काल की सब शेष कविताएं और इस काल के बाद की सभी कविताएं संकलित है। वास्तव में यह छह संकलनों का एक बड़ा संकलन है।

इन संकलनों में से तीन—नवीन दोहावली, पावस-पीड़ा और स्मरण दीप में प्रेम-शृंगार और विरह से संबंधित कविताएं हैं। दो—सिरजन की ललकारें और मृत्युधाम—में आध्यात्मिक दार्शनिक और राष्ट्रवादी कविताएं हैं। लेकिन सिरजन की ललकारें की दार्शनिक कविताओं में कई जगह उनकी मानववादी-प्रगतिशील भावभूमि के प्रतिविम्ब भी मिलते हैं। प्रलयंकर उनकी राष्ट्रीय और प्रगतिशील कविताओं का संकलन है।

सिरजन की ललकारें की अपने मूल स्वर में मानववादी और प्रगतिशील कविताओं में 'व्यवहारवादिता', 'द्वन्द्व समुच्चय', 'निज ललाट की रेख', 'सिरजन की ललकारें, 'तुम हो', 'सुन्दर', 'राजेश्वर मानव' और 'कस्त्वं ? कोहं ?' तथा 'धधक उठो अब वैश्वानर' उल्लेखनीय है। इन कविताओं में मनुष्य के गौरव का गायन, प्रकृति और नियति पर उसकी कर्मण्यता की विजय गाथा, जगत की द्वन्द्वमूलकता का उद्घाटन, हिंसा-अहिंसा के द्वन्द्व का चित्रण, ईश्वर के अस्तित्व में संदेह और जीवन तथा जगत के प्रति एक जिज्ञासा-मूलक, एक प्रश्नाकुल दृष्टिकोण मिलता है। मानव-जीवन की द्वन्द्वात्मकता की अच्छी अभिव्यक्ति 'द्वन्द्व समुच्चय' में हुई है। 'सिरजन की ललकारें' में हिंसक और अहिंसक क्रान्ति के द्वन्द्व को प्रस्तुत करते हुए गांधी जी के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है। 'तुम हो' मे जगत की असंगतियों और अव्यवस्थाओं के आधार पर ईश्वर के अस्तित्व में सदेह प्रकट किया गया है :

तुम हो, या कि नहीं ? यह निश्चय करना एक बखेड़ा है
यह है भूल-भुलैया इसका मारग टेढ़ा मेढ़ा है

---

२. जैसे फागुन.

क्या मानूं तुम क्या हो, तुम तो भानमती के थैला हो
कैसे कोई तुमको बूझे तुम तो एक पहेला हो
रंग-बिरंगे चित्र तुम्हारे बेढंगी नामावलियां
तुम प्रकाश के पुंज तुम्हारी अंधियाली श्यामा गलियां
बड़े सच्चिदानन्द बने हो जग में निरानन्द छाया
यहां अचिन्तन व्याप्त हो रहा, फैली हैं मिथ्या माया
फिर भी सच तोते से रटते जाते हैं : तुम हो, तुम हो
सुनता हूं तुम प्रकृति वधू के चिर सुहाग के कुंकुम हो।

'सुन्दर' में सुन्दरता को जीवन के केवल कोमल और मधुर पक्ष में ही देखने की संकीर्ण वृत्ति का विरोध करते हुए जीवन के कठिन, कठोर और संघर्षपूर्ण पक्ष में भी सौन्दर्य की सत्ता स्वीकार की गयी है। वास्तव में यह कविता छायावादी सौन्दर्यबोध के विरुद्ध प्रगतिशील सौन्दर्यबोध की प्रतिष्ठा का एक प्रयत्न है :

ओ सौन्दर्य उपासक तुमने सुन्दर का स्वरूप क्या जाना
मधुर, मंजु, सुकुमार, मृदुल ही को क्या तुमने सुन्दर माना
क्यों देते हो चिर सुन्दर को, इतने छोटे सीमाबंधन
कठिन, कराल, ज्वलत, प्रखर भी हैं सौन्दर्य-प्रकेत चिरन्तन।

'कस्त्वं ? कोऽहम् ?' एक लम्बी कविता है जिसमें मानव-गौरव और उसके स्वभाव की द्वन्द्वात्मकता को चित्रित करते हुए भौतिकता और आध्यात्मिकता के संघर्ष को अभिव्यक्ति दी गयी है। मानव गौरव का ऐसा ही आख्यान 'धधक उठो अब ओ वैश्वानर' प्रस्तुत करती है।

नवीन जी की दार्शनिक कविताओं की एक बहुत बड़ी विशेषता, जो उन्हें विशेष तौर से पन्त जी की दार्शनिक कविताओं से अलग करती है, उनकी सरल सहज अभिव्यक्ति है। यह नहीं कि ये सब कविताएं बहुत कवित्वपूर्ण हैं, पर हां विवेचन के स्वर के बावजूद शब्दावली की सरलता और शैली की सहजता के कारण ये कविताएं पन्त जी की दार्शनिक कविताओं की तरह उबाने वाली नहीं हैं। एक मनमौजी कवि का फक्कड़पन इनमें भी मौजूद है।

प्रलयंकर में जैसा कि पहले संकेत किया जा चुका है नवीन जी की युगीन चेतना को स्वर देती हुई राष्ट्रीय कविताएं संकलित हैं। इन कविताओं में हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन की विभिन्न घटनाओं और स्थितियों की छाप है,[३]

---

३. देखिए : १९३० की समाप्ति पर, पराजय गीत, कमला नेहरू की स्मृति में और अपना मृदु गोपाल कविताएं.

गांधी जी का एक महान क्रान्तिकारी के रूप में नमन है[4], अतीत गौरव का गान है[5], बंदी जीवन के चित्र हैं[6], एक बन्दी के मानसिक द्वन्द्वों-दुविधाओं की सुन्दर सहज अभिव्यक्ति है[7], सर्वनाशकारी विप्लव का ध्वंसवादी आह्वान है[8], मजदूर किसानों और शोषितों की भयानक स्थिति का वास्तविक चित्रण है[9], उनके जागरण का उद्बोधन है[10], और है इन सबमें और इन सबके अतिरिक्त एक अदम्य विश्वास और आशा का स्वर, जो इन कविताओं का मूल स्वर है।

संकलन की अधिकांश कविताएं प्रगतिशील भावभूमि की कविताएं हैं, तथापि साधारण काव्यात्मकता के कारण उल्लेखनीय कविताओं की संख्या कम ही है। संकलन की उल्लेखनीय प्रगतिशील कविताओं में 'पराजय-गीत', 'विप्लव-गान', 'हम अलख निरंजन के वंशज', 'क्यों रोते हो यार सिपाही', 'अनलगान', 'राखी की सुध', 'विद्रोही', 'झूठे पत्ते', 'ओ मजदूर किसान उठो', 'अरी धधक उठ,' प्रमुख हैं। 'पराजय गीत' और 'विप्लव गान' तो, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, उनके पहले संकलन कुंकुम में भी संकलित हैं। 'हम अलख निरंजन के वंशज' नवीन जी की 'हम अनिकेतन' के ढंग की दीवानगी और फक्कड़पन को प्रकट करने वाली कविता है। फक्कड़पन और दीवानगी उत्तरछायावादी रूमानी काव्य की एक प्रमुख वृत्ति रही है, जिसने अपनी अभिव्यक्ति नवीन जी के अतिरिक्त बच्चन और भगवतीचरण वर्मा में भी प्राप्त की है। इसी फक्कड़पन का विकास उस काव्यधारा में हुआ जिसे कभी कभी हालावादी कहा जाता है।

'क्यों रोते हो यार' बहुत ही सरल और सहज ढंग से बन्दी जीवन की कुछ वस्तु स्थितियों को स्वीकार करने की प्रेरणा देने वाली—किसी बन्दी साथी को दी हुई सलाह की—कविता है। सहजता इस कविता की प्रभावकता का एक महत्वपूर्ण तत्व है:

---

४. गरलपियो तुम, हे क्षुरस्य धारापथगामी और ओ सदियों में आने वाले.

५. मेरे अतीत की ज्योति लहर.

६. एक बार तो देख.

७. अनल गान, खिवड़ी, क्यों रोते हो यार सिपाही, कारा में सातवीं श्रावणी पूर्णिमा, राखी की सुध आदि.

८. विप्लव गान, अरी धधक उठ.

९. नरक विधान, आज क्रान्ति का शंख बज रहा.

१०. सुनो सुनो ओ सोने वालो, ओ मजदूर किसान उठो.

क्यों रोते हो यार सिपाही, क्यों रोते हो यार
क्या घर की चिट्ठी को पढ़ कर जीवन लगा असार ?
घर पर विवश छोड़ आए थे तुम जो मनहर मीत
क्या मालूम हुआ है तुमको, हुआ वही विपरीत ?
क्या, बस रोने लगे इसी से ओ तुम अचल अभीत
बड़ी कठिनता से मिलता है यहां अचंचल प्यार
क्यों रोते हो यार सिपाही, क्यों रोते हो यार।

'राखी की सुध' बन्दी जीवन की वेदना की सुन्दर अभिव्यक्ति है। कविता का पारिवारिक स्नेहपूर्ण वातावरण मर्मस्पर्शी है :

बहिना, यहां तुम्हारा भैया निपट अरक्षित मूक
साधनहीन, छीन-तन, बैठा किये हृदय दो टूक
आज तुम्हारे कुंकुम-रोचन की स्मृति में ये प्राण
ऐसे तड़प रहे हैं जैसे घायल हिरन अजान
बनकर याद, लहरता है तव अंगुलियों का तार
बहन आज आती है सुध राखी की बारंबार।

'विद्रोही' दिनकर जी की 'विपथगा' की तरह की कविता है, जिसमें विद्रोहियों की ओर से दिया गया आत्म परिचय है। कविता विद्रोह की स्वच्छन्दतावादी अभिव्यक्ति है। इस कविता को भी दिनकर की विपथगा के साथ ही क्रान्तिकारी स्वच्छन्दतावाद की प्रतिनिधि कविता कहा जा सकता है। इन कविताओं में क्रान्तिकारिता स्वच्छन्दतावादी भावोच्छ्वास के साथ मिल कर एकमेक हो गयी है। या यों कहा जा सकता है कि स्वच्छन्दतावादी भावोच्छ्वास के हाथ में सामाजिक क्रान्ति का झंडा दे दिया गया है।

विद्रोह के अनुकूल प्रवाह और शब्द-चयन में भी यह लम्बी कविता दिनकर की 'विपथगा' की तरह ही एक भीषण सौन्दर्य से सम्पन्न है :

हम ज्योति पुंज दुर्दम प्रचण्ड
हम क्रान्ति वज्र के घन-प्रसार
हम विप्लव-रण-चंडिका जनक
हम विद्रोही, हम दुर्निवार

पूरी कविता जीवन और जगत में विद्रोह की आवश्यकता और महत्ता की स्थापना करती है और विद्रोहियों का विराट रूप में वर्णन करती है :

हमने गति देकर चलित किया
इन गति विहीन ब्रह्माण्डों को
हमने ही तो है सृजित किया
रज के इन वर्तुल भाण्डों को
हमने नव सृजन प्रेरणा से
छिटकाए तारे अम्बर में
हम ही विनाश भर आए हैं
इस निखिल विश्व-आडम्बर में
हम स्रष्टा हैं, प्रलयंकर हम
हम सतत क्रान्ति की प्रखर धार !
हम विप्लव रणचंडिका जनक
हम विद्रोही, हम दुर्निवार !

'जूठे पत्ते' नवीन जी की प्रसिद्ध कविता है, जिसमें क्रान्तिकारी विक्षोभ और आक्रोश को अभिव्यक्ति मिली है। अपने इसी स्वर के कारण यह छोटी सी कविता इतनी प्रसिद्ध हुई है। कवि का प्रगतिशील मानववादी रूप इस कविता में बहुत बुलन्दी के साथ मुखर हुआ है। जूठे पत्ते चाटते हुए मनुष्य को देख कर उसका मन पुराने मानवतावादी की तरह दया से द्रवित नहीं होता, आक्रोश से भर उठता है और वह इतने अनुदार स्वरों में चीख उठता है :

क्या देखा है तुमने नर को नर के आगे हाथ पसारे ?
क्या देखे हैं तुमने उसकी आंखों में खारे फव्वारे ?
देखे हैं ? फिर भी कहते हो कि तुम नहीं हो विप्लवकारी
तब तो तुम हिंजड़े हो, या हो महाभयंकर अत्याचारी
अरे चाटते जूठे पत्तल जिस दिन मैंने देखा नर को
उस दिन सोचा क्यों न लगा दूं आज आग इस दुनिया भर को ?
यह भी सोचा क्यों न टेंटुआ घोंटा जाय स्वयं जगपति का·
जिसने अपने ही स्वरूप को रूप दिया इस घृणित विकृति का !

यद्यपि कविता की ओछी शब्दावली—हिजड़ा, जनखे, बजा तू अपनी ताली,—अखरती है तथापि कविता के प्रवाह में वह बह जाती है। निस्संदेह १९३७ में जगपति का टेंटुआ घोंटने की बात करना हिन्दी कविता मे बड़े साहस का काम था।

नवीन जी की कुछ बहुत प्रसिद्ध और अच्छी कविताओ को छोड़ दिया जाय तो (और कुछ हद तक उनमें भी) उनकी कविता की भाषा शैली में एक

अजीब खुरदरापन और ऊबड़खाबड़पन लगभग सर्वत्र मिलता है। उनकी अपनी कोई एक समग्र और निश्चित शब्दावली नहीं है। कभी तो वे घोर तत्सम शब्दावली का प्रयोग करते हैं, कभी बिल्कुल उर्दू शब्दावली का, और कभी व्रज भाषा के हिय, छिन, उछाह, लखो, मम, तव आदि का। और यह सब हमेशा अलग अलग तरह की कविताओं में ही नहीं होता। कई बार तो एक ही कविता में इन सब तरह की शब्दावलियों के दर्शन हो जाते हैं। 'खोदते हो' की जगह 'खोदो हो' और 'क्या पूछते हो' के लिए 'क्या पूछो हो' जैसे प्रयोग उनकी शैली को काफी पुरानापन दे देते हैं। 'बे टेम' जैसे बेमेल शब्दों का भी प्रयोग उनमें काफी मिल जाता है। मोटे तौर पर उनकी शैली को द्विवेदी युगीन सपाट शैली कहा जा सकता है।

नवीन जी के काव्य का मूल विषय प्रेम है। रमेश सिन्हा के शब्दों में "वास्तव में वे एक प्रेमी थे—जबरदस्त, औघड़ प्रेमी, सम्पूर्ण जीवन के प्रेमी। उनके जीवन में प्रेयसी का प्रेम, देश का प्रेम, मित्रों और सहकर्मियों का प्रेम मिलजुल कर कुछ इस तरह एकाकार हो गया था कि उसे अलग-अलग करने में कठिनाई होती है। यह प्रेम उन्हें उन सब का साथ देने के लिए मजबूर करता था, जो सच्चाई पर थे, उन सब उद्देश्यों का उनसे समर्थन कराता था, जो जनता और देश के हित में थे और ऐसी हालत में सारी छोटी छोटी सीमाएं खत्म हो जाती थीं।"[११] बच्चन जी ने भी उनके इसी रूमानी और प्रेमी रूप पर जोर दिया है।[१२]

रामधारी सिंह 'दिनकर'

दिनकर भी नवीन जी की तरह ही मूलतः छायावादोत्तर रूमानी कवि हैं, पर उन पर अपने युग के राष्ट्रीय और प्रगतिशील आन्दोलनों का इतना गहरा प्रभाव पड़ा है कि बहुत दिन तक उनका वह मूल रूप इन प्रभावों में छिपा ही रहा। स्वयं दिनकर जी ने लिखा है कि राष्ट्रीयता (और उनकी प्रगतिशीलता का अधिकांश उनकी राष्ट्रीयता के ही अन्तर्गत आ जाता है) उनके व्यक्तित्व के भीतर से नहीं पनपी, उसने बाहर से ही उन्हें आक्रान्त किया और वे संस्कारों में कला के सामाजिक पक्ष के प्रेमी भले ही बन गये हों, मन से वे कोमलता और कल्पना की ही कविताएं लिखना चाहते थे। उनका स्पष्ट कथन है कि सुयश भले ही उन्हें हुंकार से मिलता हो, आत्मा उनकी

---

११. सरफरोशों के मित्र व साथी नहीं रहे, जनयुग, १५ मई, १९६०.
१२. देखिए उनकी पुस्तक नये पुराने झरोखे कविवर नवीन जी, पृ. ३३-३४.

रसवन्ती में ही बसती है।"[13] यही नहीं रसवन्ती की भूमिका में तो उन्होंने यहाँ तक कहा है कि दिनकर का राष्ट्रीय और प्रगतिशील कविताएं लिखना ऐसा ही है, जैसा बांसुरी से लाठी का काम लेना और रंगीनियों में उड़ना चाहने वाली कल्पना का चिमनियों के धुएं में घुटना,"[14] लेकिन उनकी लगभग सभी संकलनों में बिखरी हुई कुछ महत्वपूर्ण प्रगतिशील कविताओं और कुरुक्षेत्र पर समग्र रूप से विचार करते हुए हम इसी निष्कर्ष पर पहुंच सकते हैं कि उनकी बांसुरी ने 'लाठी' का काम भी अच्छे-खासे ढंग से दिया है।

रेणुका (३५) उनका पहला संकलन है। संकलन का प्रधान स्वर छायावादी है। क्योंकि यह उस समय की कृति है, जब छायावाद का अन्तिम अध्याय लिखा जा रहा था, इसलिए इसमें उसकी निराशा और उसका अवसाद, उसका पलायनवाद और नश्वरतावाद गहरे रंगों में मिलता है। स्वयं दिनकर जी के ही शब्दों में रेणुका की अधिकांश कविताओं मे या तो भारत के अतीत का रोना है और या जीवन की नश्वरता पर विलाप।"[15] हा इसमें चार-पांच कविताएं अवश्य ऐसी हैं, जिनमें कवि की बदलती हुई मनोवृत्ति व्यक्त हुई है— 'तांडव,' 'हिमालय के प्रति,' 'कविता की पुकार,' 'कस्मै देवाय' और 'बोधिसत्व'।

'तांडव' में रुद्र का, ध्वंसात्मक क्रान्ति का, आह्वान है। दिनकर की राष्ट्रीय कविताओं में हिंसात्मक मार्ग की स्वीकृति और यह ध्वंसवाद प्रारंभ से ही रहे हैं। उनकी कई ओजपूर्ण कविताएं इस ध्वंसवाद से संबंधित हैं। इसे दिनकर की राष्ट्रीय और प्रगतिशील कविताओं पर उनकी मूलतः रूमानी दृष्टि का प्रभाव कहा जा सकता है। विनाश के प्रलयंकर तांडव में एक खास तरह का रूमानी आनन्द उन्हें मिलता रहा है। 'तांडव' का मूल स्वर यही है :

घहरें प्रलय पयोद गगन में
अंध धूम्र हो व्याप्त भुवन में
बरसे आग बहे झंझानिल
मचे त्राहि जग के आंगन में
फटे अतल पाताल, धंसे जग,
उछल उछल कूदें भूधर
नाचो हे नाचो नटवर

'हिमालय के प्रति' मूलतः एक राष्ट्रीय पुनरुत्थानवादी कविता है पर एक

---

१३. देखिये चक्रवाल, भूमिका, पृ. ३३.
१४. देखिए रसवन्ती की भूमिका.
१५. देखिए चक्रवाल, भूमिका, पृ. ३२.

तो दिनकर की राष्ट्रीयता 'हिन्दू राष्ट्रीयता' नहीं है, वह यदि बुद्ध, राम, कृष्ण, अशोक और चन्द्रगुप्त को याद करता है तो भारत के अन्तिम ज्योति-नयन,'सीराज' को भी। दूसरे उनकी राष्ट्रीयता गांधी जी के अहिंसावादी मार्ग का अनुसरण करने वाली राष्ट्रीयता भी नहीं है, उनकी राष्ट्रीयता तत्कालीन क्रान्तिवादी समूहों की और कांग्रेस के भीतर और बाहर के वामपंथी समाजवादी पक्षों की राष्ट्रीयता है, क्योंकि वह विदेशी साम्राज्यवाद से मुक्ति के लिए हिंसात्मक मार्ग को स्वीकृति ही नहीं, प्राथमिकता भी देती है :

रे रोक युधिष्ठिर को न यहां, जाने दे उनको स्वर्ग धीर
पर फिरा हमें गांडीव गदा, लौटा दे अर्जुन भीम वीर।

रुद्र के तांडव का आह्वान इस कविता के अन्त में भी किया गया है।

'कविता की पुकार' में उनकी यथार्थवादी कला चेतना की अभिव्यक्ति हुई है। 'कविता की पुकार' की कविता छायावादी स्वप्न-कुंजों और राष्ट्रीयतावादी नालन्दा और वैशाली के खंडहरों से बाहर आकर वन-फूलों की ओर जाना चाहती है, कल्पना और इतिहास को छोड़कर वर्तमान यथार्थ से संबंध जोड़ना चाहती है।[१६] वह विद्युतदीप सजे महल छोड़ कर तृणकुटी में प्रवेश करना चाहती है, खेतों में हर्षित होना, खलिहानों में किसानों के साथ रोना चाहती है, मकई की सुरभि और पके आम की लाली बनना चाहती है, सूखी रोटी खाने वाले कृषक के लोटे का गंगाजल और अत्याचार और शोषण से पीड़ित ग्रामीण जनों के बेबसी के आंसू बनना चाहती है।

'कस्मै देवाय' फिर कविता से संबंधित कविता है। कवि पहले स्वीकार करता है कि वह कविता को अब तक फूलों के गीतों और लहरों के कम्पनों में लगा चुका है और रोती हुई रावी की लहरों से कंठ मिला कर उसे रुला चुका है। फिर उसकी दृष्टि वर्तमान जीवन के यथार्थ पर जाती है :

छीन छीन जल-थल की थाली, संस्कृति ने निज निलय सजाया
विस्मय है तो भी न शान्ति का, दर्शन एक पलक को पाया
जीवन का यति-साम्य नहीं क्यों, फूट सका अब तक तारों से
तृप्ति न क्यों जगती में आयी अब तक के आविष्कारों से

और

दिक्-दिक् में शस्त्रों की झनझन, धन-पिशाच का भैरव नर्तन
दिशा दिशा में कलुष-नीति, हत्या, तृष्णा, पातक-आवर्तन

१६. सावित्री सिन्हा : युग चारण: दिनकर, पृ. ७७.

दलित हुए निर्बल प्रबलों से, मिटे राष्ट्र, उजड़े दरिद्र जन
आह! सभ्यता आज कर रही असहायों का शोणित-शोषण

और इस यथार्थ के सम्मुख उसे कविता का उद्देश्य और उपयोग यही दिखायी देता है कि :

क्रान्ति धात्रि कविते! तू जग उठ आडम्बर में आग लगा दे
पतन, पाप पाखंड जलें, जग में ऐसी ज्वाला सुलगा दे
उठ वीरों की भावरंगिनी दलितों के दिल की चिनगारी
युग मर्दित यौवन की ज्वाला, जाग जाग री क्रान्ति कुमारी
लाखों क्रौंच कराह रहे हैं, जाग आदि कवि की कल्याणी
फूट-फूट तू कवि कंठों से बन व्यापक निज युग की वाणी।[17]

'बोधिसत्व' में गौतम बुद्ध का क्रान्तिकारी रूप चित्रित हुआ है

शस्त्र भार से विकल खोजती रह रह धरा अधीर तुम्हें
प्रभो! पुकार रही व्याकुल मानवता की जंजीर तुम्हें
धन पिशाच की विजय धर्म की पावन-ज्योति अदृश्य हुई
दौड़ो बोधिसत्व! भारत में मानवता अस्पृश्य हुई
अनाचार की तीव्र आंच में अपमानित अकुलाते हैं
जागो बोधिसत्व भारत के हरिजन तुम्हें बुलाते हैं
जागो विप्लव के वाक्! दंभियों के इन अत्याचारों से
जागो हे जागो तप-निधान! दलितों के हाहाकारों से

रेणुका की क्रान्तिशील राष्ट्रीय चेतना की कविताओं में 'बागी' कविता का भी (जो रेणुका के तीसरे संस्करण में ही संकलन में सम्मिलित की गयी, पहले दो संकलनों में नहीं थी) महत्वपूर्ण स्थान है। डा. सावित्री सिन्हा के अनुसार यह रचना १९२९ में उस १४ सितम्बर की रात को ही लिखी गयी थी, जिस दिन भगत सिंह, यतीन नाथ, बटुकेश्वर दत्त और उनके साथियों के जेल में अच्छे बर्ताव की माग में किये गये अनशन के कारण यतीन्द्रनाथ शहीद हो गये थे।[18] इस कविता में दिनकर का आक्रोश नहीं, एक पराजित और निर्बल जाति के युवक की दबी, सहमी करुणा व्यक्त हुई है।

---

१७. तीसरे संस्करण में कवि ने इस उद्धरण की तीसरी पंक्ति को इस तरह कर दिया था, 'उठ भूषण की भावरंगिणी लेनिन के दिल की चिनगारी'
१८. युग चारण : दिनकर, पृ. ७६.

रेणुका के विपरीत हुंकार (१६३८) का मूल स्वर, क्रान्तिवादी है, हालांकि छायावादी-अतीतवादी प्रभावों की कमी यहां भी नही है। प्रगतिशील दृष्टि से सकलन की उल्लेखनीय कविताओं में 'हाहाकार', 'दिगम्बरि', 'अनल-किरीट', 'प्रणति', 'दिल्ली' और 'विपथगा' प्रमुख हैं।[19]

'हाहाकार' में कवि के कल्पना-विलासी और उसके यथार्थवादी के बीच के द्वन्द्व को अभिव्यक्ति मिली है। कविता के पूर्वार्द्ध में वह यथार्थ की उपेक्षा कर के कल्पना के शत दल पर निवास करने वाला कवि बनना चाहता है, पर उत्तरार्द्ध में भूखे बच्चों के दूध के लिए स्वर्ग लूटने का उपक्रम करता नजर आता है। 'दिगम्बरि' भी 'विपथगा' की तरह क्रान्ति के आह्वान में लिखी गयी है। 'अनल किरीट' में देश पर मर मिटने वाले जवानों के बलिदान के उत्साह को अंकित किया गया है। 'प्रणति' (कलम आज उनकी जय बोल) मातृभूमि के लिए शीश चढ़ाने वाले शहीदों की प्रणति और नये जवानों के आह्वान में लिखी गयी है। १६२६ में हुए नयी दिल्ली के प्रवेशोत्सव की पृष्ठभूमि पर लिखी हुई कविता 'दिल्ली' में कवि के क्रान्तिकारी और अतीतप्रेमी दोनों रूप व्यक्त हुए है। एक ओर तो वह दिल्ली को इस तरह कोसता है :

आहें उठी दीन कृषकों की, मजदूरों की तड़प पुकारें
अरी! गरीबों के लोहू पर खड़ी हुई तेरी दीवारें

और उसे 'कृषक-मेध की रानी' कहता है तो दूसरी ओर उसके पुराने सामन्ती वैभव को इस तरह याद करता है :

जरा याद कर यहीं नहाती थी मेरी मुमताज अतर में
तुझसी तो सुन्दरी खड़ी रहती थी पैमाना ले कर में
सुख, सौरभ, आनंद बिछे थे, गली कूच वन वीथि नगर में
कहती जिसे इन्द्रपुर तू वह तो था प्रात यहां घर घर में

'विपथगा' इस सकलन की तो खैर सर्वश्रेष्ठ कविता है ही दिनकर जी की भी श्रेष्ठ कविताओं में से एक है। इस कविता में दिनकर जी ने क्रान्ति की अपनी धारणा को सुन्दर और प्रभावशाली अभिव्यक्ति दी है। श्री रामवृक्ष बेनीपुरी के शब्दों मे विश्व साहित्य में क्रान्ति पर जितनी कविताएं लिखी गयी हैं, दिनकर की विपथगा उनमें किसी के भी समकक्ष आदर का स्थान पाने की योग्यता रखती है।[20]

---

१६. रेणुका की भी कुछ कविताएं जैसे 'हिमालय', 'वन फूलों की ओर', इसमें फिर से संकलित कर दी गयी हैं.

२०. देखिए क्रांति का कवि (भूमिका), हुंकार, ५२ संस्करण, पृ ७.

कविता के आवेग और उसमें सहायक छन्द के प्रवाह ने इस कविता को बहुत प्रभावशाली बना दिया है। कविता में पहले क्रान्ति के जन्म की पृष्ठभूमि को अंकित किया गया है :

श्वानों को मिलता दूध वस्त्र भूखे बालक अकुलाते हैं
मां की हड्डी से चिपक ठिठुर जाड़ों की रात बिताते हैं
युवती के लज्जा-वसन बेच, जब ब्याज चुकाए जाते हैं
मालिक जब इत्र फुलेलों पर पानी सा द्रव्य बहाते हैं
पापी महलों का अहंकार देता मुझको तब आमंत्रण!

फिर उसके आतंक और उसके विध्वंसक स्वरूप का :

मुझ विपथगामिनी को न ज्ञात किस रोज किधर से आऊंगी
मिट्टी से किस दिन जाग क्रुद्ध अम्बर में आग लगाऊंगी
आंखें अपनी कर बन्द देश में जब भूकम्प मचाऊंगी
किस का टूटेगा शृंग, न जाने किसका महल गिराऊंगी
निर्बंध, क्रूर, निर्मोह सदा मेरा कराल नर्तन गर्जन!

और यहीं इस कविता की, और दिनकर जी के क्रान्तिवाद की भी सबसे बड़ी कमजोरी निहित है। दिनकर की क्रान्ति मानवीय उद्देश्यों से प्रेरित मानवीय क्रियाकलापों का परिणाम नहीं है, वह तो विपथगामिनी है, पता नहीं कब क्या कर बैठेगी। कहा नहीं जा सकता कि वह शोषकों को ही नष्ट करेगी या शोषितों को भी कर देगी। फिर वह केवल विनाशकारी है, उसके बाद क्या होगा, इसकी कोई कल्पना दिनकर में नहीं मिलती। विध्वंस विध्वंस के लिए, क्रान्ति अपने आपके के लिए, यही दिनकर के क्रान्तिवाद का मूलभूत सत्य है।

रसवन्ती (४०) मूलतः दिनकर जी की ऐसी छायावादी-रहस्यवादी-रूमानी कविताओं का संकलन है, जिनकी शैली पर द्विवेदी युगीन शैली का भी प्रभाव है। कई कविताओं में मानवीय प्रेम को आध्यात्मिक-रहस्यवादी उलझावों" और सामन्ती भोगवादी भटकावों" में भटकाया गया है। हां, कुछ कविताओं में स्वस्थ मानवीय प्रेम और सौन्दर्य का स्वस्थ वर्णन भी मिलता है: ऐसी कविताओं में, 'गीत-अगीत', 'बालिका से वधू', 'नारी'- और 'मानवती' का नाम लिया जा सकता है। 'गीत-अगीत' में प्रकृति और मानव के सहारे मुखर सत्यों (गीत) के साथ ही साथ मौन सत्यों (अगीत) के सौन्दर्य

२१. देखिए 'प्रभाती', 'अगेय की ओर', 'शेषगान', 'अगरु धूम' आदि कविताएं-
२२. जैसे 'रास की मुरली' कविता में.

का भी उद्घाटन किया गया है। 'बालिका से वधू' में वधू बनती हुई बालिका का बड़ा सुन्दर वर्णन है। वर्णन की मानवीयता हृदय को छूती है। 'नारी' में उसके द्वारा पुरुष जगत में फैलाए हुए सौन्दर्य का राग-भीना वर्णन है। छायावादी भाव-भूमि और शब्दावली के बावजूद कविता के स्वर में एक ठोसपन और वास्तविकता है। नारी को यहां पुरुष की एक महती प्रेरणा के रूप में देखा गया है। नारी सौन्दर्य की शक्ति—पुरुष पर उसके प्रभाव की यह व्याख्या :

दृष्टि तुमने फेरी जिस ओर
गयी खिल कमल पंक्ति अम्लान,
हिंस्रमानव के कर से त्रस्त
शिथिल गिर गए धनुष औ बाण
हो गया मदिर दृगों को देख
सिंह-विजयी बर्बर लाचार,
रूप के एक तन्तु में नारि
गया बंध मत्त गयन्द कुमार !

'मानसी' में एक निर्धन कवि का अपनी भोली ग्रामीण प्रिया के प्रति बहुत प्यार बड़ी भावना के साथ व्यक्त किया गया है :

बना रखूं पुतली दृग की निर्धन का यही दुलार सखी
गहने छोड़ गया धाम, तुम्हारा जिससे करूं सिंगार सखी
कहां रखूं ? किस भांति ? सोच यह तड़पा करता प्यार सखी
नयन मूंद उर से चिपका लेता आखिर लाचार सखी !

यहां प्रेम को उसके सामाजिक संदर्भों में रख कर चित्रित किया गया है, इसलिए प्रेम यहां रूमानी नहीं, यथार्थवादी ढंग से चित्रित हुआ है। बेचारी भोली प्रिया सोचती है कि कविवर की कविताएं चाहती, क्यों नहीं हो सकती, उसके उनके जीवन का सुख वैभव क्यों नहीं खरीदा जा सकता ? कविता का अन्त बड़ा यथार्थवादी है :

गांव रही अपने इतना दूर, सखा, गिरिमाला में
[illegible] के निज सुमन रहे हैं उधर पेट की ज्वाला में !

सामधेनी (४७) का प्रकाशन यद्यपि कुरुक्षेत्र के बाद हुआ है तथापि रचना की दृष्टि से यह कुरुक्षेत्र से पहले की कृति है।[1] क्योंकि इसमें संकलित

---

१. सामधेनी (निवेदन), पूर्व भारत - दिनकर, पृ. ११८.

कविताएं ४१ से ४६ के बीच लिखी गयी हैं। इसकी अधिकतर कविताओं में एक अवसाद की छाया दिखाई देती है। कुछ द्वन्द्वगीत की ही परंपरा की दार्शनिक द्वन्द्वमूलक कविताओं के अतिरिक्त, संकलन की अधिकांश कविताएं द्वितीय महायुद्ध और तत्कालीन राष्ट्रीय आन्दोलन की पृष्ठभूमि पर लिखी गयी हैं। 'जवानी का झंडा' देश के नौजवानों का आह्वान है। 'सरहद के पार' और 'फनेगी डालों मे तलवार' में आजाद हिन्द फौज और सुभाष चन्द्र बोस के भारत को स्वतंत्र कराने के प्रयत्नों की प्रशंसा की गयी है। 'दिल्ली और मास्को' मे ४२ की क्रान्ति के समय साम्यवादी दल की विश्वयुद्ध में अंग्रेजी सरकार के समर्थन की नीति का विरोध किया गया है। 'हे मेरे स्वदेश' नोआखाली और बिहार के साम्प्रदायिक दंगों पर लिखी गयी है और 'जयप्रकाश' जयप्रकाश जी पर।

सामधेनी की कविताओं में महत्वपूर्ण है: 'रात यों कहने लगा मुझसे गगन का चांद', 'कलिंग विजय', 'आग की भीख', 'दिल्ली और मास्को' और 'जवानियां'।

'रात यों कहने लगा' मनुष्य की शक्ति और उसके सपनों के प्रति कवि की बढ़ती हुई आस्था की अभिव्यक्ति है। 'कलिंग विजय' अशोक के हृदय परिवर्तन की कहानी को सुन्दर ढंग से सुनाती है। यह शायद पहली कविता है, जिसमें दिनकर एक युद्ध-विरोधी अहिंसावादी के रूप में सामने आये हैं। 'आग की भीख' प्रवाह पूर्ण छन्द में लिखी हुई तत्कालीन राष्ट्रीय आन्दोलन की ओर व्यक्तिगत रूप से दिनकर जी की डावांडोल स्थिति[२४] से बाहर निकलने की छटपटाहट है:

बेचैन हैं हवाएं, सब ओर बेकली है
कोई नहीं बताता, किश्ती किधर चली है
मंझधार है, भंवर है या पास है किनारा
यह नाश आ रहा है या सौभाग्य का सितारा
आकाश पर अनल में लिख दे अदृष्ट मेरा
भगवान इस तरी को भरमा न दे अंधेरा
तम-वेधिनी किरण का संधान मांगता हूँ
ध्रुव की कठिन घड़ी में पहचान मांगता हूँ

लेकिन छन्द का प्रवाह जितना आत्मविश्वास भरा है, उतने दिनकर जी

---

२४. इस बीच दिनकर जी ब्रिटिश सरकार के युद्ध प्रचार विभाग में नौकरी कर रहे थे—देखिए, सावित्री सिन्हा, वही पुस्तक, पृ. ६ और १६.

नहीं हैं, कदम कदम पर वे भगवान का सहारा चाहते हैं, स्वदेश के लिए अंगार मांगते से प्रारंभ हुई कविता का अन्त वे ईश्वर से वरदान और विपत्ति काल में दया मागते हुए करते हैं।

'दिल्ली और मास्को' दिनकर जी की प्रसिद्ध कविता है। कविता के प्रारंभ मे 'अरुण देश की रानी' तथा 'नयी शिवा और भवानी' के रूप मे मास्को का, रूस की समाजवादी क्रान्ति का, अभिनंदन किया गया है। मध्य में सन् ४२ की क्रान्ति के समय साम्यवादियों की ब्रिटिश सरकार के युद्ध प्रयत्नों को समर्थन देने की नीति की आलोचना की गयी है :

एक देश है, जहां विषमता से अच्छी हो रही गुलामी
जहां मनुज पहले स्वतंत्रता से हो रहा साम्य का कामी

लेकिन साम्यवादियों की युद्ध-समर्थन की नीति को विषमता से गुलामी को अच्छी समझना या स्वतंत्रता से पहले साम्य की कामना कहना, उसे जबरदस्ती गलत समझना है। हां, जहां साम्यवादियों के विश्ववाद पर व्यंग है, वहा आलोचना फिर भी यथार्थ स्थितियों पर आधारित है :

चिल्लाते हैं विश्व विश्व कह जहां चतुर नर ज्ञानी
बुद्धि भीरु सकते न डाल जलते स्वदेश पर पानी
जहां मास्को के रणधीरों के गुण गाए जाते हैं
दिल्ली के रुधिराक्त वीर को देख लोग सकुचाते हैं

कविता के अन्तिम भाग में तत्कालीन भारत के क्रान्तिकारी राष्ट्रीय आन्दोलन का गर्वस्फीत शब्दावली में सुन्दर वर्णन किया गया है, और भारत में आने वाली भावी समाजवादी क्रान्ति को, पौराणिक शिवा के रूप में मूर्त किया गया है :

हां, भारत की लाल भवानी, जवा-कुसुम के हारों वाली
शिवा, रक्त-रोहित-वसना, कबरी में लाल सितारों वाली
कर में लिये त्रिशूल कमंडल, दिव्य-शोभिनी, सुरसरि-स्नाता
राजनीति की अचल स्वामिनी, साम्य-धर्म-ध्वज-धर की माता
भारत भूमि की मिट्टी से श्रृंगार सजाने वाली
चढ़ हिमाद्रि पर विश्व-शान्ति का शंख बजाने वाली

यहां ध्यान देने की बात यह है कि दिनकर जी ने उसे 'भारत-भूमि की मिट्टी से श्रृंगार सजाने वाली' कहा है : भाव यह है कि रूसी ढंग का ही अनुकरण करने की जरूरत नहीं, भारत की क्रान्ति यहीं की मिट्टी से श्रृंगार करके,

यहाँ की परिस्थितियों का लेखा लेकर आयेगी। और अन्त में भारतीय साम्यवादियों को स्वतंत्रता और समानता के संघर्षों को एक ही मान कर भारत की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करने के लिए प्रेरित किया गया है :

दिल्ली के नीचे मर्दित अभिमान नहीं केवल है
दबा हुआ शत-लक्ष नरों का अन्न-वस्त्र, धन-बल है
दबी हुई इसके नीचे भारत की लाल भवानी
जो तोड़े यह दुर्ग, वही है समता का अभिमानी !

'दिल्ली और मास्को' दिनकर की अपनी आवेगपूर्ण शैली में लिखी हुई एक सुन्दर कविता है, और साम्यवादियों की उनकी आलोचना में कटुता कम और 'सदिच्छा' ही अधिक दिखाई देती है।

'जवानियां' देश की स्वाधीनता पर बलिदान होने वाले युवकों के उत्सर्ग का गीत है :

वह देख लो खड़ी है कौन तोप के निशान पर
वह देख लो, अड़ी है कौन जिन्दगी की आन पर
वह कौन थी जो कूद के अभी गिरी है आग में
अलभ्य भेंट काल को चढ़ा रही जवानियां।
लहू में तैर तैर के नहा रही जवानियां।

कुरुक्षेत्र (४६) दिनकर का प्रसिद्ध युद्ध-काव्य है। इस काव्य में दिनकर ने युद्ध संबंधी अपने विचार पहली बार समग्रता के साथ रखे हैं। युद्ध और केवल युद्ध की समस्या पर ही लिखा गया यह काव्य अपनी तरह का हिन्दी का पहला ही नहीं, अद्वितीय काव्य है। कुरुक्षेत्र में दिनकर का उद्देश्य तत्कालीन ऐतिहासिक यथार्थ का अंकन या उस समय के इतिहास का किसी नयी दृष्टि से पुनर्लेखन नहीं था। इतिहास का यह प्रसंग तो केवल उनके लिए युद्ध संबंधी अपने आत्म-संघर्ष और उसमें प्राप्त किये हुए समाधान को प्रस्तुत करने की पृष्ठभूमि मात्र है : इससे अधिक कुछ भी नहीं। इसलिए ऐतिहासिक यथार्थ की दृष्टि से इसकी आलोचना करना कवि के उद्देश्य को न समझना है, इसकी समीक्षा तो इसमें व्यक्त युद्ध-दर्शन और जीवन-दर्शन के ही आधार पर की जा सकती है। और ठीक इसीलिए इसमें व्यक्त किसी विचार को, जो अपने आप में गलत हो, इस आधार पर उचित नहीं कहा जा सकता कि वह युधिष्ठिर या भीष्म के ऐतिहासिक व्यक्तित्व से मेल बिठाने के लिए कहा गया है। कुरुक्षेत्र जिस प्रकार ऐतिहासिक काव्य नहीं है, उसी प्रकार प्रचलित अर्थों में प्रबंधकाव्य भी नहीं है। वह तो वास्तव में एक विचार-काव्य है।

जैसा कि दिनकर जी ने 'निवेदन' में स्वीकार किया है, उसमें प्रबंधत्व वर्णित विचारों को लेकर ही है। कुरुक्षेत्र का दिनकर-काव्य में महत्व दो दृष्टियों से है—एक तो कुरुक्षेत्र, तब तक के दिनकर-काव्य के अन्तर्विरोधों के समाधान का काव्य है। अब तक जो निवृत्ति और प्रवृत्ति हिंसा और अहिंसा, ज्ञान और भावना, भौतिक और अध्यात्म, युद्ध और शान्ति के 'पागल कर देने वाले' द्वन्द्व दिनकर के मन मे चल रहे थे, उनका एक प्रकार से समाधान दिनकर को कुरुक्षेत्र में आकर मिला। और दूसरे कुरुक्षेत्र में पहली बार दिनकर ने अपने भावावेग पर लगाम लगा कर चिन्तन मनन करने का प्रयत्न किया है।[25]

कुरुक्षेत्र में सामान्यतः भीष्म के माध्यम से और छठे सर्ग में स्वतंत्र रूप में दिनकर जी ने अपने युद्ध-दर्शन की और सामान्य जीवन-दर्शन की स्थापना की है।

कुरुक्षेत्र में भीष्म के माध्यम से व्यक्त दिनकर का युद्ध-दर्शन संक्षेप में उन्ही की शब्दावली में इस प्रकार है। युद्ध एक तूफान है। जिस प्रकार तूफान अनायास नहीं आता उसी प्रकार युद्ध भी किन्हीं दो ही विरोधी राजाओं के कारण नहीं होता, मानव समाज में व्यक्तिगत, राजनीतिक और राष्ट्रीय स्तर पर विकारों की जो आग धीरे-धीरे सुलगती रहती है, वह क्षोभ, घृणा और द्वेष से प्रज्वलित होकर राजनीतिक उलझनों या देशप्रेम के नाम पर युद्ध की लहरो के रूप में फूट पड़ती है। अन्याय ही से युद्ध का आरंभ होता है। फिर धर्म, नीति और न्याय के मार्ग पर चलने वालों के लिए उसकी चुनौती स्वीकार करने के अतिरिक्त कोई विकल्प नही रह जाता। युद्ध की लपटें मनुष्य के अन्दर छिपे शार्दूल को चुनौती देती हैं और वह जाग उठता है। रोगी होना कोई नही चाहेगा, पर जब रोग पास आ गया हो तब तिक्त औषधि के सिवा उसका कोई उपचार नही। कोई कर्म अपने आप में पाप या पुण्य नहीं होता। कर्म करते समय कर्ता-हृदय की भावना ही मुख्य चीज है। युद्ध कोई नही चाहता पर द्वार पर जब शत्रु आ जाये तो जूझना ही पड़ता है। जीवन के लिए अंगारों-सी वीरता की आवश्यकता है और ज्वलित प्रतिशोध पर आधारित युद्ध पाप नहीं हो सकता। जब कोई किसी का स्वत्व छीनता हो तब त्याग और तप से काम लेना पाप है, और उसका बढ़ता हुआ हाथ काट देना पुण्य है। जब तक स्वार्थों के संघर्ष चलते है, युद्ध अनिवार्य है। पाडवों के भिक्षुक हो जाने से महाभारत का युद्ध नहीं रुक सकता था, क्योंकि ग्रह-उपग्रह ही क्रुद्ध होकर ध्वंस से सिर मारने के लिए तुले हुए थे। फिर तप, करुणा, क्षमा, विनय, त्याग आदि गुण व्यक्ति का धर्म और उसकी शोभा हैं। पर जब समुदाय का प्रश्न उठता है तब हमें इन्हें छोड़ना पड़ता है। फिर देह के संग्राम को आत्मबल से कौन जीत सकता है, जब पाशविकता खड्ग उठा लेती

२५. सावित्री सिन्हा, वही, पृ. १११.

है, तब आत्मबल किसी काम का नहीं है। तप और त्याग की शक्ति को व्यक्ति का मन ही मानता है, इस शक्ति से समुदाय नहीं हारता।[26] फिर क्षमा तो उस भुजंग को शोभती है जिसके पास गरल हो, पराजितों के लिए अहिंसा, दया, करुणा, क्षमा आदि घोर कलंक की चीजें हैं। पराजित का धर्म है प्रतिशोध और खोजे हुए आत्मसम्मान की पुनः प्राप्ति। प्रतिशोध से शौर्य की शिखाएं दीप्त होती हैं। मनुष्य में प्रतिशोध-हीनता महापाप है। परस्व हरने के लिए, लोभ के लिए सेना सजा कर आक्रमण करना क्षात्रधर्म के विरुद्ध है। पर प्रतिशोध से प्रबुद्ध होकर लड़ने में पुण्य का प्रकाश है। मनुष्य का सबसे बड़ा धर्म सदा प्रज्वलित रहना है और अपनी दाहक शक्ति को समेटे रह कर किसी का स्पर्श भी नहीं सहना है। वीर लोग बुद्धि का दीप बुझा कर आंख मूंद कर चलते हैं। यदि वीरता विवेक से बात पूछने जाय तो वह पतित होकर अपना तेज गंवा बैठती है। पुण्य और पाप, शान्ति और ध्वस में से कौन अभीष्ट है, जब यह दुविधा मन में पैदा होती है, तब युद्धकालीन कर्तव्य के पालन में व्याघात पहुंचता है।[27]

और यह शान्ति क्या है? यह अनीति पर स्थिर होकर भी सरला बनी हुई है। क्षुधितों का भोजन और निर्बलों की सम्पत्ति कल, बल, छल से छीन कर, सुख-समृद्धि का विपुल कोष संचित करके, उन पर प्रहरी बिठला कर यह निर्बलों और क्षुधितों से कहती है कि चुप रहो, शान्ति की सुधा बह रही है, इसमें क्रान्ति का गरल मत घोलो। हिलो-डुलो मत, मुझे अपना रक्त पीने दो, शान्ति का साम्राज्य अमर रहे, जियो और जीने दो। और ठीक भी है—जिनके हाथों में सत्ता है, वे शान्ति-भक्त लड़ाई क्यों चाहेंगे? जहां सुख का सम्यक् विभाजन नहीं हो, जहां सत्ताधारी और समाज के सूत्रधार अन्यायी और अत्याचारी हों, जहां शासन का एक मात्र आधार खड्ग-बल हो, वहां यदि कभी लोगों के दबे हुए आवेग उबल कर फूट पड़ें तो उस जगद्दहन का कौन जिम्मेदार होगा? शासकों का अहंकार ही, शोषितों की घृणा नहीं, युद्ध का जिम्मेदार है।[28]

स्पष्ट है कि दिनकर के युद्ध-दर्शन पर यद्यपि प्रगतिशील चिन्तन का काफी प्रभाव है।

जब तक मानव मानव का सुख भाग नहीं सम होगा
शमित न होगा कोलाहल संघर्ष नहीं कम होगा

---

२६. देखिए दूसरा सर्ग.
२७. देखिए चौथा सर्ग.
२८. देखिए तीसरा सर्ग.

न केवल युद्ध के मूल कारण की उन्हें सही पहचान है बल्कि वे शोषितों के न्यायपूर्ण संघर्षों का और उनमें प्रयुक्त हिंसा का समर्थन भी करते हैं; तथापि उनके चिन्तन में कुछ अन्य ऐसे तत्व भी हैं जिनका मेल इस मूल विचारधारा से नही बैठता। जहां वे शूरता और प्रतिशोध को गौरवान्वित करने लगते हैं और 'प्रतिशोध के लिए युद्ध' के सिद्धान्त को प्रचारित करते हैं, खास तौर से जहां वे कहते हैं :

सबसे बड़ा धर्म है नर का सदा प्रज्वलित रहना
दाहक शक्ति समेट स्पर्श भी नहीं किसी का सहना

और जहा वे अविवेक पूर्ण वीरता की प्रशंसा करते हैं, वहां स्पष्ट ही युद्ध के प्रति उनकी धारणा पर सामन्ती "क्षात्र धर्मवाद" की गहरी छाप है। कदाचित यह दिनकर पर तिलक का प्रभाव हो।"[२९]

फिर उनका यह कहना कि क्षमा, त्याग आदि व्यक्ति के ही लिए गुण हैं, समूह के लिए नहीं और इनका प्रभाव भी व्यक्ति पर ही पड़ता है, समूह पर नही, बिल्कुल गलत है। या तो दिनकर जी कहें कि ये व्यक्ति के लिए भी गुण नहीं हैं पर यदि व्यक्ति के लिए ये आदर्श महत्वपूर्ण हैं तो कोई कारण नही कि समूह के लिए न हों।

फिर पूरी तरह युद्ध से संबंधित इस काव्य में अलग अलग तरह के युद्धों पर विचार नही किया गया है, युद्ध मात्र को एक ही प्रकार का मान कर उसका समर्थन किया गया है। दिनकर जी के इस युद्ध-चिन्तन को यदि दो साम्राज्यवादी देशों के बीच के किसी ऐसे युद्ध पर लागू किया जाय, जिसमें उनकी सरकारें अपने वर्ग-स्वार्थ के लिए अपनी जनताओं को झोंकती हैं, तो क्या निष्कर्ष निकलेंगे ? क्या सभी युद्ध, जैसा कि दिनकर जी ने मान लिया है केवल शोषकों और शोषितों में ही या अन्यायी और न्याय पक्ष में ही होते हैं ?

इस दृष्टि से देखा जाय तो युधिष्ठिर के, जिनके दृष्टिकोण का कदम कदम पर भीष्मपितामह से खंडन दिनकर जी ने करवाया है, कथनों में बड़ा सत्य है। वे कहते हैं कि उनके महाभारत का युद्ध लड़ने में केवल क्रोध ही ही नही राज्य-लोभ और धन-लोभ भी था और मनुष्य अपनी लोलुपता को दर्प की ज्योति में छिपाता है और कि अपने अपमान के बदले मे विश्व-विनाशक युद्ध छेड़ने का किसी को कैसे अधिकार है ?

मिट जाए समस्त मही तल, क्योंकि किसी ने किया अपमान किसी का
जगती जल जाए कि छूट रहा है किसी पर दाहक बाण किसी का

---

२९. देखिए विजयेन्द्र नारायण सिंह : दिनकर : एक पुनर्मूल्यांकन, पृ. ७०.

वास्तव में कई युद्ध सत्ताधारियों के अहंकार पर आधारित होते हैं, लेकिन दिनकर के भीष्म अपने पूरे मानवतावाद के बावजूद इस प्रकार के युद्ध के विरुद्ध एक शब्द भी नहीं कहते।

अब प्रश्न उठता है कुरुक्षेत्र में अभिव्यक्त दिनकर जी के सामान्य जीवन-दर्शन का। भीष्म के माध्यम से सातवें सर्ग में और स्वयं अपने मुंह से छठे सर्ग में यह व्यक्त हुआ है।

मोटे तौर पर वह जीवन का धनात्मक और मानववादी दर्शन है। उसमें पाप के गर्त में गिरे हुए और उससे ऊपर उठने का प्रयत्न करते हुए मनुष्य के प्रति भावना है, उसके 'ज्योति-संभव' होने में आस्था है, निवृत्ति मार्ग का विरोध और स्वस्थ जीवन-यापन का संदेश है, भाग्यवाद की भर्त्सना और कर्मवाद की प्रशंसा है, भाग्यवाद को केवल अकर्मण्यता का प्रतीक नहीं, पाप का आवरण और शोषण का शस्त्र भी कहा गया है।

भाग्यवाद आवरण पाप का और शस्त्र शोषण का
जिससे रखता दबा एक जन भाग दूसरे जन का

निर्वाण की अपेक्षा भुवन के तिमिर हरण को इसमें श्रेय बताया गया है, और मृत्यु की शक्तियों पर जीवन की शक्तियों की विजय में आस्था यहां व्यक्त हुई है। नश्वरता के भय से कवि मुक्त हुआ है। इस दर्शन में वैयक्तिक भोगवाद पर सामाजिक हित की स्थापना और श्रम का गौरवगान है और है मानव-साम्य का संदेश।

सावित्री सिन्हा के शब्दो में कुरुक्षेत्र में रेणुका और द्वन्द्वगीत के दिनकर की अनेक रुग्ण और असंतुलित भावनाओं और विचारों का मूलोच्छेदन हो गया है। मृत्यु पर जीवन, भाग्य पर कर्म और पाप पर पुण्य की विजय की यह कहानी दिनकर के मानसिक संतुलन और स्वास्थ्य-लाभ की कहानी है।"

पर एक तो इस दर्शन में भाग्यवाद के विरोध के बावजूद दिनकर जी अपने अभीप्सित साम्य के लिए भगवान से प्रार्थना करने के सिवा कुछ नहीं कर पाते :

साम्य की वह रश्मि स्निग्ध उदार
कब खिलेगी, कब खिलेगी विश्व में भगवान ?

और दूसरे, सातवें सर्ग में व्यक्त भीष्म के मानवतावादी दर्शन के साथ, दूसरे तीसरे और चौथे सर्ग में व्यक्त उनके युद्धवाद का पूरा तरह मेल नहीं बैठता।

---

३०. युग चारण : दिनकर, पृ. १२८.

प्रतिशोध के लिए युद्ध का सिद्धान्त, उनके त्याग, अहिंसा और प्रेम के संदेशों के अनुकूल नहीं है। इस अन्तर्विरोध को साधन और साध्य का अन्तर्विरोध कह कर टाला नहीं जा सकता। हां यदि विषमता दूर करने के लिए युद्ध के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया होता तो बात समझ में आ सकती थी।

इसलिए मैं आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी के इस निष्कर्ष से सहमत हूं कि "कुरुक्षेत्र मे युद्ध-सबंधी आधुनिक वास्तविकता का यथेष्ट आकलन नहीं है, न उसमें युद्ध-सबंधी नयी समाजवादी दृष्टि का ही पूरा निरूपण है"[३१]। वास्तव में कुरुक्षेत्र की विचार प्रधानता के बावजूद उसमें किसी प्रबुद्ध चिन्तक का मस्तिष्क नहीं, एक साधारण मनुष्य का शंकाकुल हृदय,[३२] ही बोलता है।

इन सब बातों के बावजूद, और बावजूद इसके कि कुरुक्षेत्र का प्रबंधत्व सिर्फ विचार-प्रकाशन का ही मुहताज है, कुरुक्षेत्र हिन्दी की प्रगतिशील कविता की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। उसकी सबसे बड़ी सफलता यह है कि मात्र विचार-कथन होते हुए भी, बिना घटनाओं के उतार-चढ़ाव, बिना प्रकृति-चित्रण, बिना भावनाओं के घात-प्रतिघात, नाटकीयता और चरित्रोद्‌घाटन के भी वह पाठक को न केवल आकर्षित ही किये रहता है, बल्कि प्रभावित भी करता है। विचार-कथन मे भी आवेश का ऐसा स्पर्श कम ही हिन्दी कवियों के बस की बात है।

कुरुक्षेत्र के बाद के उनके संकलनों में बापू गांधी जी की शहादत पर और उनकी नोआखली यात्रा पर लिखी हुई तीन कविताओं का संग्रह है। नोआखली यात्रा से संबंधित कविता महत्वपूर्ण है। इस कविता में गांधी जी के महत्व का उद्‌घाटन उन वीर नायकों की पृष्ठभूमि पर किया गया है, जो वह्नि के वारों को प्रखर वह्नि बन कर झेलते हैं और विष का उत्तर प्रचंड विष से देते हैं :

बापू तू वह नहीं जिसे ज्वालाएं घेरे चलती हैं
बापू तू वह कुछ नहीं दिशाएं जिसको देख मचलती हैं
तू सहज शान्ति का दूत मनुज के सहज प्रेम का अधिकारी
दृग में उड़ेल कर सहज शील देखती तुझे दुनियां सारी

कविता में साम्प्रदायिक घृणा के सांपों की बांबियों पर नंगे पांव घूम कर अहिंसा और प्रेम का अलख जगाने वाले बापू का आन्तरिक शौर्य से दीप्त रूप, गहरी मानवीयता के साथ उभारा गया है :

---

३१. आधुनिक साहित्य.
३२. कुरुक्षेत्र, भूमिका.

तू कालोदधि का महा स्तंभ, आत्मा के नभ का तुंग केतु
बापू तू मर्त्य-अमर्त्य, स्वर्ग-पृथ्वी, भू-नभ का महासेतु ।

धूप और धुंआ (५१) तथा नीम के पत्ते (५२) में स्वराज्य से फूटने वाली आशा की धूप और उसके विरुद्ध जन्मा हुआ असंतोष का धुंआ, दोनों ही प्रतिबिम्बित हुए हैं । इन कविताओं में दिनकर जी ने शैली का एक नया लहजा—सरल, उर्दू शैली के प्रभाव से युक्त एक हल्का सा, लहजा—जो व्यंग कविताओं के लिए अधिक उपयुक्त है, अपनाया है । इन संकलनों की (क्योंकि अधिकांश कविताएं इन दोनों संकलनों में उभयनिष्ठ हैं) प्रगतिशील दृष्टि से महत्वपूर्ण कविताओं में 'जनता और जवाहर', 'जनतंत्र का जन्म', 'व्यष्टि', 'भारत', 'मैंने कहा लोग यहां तब भी मरते हैं', 'पहली वर्षगांठ', 'नेता', तथा 'रोटी और स्वाधीनता' को गिना जा सकता है । 'जनता और जवाहर' बापू की शहादत के अवसाद और जवाहर से जनता की आशाओं की सुन्दर अभिव्यक्ति है । 'व्यष्टि' में उन लोगों का मजाक उड़ाया गया है, जो व्यक्ति की उपेक्षा कर एक निराकार समाज का कल्याण चाहते हैं। यद्यपि साम्यवादियों के विरुद्ध (जिनके लिए कि इसे लिखा गया है) यह बात लागू नहीं होती, पर यदि किसी के विरुद्ध लागू होती हो तो बात पते की है :

मढ़ कभी सकोगे चाम निखिल भूमंडल पर
बेकार रात दिन इतना स्वेद बहाते हो
कांटे पथ में हैं अगर, व्यक्ति के पांवों में
तुम अलग-अलग जूते क्यों नहीं पिन्हाते हो ?

'भारत' का एक मुक्तक बापू के अनुयायियों पर बड़ा सटीक व्यंग है :

गांधी को उलटा घिसो और जो धूल झरे
उसके प्रलेप से अपनी कुण्ठा के मुख पर
ऐसी नक्काशी गढ़ो कि जो देखे बोले
आखिर बापू भी और बात क्या कहते थे ?

'मैंने कहा, लोग यहां तब भी मरते हैं,' में इसी तरह का व्यंग सेवा का शोर मचाने वालों पर है । 'पहली वर्षगाठ' में भी शैली के बिखराव के बावजूद बीच बीच में अच्छे व्यंग हैं ।

आजादी खादी के कुरते की एक बटन
आजादी टोपी एक नुकीली तनी हुई
फैशन वालों के लिए नया फैशन निकला

मोटर में बांधो तीन रंगवाला चिथड़ा,
औ गिनो कि आंखों पड़ती हैं कितनी हम पर
हम पर यानी आजादी के पैगम्बर पर। (नीम के पत्ते)

'नेता' में नेतृत्व के मुहताज लोगों को खरी-खरी सुनाई गयी है :

नेता, नेता, नेता,
क्या चाहिए तुझे रे मूरख
सखा? बंधु? सहचर? अनुरागी?
या जो तुझ को नचा नचा मारे वह हृदय-विजेता?
नेता, नेता, नेता! (नीम के पत्ते)

'जनतंत्र का जन्म' भारत में जनतंत्री विधान लागू होने पर लिखी गयी एक जनवादी कविता है। इसकी पंक्ति 'सिंहासन खाली करो कि जनता आती है' काफी लोकप्रिय हुई हैं। 'रोटी और स्वाधीनता' स्वाधीनता का गौरव गान करने वाली एक प्रभावपूर्ण कविता है। वह यद्यपि स्वाधीनता के अन्तर्गत अपने परिश्रम का पुनीत फल पाने की स्वाधीनता को भी मानती है तथापि ऐसी रोटी को धिक्कारती है, जो स्वाधीनता को गिरवी रख कर मिली हो :

उस रोटी को धिक्कार, बचे जिससे मनुष्य का मान नहीं
खा जिसे गरुड़ की पांखों में रह पाती मुक्त उड़ान नहीं।
(नीम के पत्ते)

'रश्मि रथी' (५२) गुप्त जी की परम्परा का एक प्रबन्ध काव्य है, जिसमें दिनकर जी ने कर्ण को दलितों और पीड़ितों के नेता के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। वास्तव में कर्ण के रूप में उन्होंने अपने आदर्श नायक की कल्पना सामने रखी है, जिसमें शौर्य और शील का समन्वय, कर्मवादी जीवन दृष्टि, जागृत अहं, और अग्निमय प्रतिशोध आदि दिनकर जी के आदर्श गुणों के अतिरिक्त परंपरा से प्राप्त दान-वीरता, मैत्री-निर्वाह और कर्तव्य-निष्ठता आदि गुण संयोजित किये गये हैं।[33] लगे हाथ युद्ध के मामले पर भी दिनकर जी ने फिर कुछ विचार किया है। मोटे तौर पर उनका दृष्टिकोण यहां भी वही है, जो कुरुक्षेत्र में था।[34], पर युद्ध के समर्थन का उनका उदीप्त स्वर यहां कुछ धीमा पड़ गया है। उसे हिंसा का मलिन पुत्र कहा गया है और किसी युद्ध को धर्मयुद्ध कहने की वृत्ति का विरोध किया गया है :

---

३३. सावित्री सिन्हा, युग चारण : दिनकर, पृ. १४८.
३४. देखिए दूसरा सर्ग.

हो जिसे धर्म से प्रेम, कभी वह कुत्सित कर्म करेगा क्या
बर्बर कराल दंष्ट्री बनकर मारेगा और मरेगा क्या ?

स्पष्ट ही यह गांधी जी का प्रभाव है। रश्मिरथी कुल मिला कर साधारण ही काव्य है। उनके लिए दिनकर के प्रशंसक आलोचक प्रो. शिवबालक राय ने भी झुंझलाकर कहा है—'रश्मिरथी कुकवित्व का गढ़ है'।[१५]

दिल्ली (५४) में दिनकर जी की हुंकार और सामधेनी की दिल्ली से संबंधित दो पुरानी कविताओं के अतिरिक्त, 'हक की पुकार' और 'भारत का यह रेशमी नगर' नाम की दो नयी कविताएं भी संकलित हैं। ये दोनों कविताएं, कवि की और भारतीय जनता की स्वातंत्र्योत्तर मनोभावनाओं को व्यक्त करती है। 'दिल्ली' सत्ताधारियों का प्रतीक है। और उसे दिनकर जी ने जनता की ओर से खरी-खरी सुनाई है। 'हक की पुकार' में प्रभावक ढंग से एक गरीब किसान का बिम्ब सामने लाकर दिल्ली के सत्ताधारियों का नीचे उतर जनता के सुख-दुख में हाथ बंटाने के लिए आह्वान किया गया है :

मन की उमंग पर जंजीरें तन ऊपर एक लंगोटी है
आंखें गड्ढों में धंसी हुई हाथों में सूखी रोटी है
पतझड़ के बरगद के समान सूखी हड्डी पर तना हुआ
यह कौन खड़ा है धरती पर किस्मत की शंका बना हुआ ?
यह वही आदमी है जिसकी पीड़ाओं को आगे करके
स्वाधीन हुए थे तुम जिस की प्रतिमा जग के सम्मुख धर के
यह वही आदमी जिसकी तुम, कसम रात दिन खाते थे
बाहर भीतर हर जगह नाम जिसका हर दम दुहराते थे
यह वह मनुष्य जिसकी ज्वाला की ढाल बना तुम लड़ते थे
जिसकी तावीज पहन कर तुम शेरों की तरह अकड़ते थे

तावीज के माध्यम से एक महत्वपूर्ण सत्य को सशक्त अभिव्यक्ति मिली है।

'भारत का यह रेशमी नगर' में दिल्ली के ठाठ-बाट के विस्तृत वर्णन के बाद सिद्धार्थ के रूपक के सहारे समसामयिक भारतीय जीवन के एक बड़े सत्य को अभिव्यक्ति दी गयी है :

गंदगी, गरीबी, मैलेपन को दूर रखो
शुद्धोदन के पहरे वाले चिल्लाते हैं

---

१५. देखिए उनकी पुस्तक साहित्य के सिद्धान्त और कुरुक्षेत्र.

है कपिल वस्तु पर फूलों का शृंगार पड़ा
रथ-समारूढ़ सिद्धार्थ घूमने जाते हैं
सिद्धार्थ देख रम्यता रोज ही फिर आते
मन में कुत्सा का भाव नहीं पर जगता है
समझाए उनको कौन नहीं भारत वैसा
दिल्ली के दर्पण में जैसा वह लगता है ?

कविता के अन्त में उनके स्वर में काफी आक्रोश आ जाता है, और वे चेतावनी के स्वर में कहने लगते हैं :

निर्धन का धन पी रहे लोभ के प्रेत छिपे
पानी विलीन होता जाता है रेतों में
हिल रहा देश कुत्सा के जिन आघातों से
वे नाद तुम्हें ही नहीं सुनाई पड़ते हैं
निर्माणों के प्रहरियों ! तुम्हें ही चोरों के
काले चेहरे क्या नहीं दिखाई पड़ते हैं ?
तो होश करो, दिल्ली के देवो ! होश करो
सब दिन तो यह मोहिनी न चलने वाली है
होती जाती हैं गर्म दिशाओं की साँसें
मिट्टी फिर कोई आग उगलने वाली है।

नीलकुसुम (५४) में, जैसा कि दिनकर जी ने स्वयं 'दो शब्द' में लिखा है, उन्होंने प्रयोगवाद का पिछलगुआ कवि बनने का प्रयास किया है। पर इसमें वे सफल हुए हों, ऐसा नहीं कहा जा सकता। हां कविता के प्रति कवि की दृष्टि में आया हुआ एक बड़ा परिवर्तन अवश्य नीलकुसुम में स्पष्टतापूर्वक लक्षित किया जा सकता है। दिनकर अब कविता कविता के लिए लिखने लगे हैं, कविता के प्रति खिलवाड़ की प्रवृत्ति उनमें प्रबल हो गयी है। लेकिन साथ ही कविता की भाषा को भी वे साधारण बोलचाल की भाषा के निकट आश्चर्यजनक ढंग से ले आये हैं।

फिर भी प्रगतिशील दृष्टि से संकलन की उल्लेखनीय कविताओं में 'कवि की मृत्यु,' 'तुम क्यों लिखते हो,' 'नींव का हाहाकार,' 'भूदान,' 'किसको नमन करूं,' 'राष्ट्र देवता का विसर्जन' और 'हिमालय का संदेश' के नाम लिये जा सकते हैं।

'कवि की मृत्यु' में अब भी दिनकर कवि को 'सोये हुओं को जगाने वाला' कहते हैं। 'तुम क्यों लिखते हो' में भी कविता के शब्दों की तहों में अपने दो

छिपाने वाले कवियों का विरोध किया गया है और कवि को पहले मनुष्य बनने की राय दी गयी है। 'नींव का हाहाकार' दिनकर की पुरानी प्रगतिशील कविताओं की ही परंपरा में रची गयी है :

कांपती है वज्र की दीवार
नींव में से आ रहा है क्षीण हाहाकार

'भूदान' विनोबा के भूदान आन्दोलन की महत्ता प्रकट करती है :

स्वत्व छीन कर क्रान्ति छोड़ती कठिनाई से प्राण
बड़ी कृपा उसकी भारत में मांग रही वह दान।

'किसको नमन करूं' में दिनकर ने प्रश्न उठाया है कि भारत क्या है? क्या वह नक्शे पर बना हुआ एक त्रिभुज है, क्या वह इस देश की धरती और पानी है? दिनकर का उत्तर है कि भारत कुछ ऊंचे मानवीय आदर्शों का ही नाम है :

जहां कहीं एकता अखंडित, जहां प्रेम का स्वर है
देश देश में वहां खड़ा भारत जीवित भास्वर है

'राष्ट्र देवता का विसर्जन' एक राष्ट्रवादी कवि के द्वारा राष्ट्रीयता की सीमाओं को पहिचानने का प्रमाण है। जनता की स्वाधीनता के आन्दोलन में राष्ट्रीयता के प्रारंभिक महत्व को स्वीकार करते हुए वे उसके फासिस्ट रूपों में संक्रमण से बेखबर नहीं हैं :

राष्ट्र देव वह भी लेता है नाम तुम्हारा
खींच रहा जो शान्ति सुन्दरी का अचल है।

लेकिन उग्र राष्ट्रवाद से दिनकर का उद्धार स्थायी रूप से नहीं हो पाया, इसका प्रमाण आगे आने वाली उनकी परशुराम की प्रतिज्ञा है। 'हिमालय का संदेश' एक महत्वपूर्ण लम्बी कविता है। रोटी और चिन्तन स्वातंत्र्य की, हिंसा और अहिंसा तथा शान्ति और क्रान्ति की समस्या को इस कविता में कई स्वरों के माध्यम से उभारा गया है। कवि न तो सिर्फ रोटी के लिए सोचने की आजादी को गिरवी रखना चाहता है, और न चिन्तन स्वातंत्र्य के नाम पर अधिकांश जनता को भूखों रखने के पक्ष में है। उसकी मांग तो यह है कि :

रोटी और अभय भी दो
तन को दो आहार अन्न का, मन को चिन्तन का अधिकार
तन-मन दोनों बढ़ें अगर तो चमक उठे सचमुच, संसार
बाधा मुक्त करो मानस को, शंका रहित हृदय भी दो।

यद्यपि कविता की परिणति धर्म और धार्मिक श्रद्धा को धारण किये रहने के उपदेश में होती है, पर फिर भी इसका स्वस्थ और युद्ध-विरोधी स्वर इसे महत्वपूर्ण बना देता है।

उर्वशी (६१) यद्यपि प्रगतिशील दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण काव्य नहीं है, तथापि क्योंकि यह दिनकर जी के उत्कृष्ट काव्यों में से एक है, इसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। उर्वशी और पुररवा की कहानी के माध्यम से उर्वशी में मानवीय प्रेम का व्यापक और अधिकतर स्वस्थ चित्रण किया गया है। डा. नगेन्द्र के शब्दों में पुरुष और नारी के प्रेम के 'सूक्ष्म-प्रबल, कोमल, कठोर, तरल-प्रगाढ़, मोहक-पीड़क, उद्वेगकर और सुखकर, दाहक और शीतल, मृण्मय और चिन्मय, अनेक रूपों का उर्वशी में अत्यन्त मनोरम चित्रण हैं और सबसे अधिक आकर्षक है प्रेम की उस चिर अतृप्ति का चित्रण, जो भोग से त्याग और त्याग से भोग अथवा रूप से अरूप और अरूप से रूप की ओर भटकती हुई मिलन तथा विरह में समान रूप से व्याप्त रहती है'।[३६] प्रेम के प्रति स्वच्छन्दतावादी (अप्सरावादी) और संतुलित (गार्हस्थ्य) दृष्टिकोण तथा नारी और पुरुष के अलग अलग प्रेम स्वभाव का चित्रण सूक्ष्म और मनोवैज्ञानिक है। पुरुष की नारी के प्रेम में ही समाहित होकर न रह सकने की, उसे अतिक्रान्त करने की वृत्ति पर अच्छा प्रकाश डाला गया है। पर एक तो उर्वशी की अन्तिम परिणति आध्यात्मिक है (अन्त पुररवा के वैराग्य लेने के साथ होता है), गीता की अनासक्ति को उसमें लाकर उलझाया गया है और दूसरे बीच बीच में अवसर निकाल कर दिनकर जी ने अपना बुद्धि-विरोधी दृष्टिकोण व्यक्त किया है। दिनकर जी ने कुरुक्षेत्र की तरह यहां भी बुद्धि को अकर्मण्यता या निवृत्ति के कारण रूप मे ही कल्पित किया है।[३७] यह दृष्टिकोण गलत है। कुल मिला कर उर्वशी की चेतना अध्यात्मवादी नही, भोगवादी है। हां, भोगवाद अध्यात्म के स्पर्शों से सन्तुलित जरूर है। निस्सदेह मनुष्य की प्रेम भावना को इतने व्यापक फलक पर चित्रित करने वाला और उसके ऐन्द्रिय भोग को इतने विशाल पैमाने पर गौरवान्वित करने वाला और कोई काव्य हिन्दी मे नही है।

परशुराम की प्रतीक्षा (६३) में पुरानी कुछ कविताओं के अतिरिक्त दिनकर जी की भारत-चीन सघर्ष के समय लिखी कविताएं सकलित हैं। जो

३६. नगेन्द्र : अन्तर्मथन का काव्य, उर्वशी : गोपाल कृष्ण कौल द्वारा संपादित पुस्तक 'दिनकर : सृष्टि और दृष्टि' में पृ. २३१.
३७. देखिए पृ. ५६-६१.

दिनकर नील कुसुम में राष्ट्र देवता का विसर्जन कर रहे थे, वे इस संघर्ष के समय एक घोर राष्ट्रवादी और युद्ध-लोलुप कवि बन कर परशुराम की प्रतीक्षा में हमारे सामने आये है। 'परशुराम की प्रतीक्षा' नामक लम्बी कविता में दिनकर जी का परशुराम उन (कांग्रेसी नेताओं का जिनके हाथ में शासन की बागडोर है) का पाप ढोता है :

गीता में जो त्रिपिटक-निकाय पढ़ते हैं
तलवार गला कर जो तकली गढ़ते हैं
शीतल करते हैं अनल प्रबुद्ध प्रजा का
शेरों को सिखलाते हैं धर्म अजा का

यदि ये पंक्तियां युद्ध-विरोधी सच्चे गांधीवादियों पर लिखी गयी होतीं तो शायद सही होतीं, पर दिनकर जी ने यहां कांग्रेसी सरकार को गांधीवादी सरकार मान लिया है। जिस सरकार के नेता "एक इंच जमीन भी नहीं छोड़ने और अन्त तक लड़ने" की प्रतिज्ञाएं दुहरा रहे थे, उन पर यह आरोप न केवल गलत है बल्कि उन्हें झूठे गौरव से अन्वित करने वाला भी है। भारत-चीन संघर्ष के दौरान प्रसिद्ध गांधीवादी विचारकों—विनोबा, जयप्रकाश, सुन्दर लाल आदि ने भारत सरकार की युद्ध से ही समस्या सुलझाने की तात्कालिक नीति का थोड़ा बहुत विरोध ही किया था और प्रसिद्ध शान्तिवादी बर्टेन्ड रसल ने उसे युद्धोन्माद की संज्ञा देकर उसकी भर्त्सना की थी, पर दिनकर जी उसी सरकार की भर्त्सना इस बात के लिए करते हैं कि वह तलवार गलाकर तकली बना रही है। वास्तव में परशुराम की प्रतीक्षा में न केवल उनका युद्ध-वाद ही विवेक-हीनता के नये आयाम छूने लगा है, बल्कि उनका दृष्टिकोण भी अन्ध-राष्ट्रवादी हो गया है। उनके हिसाब से भारतीयों का चरम पाप यह है कि :

दैहिक बल को कहता यह देश गलत है !

कुरुक्षेत्र से कहीं आगे बढ़ कर यहां निरपेक्ष युद्धवाद का गौरव गान किया गया है :

जब तक प्रसन्न यह अनल, सुगुण हंसते हैं
हैं जहां खड्ग, सब पुण्य वहीं बसते हैं

यही नहीं, उन्होंने भारतीयों को पशु बनने की भी प्रेरणा दी है—

शुरू हो गया भैंस भैंस का खेल, जानवर तू भी बन ले
पशु की तरह पुकार यही वन की भाषा है

युद्ध के संबंध में दिनकर जी के गलत दृष्टिकोण का प्रारम्भ कुरुक्षेत्र से ही होता है। ऊपर मैं कह चुका हूं कि वहां भी उनमें युद्ध को किन्ही निश्चित ऐतिहासिक परिस्थितियों में न रख कर संदर्भ-हीन युद्ध-समर्थन की प्रवृत्ति बीज रूप में मिलती है। पर चीन-भारत संघर्ष और पाकिस्तान-भारत संघर्ष के समय तो उनका यह युद्धवाद वास्तव में रक्तस्नान और नर-संहार की बर्बर मध्यकालीन पिपासा को अभिव्यक्ति देने लगा है। अपने हाल ही के एक लेख में उन्होने लिखा है : भारत का पतन इसलिए नही हुआ था कि यह देश पापियों का देश था, पतन उसका इसलिए हुआ कि सभ्यता उसने जरूरत से ज्यादा सीख ली थी। बहुत ऊंचे आदर्श व्यक्ति को तो ऊंचा उठा ले जाते हैं मगर राष्ट्रों का विनाश कर डालते हैं।[३८] ऐसा युद्धवादी दृष्टिकोण मध्यकालीन क्षात्रधर्मवाद, आधुनिक राष्ट्राहंकारवाद तथा फासिज्म से ही संबधित है, इसका प्रगतिशील कविता से कुछ भी लेना देना नही है।

इन युद्ध संबधी कविताओं के अतिरिक्त संकलन की 'समरशेष है', तथा 'एनार्की' कविताएं भी उल्लेखनीय हैं। 'समरशेष है' भारत की अधूरी आजादी की कविता है, जिसमें इसको पूर्णता की ओर ले जाने का, आर्थिक समानता के लिए संघर्ष करने का आह्वान है। 'एनार्की' भारत-चीन युद्ध के समय के भारत की अराजकता पूर्ण स्थिति पर मनोरंजक ढंग से प्रकाश डालती है।

समग्र रूप से यह कहा जा सकता है कि परशुराम की प्रतीक्षा की कई कविताओं में वास्तव में उवर्शीकार अपने ही शब्दों में 'कविता की गरदन पर पांव धर कर खड़ा' हुआ है।

हिन्दी के क्रान्तिवादी कवियो मे दिनकर का स्थान महत्वपूर्ण है। श्री शिवबालक राय के अनुसार उनकी क्रान्तिवादी कविताओं में क्रान्तिकारी कविताओं के तीनों मूल तत्वों : उत्साह की अजस्रता, संघर्ष की तीव्रता, और लक्ष्य की स्पष्टता की मुष्टु अभिव्यक्ति हुई है।[३९] श्री रामवृक्ष बेनीपुरी का कहना है कि "क्रान्तिवादी को जिन जिन हृदय मन्थनों से गुजरना होता है, दिनकर की कविता उनकी सच्ची तस्वीर रखती है"।[४०] लेकिन जैसा कि पहले भी संकेत किया जा चुका है, दिनकर जी की क्रान्ति विपथगा है। उनकी क्रान्ति-धारणा सर्वनाशवादी और अराजकतावादी है। श्री शिवदान सिंह चौहान के शब्दों में उनकी क्रान्ति-कल्पना रचनात्मक नही, ध्वंसात्मक है। उनकी

---

३८. दिनकर : युद्ध और कविता, 'आलोचना' त्रैमासिक में.

३९. देखिए उनकी पुस्तक 'दिनकर' पृ. ७३.

४०. दिनकर जी के संकलन हुंकार (दूसरे संस्करण की भूमिका, क्रान्ति का कवि, देखिए).

कविताओं में जिस क्रान्ति का वर्णन है, वह वास्तव में क्रान्ति नहीं, अराजकता है। उनका नाशवाद मानववादी होते हुए भी संस्कृति-विरोधी है।[४१] इस संदर्भ मे यह उल्लेखनीय है कि १६४० में व्यक्त दिनकर के संबंध में चौहान जी का यह संदेह सही निकला कि क्योंकि उनमें क्रान्ति की आवश्यकताओं की चेतना का अभाव है, इसलिए वे अन्त तक क्रान्ति का समर्थन और स्वागत कर सकेंगे, यह संदेहास्पद है। वास्तव में आगे चल कर उन्होंने न केवल कविता में प्रगतिशील आन्दोलन का विरोध किया, बल्कि वे कविता की सामाजिक उपयोगिता तक से भी इनकार करने लगे।[४२]

शारीरिक शक्ति और शौर्य के प्रति उनका झुकाव हुंकार की 'महामानव की खोज' से प्रारम्भ होता है और कुरुक्षेत्र तथा रश्मिरथी में पुष्पित पल्लवित होता हुआ परशुराम की प्रतीक्षा में अपनी चरम परिणति पर पहुंचता है। डा. सावित्री सिन्हा ने भी स्वीकार किया है कि "गांधी दर्शन को निर्बल की क्षमा और दया के सुघर बेल बूटों से अजाधर्म को सजाने वाला दर्शन मान कर दिनकर उस प्रचण्ड मानव के अन्वेषी बने, जिसकी सांसों पर प्रभंजन नृत्य करे और जिसके इशारों पर इतिहास बदल जाय। दिनकर की इन कल्पनाओं में कहीं कही हिटलर और मुसोलिनी के व्यक्तित्वों की राक्षसी गंध भी आती जान पड़ती है।[४३] वास्तव में दिनकर के 'क्षात्रधर्मवाद' युद्धवादी दर्शन और बुद्धि-विरोधी स्वर में फासिज्म के छिटपुट प्रभाव हैं। कुरुक्षेत्र में वे भीष्म से कहलाते है :

बुझा बुद्धि का दीप वीर पर आंख मूंद चलते हैं

और उर्वशी में कहते हैं :

पढ़ो रक्त की भाषा को, विश्वास करो इस लिपि का

बुद्धि का दीप बुझा कर रक्त की भाषा पढ़ने का यह सिद्धान्त निश्चय ही हिटलर के इस प्रसिद्ध सिद्धान्त से बहुत दूर का नहीं है कि अपने दिमागों से नहीं अपने खून से सोचो।[४४]

दिनकर जी की प्रगतिशील कविताओं की सबसे बड़ी सीमा यह है कि

---

४१. देखिए उनका पन्त जी पर लेख, हंस, दिसम्बर ४०.

४२. देखिए चक्रवाल की भूमिका.

४३. युग चारण : दिनकर, दिल्ली ६३, पृ. २६८.

४४. उद्धृत, जान लेविस की पुस्तक मार्क्सिज्म अॅण्ड द ओपन माइंड से, लंदन १६५७ पृ. १३.

उनमें यथार्थवाद का लगभग अभाव है।[४५] एक तरह से उनका प्रगतिशील काव्य पन्त जी के प्रगतिशील काव्य का पूरक है। पन्त जी में भावोच्छ्वास कम, सामाजिक यथार्थ की चेतना अधिक है, दिनकर जी में भावोच्छ्वास अधिक, यथार्थ-चेतना कम है। भावोच्छ्वास तो उनके काव्य में इतना है कि एक समीक्षक ने उन्हें किशोरों का कवि[४६] तक घोषित किया है।

श्री विजयेन्द्र नारायण सिंह के अनुसार दिनकर एक जन्मजात रूमानी कवि हैं, उनकी रूमानी और सुकुमार वृत्ति का प्रभाव उन कविताओं पर भी कम नहीं है जिन्हें साधारणतया उनकी क्रान्तिकारी कविताएं कहा जाता है। उनकी सभी प्रमुख क्रान्तिवादी कविताओं के बिम्ब-विधान पर विचार करते हुए वे इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि सुकुमार और नारी बिम्बों की भरमार के कारण उनकी ऐसी कविताएं सफल नहीं कही जा सकतीं। क्योंकि सुकुमार बिम्ब-विधान क्रान्तिकारी चिन्तन का वस्तुगत प्रतिरूप (आब्जेक्टिव कोरिलेटिव) नहीं हो सकता।[४७]

यद्यपि दिनकर जी (स्वयं अपने ही शब्दों में) छायावाद की ठीक पीठ पर आये तथापि उनकी रचनाओं में द्विवेदीयुगीन अभिधात्मकता का प्राधान्य है। उनकी विशेषता यह है कि उन्होंने इस अभिधात्मकता को अपने व्यक्तित्व के ओज, मेधा की सूझबूझ और वाणी के विलास से दीप्त कर दिया है।[४८]

विजयेन्द्र नारायण सिंह के अनुसार भाषा की सफाई दिनकर की सबसे बड़ी उपलब्धि है, हालांकि उनकी अभिव्यंजना का धरातल सम नहीं है। कुछ श्रेष्ठतम पंक्तियों के बाद वे भरती की अनेक पंक्तियां लिख जाते हैं। कवित्त और सवैये का दिनकर जैसा सफल प्रयोग हिन्दी के और किसी आधुनिक कवि ने नहीं किया है। वे इन छन्दों का पुरानापन बिल्कुल चाट गये हैं।[४९]

---

४५. शिवदान सिंह चौहान, वही लेख, हंस, दिसम्बर ४०.
४६. देखिए विजयेन्द्र नारायण सिंह, दिनकर : एक पुनर्मूल्यांकन, पृ. ११७.
४७. वही, पृ. १२-१७.
४८. रवीन्द्र भ्रमर, हिन्दी के आधुनिक कवि, दिल्ली ६४, पृ. १९८.
४९. दिनकर : एक पुनर्मूल्यांकन, पृ. ११६ और ११.

केन्द्रीय वर्ग के कवि

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, इस वर्ग में मोटे तौर पर वे कवि आते हैं जिन्हें हिन्दी समीक्षा में 'प्रगतिवादी कवि' कह कर पुकारा गया है। अन्य वर्गों के कवियों की अपेक्षा इस वर्ग के कवियों में एक प्रखर सामाजिक चेतना और राजनीतिक जागरूकता मिलती है। सामाजिक यथार्थ इन कवियों की प्रधान विषय-वस्तु है। अब हम इस वर्ग के कुछ प्रमुख कवियों के कृतित्व पर विचार करेंगे।

रामेश्वर करुण

करुण जी ने ब्रज भाषा में अपनी करुणसतसई १९३४ में लिखी थी। काल क्रम के अनुसार उन्हें प्रगतिशील कविता के प्रारंभिक पुरस्कर्ताओं में गिना जाना चाहिए। उनकी खड़ी बोली हिन्दी में लिखी हुई काव्य कृतियों में चिनगारी और तमसा (४४) प्रमुख हैं।

चिनगारी, जैसा कि भूमिका से स्पष्ट है, बच्चों के लिए लिखी हुई कविताओं का संग्रह है। बच्चों मे स्वाधीनता और समानता के भाव भरना ही इन कविताओं का उद्देश्य है। पूरे संकलन में राष्ट्रीय और प्रगतिशील भावनाएं सरल शब्दों और सीधी-सादी शैली में अभिव्यक्त की गयी हैं। कविताएं बच्चों में स्वाधीन-चिन्तन, धर्म और ईश्वर की रूढ़ियों से मुक्ति, साहस, ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध विद्रोह आदि की प्रवृत्तियां जगाने का प्रयास करती हैं, इसका पता संकलित कविताओं के शीर्षकों से ही लग जाता है—जिनमें प्रमुख हैं—'हमारा देश', 'गुलामी का कालर', 'बंधन में आराम कहां', 'विदेशी बनिया', 'स्वर्ण-पींजरा', 'वे और हम', 'ओ पागल हिन्दुस्तानी', 'रूसी माता', 'विज्ञान का बल', 'रोटी की राम कहानी', 'यह बाल-कृषक वेचारे' और 'यह युवा शक्ति अलबेली'। एक कविता में संसार की विषमता और उसके रक्षक ईश्वर के विरुद्ध सरल शब्दों में आक्रोश व्यक्त किया गया है :

एक ओर निर्धन बेचारे
ताप ताप कर रात बिताते

एक ओर धनिकों को देखा
कुत्तों को मखमल पहनाते
मिले कहीं यदि ईश्वर हमको
जिसने यह संसार रचा है
कान पकड़ कर पूछें उससे
क्यों इतना अंधेर मचा है

—इतना अंधेर, चिनगारी-७४

करुण जी की ये सीधी सरल कविताएं बाल-साहित्य में प्रगतिशील आन्दोलन का आलोक पहुंचाने की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं।

तमसा करुण जी की ५६ कविताओं का संग्रह है। अपने समय के सामाजिक यथार्थ का, उसके सभी अंगों और पक्षों सहित इतना व्यापक चित्रण, शायद ही एक साथ प्रगतिशील कविता के किसी और संकलन में मिले। करुण जी केन्द्रीय वर्ग के सामाजिक-क्रान्ति पर जोर देने वाले प्रगतिशील कवि हैं। उन्होंने केवल राजनीतिक-क्रान्ति और राजनीतिक समस्याओं को ही चित्रित नहीं किया है—बल्कि उनका तो बहुत कम चित्रण उनकी कविताओं में है—उनका जोर राजनीतिक की अपेक्षा सर्वांग सामाजिक क्रान्ति पर है। इस दृष्टि से वह शील, सुदर्शन चक्र आदि राजनीतिक रुझान के कवियों से एकदम अलग हैं। सामाजिक जीवन के यथार्थ के सभी महत्वपूर्ण पक्षों और अंगो की ओर उनका ध्यान गया है और उन्होंने अपनी कविताओं में उनकी अभिव्यक्ति की है—ईश्वर और धर्म का ढोंग, महात्मा गांधी और उनके नेतृत्व में चलने वाला राष्ट्रीय स्वाधीनता का आन्दोलन, सामाजिक-आर्थिक विषमताएं, रुपये की महिमा, नये संसार का सपना, रोटी की राम कहानी, मजदूर और किसान, मजदूर और किसान नारियां, बच्चे, दीन दुखी देहाती, हतभागी ग्राम बधू, रूसी श्रमिकों की झांकी, जात-पांत का बंधन, अछूतों का दर्द, मठ-मन्दिर और शिवाले, बाल-विधवा, वैभव-भोगी साधु, देशीराजा, शृंगारिक और छायावादी-रहस्यवादी कवि, प्राचीन भारतीय ग्रामों की सुखपूर्ण स्थिति, आज के गांव, ग्रामीणों में डांगर-ढोर, अन्यायपूर्ण कानून और न्याय, गांव का सूदखोर बनियां, बेकारी की समस्या, भारत में ब्रिटिश साम्राज्य के एजेन्ट 'राय बहादुर' और 'सर' के उपाधिधारी 'काले विषधर', 'भारत भामा' का साम्राज्यवादी आर्थिक-शोषण, अलबेली युवा-शक्ति, और हंसिये हथौड़े की वन्दना—कहने का अभिप्राय यह है कि अपने समय के सामाजिक यथार्थ के किसी महत्वपूर्ण पक्ष की उन्होंने अपनी कविताओं में उपेक्षा नहीं की है।

प्रारंभ की कविता में ईश्वर की यह वंदना है :

जो 'दीन बंधु' कहला कर, दीनों के दुःख न हरता
जो विश्वंभर बन कर भी भूखों के पेट न भरता
निर्धन की दीन दशा पर, जो तरस न कुछ भी खाता
जोड़ा है जिसने जग में, धनियों से अपना नाता

—जिसने यह जाल रचा है, तमसा

कवि गांधी, जवाहर और सुभाष के प्रति सम्मान प्रकट करता है, पर वह गांधी जी के अहिंसात्मक आन्दोलन पर व्यंग भी करता है :

दो दो दशाब्दियां बीतीं यह 'ठोस काम' कर कर के
सचमुच स्वराज्य पालेंगे हम चिन मारे, मर मर के ?
कितनी शताब्दियां लेगा, यह पुण्य प्रयोग तुम्हारा
क्या दूर विषमता होगी, यों सत्य-अहिंसा द्वारा ?
मक्कार धनाधीशों को ट्रस्टी बतला कर तुमने
जनता पर जादू डाला, अध्यात्म सुंघा कर तुमने

—हे भारत भाग्य विधाता

संसार की विषमता के चित्र उनकी कविताओं में भरे पड़े हैं; यह विषमता उनके हृदय को कचोटती है :

क्यों एक न कुछ भी करके नित बैठे बैठे खाता ?
क्यों एक सदा श्रम करके भर पेट न भोजन पाता ?
उस ओर किसी के कुत्ते क्यों दूध-जलेबी खाते
इस ओर किसी के बच्चे क्यों रोटी को रिरियाते ?
अरबों मन अन्न यहां है-फिर क्यों कुछ दुनियां भूखी
मिलती न यहां क्यों सबको रोटी भी रूखी-सूखी ?...
कुछ नीचे पड़े सिसकते, कुछ ऊपर बैठे हंसते !
कुछ रोते बन्दी बन कर, कुछ उनके बंधन कसते !

—दुनिया की द्वन्द्व कहानी

पर करुण जी के कवि ने केवल दुखियों की ही पीड़ा नहीं देखी हैं, विषमता ने सुखियों को भी पीड़ित कर रखा है, उसके इस पक्ष पर भी उनका ध्यान गया है :

कुछ खा खा कर मर जाएं, कुछ खाद्य न पूरा पाएं
हा दीख रही दुनिया में, यह दो विपरीत व्यथाएं
कुछ को मंदाग्नि सताती, वह चूरन फांका करते
कुछ को जठराग्नि जलाती, वह चूल्हे झांका करते !
तोड़े न तिजोरी कोई, कुछ इस चिन्ता मे मरते
कैसे यह कर्ज कटेगा, कुछ इसकी चिन्ता करते
—यह दो विपरीत व्यथाएं

करुण जी की ये पंक्तियां पन्त जी की इस पंक्ति की याद दिलाती है :

जग पीड़ित है अति दुख से, जग पीड़ित रे अति सुख से

पर इस पंक्ति में सुख और दुःख ऐसे अमूर्त नामों की तरह हमारे सामने आते हैं कि उनमें जीवन की ऊष्मा नही है। लेकिन करुण जी की पंक्तियां इसी बात को प्रभावशाली बिम्बों के माध्यम से हमारे सामने साकार करती हैं।

वर्तमान समाज में रुपयों की महत्ता को कितने सरल ढंग से व्यक्त किया गया है :

ध्रुव धर्म यही कल्दारम् गुणकर्म यही कल्दारम्
कलदार बिना कल किसको, कल कर्म यही कल्दारम्
नकदी में भगवद्गीता, नक्दी में रामायण है
नकदी में ब्रह्म समाया, नकदी में नारायण है
पंडित वेदज्ञ वही है, सज्ञान-गुणज्ञ वही है
पैसा है जिसके पल्ले, सच्चा सर्वज्ञ वही है
—यह अर्थ विषमता भारी

और—रुपये से भी जो चीज ज्यादा महत्वपूर्ण है, उस रोटी का यह राग सुनिये :

वह कौन जिसे बिन पाये निस्तार नहीं इस तन का
चलता है जिसके बल से व्यापार सभी जीवन का ?
वह कौन जिसे बिन पाये बेकार खजाना धन का
जिसके बिन सुना लगता अम्बार बड़ा कंचन का ?
वह कौन जिसे बिन पाये तन मन में रहे उदासी
नित जिसके लिए भटकते भोगी-योगी-सन्यासी ?

वह कौन कराती सबसे धंधा नित नीचा-ऊंचा
फिरता है जिसके पीछे व्याकुल हो विश्व समूचा ?
सब प्रश्नों का परदादा यह रोटी-प्रश्न अकेला
नित सबको नाच नचाता हो आप गुरू या चेला

—रोटी की राम कहानी

समाज के लिए उपयोगी श्रम को वे कितना पवित्र मानते है :

हल के बल जो हल करती, नित पेट-पहेली प्यारी
बलि जाएं कृषक-भुजा पर भुजदण्ड भटों के भारी

—कृषकों की करुण-कथाएं

वे जानते हैं कि दुनिया के सब संघर्षों की जड़ यह विषमता ही है।

जब तक 'श्रम' और 'उपज' का होता सम भाग नहीं है
बल कर क्यों व्यर्थ बुझाते बुझती यह आग नहीं है

—यह दुनिया मजदूरों की

ये पंक्तियां हमें दिनकर के कुरुक्षेत्र की उन प्रसिद्ध पंक्तियों की याद दिलाती हैं :

जब तक मानव मानव का सुख-भाग नहीं सम होगा
शमित न होगा कोलाहल, संघर्ष नहीं कम होगा !

एक कविता में धर्म का बखिया सुन्दर ढंग से उधेड़ा गया है :

नित वैर-विरोध बढ़ा कर जो बीज विषैले बोता
जिसके बंधन में बंध कर कल्याण न कुछ भी होता
वर बंधु-भाव बिनसा कर जिसने कटुता फैलाई
जिसके कुचक्र में पड़ कर, भिड़ते हैं भाई भाई
आपस में मिल कर रहना जिसको न तनिक भी भाता
तू-तू मैं-मैं मचवा कर, जो हरदम हमें लड़ाता
जिसकी छाया के नीचे रक्षित है 'सत्ता' सारी
जिससे निर्भयता पाकर पलती पूंजी हत्यारी
विज्ञान-विरोधी बन कर जो रोके प्रगति हमारी
जंजाल पुरानेपन का अब तक जिसमें है जारी
पाखंड पढ़ा कर जिसने दे दिया बुद्धि पर ताला
क्यों धर्म इसे तुम कहते, यह तो अधर्म का आला।

और इस धर्म के रक्षक ब्राह्मणों को कैसा धिक्कारा गया है :

हे रूढ़िवाद के वानी, भारत के भूरे हाथी !
हे प्रगति-पराभव-कारी, सामन्तों के चिर साथी !
नूतनविज्ञान-विरोधी, हे जड़ता के अनुगामी !
भ्रम जाल चढ़ाने वाले, हे हठधर्मी के हामी !
हे ऊंच नीच के नेता, हे ढोल ढंके ढोंगों के !
पाखंडों के पोषक हे ! हे पूज्य-पुरुष पोंगों के !
—हे हे द्विजवर दीवाने

इन पंडे पुजारियों के साथ ही उन्होंने इनके अड्डों, मठ-मंदिरों और शिवालों को भी नहीं बख्शा है :

मठ-मंदिर में तीनों का, गठबंधन होना ठहरा
धन, धर्म और सत्ता का नित सुख से सोना ठहरा
'तुम रक्षा करो हमारी, हम रक्षा करें तुम्हारी'
अत्याचारी से मिल कर बल पाये अत्याचारी
तीनों का लक्ष्य निराला, तीनों के छिद्र छिपाना
जनता की जीभ दबा कर, वैषम्य-व्यथा फैलाना
यह व्यभिचारों के अड्डे यह मुस्टंडों की मंडी
सुख-सुविधाएं मनमानी, पा रहे यहां पाखंडी !

करुण जी ने यदि अछूतों के प्रति हिन्दुओं के अत्याचारों का वर्णन किया है, तो उनकी सामाजिक चेतना से यह बात भी छिपी नहीं रही कि इनको 'हरिजन' बनाने का गांधीवादी तरीका, जब तक कि आर्थिक-विषमता समाप्त नहीं कर दी जाय, कोई ज्यादा लाभ पहुंचाने वाला नहीं है :

मरते जो आज अभी तक, नित मार सभी की खाकर
उपकार हुआ क्या उनका, 'हरिजन' की पदवी पाकर ?
उद्योग हमारे छीनो, शिक्षा से हमें हटाओ
जब काम तुम्हारा अटके, हरिजन कह कर बहकाओ !
—हम क्यों अछूत कहलाते

जबरदस्ती विधवा रखी हुई नारियों के दर्द को स्वर देते हुए वे ललकारते हैं :

वैधव्य-व्यथा का हामी, बहु भ्रूणों का हत्यारा
कब दूर यहां से होगा, यह पोंगा-पन्थ तुम्हारा ?
—बाला विधवा बेचारी

हराम के खाने वाले इन मुस्टंडों का, जो अपने आपको 'साधु' कहते हैं—यह रूप देखिए :

हरदम हराम का खाते बन बन कर विकट वियोगी
कितना भूभार बढ़ाते यह साधु, कि वैभव भोगी ?
दस, बीस पचास न सौ हैं, यह अस्सी लाख अकेले
होंगे करोड़ से क्या कम इनके कुल चौपट चेले !

यह सोचते हुए उनका दिल कितना दुखता है कि यदि इन्हें किसी उपयोगी काम में लगाया जाता तो :

कितनी न संगठित सेना इन बेकारों से बनती
यह दुश्मन को दहलाते, यदि कभी लड़ाई ठनती
कितने न कारखानों को इनकी श्रम-शक्ति चलाती
इनके असंख्य हाथों से कितनी खेती लहराती !

और देशी नरेशों का :

भूखों किसान मर जायें श्रमिकों को मिले न दाना
हो किन्तु व्यसन यह पूरा कुत्तों का सैन्य सजाना !
पोलो के लिए पली है घोड़ों की संख्या भारी
मोटर में मौज कहीं है, घुड़ दौड़ कहीं है जारी
महलों के बीच बसी हैं सुन्दरियों की सेनाएं
है काम जिन्हें यह भारी, नित नाचें-खेलें-खायें
किस कारागृह से कम हैं अन्तःपुर के तहखाने
निर्दोष रमणियां जिनमें सन्ताप सहें अनजाने
बस एक बार छू छू कर छोड़ीं कितनी कलिकाएं
रनिवासों के रौरव में रो रो कर वयस बितायें

शासक अंग्रेजों और गुलाम भारतीयों की यथार्थ स्थिति का यह चित्रण :

तुम व्यापक वैभव वाले, हम परवशता के पाले
क्या तुम से साम्य हमारा, तुम गौर, गुणी, हम काले !
तुम वर विज्ञान बढ़ाकर उन्नति करते मन-मानी
हम धर्म धर्म चिल्लाते बन कर मिथ्या-अभिमानी !
तुम यान अनोखे लेकर अम्बर में दौड़ लगाते
बाबा आदम के छकड़े हम किन्तु अभी घिसलाते

तुम परिवर्तन के प्रेमी करते विकास नित न्यारे
'बाबा के वाक्य' अभी तक हो रहे 'प्रमाण' हमारे !
तुम मुट्ठी भर हो कर भी हमको नित नाच नचाते
हम चालीस कोटि कहा कर तुम सब की ठोकर खाते

—तुम गोर, गुणी, हम काले

अपने समय के न्याय और कानून की स्थिति को भी उन्होंने नजरअन्दाज नहीं किया :

धींगा धींगी से जिनकी कटते कृषकों के कंधे
कानून इन्हें क्यों कहते ? यह तो धनिकों के धंधे
जिन के कुचक्र में पड़ कर मरते नित बेकस बन्दे
कानून इन्हें क्यों कहते ? यह तो फांसी के फंदे

—कानून इन्हें क्यों कहते

अपने समय के सामयिक यथार्थ का व्यापक और प्रगतिशील दृष्टि से सम्पन्न, उसके अन्तर्विरोधों का विश्लेषण करने वाला, चित्रण करुण जी की कविताओं की प्रधान विशेषता है।

उनकी कविताओं की शैली मुख्यतः गुप्त जी की तरह की इतिवृत्तात्मक शैली है। समता को हम प्रगतिशील आन्दोलन की भारत भारती कह सकते हैं। जागरण और उद्‌बोधन के स्वर गुप्त जी से भी अधिक करुण जी की कविताओं में मिलते हैं। उद्‌बोधन और धिक्कार उनकी शैली के मुख्य रूप हैं। 'ओ पागल हिन्दुस्तानी', 'जागो दिलजले जवानों', 'दुखियों से दो दो बातें' आदि कविताएं उद्‌बोधन शैली के अच्छे उदाहरण हैं। पागल हिन्दुस्तानी का यह आह्वान देखिए :

तेरा धन धान्य उजड़ता तेरी आंखों के आगे
कितना ही तुझे जगाएं तू नींद न अपनी त्यागे
श्रमकार-कृषक तेरे कृमि-कीट सरिस मर जाते
उपचार पुराने तुझको हा हंत अभी तक भाते
यह धर्म-कर्म के धंधे यह किस्से और कहानी
क्यों इनके भ्रम में भूला, ओ पागल हिन्दुस्तानी !

उद्‌बोधन की तरह ही धिक्कार भी उन्होंने पहुंचाया है :

हे रूढ़िवाद के वाती भारत के भूरे हाथी
हे प्रगति-पराभवकारी, सामन्तों के चिर साथी !

नूतन-विज्ञान विरोधी हे जड़ता के अनुगामी
भ्रमजाल बढ़ाने वाले हे हठधर्मी के हामी

—हे हे द्विजवर दीवाने

पर करुण जी केवल इतिवृत्त और उद्बोधन के ही कवि नहीं हैं। कहीं कहीं उन्होंने सुन्दर व्यंग भी किये हैं। ऐसे व्यंगों में 'हे भारत भाग्य विधाता' (गाधी जी पर) 'आदर्श हमारे भारी' (भारतीयों के रूढ़िग्रस्त अध्यात्मवाद और राष्ट्राहंकार पर) और 'सुखमय स्वराज्य की थाली' (गांधीवादी नीति पर) प्रमुख हैं :

हम हैं धर्म ध्वज धारी जग-जाहिर जाति हमारी
अध्यात्म हमारा धन है आदर्श हमारे भारी !
कितना ही अंधड़ आया हम हुए न टस से मस हैं
निज लीक न हमने छोड़ी यद्यपि इतने बेबस हैं !

—आदर्श हमारे भारी

फिर उन्होंने केवल यथार्थ-चित्रण ही नहीं किया है, भावी समाज का सपना भी स्पष्ट, सरल और सीधे शब्दों में सामने रखा है :

यह विष वैषम्य हटाएं वह साम्य-सुधा सरसाएं
श्रमकार सुखी हों जिसमें आओ वह विश्व बसाएं
जनता का राज जहां हो, समता का साज जहां हो
श्रमिकों-कृषकों के दल की ऊंची आवाज जहां हो
सम्राट सभी हों सबके, सबके हों सभी रिआया
बहुतों पर एक न पाये अधिकार कभी मनभाया
कोई न धनी रह जाये कोई न दरिद्र दिखाये
'जो काम करे सुख भोगे' यह स्वर्ण नियम बन जाये
चेता चमार के घर में बनवारी ब्राह्मण खाये
बनवारी की कुलकन्या, चेता के घर में जाये।

—आओ वह विश्व बसायें

यद्यपि करुण जी की अधिकतर कविताओं का विषय सामाजिक यथार्थ ही है, पर प्रकृति की भी उन्होंने बहुत उपेक्षा नहीं की है। कहीं कहीं प्रकृति के मनोहारी चित्र भी उन्होंने सामाजिक-यथार्थ के कटु-तिक्त चित्रों के बीच खींच दिये हैं :

आमों की मंजरियों में भ्रमरों का गुन-गुन गाना
बन-बाग लता तरुवर का वासन्ती साज सजाना
कल कुहू-कुहू कोकिल की अमराई की मर्मर में
'पिउ कहां' पपिहरा पूछे, आमोद भरा घर घर में
शुभ सरसौंहे खेतों में सरसों ने चादर तानी
चहुं ओर लसी अलसी से नीलम ने लघुता मानी !

—वह भारतग्राम गुणी के

ऊपर करुण जी की शैली को मैंने गुप्त जी सी वर्णनात्मक कहा है। पर दोनों की शब्दावली में बहुत अन्तर है। गुप्त जी की शब्दावली में क्लिष्ट संस्कृत शब्दों की कमी नहीं है, पर करुण जी के साथ यह बात नहीं है, उनकी भाषा गुप्त जी से कहीं अधिक जनवादी है, इस दृष्टि से उनकी शैली को हम हरिऔध जी के चुभते चौपदे के ज्यादा नजदीक पाते हैं, यद्यपि यहां यह कहना होगा कि हरिऔध जी की मुहावरे बाजी 'मुहावरों के लिए' है, जबकि करुण जी की सरलता कथ्य की प्रेषणीयता के लिए। कुल मिला कर करुण जी की शैली पर द्विवेदी कालीन कविता के संस्कार काफी गहरे हैं।

करुण जी की कविताओं की सरलता और सहजता की प्रशंसा करते हुए यह कहना होगा कि उनकी कविताओं में यथार्थ चित्रण और सिद्धान्त-कथन का ही स्वर अधिक मुखर है—भावों के उहापोह और बारीकियों में वे नहीं गये हैं। जिन मानवीय भावनाओं को उन्होंने छुआ है वे भी भोलीभाली भावनाएं—सीधी सादी क्रान्तिकारिता की मोटी-मोटी भावनाएं ही अधिक हैं। अधिकतर कविताओं में उन्होंने एक ही छन्द का प्रयोग किया है, यह एकरसता उनकी अलग-अलग कविताओं को अलग-अलग व्यक्तित्व नहीं दे पाती, लगता है कि एक ही लम्बे काव्य को जगह जगह से काट कर अलग-अलग शीर्षक दे दिये गये हैं।

जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द

देश-प्रेम से आरंभ करके मानव-प्रेम तक पहुंचने वाले प्रगतिशील कवियों में मिलिन्द जी का महत्वपूर्ण स्थान है। एक सच्चे प्रगतिशील कवि की आस्था और साधना मिलिन्द जी के काव्य में सर्वत्र दिखाई देती है। कविता उनके लिए कभी शौक का विषय नहीं रही। वह उनके जीवन-संघर्ष का ही एक अंग, उसका ही एक साधन रही है। जिन आदर्शों के लिए उन्होंने अपने जीवन में संघर्ष किया है, उन्हीं आदर्शों और उन्हीं संघर्षों को उन्होंने अपनी कविताओं में अभिव्यक्त किया है।

उनकी कविताओं का पहला संग्रह जीवन संगीत है। जीवन संगीत (४०) में मिलिन्द जी की २२ से ३६ तक की रचनाएं है। कविताओं को विषयानुसार पांच वर्गों में विभाजित किया गया है। ये वर्ग है : रूप, प्रेम, जीवन, करुणा, और अध्यात्म। जीवन संगीत में यद्यपि कहीं कही यथार्थ जीवन का संगीत है, तथापि समग्र रूप से कवि का स्वर छायावादी रूप, सौंदर्य, वेदना और अध्यात्म का ही है। संकलन की कुछ कविताओं में कवि की राष्ट्रीय और मानववादी भावनाएं अभिव्यक्त हुई है। ऐसी कविताओं में 'शहीद की चिता पर', 'बलि की साध', और 'झासी वाली रानी की समाधि पर' उल्लेखनीय है। ये कविताएं उनकी बाद की राष्ट्रीय कविताओं की परम्परा का सूत्रपात करती हैं। 'बलि की साध' की ये पंक्तियां इस भावना का प्रतिनिधित्व करती है :

'आंखों का तारा' आकुल है—रण में सहे दुधारा
इच्छा है यह फिरे 'हृदय धन' वन में मारा मारा
'प्रियतम' चाह रहा है होना उस पथ पर कुरबान
जिस पर दलित, दीन, दुखियों का लुटता है सम्मान
हुआ तुम्हारे इस 'अपने' को अब सारा जग अपना
जगे तुम्हारा प्रेम छोड़ कर अब सीमा का सपना !

एक और कविता 'गुरुता से लघुता की ओर' छायावादी शैली के बावजूद कवि में जन्म लेती हुई यथार्थवादी प्रवृत्ति की ओर संकेत करती है।

नवयुग के गान (४२) उनका दूसरा संकलन है। यद्यपि पुस्तक के 'प्रकाशकीय' में कहा गया है कि वादों के इस युग में भी मिलिन्द जी किसी 'वाद' के घेरे में बंध कर नहीं चल रहे हैं, और कि उन्होंने शोषित वर्ग के प्रति बौद्धिक सहानुभूति के निरे प्रदर्शन या किसी वाद के स्वर में स्वर मिलाने के लिए इन गीतों को नहीं लिखा है, और यह बात सही भी है, तथापि कविताओं से स्पष्ट है कि 'नवयुग के इन 'गानों' को अगर कोई एक विशेषण दिया जा सकता है तो वह विशेषण 'प्रगतिवाद' का ही है। संकलन की लगभग सभी कविताओं में क्रान्ति—विदेशी साम्राज्यवाद और सम्पत्तिवाद और सभी तरह के शोषण के विरुद्ध एक सर्वांगीण सामाजिक क्रान्ति—का स्वर स्पष्ट सुनाई देता है। इसी एक विषय के विभिन्न अंगों और पक्षों का इन कविताओं में प्रतिपादन किया गया है। कवि नवयुग का केवल तटस्थ गायक नहीं है, वह इस क्रान्ति की ओर जाने वाले बलिपथ का पथिक भी है। क्रान्ति के संघर्षों और वेदनाओं को उसने स्वयं सहा भी है। प्रगतिशील जीवनदर्शन के विभिन्न पक्षों और हमारे राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन के तत्कालीन यथार्थ को इस

संकलन की कविताओं में अभिव्यक्ति मिली है। कवि ने सिर्फ किसानों और मजदूरों के ही विद्रोह को व्यक्त नहीं किया है, शोषित नारी के विद्रोह को भी पहचाना है : आगे बढ़ती हुई नयी नारी शक्ति का उसने अभिनंदन किया है और उसके इस नये चरित्र को रेखांकित किया है :

असहाय निरीह नहीं तुम, जो वात्सल्य-हिंडोले में झूलो
प्रतिमा भी नहीं भक्ति, आदर, श्रद्धा की भेंटों पर फूलो
इतनी भावुक भी नहीं प्रेम की मनुहारों में पथ भूलो
निस्तेज नहीं, अपमान गर्त का जो तुम अन्तिम तल छू लो

—नवोना

कविता के प्रति अपने दृष्टिकोण को कवि ने 'नवयुग का कलाकार' कविता में प्रकट किया है :

जो बने वाणी नए युग की वही मेरी कला है
मनुजता के व्यथित उर के क्षोभ की हुंकार हूं मैं
पीड़ितों के उमड़ते विद्रोह की अभिव्यक्ति हूं मैं
वंचितों का स्वत्व, दलितों का सखा, आधार हूं मैं

जहां तक शैली और शिल्प का सवाल है, इस संकलन की अधिकांश कविताएं द्विवेदीयुगीन इतिवृतात्मक और वर्णनात्मक शैली की ही कही जा सकती हैं। शैली की सरलता और सहजता सपाटता के तटों को छूने लगती है। सिर्फ एकाध जगह इस सपाटता को पाट कर कवि किसी उपयुक्त उपमा या रूपक पर पहुंचा है :

हम पद्मनाल से छिपे विश्व जीवन में
अपने ऊपर वैभव के कमल खिलाते
शोभा, सौरभ, मधु सब बाहर बंटते हैं
हम पंक-गर्त में, भीतर गलते जाते

—शोषितों का गान

'बलिपथ के गीत' (५०) मिलिन्द जी की देशप्रेम से मानवप्रेम तक फैली हुई कविताओं का संकलन है। संकलन की उल्लेखनीय कविताओं में से 'बापू के आंसू', 'गांधी जयन्ती पर', 'किसानों से', 'कलाकारों से', 'चांदनी', 'मानव मन', 'दर्पागम से पूर्व', 'विप्लव और विधान', 'दिल्ली में क्या हलचल है?' 'पन्द्रह अगस्त' और 'ऐसा वसन्त कब आएगा ?' आदि का नाम लिया जा सकता है।

'बापू के आंसू' में आदर्शवादी और मर्यादावादी साधक की वेदना की मर्म-स्पर्शी अभिव्यक्ति है। सारे संसार से स्नेह रखने वाले व्यक्ति की पत्नी की वेदना को कितनी सहज अभिव्यक्ति मिली है :

स्नेह के कण तो
करोड़ों मानवों में बंट गये
रिक्त पति की रिक्तता की
रह गयी थी स्वामिनी वह।
एक क्षण चाहा—सिमट कर स्नेह वह
अश्रुगंगा बन भिगो दे अन्त में
स्नेह की एकान्त उस अधिकारिणी को
पर, विफल वह एक क्षण का यत्न था।

'गांधी जयन्ती पर' गांधी जी के एक भक्त की ईमानदार यथार्थ-दृष्टि की प्रतीक कविता है—गांधी जी के प्रति श्रद्धा ने मिलिन्द जी की यथार्थ दृष्टि को धुमिल नहीं किया :

नंगों भूखों की कराह सुन, द्रवित न होता जिनका अन्तर
जो समता के प्रकट विरोधी, वे कैसे गांधी के अनुचर ?
शोषण की तलवार उठाकर मुख से गांधी जय न निकालो
ऐ शासन-सत्ता-धन वालो अपने डगमग चरण संभालो !

'कलाकार से' कविता कला के प्रति स्वस्थ प्रगतिशील दृष्टिकोण की अच्छी अभिव्यक्ति है :

कला तुम्हारी शिथिल अनुसरण
या पिछड़ा जयनाद नहीं है

इस कविता में उन्होंने कला की सुन्दर प्रगतिशील परिभाषा दी है :

कला हृदय के अनुभव रस के
स्वर का बलिपथ पर कम्पन है
चिन्तन जीवन और वेदना
तीनों का यह अमर मिलन है

'चांदनी' प्रगतिशील प्रकृति चित्रण का अच्छा उदाहरण है। चांदनी के मानव-निरपेक्ष सौन्दर्य के वर्णन की बजाय कवि ने उसके मानवानुकूल पक्ष को चित्रित किया है—उसे मानवता के घाव भरने वाली के रूप में चित्रित किया है। 'मानव-मन' मानव मन के जटिल यथार्थ को वाणी देती है।

'वर्षागम से पूर्व' एक रूपकोक्ति है—जिसमें वर्षा अधिकार का, आकाश अधिकार-प्राप्त वर्ग का, सत्तावानों का और धरती शोषित वर्ग का प्रतीक है। कविता में कवि का यथार्थवादी दृष्टिकोण व्यक्त हुआ है, और उसके इस विश्वास की अभिव्यक्ति मिली है कि सत्ताधारियों की कृपा से शोषितों को कभी अधिकार नहीं मिलते, शोषितों के अपने बलिदानों से ही वे प्राप्त होते हैं:

तुम कहते हो—मैं भी देखूं नभ को आशावान
मैं कहता हूं भू का तप ही भू को देगा त्राण
तुम देखो नभ की उदारता, ऊपर का वरदान
नीचे के तप ने खींचा मेरे नयनों का ध्यान।

रूपकोक्ति की अपूर्णता के कारण यद्यपि कविता में कहीं कहीं ऐसा आभास होता है कि जैसे कवि शोषितों को सहनशीलता की प्रेरणा दे रहा है, तथापि यह कविता कवि के यथार्थवाद को और शोषितों की शक्ति के प्रति आस्था को अभिव्यक्ति देती है। 'विप्लव और विधान', 'दिल्ली में क्या हलचल है?' और 'पन्द्रह अगस्त' भारत की स्वतन्त्रता के संदर्भ में लिखी हुई कविताएं हैं, जो एक ओर विदेशी शोषण से आंशिक मुक्ति का गायन करती हैं और दूसरी ओर भारतीय जनता की क्रान्ति को बीच राह में ही रोक देने के षड्यंत्र का पर्दा-फाश करती है:

यह क्षण है अन्तिम प्रहार का
चरम लक्ष्य को पाने का
आजादी समता का झंडा
सर्वोपरि फ़हराने का
कोटि कोटि जन पूछ रहे हैं
दिल्ली में हलचल क्या है?
संधिपत्र या मुक्ति हमारी
महाक्रान्ति का फल क्या है?

'ऐसा वसन्त आएगा' में वसन्त को साम्यवाद का प्रतीक बनाकर उसके आगमन की प्रतीक्षा को वाणी दी गई है:

ऐसे वसन्त कुछ चले गये
जो कुछ फूलों को खिला गये
मानव-प्रसून जो ऊपर थे
उनको सौरभ श्री दिला गये

नीचे रहने वालों पर कब
कोई ममत्व दिखलाएगा
ऐसा वसन्त कब आएगा ?
जब मानवता के वन उपवन का
हर प्रसून खिल पाएगा !

मिलिन्द जी की भाषा और शैली सरल और सपाट है—उपमाएं और प्रतीक भी साधारण हैं, उनमें कलात्मक निपुणता का अभाव है। सीधी बात सीधे ढंग से कही गयी है, इसलिए कई कविताएं तो सपाट तथ्यकथन मात्र बनकर रह गयी हैं—जैसे 'किसान की चुनौती' कविता की ये पंक्तियां :

अनावृष्टि-अतिवृष्टि कोप से बचा अन्नकण प्यारे
युग-युग से देता आया हूँ स्वार्थी जग को सारे
अन्नकणों के बाद रक्त का बिन्दु-बिन्दु दे डाला
मैं कंकाल जल रही जीवन में अभाव की ज्वाला
मेरी सेवा के आश्वासन को व्यवसाय बनाकर
सत्तारूढ़ हुए कितने मुझसे मतदान कराकर

वैसे यह सपाटता उनकी कुछ कविताओं को छोड़कर सभी कविताओं में किसी न किसी अंश तक मिलती ही हैं।

भूमि की अनुभूति (५२) की अधिकांश कविताएं भी पिछले संकलनों की तरह ही इतिवृत्तात्मक, व्याख्यात्मक या उद्बोधनात्मक है।

'नव संस्कृति', 'भूमिःश्रम की पत्नी', 'दुर्भिक्ष' आदि कविताएं इन प्रवृतियों के अच्छे उदाहरण हैं। ऐसी कविताओं में कहीं कहीं किसी विचार स्थिति की विस्तृत व्याख्या मिलती है, जो प्रबुद्ध पाठक को उबाने वाली हो जाती है। जैसे 'दुर्भिक्ष' नामक कविता में। इस संकलन में कवि ने छन्दबद्ध शैली के अतिरिक्त मुक्तछन्द शैली पर भी हाथ आजमाया है। प्रगतिवाद के कुछ सामान्य प्रतीकों का, जो अधिकतर प्रकृति संबंधी हैं, इस संकलन की कई कविताओं में प्रयोग किया गया है जैसे यथार्थ जीवन के लिए भूमि; पुरानी व्यवस्था के लिए ठूठ; नये उगते हुए सर्वहारा वर्ग के लिए अंकुर; साधारण लघु मानवों के लिए रजकण। इस संकलन की भाषा में पिछले संकलनों की अपेक्षा कुछ परिवर्तन आया है—तत्सम की ओर कवि का झुकाव स्पष्ट दिखाई देता है। शब्दावली पर पन्त जी का प्रभाव परिलक्षित किया जा सकता है।

पूरी पुस्तक पर उसकी रचना के समकालीन शिल्प का कहीं प्रभाव नहीं दिखाई पड़ता—एक जगह को छोड़कर जहाँ कवि भूमि के उर की गाँठे हल से खोलने (पृथ्वी पुत्र से) की बात कहता है।

संकलन की उल्लेखनीय कविताओं में 'ठूंठ और अंकुर', 'क्रांतिकारी' और 'प्रगति और जीवन' का नाम लिया जा सकता है। 'क्रांतिकारी' में क्रान्तिकारी के मन की द्वन्द्वात्मकता—उसकी कोमलता और कठोरता की अभिव्यक्ति है। संकलन की अन्य कविताओं में कवि ने अपने समकालीन यथार्थ को अपनी प्रगतिशील दृष्टि से देखा है और उसे चित्रित किया है। 'रह गयी चढ़ी बरातें' चुनाव के यथार्थ की मनोरंजक अभिव्यक्ति है। किसानों और मजदूरों की यथार्थ स्थिति का वर्णन करनेवाली भी कई कविताएं इस संकलन में हैं।

मुक्तिका (५४) में भी कवि का स्वर और उसकी भावभूमि बदली नहीं हैं। इस संकलन की पठनीय कविताओं में 'अन्वेषक से', 'क्रान्ति और निर्माण' तथा 'सत्य और स्वर्ण' का नाम लिया जा सकता है। पिछले संकलन से अलग इसकी कोई विशिष्ट उपलब्धि नहीं दिखाई देती।

नई किरण (६६) मिलिन्द जी का नवीनतम और छठा कविता संग्रह है। संकलन की सारी कविताएं उसी प्रगतिशील भावभूमि की रचनाएं हैं, जो, मिलिन्द जी के अबतक के काव्य की भूमि रही है। अभिव्यक्ति विषय वस्तु और शिल्प दोनों दृष्टियों से इस संकलन में भी उनके काव्य के स्तर में कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं आया हैं। चौथाई शताब्दी के अपने रचना काल में प्रगतिशील मानववादी आदर्शों के प्रति उनकी अडिग आस्था और उनकी अटल साधना, अनेक प्रगतिशील साहित्यकारों के लिए ईर्ष्या की वस्तु हो सकती है। बदलते हुए फैशनों और उनके माध्यम से शीघ्र यश प्राप्ति के शार्टकट्स के सभी प्रलोभनों को ठुकराते हुए वे अपनी उसी स्वस्थ भावभूमि पर बने रहे, भले ही इसके लिए उन्हें यह कीमत भी चुकानी पड़ी कि अपनी कविताओं के साधारण स्तर पर ही सन्तुष्ट रहें।

वैसे नई किरण की कविताओं में विषय वस्तु की दृष्टि से उनकी पूर्ववर्ती कविताओं से थोड़ा अन्तर रेखांकित किया जा सकता है। एक तो इन कविताओं में पहली बार जनतान्त्रिक समाजवाद को कवि ने अपने संघर्ष का अन्तिम लक्ष्य और अपना आदर्श घोषित किया है। इसके पहले उसने कभी किसी निश्चित राजनीतिक सिद्धान्त का इस प्रकार नाम नहीं लिया था। और दूसरे यह कि इस संकलन की दो एक कविताओं में भारत के एक वर्ग की अंग्रेजी-भक्ति को भी प्रहार का निशाना बनाया गया है, और यह बात विषय की दृष्टि से प्रगतिशील कविता के क्षेत्र का विस्तार करती है।

कुल मिला कर चाहे मिलिन्द जी की अधिकांश कविताएं साधारणता के स्तर से ऊपर नहीं उठ पायीं, तथापि उनका मानव-प्रेम; मनुष्य के श्रम में, उसके भविष्य में उनकी अडिग आस्था; उनकी स्वस्थ सामाजिकता, और कभी न कांपने वाला उनका आशावादी स्वर उनकी साधारण कविताओं को भी एक स्वस्थ मनस्कता से सुरभित कर देता है। यथार्थ के प्रति एक उत्कट ईमानदार दृष्टि और एक दृढ़निश्चय साधक की तपस्या ने उनकी अनेक सरल और सपाट कविताओं को भी जीवन्त बना दिया है।

नागार्जुन

नागार्जुन केन्द्रीय वर्ग के उन कवियों में अन्यतम हैं, जिन्होंने प्रगतिशील काव्य को मजदूर-आन्दोलन की संघर्षशील आत्मा दी है। उनकी कविता मजदूर वर्ग की जुझारू चेतना की अभिव्यक्ति है। उनकी कविता में मजदूर-जीवन की सादगी, स्पष्टता और कठोरता अपने वास्तविक रूप में विद्यमान है।[1]

युगधारा (५६) उनका पहला काव्य संकलन है। संकलन में कवि अपने पूरे प्रगतिशील जौहर के साथ हमारे सामने आता है। संकलन में जहां एक ओर 'शपथ' और 'तर्पण' जैसी कविताएं हैं, जिनमें कवि ने गाधी जी की हत्या के संदर्भ में अपनी देशभक्तिपूर्ण सजग राष्ट्रीयता को अभिव्यक्ति दी है, वहां 'प्रेत का बयान' जैसी व्यंगात्मक कविताएं भी संकलित हैं, जो नागार्जुन की परिपुष्ट व्यंग-परम्परा की सशक्त कड़ियां हैं। 'तर्पण' में कवि लिखता है :

जिस बर्बर ने
कल किया तुम्हारा खून पिता
वह नहीं मराठा हिन्दू है
वह प्रहरी है स्थिर स्वार्थों का
वह मानवता का महाशत्रु।

सतरंगे पंखों वाली (५९) की महत्वपूर्ण कविताओं में 'ओ जनमन के सजग चितेरे', 'ऐसा क्या फिरफिर होगा', 'और तू चक्कर लगा आया तमाम', तथा 'सिन्दूर-तिलकित भाल' प्रमुख हैं।

'ओ जनमन के सजग चितेरे' प्रगतिशील कवि केदारनाथ अग्रवाल पर लिखी हुई एक सुन्दर कविता है। केदार को यहां बांदा की प्राकृतिक और

---

१. रामेश्वर शर्मा : राष्ट्रीय स्वाधीनता और साहित्य, पृ. १०२.

सामाजिक पृष्ठभूमि में रख कर उनकी जनवादिता को रागभीने शब्दों में उभारा गया है। बांदा का मधु चित्र देखिये :

नीचे देखा
तलहटियों में
छतों और खपरेलों वाली
सादी उजली लिपी-पुती दीवारों वाली
सुन्दर नगरी बिछी हुई है
उजले पालों वाली नौकाओं से शोभित
श्याम सलिल-सरवर है बांदा
नीलम की घाटी में उजला श्वेत कमल-कानन है बांदा—

और

उतरे तो फिर वही शहर सामने आ गया
अधकच्ची दीवारों वाली खपरेलों की ही बहार थी
सड़कें तो थीं तंग किन्तु जनता उदार थी
बरस रही थी मुस्कानों से विवश गरीबी
मुझे दिखाई पड़ी दुर्दशा ही चिरजीवी

केदार की कविता 'नागार्जुन के प्रति' की तरह ही इसमें मित्र-प्रेम का जो निर्मल रूप व्यक्त हुआ है, वह आधुनिक हिन्दी कविता की एक सांस्कृतिक उपलब्धि है :

मैं बोला : केदार तुम्हारे बाल पक गये
चिन्ताओं की घनी भाप में सीझे जाते हैं बेचारे
तुमने कहा : सुनो नागार्जुन
दुख दुविधा की प्रबल आंच में
जब दिमाग ही उबल रहा हो
तो बालों का कालापन क्या कम मखौल है !
ठिठक गया मैं तुम्हें देखने लगा गौर से
गौर-गेहुआं मुख-मंडल चांदनी रात में चमक रहा था
फैली फैली आंखों में युग दमक रहा था
लगा सोचने
तुम्हें भला क्या पहचानेंगे बांदा वाले
तुम्हें भला क्या पहचानेंगे साहब काले

तुम्हें भला क्या पहचानेंगे आम मुवक्किल
तुम्हें भला क्या पहचानेंगे शासन की नाकों पर के तिल
प्यारे भाई मैंने तुमको पहचाना है
समझा बूझा है, जाना है...
केन-कूल की काली मिट्टी, वह भी तुम हो
कालिंजर का चौड़ा सीना, वह भी तुम हो
ग्रामवधू की दबी हुई कजरारी चितवन, वह भी तुम हो
कुपित कृषक की टेढ़ी भौंहें, वह भी तुम हो
खड़ी सुनहली फसलों की छवि छटा निराली, वह भी तुम हो
लाठी लेकर काल-रात्रि में करता जो उनकी रखवाली, वह भी तुम हो!

निश्चय ही कविता के कुछ अंश प्रथम श्रेणी के काव्यांश हैं, पर कविता को शायद आवश्यकता से अधिक लम्बी बना दिया गया है, इसलिये इसमें अपेक्षित कसाव नहीं आ पाया है।

'ऐसा क्या फिरफिर होगा' में किसी कालेज में चली पुलिस की गोली के कांड को मार्मिक शब्दों में अभिव्यक्ति दी गयी है। कविता का अन्त बहुत प्रभावशाली है।

'और तू चक्कर लगा आया तमाम' अपने भटकते मन को समझाने वाली अच्छी कविता है:

रीते मन!
छूंछे मन!
दिशा-शून्य इंगितहीन
भ्रान्त क्लान्त दलित दीन!
भीतर के भयभीत
बाहर के युगजीत!
क्षुद्र मन, छिछोर मन!
डाकू मन, चोर मन!
बेहद भगोड़े मन!
लगाऊं कोड़े मन!

'सिन्दूर तिलकित भाल' संघर्षों में जूझते हुए कविमन के रागात्मक पक्ष को बहुत सुन्दर अभिव्यक्ति देती है।

प्यासी पथराई आंखें (६२) में अधिकतर नागार्जुन जी की दैनिक जीवन के साधारण-साधारण अनुभवों पर आधारित साधारण-साधारण कविताएं

संकलित हैं। कई कविताओं में साधारणता के भीतर से ही कुछ रागात्मक स्पर्श उभारे गये हैं, पर अन्य अधिकांश कविताएं साधारण स्तर के रेखा-चित्र मात्र हैं। खास तौर से पौराणिक कहानियों पर आधारित तीन-चार कविताएं —'शकुन्तला,' 'शूर्पणखा,' 'रेणुका' और 'अहिल्या' तो बिल्कुल ही व्यर्थ हैं। उनमें न तो पौराणिक कहानी का कोई प्रतीकात्मक प्रयोग ही किया गया है और न आधुनिक जीवन की किसी महत्वपूर्ण समस्या के संदर्भ में ही उन्हें उभारा गया है। पूरे संकलन की उल्लेखनीय कविताओं में 'पैसा चहक रहा है,' 'लुमुम्बा,' 'चौराहे के उस नुक्कड़ पर,' 'वे और तुम,' 'आओ रानी हम ढोयेंगे पालकी' तथा 'टके की मुस्कान करोड़ों का खर्चा' का नाम लिया जा सकता है। पर महत्वपूर्ण इनमें से शायद दो ही कविताओं को कहा जा सकता है: 'वे और तुम' तथा 'आओ रानी हम ढोयेंगे पालकी'।

'वे और तुम' मध्यवर्गीय कवि के कुण्ठाग्रस्त जीवन और मेहनतकश इन्सान के स्वस्थ मेहनती जीवन के अन्तर को बहुत सुन्दर ढंग से उभारती है:

वे लोहा पीट रहे हैं
तुम मन को पीट रहे हो
वे पत्तर जोड़ रहे हैं
तुम सपने जोड़ रहे हो
उनकी घुटन ठहाकों में घुलती है
और तुम्हारी घुटन उनींदी घड़ियों में चुरती है।
वे हुलसित हैं, अपनी ही फसलों में डूब गये हैं
तुम हुलसित हो, चितकबरी चांदनियों में खोये हो
उनको दुख है:
नये आम की मंजरियों को पाला मार गया है
तुमको दुख है:
काव्य-संकलन दीमक चाट गये हैं!

अन्तिम पंक्तियों में बहुत सुन्दर कन्ट्रास्ट है।

'आओ रानी हम ढोयेंगे पालकी' भी एक व्यंग कविता है। यह कविता इंग्लैंड की रानी की भारत-यात्रा के संदर्भ में लिखी गयी है:

आओ शाही बैंड बजायें
आओ वन्दनवार सजायें

आओ तुमको सैर करायें
उटकमंड की, शिमला-नैनीताल की !
आओ रानी हम ढोयेंगे पालकी !
यही हुई है राय जवाहर लाल की !
रफू करेंगे फटे पुराने जाल की !

इन तीन कविता संकलनों के अतिरिक्त नागार्जुन जी की तीन और छोटी-छोटी काव्य-पुस्तिकायें भी प्रकाशित हुई थीं, पर अब वे उपलब्ध नहीं हैं। **'खून और शोले'** में बिहार की कांग्रेसी सरकार द्वारा वहां के विद्यार्थियों पर पटना में किये गये गोलीकाण्ड की प्रतिक्रिया में लिखी गयी कुछ कविताएं हैं। **'प्रेत का बयान'** में नागार्जुन जी की कुछ व्यंग कविताएं हैं, जिनमें 'दुखरन झा' कविता उल्लेखनीय है। **'चनाजोर गरम'** भी इसी तरह की एक व्यंग पुस्तिका है।[२] **'प्यासी पथराई आंखें'** के बाद की उनकी कविताएं अभी असंकलित ही हैं।

डा. रामदरश मिश्र के अनुसार नागार्जुन की कविताएं मुख्यतया तीन तरह की हैं। कुछ कविताएं गंभीर संवेदनात्मक और कलात्मक हैं, जिनमें कवि ने मानव की रागात्मक छवि अंकित की है और मानवीय संभावनाओं के प्रति आस्था व्यक्त की है। दूसरी कोटि की कविताएं वे हैं, जो सामाजिक कुरूपता, राजनैतिक अव्यवस्था और धार्मिक अन्धविश्वास पर चुभते हुए व्यंग करती हैं। तीसरी कोटि में वे कविताएं आती हैं जो उद्‌बोधनात्मक और अपेक्षाकृत हल्के स्तर की हैं।[३] पहले वर्ग में मानव संवेदनाओं की कविताओं, जैसे 'सिन्दूर तिलकित भाल' और 'दन्तुरित मुस्कान,' के अतिरिक्त उनकी प्रकृति संबंधी कुछ सुन्दर कविताए भी आ जाती हैं। नागार्जुन प्रकृति के प्रेमी हैं। उन्होने ग्राम्य तथा नागरिक प्रकृति के कुछ सुन्दर चित्र खीचे हैं। बांदा के एक चित्र का जिक्र ऊपर हो चुका है। प्रकृति संबंधी उनकी एक और प्रसिद्ध कविता है 'बादल को घिरते देखा है'। समृद्ध छायावादी शैली में इस कविता में प्रकृति के कुछ उदात्त चित्र खीचे गये है। कभी कभी उन्होने वर्तमान जीवन की विषमताओं के संदर्भ में प्रकृति को बड़े प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है, जैसे पूस मास की धूप के इस चित्र में :

---

२. ये सूचनाएं श्री उमेश मिश्र के आधार पर, देखिए उनकी पुस्तक **प्रगतिवादी काव्य, पृ. १४६.**

३. **प्रगतिवाद और उसके प्रमुख कवि, साहित्य-संदर्भ और मूल्य, पृ. ३९.**

पूस मास की धूप सुहावन
घिसे हुए पीतल सी पांडुर
स्तनपायी नीरोग गौर-छवि
शिशु के गालों जैसी मनहर
पूस मास की धूप सुहावन
फटी दरी पर बैठा है चिर रोगी बेटा
राशन के चावल से कंकड़ बीन रही पत्नी बेचारी

प्रकृति-अंकन में कवि ने दो प्रकार की पद्धतियों का प्रयोग किया है। पहली है यथातथ्य चित्रण की पद्धति। सतरंगे पंखों वाली में संगृहीत 'वसन्त की अगवानी' तथा 'नीम की दो टहनियां' इसी प्रकार की रचनाएं हैं। दूसरी पद्धति सौन्दर्यमूलक है। 'बादल को घिरते देखा' में पांच दृश्यों का सौन्दर्यमूलक परिवेश वस्तुनिष्ठ होते हुए भी पर्याप्त संग्रथित है। रचना के क्रम में पूरे दृश्य का आकर्षक आलेख इस संदर्भ में कवि के शिल्पकौशल का प्रमाण है।[४]

केदार की तरह ही अपनी परवर्ती काव्यरचना में नागार्जुन का प्रकृति संबंधी सौदर्यबोध अधिक सूक्ष्म और परिष्कृत हुआ है। यह एक विचित्र बात है कि एक ओर जहां उनका सौन्दर्यबोध विकसित हुआ है, दूसरी ओर राजनीतिक कविताओं में उनका व्यंग और तीखा तथा कटु हुआ है। इस तरह समय के बीतते जाने के साथ-साथ नागार्जुन की काव्य-कटार की दोनों धारें शाण पर चढ़ कर और भी अधिक तीक्ष्ण हो उठी हैं।

उनकी इधर की प्रकृति-कविताओं में एक नयी ताजगी और टटकापन है एक नया कलात्मक कसाव है :

फूले कदम्ब !
टहनी टहनी में कन्दुक सम झूले कदम्ब !
फूले कदम्ब !

सावन बीता
बादल का कोप नहीं रीता
जाने कब से वो बरस रहा
ललचाई आंखों से नाहक
जाने कब से तू तरस रहा

४. राजेन्द्र प्रसाद मिश्र : आधुनिक हिन्दी काव्य, पृ. ३७४.

मन कहता है : छूले कदम्ब
फूले कदम्ब !

प्रगतिशील कवियों में व्यंगकार के रूप में नागार्जुन अपना एक विशिष्ट स्थान रखते हैं। हिन्दी के बहुत से समालोचकों ने उनकी व्यंग-कुशलता की प्रशंसा की है। विश्वंभर मानव ने लिखा है : "हरिश्चन्द्र युग के कुछ साहित्यिकों को छोड़ कर पिछले ५० वर्षों में नागार्जुन जैसा तीखी और सीधी चोट करने वाला व्यंगकार हमारे साहित्य में नहीं हुआ है।"[5] एक और समीक्षक के शब्दों में "नागार्जुन की व्यंग रचना में कबीर की तल्खी, भारतेन्दु की करुणा और निराला की विनोद-वक्रता का विलक्षण सामंजस्य है। अन्य व्यंगकारों से नागार्जुन की भिन्नता इस अर्थ में है कि जहां अन्य लोग सोच विचार कर किसी रचना को व्यंग-बहुल बनाते हैं, वहां नागार्जुन ने व्यंग एक जन्मजात संस्कार के रूप में है। हिन्दी में जितना व्यंग नागार्जुन ने लिखा, उतना किसी ने नहीं।"[6] श्री रामेश्वर शर्मा के अनुसार उनके व्यंगों की एक प्रधान विशेषता यह है कि उनके पीछे एक सच्चे देशभक्त कवि के हृदय की गहरी मनोव्यथा और परिस्थिति को बदल देने की एक उत्कट प्रेरणा विद्यमान है।[7] वास्तव में एक व्यंगकार के रूप में नागार्जुन भारतेन्दु और बालमुकुन्द गुप्त के सच्चे वारिस हैं। उन्होने एक नये कौशल के साथ व्यग के लिए भारतेन्दु युग के कई काव्य रूपों, जैसे 'चूरन के लटके' आदि को प्रयुक्त किया है।

हंस में प्रकाशित[8] उनकी "रामराज्य" कविता उनकी व्यंग कविताओं का प्रतिनिधित्व करती है। गांधी जी के रामराज्य की कल्पना और उनके चेलों के राज्य के बीच की असंगति को इस कविता में बड़े प्रभावशाली ढंग से उभारा गया है। एक देशभक्त कवि के हृदय की वेदना इस व्यंग में भी मुखर है :

राम राज्य में अबकी रावन नंगा होकर नाचा है
सूरत शक्ल वही है भैया, बदला केवल ढांचा है
लाज-शरम रह गयी न बाकी गांधी जी के चेलों में
फूल नहीं, लाठियां बरसतीं रामराज्य की जेलों में

---

५. नयी कविता, पृ. ३०.
६. हरिनारायण मिश्र : समकालीन हिन्दी कविता में व्यंग-विद्रुप, नयी कविता, सं. वासुदेवनंदन प्रसाद.
७. राष्ट्रीय स्वाधीनता और प्रगतिशील साहित्य, पृ. ११४.
८. जून १९४९ के अंक में.

भैया लंदन ही पसंद है आजादी की सीता को
नेहरू जी अब उमर गुजारेंगे अंग्रेजी खेलों में।

नागार्जुन बात को वक्रता के साथ प्रस्तुत करने का अद्भुत कौशल रखते हैं। व्यंजना का यह चमत्कार देखिये :

जन गण मन अधिनायक जय हो प्रजा विचित्र तुम्हारी
भूख भूख चिल्लाने वाली अशुभ अमंगलकारी
चंद सेल बेगूसराय में नौजवान दो भले मरे
जगह नहीं है जेलों में—यमराज तुम्हारी मदद करे।

एक मजेदार दृश्य देखिये : प्रदेश के कांग्रेसी नेता दिल्ली से चुनाव टिकट प्राप्त कर लौटे हैं :

श्वेत-श्याम रतनार अंखियां निहार के
सिण्डीकेटी प्रभुओं की पग धूर झार के
दिल्ली से लौटे हैं कल टिकिट मार के
खिले हैं दांत ज्यों दाने अनार के
आये दिन बहार के!

और सुनिये इस कविता पर डॉ. रामविलास शर्मा की टिप्पणी : कोई रीतिवादी नायिका—प्रौढ़ा मध्या अधीरा आदि—अपने प्रियतम को देख कर इतनी प्रसन्न न हुई होगी, जितने टिकिट पाकर यह कांग्रेसी नेता। श्वेत-श्याम-रतनार रीतिवादी संदर्भ की ओर संकेत करते हैं और अनार के दाने नौटंकी संस्कृति वाले नये लोकगीत की तरफ—बिखरे गुलशन में दाने अनार के! व्यंग में गहराई पैदा होती है इस रीतिवादी संदर्भ की ओर संकेत से। 'आये दिन बहार के' कविता में चुनाव के उद्दीपन विभावों का समा बंध गया है।[९]

उनका व्यंग सर्व-संहारी है। जब वे व्यंग के मूड में होते हैं तो अपने प्रियजनों की छोड़िये, अपने आपको भी नहीं बख्शते। यही कारण है कि चिन्तनशील मनस्थिति में वे किसी का जब मूल्यांकन करते हैं तब अलग दृष्टि रखते हैं और जब व्यंगात्मक मनस्थिति में उसे देखते हैं तब अलग दृष्टि। नेहरू जी के बारे में लिखी हुई दो अलग-अलग मनस्थितियों की कविताओं के ये अंश इसका प्रमाण हैं : नेहरू जी के देहान्त पर उन्होंने गंभीर स्वर में लिखा :

प्रिय थे तुमको काले बादल, प्रिय थी तुमको झील
प्रिय थी तुमको बर्फ, तुम्हें भाते थे सागर नील

---

९. नागार्जुन की काव्यकला, लहर, अजमेर, नवम्बर १९७०.

खिलते फूलों को देखा तो तुम हो उठे निहाल
कुंकुमरंजित मृदुल अंगुलियों से तिलकित था भाल
विश्व वेदना की ऊष्मा के तुम प्रतीक अवतार
तुम अदम्य तुम मैत्री मुदिता करुणा के अवतार
तुम अशोक अकबर रवीन्द्र की, गांधी की अनुपूर्ति
तुम विशाल संस्कृति की प्रतिमा, तुम जन मन की स्फूर्ति!

तो दूसरी ओर व्यंग के स्वर में यह भी लिख दिया :

झुकती स्वराज्य की डाल और
तुम रह जाते दस साल और
हम चावल खाते एक किलो, दस का दे आते नोट मगर
यों सिकुड़ते रहते, सिलवाते सपने में ऊनी कोट मगर
गालियां छलकतीं, बैलों की जोड़ी को देते वोट मगर
हम गांजा ही बेचा करते, लेते खादी की ओट मगर
खुलते-खिलते कुछ गाल और
तुम रह जाते दस साल और!
गेरुआ पहनते जयप्रकाश नर्मदा किनारे बस जाते
डांगे हो जाते राज्यपाल, लोहिया जेलों में चल खाते
गोपालन होते नजरबन्द, राजाजी माथा घुटवाते
जनसंघी अटल बिहारी जी भिक्षा की झोली फैलाते
चौड़ा होता कुछ भाल और
तुम रह जाते दस साल और!

सर्वोदयवादियों पर ऐसा कचोटता हुआ व्यंग शायद ही हिन्दी या किसी और भारतीय भाषा में किया गया हो :

बापू के भी ताऊ निकले तीनों बन्दर बापू के
सरल सूत्र उलझाऊ निकले तीनों बन्दर बापू के
सचमुच जीवनदानी निकले तीनों बन्दर बापू के
ज्ञानी निकले, ध्यानी निकले तीनों बन्दर बापू के
जल-थल-गगन-विहारी निकले तीनों बन्दर बापू के
लीला के गिरधारी निकले तीनों बन्दर बापू के!

सर्वोदयवादियों की बापू के तीन बन्दरों के रूप में कल्पना मात्र कितनी गहरी व्यंग-दृष्टि की उपज है, यह कहने की जरूरत नहीं। फिर ऊपर से यह सारा तामझाम! गजब का व्यंग उत्पन्न किया गया है।

अपने अमरीकी अन्नदाताओं के प्रति भारतीय नेताओं के भक्तिभाव पर एक व्यंग देखिए। कविता है 'महाप्रभु जानसन के प्रति':

हम काहिल हैं, हम भिखमंगे, तुम हो औढर दानी
अबकी पता चला है प्रभुजी, तुम चन्दन हम पानी
हम निचाट धरती निदाघ की, तुम बादल बरसाती
अबकी पता चला है प्रभुजी, तुम दीपक हम बाती
खुली आंख सोये हैं, ठोकर मारो हमें जगाओ
वीराने में फंसे पड़े हैं, अबकी पार लगाओ
तुम्हीं सिफारिश कर दो प्रभुजी, ढरें लिबर्टी मैया
अड़ी दरिद्रा की रेती में आजादी की नैया!

'चन्दन और पानी' तथा 'दीपक और बाती' के धार्मिक आसंग व्यंग को कितना गहरा बना देते हैं। और अन्तिम पंक्ति समसामयिक भारतीय वास्तविकता पर कितनी सार्थक और सशक्त टिप्पणी है:

अड़ी दरिद्रा की रेती में आजादी की नैया!

अतिशयोक्ति पर आधारित उनका एक और व्यंग देखा जा सकता है:

मलाबार के खेतिहरों को अन्न चाहिये खाने को
दण्डपाणि को लट्ठ चाहिये बिगड़ी बात बनाने को
जंगल में जाकर जो देखा नहीं एक भी बांस दिखा
सभी कट गये—सुना देश को पुलिस रही है सबक सिखा

नागार्जुन पर संस्कृत, पाली आदि भाषाओं के ज्ञान के और प्राचीन भारतीय साहित्य के अध्ययन के संस्कार हैं, इसलिए एक ओर जहां उनकी भाषा-शैली में जनवादी तत्वों की अधिकता है वहां दूसरी ओर उन्होंने सामासिक संस्कृत पदावली का प्रयोग भी किया है। अपने शिल्प-विधान में उन्होंने हिन्दी साहित्य की विशाल परम्परा का उपयोग किया है और बहुत से पुराने उपकरणों को नयी विषय वस्तु दी है। हनुमान चालीसा की शैली का एक बिलकुल नये संदर्भ में प्रयोग देखिये:

हिन्दचीन जय, जय हो ची मिन्ह, वीरशिरोमणि वियतनाम के
जय जय वीर गुरिल्ले प्रतिनिधि जयति मलाया के अवाम के

अपनी कविताओं में उन्होंने जनता की जबान पर चढ़े हुए कुछ मुहावरों का सुन्दर प्रयोग किया है।

देखो गिरने ही वाले हैं भहरा कर ये महल ताश के।

× × ×

हमलावर मुंह की खायेंगे उतर जायगा नीचे पारा।

× × ×

जो कोई इनके खिलाफ उंगली उठायेगा बोलेगा
काल कोठरी में ही जाकर फिर वह सत्तू घोलेगा।

नागार्जुन के लिए डॉ. रामविलास शर्मा ने लिखा है: हर विकासमान देश के समाजवादी आन्दोलन के सामने यह समस्या आती है कि साहित्य को कैसे लोकप्रिय बनाया जाय, साथ ही उसे कलात्मक स्तर से गिरने न दिया जाय। नागार्जुन ने लोकप्रियता और कलात्मक सौन्दर्य के सन्तुलन और सामंजस्य की समस्या को जितनी सफलता से हल किया है, उतनी सफलता से बहुत कम कवि—हिन्दी से भिन्न भाषाओं में भी—हल कर पाये हैं।

सचमुच नागार्जुन हिन्दी की सर्वहारा-कविता के सबसे सच्चे, सबसे प्रखर और सबसे जीवन्त प्रतीक हैं।

केदारनाथ अग्रवाल

हिन्दी के प्रगतिशील कवियों में केदार अपने प्रकृति-प्रेम और अपनी आंचलिक कविताओं के कारण याद किये जाते रहेंगे। केदार ने अपने कवि-जीवन का प्रारंभ प्रेम और श्रृंगार के रूमानी कवि के रूप में किया था और बीच के संघर्षी स्वर के बाद परवर्ती कविताओं में फिर उनका मानवीय और प्राकृतिक सौंदर्य और प्रेम के कवि का रूप ही अधिक मुखर हुआ है।

नींद के बादल (सन् ४७), उनकी प्रारम्भिक कविताओं का संकलन है। संकलन की पांच पंक्तियों की भूमिका में कवि ने कहा है कि ये उनकी प्रारम्भिक वैयक्तिक प्रेम की कविताएं हैं, नींद के ऐसे बादल, जो लाल सबेरे के साथ ही ओझल हो गये। नींद के बादल की अधिकांश कविताएं सरल और स्वस्थ प्रेम की कविताएं हैं। नारी-सौंदर्य और प्रेम की स्वस्थ और कुण्ठारहित अभिव्यक्ति इनमें हुई है। सभी कविताओं में छायावादी प्रभाव स्पष्ट है, फिर भी कवि की शैली की अपनी सरलता और सादगी उसे छायावादी वागाडम्बर से बहुत दूर ले जाती है। इन प्रेम-कविताओं के अतिरिक्त संकलन में कुछ प्रकृति सम्बन्धी, छायावादी भावभूमि की कविताएं हैं। दो-तीन कविताओं में रहस्य-

वाद का स्वर भी है।[१०] एक कविता—अवसान—कवि की यथार्थवादी मनोवृत्ति की ओर भी संकेत करती है।

केदार का वास्तविक व्यक्तित्व युग की गंगा (४७) में उभरता है। संकलन की सभी कविताएं प्रगतिशील भावभूमि की हैं। युग की गंगा की कविताओं को चार प्रमुख वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—प्रकृति सम्बन्धी कविताएं, यथार्थवादी रेखाचित्र, समूहगान और छोटी कविताएं।

प्रकृति-सम्बन्धी कविताओं में दो महत्वपूर्ण हैं—'चन्द्र गहना से लौटती बेर' और 'बसन्ती हवा'। दोनों सुन्दर हैं। दोनों में प्रकृति का स्वच्छ, अकुण्ठ और स्वच्छन्दतावादी तत्वों से पूर्ण 'किसानी' चित्रण है। किसान-जीवन से कवि का तादात्म्य इतना गहरा है कि उसे वास्तव में किसान-जीवन का कवि कहा जा सकता है। केदार की प्रकृति सम्बन्धी कविताओं की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि उनमें प्रकृति को किसी मध्यम-वर्गीय रुग्ण और कुण्ठाग्रस्त दृष्टि से नहीं, एक किसान की स्वस्थ, सरल, ग्राम्य और रूमानी दृष्टि से देखा गया है। 'चन्द्र गहना से लौटती बेर' का यह चित्र इसका प्रमाण है :

एक बीते के बराबर
यह हरा ठिंगना चना
बांधे मुरैठा शीश पर
छोटे गुलाबी फूल का
सज कर खड़ा है!
पास ही मिल कर उगी है
बीच में अलसी हठीली
देह की पतली, कमर की है लचीली
नील फूले फूल को सिर पर चढ़ाकर
कह रही है, जो छुए यह
दूं हृदय का दान उसको!
और सरसों की न पूछो
हो गयी सबसे सयानी
हाथ पीले कर लिये हैं
ब्याह मण्डप में पधारी!
फाग गाता मास फागुन

---

१० द्रष्टव्य : 'नभ की ओर निहार रहा था', 'अयि रूपसि अनजान', और 'वह मौन सा रहता है' शीर्षक कविताएं.

आ गया है आज जैसे
देखता हूँ मैं : स्वयंवर हो रहा है!

'बसन्ती हवा' केदार की श्रेष्ठ कविताओं में से एक है। ग्राम्य जीवन की सरलता, स्वस्थता और उन्मुक्तता के साथ ही साथ जीवन के प्रति एक स्वस्थ और आशावादी दृष्टि की छाप इस कविता पर स्पष्ट है। 'पंचक पर्व' पर आधारित अतुकान्त छन्द में लिखी हुई इस कविता का प्रभाव छन्द के प्रवाह के कारण बहुत बढ़ गया है।[11] एक अजीब मस्ती और जीवन का संगीत इस कविता में है :[12]

हवा हूँ, हवा मैं
बसन्ती हवा हूँ
वही हां; वही जो
युगों से गगन को
बिना कष्ट श्रम के
संभाले हुए हूँ
वही हां, वही जो
सभी प्राणियों को
पिला प्रेम-आसव
जिलाये हुए हूँ
अनोखी हवा हूँ
बड़ी बावली हूँ
बड़ी मस्त-मौला
नहीं कुछ फिकर है
बड़ी ही निडर हूँ
जिधर चाहती हूँ
उधर घूमती हूँ
मुसाफिर अजब हूँ।

---

११. कैलाश वाजपेयी : आधुनिक हिन्दी कविता में शिल्प, पृ. २५१.
१२. रामेश्वर शर्मा : कवि केदारनाथ अग्रवाल, राष्ट्रीय स्वाधीनता और प्रगतिशील साहित्य, पृ. ६४.

युग की गंगा की अधिकांश रचनाएं यथार्थवादी रेखा-चित्र हैं। 'चित्रकूट के यात्री', 'बुन्देलखण्ड के आदमी', 'शहर के छोकरे', 'मूलगंज', 'मजदूर', 'बन्नू', 'रनिया' आदि कविताएं वास्तव में कविताएं कम और रेखा-चित्र अधिक हैं। इनमें काव्यात्मक 'सिचुएशन' नहीं, सरल रेखांकन मात्र है। हां, कहीं-कहीं व्यंगात्मकता का पुट उन्हें मनोरंजक जरूर बना देता है। चित्रकूट के बौड़म यात्रियों का यह चित्र ऐसा ही है।

चित्रकूट के बौड़म यात्री
सतुआ, गुड़ गठरी में बांधे
गठरी को लाठी पर साधे...
बण्डी काली, तेलही काली
धोती ओछी, गंदी पहने
गंदे जीवन के अधिकारी
स्वर्ग पहुंचने की इच्छा से
लम्बी-लम्बी कदमें धरते
जल्दी-जल्दी सांसें भरते
नंगे पैरों पैदल चलते

इन रेखा-चित्रों में कवि का, अपने अंचल के जीवन का सूक्ष्म निरीक्षण प्रकट हुआ है। इन चित्रों और बुन्देलखण्ड की प्रकृति का भावभीना वर्णन करने वाली कवि की कई प्रकृति-सम्बन्धी कविताओं को देखते हुए उसे बुन्देलखण्ड के ग्राम्य-जीवन का आंचलिक कवि कहा जा सकता है। किसान-जीवन कवि का प्रधान विषय है। एक किसान का जीवन के प्रति पोषणशील दृष्टिकोण उनकी कई कविताओं में व्यक्त हुआ है :

जीवन नहीं मोमबत्ती है
जले और रोये, पिघले जो
सोये अन्त समय में।
जीवन तप्त प्रकाश सूर्य है
जो गहरे सागर में उभरे
लाल अग्नि सा पहले दहके
जड़ चेतन सम्पूर्ण प्रकृति के
रोम-रोम में ज्वाल उगल दे

—मोमबत्ती और सूरज, युग की गंगा.

लेकिन किसान-जीवन का कवि होते हुए भी केदार ने किसान-जीवन के यथार्थ का आदर्शीकरण या गौरवान्वयन नहीं किया है—उस जीवन के अभिशापों को उन्होंने कभी नजरअन्दाज नहीं किया। युग की गंगा की गांव में शीर्षक कविता इसका प्रमाण है :

उसी पुरातन चक्की का कर्कश मोटा स्वर
अंधकार के आर्त्तनाद-सा सुन पड़ता है
गाय, बैल, भेड़ों, बकरी पशुओं के दल में
मूर्ख मनुष्यों का समाज खोया रहता है
सड़े घूर की, गोबर की बदबू से दब कर
महक ज़िन्दगी के गुलाब की मर जाती है
रार, क्रोध, तकरार, द्वेष से, दुःख से कातर
आज ग्राम की दुर्बल धरती घबराती है।

रेखा-चित्रों के कुछ गुण लिये हुए, जीवन के अनुभव-खण्डों को चित्रित करने वाली कई छोटी-छोटी कविताएं भी इस संकलन में हैं। इनमें से कई का कसाव और संक्षिप्ति प्रभावक है। ऐसी कविताओं में 'गर्रा नाला', 'धन-जन,' 'दो जीवन', 'कोयले', 'वरदान' आदि का नाम लिया जा सकता है। 'वरदान' में कवि कहता है :

वैभव की विशाल छत्र-छाया में
स्वर्ण सिंहासन पर
रक्खी देख मन्दिरों में पत्थर की मूर्तियां—
क्षुब्ध हो गर्भवती
ईश्वर से मांगती है वरदान
केवल पाषाण हो
कोख की मेरी भी सन्तान।

समूह-गीत प्रगतिशील कविता का एक महत्वपूर्ण अंग है। युग की गंगा के समूहगीतों में दो महत्वपूर्ण और सशक्त हैं : 'करोड़ों का गाना' और 'कटुई का गीत।' 'करोड़ों का गाना' में करोड़ों भारतीयों को शब्द और अर्थ के एक ही सूत्र में पिरो दिया गया है—

सभी का तन गुलाम है, सभी का मन गुलाम है
सभी की मति गुलाम है, सभी की गति गुलाम है

गुलामियों के चिन्ह को मिटाये चल, मिटाये चल, मिटाये चल,
हरेक तार सांस का बजाये चल, बजाये चल, बजाये चल।

'कटुई का गीत' में बड़े सुन्दर ढंग से कवि ने अपने जीवन-दर्शन को व्यक्त किया है—

काटो, काटो, काटो करवी
साइत और कुसाइत क्या है
जीवन से बढ़ साइत क्या है
मारो, मारो, मारो हंसिया
हिंसा और अहिंसा क्या है
जीवन से बढ़ हिंसा क्या है!

लोक और आलोक (५७) केदार का तीसरा संकलन है। संकलन की अधिकांश कविताओं में प्रगतिशील दृष्टिकोण की सपाट अभिव्यक्ति और प्रगतिशील विचारधारा का सीधा कथन मात्र है।" लेकिन कुछ कविताएं इस साधारणता के स्तर से ऊपर उठी हैं। ऐसी कविताओं में 'लिखकों से,' 'वह जन मारे नहीं मरेगा,' 'मांझी न बजाओ बंशी,' 'टूटे न तार तने जीवन सितार के,' 'केन किनारे' और 'नागार्जुन के बांदा आने पर' आदि का नाम लिया जा सकता है। इनमें भी अधिकांश का कथ्य बड़ा सरल, सपाट और इकहरा है, पर अभिव्यक्ति की कुशलता और शैली के सहज प्रवाह ने इन्हें सुन्दर बना दिया है। 'लिखकों से' की ये पंक्तियां इस दृष्टि से दृष्टव्य हैं।

सूर्य हो लेकिन छुपे हो बादलों में
कान्ति हो लेकिन पले हो पायलों में
सिन्धु हो लेकिन नहीं तूफान लाते
चांद की मुस्कान में हो प्रान पाते!

---

१३. जैसे 'श्रम' शीर्षक यह कविता :

खो सकता है तेरा मेरा रत्ती-रत्ती जोड़ा सोना
हो सकता है
पूर्ण असम्भव का भी पूरा सम्भव होना
किन्तु नहीं श्रम
तेरा-मेरा इन हाथों का खो...

'वह जन मारे नहीं मरेगा' में जनता की अजेय शक्ति में कवि की दृढ़ आस्था व्यक्त हुई है :

जो जीवन की धूल चाट कर बड़ा हुआ है
तूफानों से लड़ा
और फिर खड़ा हुआ है।
जिसने सोने को खोदा
लोहे को मोड़ा
जो रवि के रथ का घोड़ा है
वह जन मारे नहीं मरेगा!
जो जीवन की आग जला कर आग बना है
फौलादी पंजे फैलाए नाग बना है
जिसने शोषण को तोड़ा
शासन मोड़ा है
जो युग के रथ का घोड़ा है
वह जन मारे नहीं मरेगा!
नहीं मरेगा!

लोक और आलोक में कवि ने गीतों की एक नयी दिशा में कुछ सुन्दर और सफल प्रयोग किये हैं—यह दिशा है, लोक गीतों की दिशा। संकलन में लोक गीतों की धुनों, शब्दावली और भाव-भूमि को छूती हुई शैली के कई गीत हैं। 'मांझी न बजाओ बंशी' ऐसे गीतों मे सर्वश्रेष्ठ है :

मांझी न बजाओ बंशी मेरा मन डोलता
मेरा मन डोलता, जैसे जल डोलता
जल का जहाज जैसे पल-पल डोलता!
मांझी न बजाओ बंशी मेरा प्रन टूटता
मेरा प्रन टूटता, जैसे तृन टूटता
तृन का निवास जैसे बन बन टूटता!

लोक जीवन के सीधे सरल उपमानों ने ऐसे गीतों में एक ऐसा रस भर दिया है, जिसे 'लोक रस' ही कहा जा सकता है।

युग की गंगा की लघु कविताओं की परम्परा लोक और आलोक में भी विद्यमान है। ऐसी कविताओं में मात्र एक बिम्ब या अनुभव खण्ड को संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है। ये कविताएं कई बार तो अपने इकलौते बिम्ब की

सुन्दरता या विशेषता के कारण या सूक्ति रूप में पूरी बात कह देने के कारण प्रभावक होती हैं, पर अधिकांश 'कविता' की जगह 'कविता - खण्ड' मात्र बन कर रह जाती हैं।

'केन किनारे', 'बसंती हवा' की परम्परा की अगली कड़ी है। लेकिन यहां केन की प्राकृतिक सुषमा के साथ ही साथ जनवादी विचारों को भी गूंथा गया है :

रोक सका है कौन प्रवाहित युग का पानी
आदि काल से काट रहा है तट चट्टानी
भूरागढ़ का किला सुनाता है यह गाथा
ऊंचे सूरज से ऊंचा है जन का माथा

'नागार्जुन के बांदा आने पर' बांदा के जनजीवन के यथार्थ-चित्रण की दृष्टि से, अपने उदात्त सख्यभाव की दृष्टि से और काव्यानन्द की रस दशा की तरल अभिव्यक्ति की दृष्टि से, बीच बीच में कुछ साधारण पंक्तियों के बावजूद, एक सुन्दर कविता है। नागार्जुन ने भी अपने इसी बांदा-वास पर एक सुन्दर कविता लिखी है। दो प्रगतिशील कवि-मित्रों की एक दूसरे के सान्निध्य पर लिखी हुई ये दोनों कविताएं प्रगतिशील कविता के इतिहास में याद की जाती रहेंगी। इस कविता का प्रारम्भ बांदा के जन जीवन के एक चित्र से होता है :

यह बांदा है
सूदखोर आढ़त वालों की इस नगरी में
जहां मार, काबर, कछार, महुआ की फसलें
कृषकों के पौरुष से उपजा कन-कन सोना
लढ़ियों में लद-लद कर आ कर
बीच हाट में बिक कर, कोठों-गोदामों में
गहरी खोहों में खो जाता है जा जा कर
और यहां पर
रामपदारथ, रामनिहोरे
बेनी पंडित, वासुदेव, वल्देव, विधाता
चन्दन, चतुरी और चतुर्भुज
गांवों से आ आ कर गहने गिरवी रखते
बढ़े ब्याज के मुंह में बरबस-बेबस घुसते
फिर भी घर का खर्च नहीं पूरा कर पाते

आगे चल कर कवि अपने साहित्यिक अकेलेपन को याद करता हुआ कभी-कभार कवि-मित्रों के आने के उल्लास और आनन्द को चित्रित करता है और तब निराला पर्व पर नागार्जुन तथा अन्य मित्रों के आगमन के बाद कवि-गोष्ठी में प्रवाहित हुए काव्यानन्द को आत्म विभोर होकर रूपायित करता है :

एक बार फिर मिला सुअवसर रस पीने का
कविता का झरना बनकर झर-झर जीने का
लगातार पहरों-घंटों तक एक साथ सांसें लेने का
एक साथ दिल की धड़कन से ध्वनि करने का
ऐसा लगा कि जैसे हम सब
एक प्राण हैं, एक देह हैं, एक गीत हैं, एक गूंज हैं

कविता के प्रभाव का एक मार्मिक और विस्तृत चित्र इन तथा आगे की पंक्तियों में खींचा गया है। बांदा की बज्जर बुंदेली धरती की और नागार्जुन के संदर्भ में मिथिला की शस्य श्यामला धरती की मीठी-सोंधी खुशबू इस कविता की एक एक पंक्ति में बसी हुई है।

फूल नहीं, रंग बोलते हैं (६५) केदार जी का एक ऐसा प्रतिनिधि संकलन है, जिसमें उनके पिछले तीनों संकलनों की महत्वपूर्ण कविताओं के अतिरिक्त उनकी परवर्ती कविताएं संकलित हैं। संकलन चार खंडों में विभाजित है—'वल्लरी तुम, धूप तुम, हवा तुम', 'अस्थि के अंकुर', 'रंग बोलते हैं', और 'कुछ लिखी-अधलिखी कविताएं।' पहले दो खंडों में कुछ कविताएं तो पिछले संकलनों से चुनी हुई हैं, शेष नयी। दूसरे दोनों खंडों मे लगभग सभी ५७ के बाद की कविताएं हैं। संख्या की दृष्टि से केदार जी की परवर्ती कविताओं में प्रकृति सम्बन्धी 'लघु कविताओं' की ही अधिकता है। काल-क्रम से देखा जाय तो यह तथ्य सामने आता है कि एक तो परवर्ती कविताओं में केदार का वह संघर्षी स्वर धीमा पड़ गया है जो युग की गंगा और लोक और आलोक का मूल स्वर है; उनका प्रकृति-प्रेमी रूप ही अधिक मुखर होकर सामने आता है और दूसरे लघु कविताओं की अपनी प्रवृत्ति को उन्होंने इतना खींचाताना है कि वह कई जगह अपना अर्थ ही खो बैठी है। अधिकतर जगह उन्होंने दो दो चार-चार पंक्तियों में बहुत साधारण-सी बात के कथन को 'कविता' के नाम से चलाया है। 'कुछ लिखी-अधलिखी कविताएं' खण्ड की कविताओं को तो खैर स्वयं उन्होंने लिखी-अधलिखी माना है, पर शेष परवर्ती कविताओं में से भी बहुत-सी या तो अधलिखी हैं या अकविताएं हैं। कुछ में केवल एक बिम्ब

था एक उपमा है,[१४] कुछ में ऐसी 'काव्यात्मक स्थिति' है, जिनका उपयोग
कविता के रूप में किया जा सकता था।[१५] और कुछ में कोई साधारण सी बात
ऐसे साधारण ढंग से कह दी गयी है कि उन्हें कविता कहा जाय तो किसी भी
आदमी की किसी भी बात को कविता मानना होगा, जैसे:

अतीत की सन्तान है वर्तमान
भविष्य का पिता है वर्तमान !

फिर भी संकलन में कुछ सुन्दर परवर्ती कविताएं हैं, जो कवि की परिष्कृ
अभिव्यक्ति और सूक्ष्म संवेदनशीलता की प्रमाण हैं। ऐसी कविताओं में 'एक
खिले फूल ने', 'आज नदी बिल्कुल उदास थी', 'चील दबाये है पंजों में', 'हरी घा
का बल्लम,' 'हम न रहेंगे', 'हम जिएं न जिएं दोस्त' और 'जैसे कोई सितारिय
के नाम लिये जा सकते हैं। पहली चारों प्रकृति संबंधी लघु कविताएं
प्राकृतिक सौन्दर्य के अचकचा देने वाले प्रभाव को 'एक खिले फूल' में संि
अभिव्यक्ति मिली है :

झाड़ी के एक खिले फूल ने
नीली पंखुरियों के एक खिले फूल ने
आज मुझे काट लिया
ओंठ से
और मैं अचेत रहा धूप में।

---

१४. एक पूरी कविता है :

मैं पहाड़ हूं
और तुम।
मेरी गोद में बह रही नदी हो।

और दूसरी—

उड़ जाता है चेतन
जैसे गंध कपूर !

१५. तुम मिलती हो
हरे पेड़ को जैसे मिलती धूप
आंचल खोले
सहज
स्वरूप।

पुष्प-दंश का बिम्ब निश्चय ही प्रभावक है। पर नदी की जिस शालीनता, शिष्टता और सम्मान के साथ कवि ने देखा है वह और भी ऊंचे दर्जे की है :

आज नदी बिल्कुल उदास थी
सोयी थी अपने पानी में
उसके दर्पण पर बादल का वस्त्र पड़ा था।
मैंने उसको नहीं जगाया
दबे पांव घर वापस आया।

नदी का नारीकरण तो अनेक छायावादी कविताओं में भी मिल जाएगा, पर सचमुच उसके प्रति ऐसा संभ्रान्तकुलोचित व्यवहार एक सच्चे प्रकृति-प्रेमी और परिमार्जित-रुचि कवि में ही देखा जा सकता है। एक नन्ही सी चिड़िया के साथ, बिना उसका नाम लिये, कवि के भावात्मक तादात्म्य की यह स्थिति देखिए :

चील दबाये है पंजे में
मेरे दिल को
हरी घास पर
खुली हवा में
जिसे धूप में
मैंने रक्खा।

'हरीघास का बल्लम' प्रकृति के कुंठानाशी रूप का उद्घाटन करती है।

हरी घास का बल्लम
गड़ा भूमि पर
सजग खड़ा है
छह अंगुल से नहीं बड़ा है।
मन होता है :
मैं उखाड़ कर इसे मार दूं
कुंठा को गढ़ में पछाड़ दूं।

'हम न रहेंगे', 'हम जियें न जियें', और 'जैसे कोई सितारिया' में कवि की गहरी जीवन-आस्था और संसार के प्रति उसका गहरा मानवीय राग व्यक्त हुआ है। उसे विश्वास है कि चाहे वह रहे या न रहे, जीवन और प्रकृति की सुन्दरताएं बनी रहेंगी। खेत रहेंगे, उनकी माटी को मदमस्त बनाते श्याम बदरिया के लहराते केश रहेंगे, संसार के रतिरंग रहेंगे, और भूतल को रससिक्त

बनाने वाले लाल चुनरिया में लहराते अंग रहेंगे। और इससे वह जरा भी दुःखी नहीं है, बल्कि प्रसन्न है, क्योंकि वह स्वस्थ मनस्क है।

'हम जियें न जियें' में प्रौढ़ कवि का नवागत पीढ़ी के प्रति स्वस्थ, आस्थापूर्ण और मर्दानगीपूर्ण भाव हृदय को छूता है :

हम जियें न जियें दोस्त
तुम जियो एक नौजवान की तरह
खेत में झूम रहे धान की तरह
मौत को मार रहे बान की तरह
हम जियें न जियें दोस्त
तुम जियो अजेय इन्सान की तरह

पर कवि का यह राग तरुणों के प्रति ही नहीं, सम्पूर्ण मानव जाति के प्रति ही नहीं, प्रकृति के प्रति ही नहीं, पूरे संसार के प्रति है। वह त्रिलोचन की तरह पूरे 'जगत-जीवन' का प्रेमी है। और अपने इस संसार-प्रेम को उसने ऐसे ऊंचे भावात्मक स्तर तक पहुंचाया है कि भक्तों का सायुज्य और योगियों की समाधि भी पीछे रह गयी है :

जैसे कोई सितारिया द्रुत में सितार को बजाये
लय में पहुंच कर वह स्वयं लय हो जाये
और वह संगीत—झंकृत संगीत
तात्विक संगीत हो जाए
केवल आनन्द ही आनन्द लहरे और लहराये
केवल शरीर ही उसका सितार से टिका रह जाये।
ओ मेरे संसार
मैं यही तुमसे पाऊं
जब तक मैं जियूं, तुम्हें बजाऊं

आग का आईना (७०) कवि की षष्ठिपूर्ति के अवसर पर प्रकाशित कवि का नवीनतम संकलन है। संकलन की भूमिका में केदार लिखते हैं: "इसकी कविताएं मेरी पुरानी कविताओं से बिल्कुल भिन्न हैं। दोनों के बीच की दूरी मेरे पहले के केदार और अब के केदार के बीच की दूरी है।... अलावा इसके कथ्य मे जान पड़ी है इस पकड़ से। शिल्प यथानुरूप कलात्मक बना है, ऐसी पकड़ से।" स्पष्ट है कि कवि अपने विकसित शिल्प-बोध के प्रति सजग है। इस क्षेत्र में उसने कुछ नया उपलब्ध किया है, ऐसा भाव भूमिका मे स्पष्ट है।

. पर जो लोग उनका फूल नहीं, रंग बोलते हैं संकलन पढ़ चुके हैं, उन्हें आग का आईना की कविताएं उससे 'बिल्कुल भिन्न' की बात छोड़िये, 'बहुत भिन्न' भी नहीं लगेंगी। स्पष्ट है कि 'पुरानी कविताओं' से उनका मतलब लोक और आलोक तक की कविताओं से ही है और उनसे ये और फूल नहीं, रंग बोलते हैं की नयी कविताएं निश्चय ही भिन्न स्वर की हैं। इसमें संदेह नहीं कि केदार का काव्य-बोध और शिल्प-कौशल इस संकलन में और अधिक विकसित हुआ है। उनकी भाषा में एक नया परिष्कार, एक नयी भंगिमा आयी है, पर इसका यह मतलब नहीं कि कवि का मूलभूत प्रगतिशील और आस्थावादी स्वर इस संकलन में अश्रव्य हो गया हो। वह स्पष्ट और मुखर है।

आग का आईना की महत्वपूर्ण कविताओं में 'कहां नहीं पड़ती है', 'मन की गठरी में बंधा नगर', 'मैं उसे खोजता हूं', 'श्रीखंडे के प्रति', 'दूर कटा कवि मैं जनता का', 'मुक्तिबोध की मृत्यु के बाद', 'यह जो हुआ है उत्तरी वियतनाम में', 'पत्थर घिस गया कगार का', और 'आग का आईना है नाराज पेरिस' उल्लेखनीय हैं।

'कहां नहीं पड़ती है समय की मार' कविता में प्रारंभिक सरल-निर्मल आशा-आस्था की जगह एक निर्मम यथार्थ की उदास और खिन्न पृष्ठभूमि पर एक चिन्ताग्रस्त आशावाद और एक संश्लिष्ट आस्था के दर्शन होते हैं। कविता का प्रारंभ यथार्थ की कटुता की काफी पराजित सी स्वीकृति के साथ होता है :

कहां नहीं पड़ती है किस पर
काल के मौन पंखों की मार !...
पृथ्वी हो जाया करती है अचेत
पहाड़ से खड़े-खड़े बड़े-बड़े से उसके हाड़
नत हो जाया करते हैं अवसन्न त्वचाहीन

लेकिन इन सारी क्रूर वास्तविकता के बावजूद एक 'फिर भी' यहां मौजूद है :

फिर भी सागर, पृथ्वी, नदियां आकाश और आग,
मार पर मार के बाद भी समाप्त नहीं हुए
और अब भी लहराता है सागर भरपूर जवान
अब भी फूल फल से भरी रहती है पृथ्वी छविमान
अब भी नये-नये चांद और सूरज उगाया करता है आकाश

शैलिपक सौष्ठव की दृष्टि से कविता को यहीं या एकाध और कसी हुई पंक्ति के बाद समाप्त हो जाना चाहिए था, पर कवि अपने पुराने 'बात को उसके

पूरे निष्कर्ष तक पहुंचाने' के प्रगतिवादी आग्रह के कारण उसे खींचता है और परिणामस्वरूप दो बिल्कुल साधारण अकाव्यात्मक पंक्तियों के साथ कविता समाप्त होती है :

युग की, सत्य की टोह के लिए
विचार को दिशा देने के लिए।

'मन की गठरी में बंधा' में बांदा नगर में हुए तरुणों के किसी प्रदर्शन को उसकी पूरी तेजस्विता में कवि ने अंकित किया है :

मन की गठरी में बंधा नगर का नैतिक बल
खुल गया है अब
सामूहिक प्रदर्शन के रूप में...
पिछड़े प्रदेश का गुमसुम इतिहास
मर्माहत युवकों के साथ
सड़क पर कड़क कर
आक्रोश और आग के डग धरता
अनाचार और अत्याचार की पीठ कुचलने लगा है।

'मैं उसे खोजता हूं' कवि की बिम्बधर्मी लघु कविताओं की परंपरा की ही सशक्त कड़ी है :

मै उसे खोजता हूं
जो आदमी है
और अब भी आदमी है
तबाह होकर भी आदमी है
चरित्र पर खड़ा
देवदार की तरह बड़ा।

यहां अन्तिम पंक्ति ही वास्तव में कविता की जान है, पर उस तक एक संगति पड़ाव पूरी कविता में व्याप्त है। मायकोव्स्की के रूपक का प्रयोग करते पंक्ति दर पंक्ति पलीते की सुलगन तेजी से आगे बढ़ती जाती है और अन्तिम पंक्ति में विस्फोट हो जाता है।

'मुक्तिबोध की मृत्यु के बाद' में जीवितावस्था में उनकी उपेक्षा करने और पर मौत के बाद प्रशंसाओं के पुल बांधने वाले साहित्यकारों के शोर पर

अच्छा व्यंग किया गया है और 'श्रीखंडे के प्रति' में मूर्तिकार श्रीखंडे द्वारा तराशे हुए एक फलक के आधार पर एक अच्छा मजमून बांधा गया है :

तुमने उगाया है सूरज
सीमेन्ट काटकर
तराश कर !
बड़ा दैदीप्यमान है
दिल से निकला तुम्हारा सूरज
लपट पर लपट मारता दिशाओं में
देख कर डूबने चला गया है
आसमान का सूरज
दिवाल में दिन हो गया है
जड़ अब चेतन हो गया है

पर इस कविता का अन्त भी मुझे अकलात्मक ही नहीं, एक हद तक भोंडा भी, लगता है। अच्छी-खासी कविता को 'जय श्रीखंडे' के नारे से समाप्त करके पाठकों की सुरुचि पर आघात किया गया है।

'दूर कटा कवि मैं जनता का' कवि की अपने बारे में, अपनी प्रतिश्रुति के बारे में, 'आस्था का शिलालेख' की परंपरा की कविता है, फर्क यही है कि अब उसकी आस्था अधिक जटिल और संश्लिष्ट है और उसका स्वर अधिक खिन्न और धुआं-धूसरित :

दूर कटा कवि मैं जनता का
कच कच करता
कचर रहा हूं अपनी माटी
मिट-मिट कर मैं सीख रहा हूं
गति पल जीने की परिपाटी
कानूनी करतब से मारा
जितना जीता उतना हारा
न्याय-नेह सब समय खा गया
भीतर-बाहर धुंआं छा गया

लेकिन इन सब स्थितियों के बावजूद :

लिये हृदय में कविता-थाती
मैं ताने हूं अपनी छाती.

'यह जो हुई है उत्तरी वियतनाम में' और 'आग का आईना है नाराज पेरिस' समसामयिक इतिहास की दो महत्वपूर्ण घटनाओं वियतनामी जनता के दुर्धर्ष संघर्ष और फ्रांस में दगालशाही के विरुद्ध छात्र-विद्रोह से प्रेरित होकर लिखी गयी हैं।

'पत्थर घिस गया कगार का' कलात्मक दृष्टि से इस संकलन की सर्वश्रेष्ठ कविता कही जा सकती है। सूक्ष्म अर्थ-छायाओं और व्यंजनाओं से पूर्ण, सधे हुए बिम्बों के सहारे यह कविता धीरे-धीरे आगे बढ़ती है :

पत्थर घिस गया कगार का
नदी
अब भी जवान है।
अकेला पहाड़
शताब्दियों का बोझ उठाये खड़ा है।
सिर के पेड़ तालियां बजाते हैं।
जमीन का जमाना नहीं बदला।

और अधिकाधिक विद्रूप और बेहूदे होते जा रहे आज के यथार्थ को सशक्त अभिव्यक्ति देती है :

आग
जल रही है किताबों में
लपालप!
कागज नहीं जलता!
हाथ में उठाये किताब सूरज की
आदमी अंधेरे में बैठा है।

किताबी क्रान्ति पर कितनी सटीक टिप्पणी है। 'कागज नहीं जलता' में गजब की विडम्बना है। अन्त तक पहुंचते-पहुंचते यह कविता 'भेड़िये की तरह भयंकर' हो उठे आज के यथार्थ को एक मार्मिक बिम्ब के माध्यम से रूपायित कर समाप्त हो जाती है :

बकरे बोलते हैं
चाकुओं की सदारत में
सलाम ठोंकते।

चाकुओं की सदारत में बकरों का बोलना कितना संत्रासपूर्ण है।

आग का आईना में निश्चय ही केदार जी की काव्य-संवेदना में एक

निखार आया है, उनकी अनुभूतियां अधिक सूक्ष्म हुई हैं। एक उदाहरण लिया जाय :

आग लेने गया है
पेड़ का हाथ आदमी के लिए
टूटी डाल नहीं टूटी है।

पेड़ की टूटी हुई शाखा को कवि की सूक्ष्म संवेदनशीलता ने आदमी के लिए आग लेन गये हुए पेड़ के हाथ के रूप में देखा है। कितना संश्लिष्ट है यह बिम्ब! शिल्प की दृष्टि से ही नहीं, भाव की, कथ्य की दृष्टि से भी। टूटी हुई डाली मनुष्य के लिए आग जलाने के काम आती है, इसी तथ्य पर आधारित है यह सुन्दर कल्पना। कितनी रागपूर्ण दृष्टि है कवि की 'पृथ्वी के वंशज' और 'मानव के अग्रज' पेड़ के प्रति ? उसने अपना एक हाथ तक दे दिया है आदमी के लिए। फिर आग लेने जाने में कितने ही काव्यात्मक और पौराणिक आसंग निहित है। अनायास ही प्रोमेथ्यूस याद आ जाता है। इस आसंग तक पहुंचते पहुंचते 'आग' भी अपना अर्थविस्तार कर लेती है।

संवेदना के इसी विस्तार का एक दूसरा आयाम है, कवि की अस्तित्व के कुछ मूलभूत सवालों के प्रति नवोद्भूत रुचि :

कुछ हूं
और नहीं भी हूँ
शायद मैं यहीं कहीं हूँ
जहां नहीं हूँ

यह होने और न होने के बीच का समतामयिक मुहावरा इससे पहले कवि की अभिव्यक्ति का अंग नहीं बना था, पर आग का आईना में वह देखता है :

नदी में झिलमिल वन है
हो-न हो का विस्तार है
बिम्ब-हीनता का विचार है।

एक हद तक यह कहा जा सकता है कि केदार जी ने इस संकलन में कविता के अपने ही पहले के बनाये हुए रूढ़ ढांचे को तोड़ कर भी कविता उत्पन्न करने की कोशिश की है। यह बात 'पत्थर घिस गया कगार का' जैसी कविताओं के लिए खासतौर से सही है, पर अन्य बहुत सी कविताओं के लिए नहीं। असल में कवि का अपने ही बनाये हुए फार्म के चौखटे से बाहर निकलना काफी कठिन होता है। कवि ने इस संकलन में अपनी छान्दसिकता के ढांचे को तोड़ा है, पर तुकान्त के ढांचे के प्रति उनका मोह बना हुआ है,

बल्कि कहीं कहीं तो श्रीकान्त वर्मा की तरह तुकान्त उन्हें आनुभूतिक संगति से भी दूर ले जाता है। तुकान्त की यह पारंपरिकता 'उत्तरी वियतनाम', और 'मुक्तिबोध की मृत्यु के बाद' जैसी स्तरीय कविताओं में भी देखी जा सकती है। पर जब यह प्रवृत्ति अधिक बढ़ जाती है तो बिल्कुल ही निरर्थक कविताओं को जन्म देने लगती है :

दिल में दिल्ली
दिमाग में बिल्ली
खून में शेखचिल्ली
अब फटी
तब फटी
रोक थाम की झिल्ली।

—आग का आईना, पृ. ८३.

केदार हिन्दी के प्रगतिशील कवियों में अपना एक विशिष्ट स्थान रखते हैं। अपने अंचल बुन्देलखंड की प्रकृति और जन जीवन उनकी कविता के मुख्य विषय हैं। अपनी विषय वस्तु के अनुकूल कभी सरल, इकहरी और कभी गुंफित-संश्लिष्ट शिल्पशैली का उन्होंने सधे हुए हाथों से प्रयोग किया है। आंचलिक वातावरण प्रधान कविताओं में उन्होंने बादा जनपद में प्रचलित साधारण बोलचाल के ग्रामीण शब्दों का भी उपयोग किया है। रामविलास जी को उनकी कविताएं इसी ग्रामीणता और 'भदेसपन' के कारण विशेष प्रिय हैं।[१६]

केदार की प्रतिभा का सर्वाधिक वैभव उनकी बिम्ब-निर्माण-क्षमता में दिखाई देता है। अनुकूल छन्द-विधान और शब्दावली में वे ऐसे सुगठित बिम्ब प्रस्तुत करते हैं जो सजीव और मार्मिक तो होते ही हैं, उनमें जीवन का यथार्थ भी प्रतिबिम्बित होता है।[१७] तूफान का यह मूर्तिकरण देखिए :

मैं घोड़ों की दौड़ वनों के सिर पर तड़तड़ दौड़ा

और सरकार द्वारा लागू किये गये आर्डिनेंसों को किस रूप में देखा है उन्होंने :

कागजी घोड़े विदेशी
हिनहिनाते टाप रखते
ध्वंस करते गांव बस्ती
धूल धरती की उड़ाते

---

१६. तारसप्तक में डॉ. रामविलास शर्मा का वक्तव्य
१७. ललित मोहन अवस्थी : आज के कवि, पृ. १२.

और संघर्ष का कितने सुन्दर ढंग से प्रत्यक्षीकरण किया है :

तेज धार का कर्मठ पानी
चट्टानों के ऊपर चढ़कर
मार रहा है घूंसे कसकर
तोड़ रहा है तट चट्टानी

फूल नहीं रंग बोलते हैं और आग का आईना की अपनी परवर्ती कविताओं में उनकी संश्लिष्ट और गहरे अर्थ भरे बिम्बों की रचना-क्षमता और भी विकसित हुई है। आग का आईना से ऐसे कई बिम्ब उद्धृत किये जा सकते हैं :

(१) उसकी बुझी लालटेन
दर्द के हरे पेड़ पर टंगी है।

—गंगा प्रसाद पांडेय के निधन पर

(२) नदी में डूबे
नगर के पांव
पानी हो गये हैं।

—आग का आईना, पृ. ५२

(३) चिलम में उगा नशे का पेड़
जड़ में आग। सिर में धुंआं।

—आग का आईना, पृ. ४६

केदार ने धूप, ओस, हवा, नदी और ताजगी का अंकन किया है। उन्होंने प्रकृति का पर्यवेक्षण एक ताजा कोण से किया है। धूप, हवा और नदी के प्रत्येक तेवर की उन्हें सूक्ष्म पहचान है। मात्र तफसील से आगे बढ़ कर उन्होंने धूप और हवा की सारी कविता निचोड़ ली है और नदी को पूरी गरिमा से उपस्थित किया है। विशेषकर प्रकाश के चित्रण में वे अग्रणी हैं और उसके सौंदर्य के विविध आयामों के अंकन में उनकी प्रतिभा खूब निखरी है। प्रकाश, हवा और नदी प्रकृति के विशाल क्षेत्र से चुने गये उनके प्रिय उपादान हैं। प्रकाश के द्योतक और दीप्तिपूर्ण प्रभाव के अंकन में केदार हिन्दी में अद्वितीय हैं।[१८]

धूप केदार की अनेक छोटी-बड़ी कविताओं का विषय है। धूप केदार के

---

१८. डॉ. विजेन्द्र नारायण सिंह, केदार की प्रभाववादी कविता शीर्षक लेख; केदार : व्यक्तित्व और कृतित्व पुस्तक में, पृ. १४२.

लिए वैसी ही है जैसे निराला के लिए बादल—उनकी जीवन शक्ति, उनकी स्वतंत्रता प्रसन्नता और कविता का प्रतीक। धूप के अनेक रूपों-रंगों और मुद्राओं को उन्होंने बारीकी से अंकित किया है। कभी वह उन्हें अपने पलंग पर बैठी हुई मुलायम रोएंदार खरगोश की तरह लगती है, जिसे छूकर फिर जीने का बोध मिल जाता है, कभी वह उनकी प्रेयसी है, जो छत पर मिलने आती है और दुपट्टा भूल कर चली जाती है, कभी वह चमकती चांदी की साड़ी पहन कर मैके में आयी बेटी की तरह मगन है। उदास दिन में वह मां से बिछुड़े पुत्र की तरह खड़ी दिखाई देती है, तो प्रसन्नतापूर्ण प्रभात में वह शिव के जटाजूट पर उतरती हुई गंगा बन जाती है। सुबह की कंचन किरणें जब धरती पर धीरे-धीरे कदम रखती हैं तब छोटा सा गांव केसर की क्यारी बन जाता है। गांव के कच्चे घर कंचन के पानी में डूब जाते हैं। शाम की धूप पात हीन डालों के पीत फूलों पर जगर मगर जलते दीपों की तरह चमकती है।

केदार सूक्ष्म पर स्वस्थ संवेदनाओं के कवि हैं। वे अपनी पीढ़ी के उन प्रगतिशील कवियों में मुख्य हैं जिन्होंने समय के साथ साथ अपनी कविताओं के अपने ही बनाये हुए ढांचों को अतिक्रान्त कर शिल्प के नये नये प्रयोग किये हैं। उनकी कविताओं में अभिव्यक्ति के कई ऐसे नये नये ढंग हैं जो उनके सूक्ष्म और परिष्कृत सौन्दर्य-बोध के प्रतीक हैं।

शायद यही सब देख कर केदार नाथ सिंह ने लिखा था कि केदार नागार्जुन की अपेक्षा अधिक आधुनिक हैं, उनकी ताजगी आधुनिक जीवन की ताजगी है। इसके विपरीत नागार्जुन की नवीनता परंपरा के परिष्कार और परिमार्जन से प्राप्त है।[19] वास्तव में नागार्जुन और केदार की रचना प्रक्रिया में सूक्ष्म अन्तर है। दोनों ने उद्बोधनात्मक और व्यंगात्मक राजनीतिक कविताएं भी लिखी हैं और प्रकृति-प्रेम की सौंदर्य बोधात्मक कविताएं भी। अकिमचंद्र के अनुसार नागार्जुन की कविताओं में जहां उदग्र आक्रोश और आधुनिक जीवन की तिक्तता व्यंजित है, वहां केदार में यथार्थ का मर्मबोध तथा उन्मेश की शालीन अभिव्यक्ति है। नागार्जुन समाज और व्यवस्था के प्रवंचकों की बखिया उधेड़ने वाले तथा चिकौटी काट कर तिलमिला देने वाले कवि हैं तो केदार ग्राम जीवन के विषाद का अंकन करने वाले एक मर्मी कवि। नागार्जुन में तल्खी अधिक है तो केदार में स्निग्ध तलस्पर्शिता।[20]

---

१९. कवि (बनारस), फरवरी-५७, पृ. २०.

२०. म.स्था और सौंदर्य के कवि, केदार: व्यक्तित्व और कृतित्व, पृ. ६५.

त्रिलोचन

केन्द्रीय वर्ग के कवियों में त्रिलोचन शायद अकेले कवि हैं जो अपनी अनुभूति और अभिव्यक्ति में सहज मानववादी कवियों के इतने नजदीक तक पहुंच जाते हैं। उनकी सजग प्रगतिशीलता अगर कहीं व्यक्त होती है तो वह धरती की कुछ उपदेशात्मक और सिद्धान्त विवेचन करने वाली 'कविताओं' में ही, और इनमें से बहुत कम कविताएं हैं, इसलिए उन्हें छोड़ते हुए कहा जा सकता है कि उनका लगभग सारा काव्य-सृजन उन्हें एक स्वस्थमना सहज प्रगतिशील कवि ही सिद्ध करता है। वे वास्तव में सैद्धान्तिकता से दूर स्वस्थ, सरल और निश्छल अनुभूतियों के कवि हैं।[२१]

धरती (४५) उनका पहला संकलन है। इसकी कविताएं कवि की तीन प्रधान वृत्तियों के आधार पर तीन वर्गों में विभाजित की जा सकती हैं: प्रेम-भावना संबंधी कविताएं, प्राकृतिक सौन्दर्य के आकर्षण को वाणी देने वाली कविताएं और सामाजिक चेतना को अभिव्यक्ति देने वाली कविताएं।

प्रथम वर्ग में 'मिल कर वे दोनों प्राणी', 'जब जिस छन मैं हारा', 'चाहे जो समझे यह दुनिया', 'मैं जब कभी अकेला बिल्कुल हो जाता हूं', 'आज मैं अकेला हूं', 'मुझे तुम्हारी याद आती' आदि कविताएं आती हैं। इन कविताओं के द्वारा कदाचित पहली बार हिन्दी कविता में प्रगतिशील प्रेम का रूपायन हुआ है— एक ऐसे सामाजिक प्रेम को इनमें विम्बित किया गया है जो न तो निपट शारीरिक भूख पर आधारित है और न विलास की सामग्री है; एक ऐसे स्वस्थ प्रेम को जो श्रम और साहचर्य पर आधारित है:[२२]

है धूप कठिन सिर-ऊपर
थम गयी हवा है जैसे
दोनों दूबों के ऊपर
रख पैर सींचते पानी
उस मलिन हरी धरती पर
मिल कर वे दोनों प्रानी
दे रहे खेत में पानी

---

२१. शिवकुमार मिश्र : नया हिन्दी काव्य, पृ. १६०.

२२. देखिए रामेश्वर शर्मा : राष्ट्रीय स्वाधीनता और प्रगतिशील साहित्य, मानव भारती प्रकाशन, नई दिल्ली, १९५३, पृ. १२१.

फिर इस प्रेम का स्मृति चिह्न भी प्रिया का कोई चित्र या रूमाल नहीं उसका भेंट किया हुआ कोई रेडियो या पंखा नहीं, दोनों के संयुक्त श्रम से पल्लवित-पुष्पित पौधे हैं :

है याद तुम्हें ?
मैंने जोता तुमने बोया
धीरे धीरे अंकुर आये
फिर और बढ़े
हमने तुमने मिल कर सींचा
उन परम सलोने पौदों को
हम दोनों ने मिल बड़ा किय

—चांदनी चमकती है, धरती

यही कारण है कि यह प्रेम एक शक्ति और प्रेरणा बन कर कवि के जीवन में आया है :

जब जिस छन मैं हारा
मैंने तुम्हें पुकारा
तुम आए, मुस्काए
पूछा—कमजोरी है ?
बोला—नहीं, नहीं है
किसने तुम से कहा कि मुझ को कमजोरी है
तुम सुन कर मुस्काए
मुझ को रहे देखते
मुझ को मिला सहारा

—जब जिस छन मैं हारा, धरती

त्रिलोचन का यह प्रेम असामाजिक या तथाकथित उन्मुक्त प्रेम नहीं है, यह जीवन के उत्तरदायित्वों को वहन करने वाला गृहस्थी प्रेम है। प्रेम के जो बिम्ब उन्होंने प्रस्तुत किये हैं वे दुनिया को ठोकर मार कर किसी हिल स्टेशन पर हनीमून मनाने वाले प्रेमियों के नहीं हैं, एक उत्तरदायित्व पूर्ण गृहस्थ जीवन के हैं :

मैं बीमार खाट पर लेटा हूँ मन मारे
सिरहाने बैठी हो तुम माथे पर अपना हाथ पसारे

पूछ रही हो
अब कैसी तबियत है !

—मैं जब कभी अकेला, धरती

क्योंकि इस प्यार के मूल में किसी विलास का लोभ नहीं—कवि की सहज सामाजिकता है—उसकी यह मजबूरी है कि

सुख आये दुख आये
दिन आये रात आये
फूल में कि धूल में
आये जैसे जब आये
सुख दुख एक भी
अकेले सहा नहीं जाता
अकेले रहा नहीं जाता ।

—आज मैं अकेला हूं, धरती

यही कारण है कि उसका प्यार उसे जगत-जीवन से अलग थलग करने वाला, सामाजिक परिवेश से निरपेक्ष, नही है । इसके विपरीत

मुझे जगत जीवन का प्रेमी
बना रहा है प्यार तुम्हारा !

धरती की अधिकांश कविताएं प्राकृतिक सौन्दर्य से सम्बन्धित हैं । प्रकृति-प्रेम त्रिलोचन की काव्य-प्रेरणाओं में से एक प्रबल प्रेरणा है । ये कविताएं प्रकृति के अनेक रूपों और मुद्राओं को अंकित करती हैं; पर एक तो इनमें कई जगह कवि पर छायावादी शैली और शब्दावली का प्रभाव बहुत मुखर है[२३] और दूसरे इनमें से अधिकांश प्रकृति की किसी मुद्रा को अंकित मात्र करती हैं, एक काव्य-स्थिति की रचना मात्र करती हैं, उसका राग-उद्‌बोधन के लिए उपयोग बहुत कम कर पाती हैं । फिर भी इनमें आये हुए कुछ बिम्ब प्रभावित करते हैं : दिन का सहस्रदल कमल की तरह खिलना, दो दिन के

---

२३. जैसे

दक्षिण पवन धीर पद अविरल
चल किसलय तारक दल निश्चल
गगन चन्द्र चल परिचय बांधे
चल स्थिर लगती धारा

—पूर्व क्षितिज में तारा, धरती

मेहमानों की तरह बादलों का चला जाना, दिन का हंस की तरह उड़ कर गुजर जाना, दिवस की ज्योति का सरसों के फूल सी हो जाना आदि। और दो एक कविताएं ऐसी भी हैं जो साधारणता के स्तर से ऊपर उठ कर हमें छूती हैं : जैसे 'धूप सुन्दर' और 'सघन पीली उर्मियों में बौर'। वैसे ये दोनों कविताएं भी वास्तव में एक ही कविता के दो खंड हैं। यह कविता त्रिलोचन के प्रकृति प्रेम को ही नहीं, उनके जगत-प्रेम को भी उनकी सामाजिक चेतना को भी, एक ही समग्रता में व्यक्त कर देती है :

धूप सुन्दर
धूप में जगरूप सुन्दर
सहज सुन्दर !
व्योम निर्मल
दृश्य जितना
स्पृश्य जितना
भूमि का वैभव
तरंगित रूप सुन्दर
सहज सुन्दर !

इस अनिर्वचनीय सुन्दर से प्रभावित कवि सहज ही सोचने लगता है :

क्या कभी मैं पा सकूंगा
इस तरह
इतना तरंगी
और निर्मल
आदमी का रूप सुन्दर
धूप सुन्दर
धूप में जगरूप सुन्दर !

त्रिलोचन का कवि यदि सबसे अधिक असफल कहीं हुआ है तो तीसरे वर्ग की कविताओं में ही : अर्थात् वहीं जहां उसने अपनी प्रगतिशील चेतना को सीधी-सपाट अभिव्यक्ति दी है। इस वर्ग की कविताओं को भी दो उपवर्गों में विभाजित किया जा सकता है : वे कविताएं जिनमें कवि ने अपने पौरुषशील, आशावादी और आस्थापूर्ण दृष्टिकोण को अमूर्त ढंग से व्यक्त किया है और वे कविताएं जिनमें युद्धकालीन सामाजिक यथार्थ के संदर्भ में कवि ने अपने

मार्क्सवादी ज्ञान को पंक्तिबद्ध किया है। पहले वर्ग में 'मुझे जगत जीवन का प्रेमी', 'सोच समझ कर चलना होगा', 'तेरा चलना बड़ा भला है', 'तुम्हें प्रभात पुकार रहा है', 'अगर हार कर विचलित होकर', 'लौटने का नाम मत लो', 'उन लोगों के गुण गाता हूं', 'बढ़ अकेला' आदि कविताएं आती हैं तो दूसरे वर्ग में 'जिस समाज में तुम रहते हो', 'आजकल लड़ाई का जमाना है', 'भोरई केवट के घर', 'एकाधिकार के पंजे में', 'इन दिनों मनुष्य का महत्व कोई नहीं है' आदि।

पहले वर्ग की कविताएं तो फिर भी कहीं कहीं पर छूती हैं और उनका पौरुषशील आस्थावादी दृष्टिकोण प्रभावित करता है पर दूसरे वर्ग की कविताएं तो ऐसी हैं जैसे समाचार पत्रों को दिये हुए वक्तव्य :

पूंजीवाद ने महत्व नष्ट कर दिया है सबका
जीवन का, जन का, समाज का, कला का
विना पूंजीवाद को मिटाये किसी तरह भी
यह जीवन स्वस्थ नहीं हो सकता
ज्ञान विज्ञान से किसी प्रकार
कोई कल्याण नहीं हो सकता

—इन दिनों मनुष्य का महत्व कोई नहीं है

ऐसी पंक्तियों को कविता कहें तो फिर समाचार पत्रों में छपी हुई सारी की सारी सामग्री को भी कविता ही कहना पड़ेगा।

दिगन्त (२७) में त्रिलोचन के सानेट संगृहीत हैं। सानेट के रूप पर त्रिलोचन ने असाधारण अधिकार प्रमाणित किया है। श्री कपिल मुनि तिवारी ने अपने एक लेख में[२४] सानेट के रूप विधान की योरोपीय परम्परा पर विचार करते हुए त्रिलोचन की सानेट-कला पर प्रकाश डाला है। उनके अनुसार दिगन्त के सत्तावन सानेटों में से बीस पेट्रार्की हैं, ये सानेट अष्टक और षष्ठक, इन दो भागों में विभक्त हैं। इन पेट्रार्की सानेटों में से चार मिल्टन-शैली के हैं, जिनमें पेट्रार्की सानेटों की शेष सब विशेषताएं तो मिलती हैं, केवल अष्टक-षष्ठक का विभाजन नहीं है। दिगन्त के बारह सानेटों पर स्पेंसर की सानेट पद्धति का प्रभाव है। शेष पचीस सानेटों में नौ शेक्सपियर की परंपरा में हैं और सोलह पर शेक्सपियर की सानेट पद्धति का प्रभाव है—इनमें भी तीन

२४. देखिए : 'चीज किराये की है', स्थापना-५, पटना, अक्तूबर १९७०.

चतुष्पदियों और एक द्विपदी का विधान मिलता है, लेकिन इनका तुक विधान शेक्सपियर के तुक-विधान से भिन्न है। श्री तिवारी के अनुसार त्रिलोचन जी के सानेटों की लयमयता का आधार व्याकरणिक और छान्दिक इकाइयों का तनाव है अर्थात वाक्यरचना और चरणरचना के बीच का तनाव। इसके अतिरिक्त त्रिलोचन जी की सानेट कला की दो अन्य विशेषताएं हैं : रूपकों पर आधारित एकान्विति और सानेट के नियंत्रित चौखटे में भी बातचीत की स्वच्छन्दता और नाटकीयता का निर्वाह तथा भाषा का रचनात्मक प्रयोग। कई जगह त्रिलोचन जी का एक सानेट पूरा का पूरा एक सांग रूपक बन जाता है। 'प्यार', 'कांटे और याद' इसके उदाहरण हैं। इन सानेटों की रूपक-योजना भावों की बाह्य अलंकृति नहीं रह जाती, उनकी आन्तरिक अन्विति को मूर्त करने का साधन बन जाती है। इसी तरह सानेट के संकरे अनुशासित ढांचे में भी बातचीत की सहजता को उन्होंने सुरक्षित रखा है। 'खीझ', 'रोटी', 'जगदीश जी का कुत्ता' ऐसे सानेट हैं, जिनमें बातचीत की नाटकीयता के प्रवाह में हम सानेट के फार्म के नियंत्रण को भूल-से जाते हैं। त्रिलोचन जी के सानेटों में ऐसे बहुत से स्थल हैं जहां अर्थ का एक नया कोण, भाव की एक नयी भंगिमा, हिन्दी भाषा की बहुरंगी विविधता से उत्पन्न होती है। हिन्दी में प्रचलित अंग्रेजी-फारसी शब्दों के साथ संस्कृत के तत्सम शब्दों का तालमेल जिस भाव जगत की सृष्टि करता है और जनपदीय बोलियों के घुमते मुहावरों का प्रयोग जिस आत्मीयता को जन्म देता है, उससे सानेट की कला को असाधारण पूर्णता प्राप्त होती है।

यह सानेट-रूप के एक विशेषज्ञ का मत है और इसमें काफी पानी है, पर मेरे जैसे उन पाठकों के लिए जो सानेट या किसी विशेष काव्य रूप के प्रति आग्रह नहीं रखते और उसमें कौशल प्राप्त करने मात्र को अधिक महत्वपूर्ण उपलब्धि नहीं मानते, त्रिलोचन जी की इन रचनाओं में व्याकरणिक और छान्दसिक इकाइयों के बीच का तनाव काव्यास्वादन की प्रक्रिया में बाधक प्रतीत होता है।

प्रेम और प्रगति के विचारों और भावनाओं को कवि ने इन सानेटों में अच्छी अभिव्यक्ति दी है। कवि की स्वस्थ मनस्कता इस संकलन में भी उतनी ही चमकती है, जितनी धरती में। लेकिन कुल मिला कर त्रिलोचन जी का कोई सानेट किसी विशेष उपलब्धि के रूप में सामने नहीं आता, साधारण के स्तर से बहुत ऊंचा नहीं उठ पाता। संकलन की अधिकांश रचनाओं में यदि कोई विशेष बात है तो यह यही कि ये सानेट के विभिन्न रूपों में लिखी गयी हैं, मानो यही तो उनकी सबसे सामान्य बात भी है। हां यह अवश्य है

कि सानेट के शिल्प की लगभग सभी संभावनाओं का न्यूनाधिक शोषण त्रिलोचन जी ने किया है।

प्रगतिशील दृष्टि से सकलन के उल्लेखनीय सानेटों में 'पश्यन्ती', 'कस्मै देवाय', 'दुःख और गान' तथा 'तेनजिङ और हिलारी के प्रति' प्रमुख हैं।

'पश्यन्ती' में वाणी की शक्ति और त्रिलोचन के समक्ष उसके उद्देश्य को अभिव्यक्ति दी गयी है :

करता हूँ आक्रमण धर्म के दृढ़ दुर्गों पर
कवि हूँ, नया मनुष्य मुझे यदि अपनाएगा
उन गानों में अपने विजय गान गाएगा
जिनको मैंने गाया है। वैसे मुर्गों पर
निर्भर नहीं सवेरा होता, लेकिन इतना
झूठ नहीं है जहां कहीं वह बड़े सवेरे
ऊंचे स्वर से बोला करता है, मुंह फेरे
कोई पड़ा नहीं रह सकता, फिर भी कितना
उसमें बल है। केवल निर्मल स्वर की धारा
उसकी अपनी है, जिसकी अजस्र कलकल में
स्वप्न डूब जाते हैं जीवन के लघु पल में
तम से लड़ता हूँ इस पश्यन्ती के द्वारा
धर्म-विनिर्मित अन्धकार से लड़ते लड़ते
आगामी मनुष्य, तुम तक मेरे स्वर बढ़ते।

'कस्मैदेवाय' में कवि प्रमुखतः जिनके लिए इस 'पश्यन्ती' का उपयोग करता है, उनकी ओर संकेत करता है :

मैंने उनके लिए लिखा है, जिन्हें जानता
हूं जीवन के लिए लगा कर अपनी बाज़ी
जूझ रहे हैं, जो फेंके टुकड़ों पर राजी
कभी नहीं हो सकते हैं। मैं उन्हें मानता

'दुःख और गान' में कवि ने दुःख के अंधेरे को दूर करने के लिए गीत के प्रकाश के अपने अनुभव को अभिव्यक्ति दी है। 'तेनजिङ और हिलारी के प्रति' में इन दोनों बहादुरों के माध्यम से त्रिलोचन ने मानवीय साहस का अभिनन्दन किया है।

संकलन के तीन-चार सानेट 'तुलसीबाबा', 'काशी के जुलहे', 'भाषा रसे-तुंग' और 'गालिब' के प्रति भी लिखे गये हैं। किसी किसी सानेट में हलके पुल्के व्यंग भी मिलते हैं, जैसे 'रोटी' में।

गुलाब और बुलबुल (५६) में उनकी रुबाइयां और गजलें संकलित हैं। छन्द-प्रयोगों की दृष्टि से त्रिलोचन एक धीर प्रयोगवादी कवि कहे जा सकते हैं, धीर इसलिए कि अन्य प्रयोगवादियों की तरह अधैर्यपूर्वक एक छन्द से दूसरे छन्द की ओर वे नहीं दौड़े। दो तीन ही छन्दों को उन्होंने पूरी तरह मांजा है। इस संकलन की रुबाइयों में तो खैर कोई अलग विशेषता नहीं दिखाई देती[२५] पर गजलें उनकी कई काफी सुन्दर बन पड़ी हैं।

गजल की उर्दू की परंपरा ज्यादातर इश्किया ही है, हालांकि उर्दू के आधुनिक कवियों ने जैसे फैज और जाफरी ने, इसे क्रान्तिकारी भावनाओं का भी वाहन बनाया है, पर त्रिलोचन की अधिकांश गजलें इश्किया ही हैं। हां, कहीं कहीं नवीन प्रगतिशील भावनाओं और विचारों को भी अभिव्यक्ति मिली है। गजल को भावान्विति और प्रभावान्विति की हीनता परम्परा से ही मिली है; ज्यादातर गजलें ऐसी होती है कि उनके प्रत्येक शेर में एक अलग भाव या विचार रहता है। तुकान्त के सिवा उनमें आपस में कोई गहरा संबंध नहीं होता। परम्परा से प्राप्त इस हीनता को त्रिलोचन ने भी ज्यों का त्यों निभाया है। यहां तक कि कहीं कहीं तो एक ही गजल के दो शेर बिल्कुल ही अलग-अलग भावभूमियों के हैं, जैसे एक बिल्कुल गंभीर, एक मजाकिया, एक में प्रेम की कोई बात, तो दूसरे में कोई क्रान्तिकारी भावना। यह अन्वितिहीनता उन लोगों को तो खास तौर से खटकती है जो गजलों को पढ़ने, सुनने के अभ्यासी नहीं हैं। जैसे एक ही गजल में ये शेर:

---

२५. पाकिस्तान के एक महत्वपूर्ण नये समीक्षक मजहर इमाम के अनुसार रूबाई में आमतौर पर एखलाकी और फलसफियाना मुजामी शामिल किये जाते हैं। त्रिलोचन शास्त्री के यहां ऐसी गंभीर और संजीदा फिक्र (काव्य रूप) कहीं कहीं चुटकुलों में बदल जाती है (जैसे पृष्ठ २ की रूबाई 'मंत्र मैंने लिया...')। ऐसा नहीं कि तंजिया या मुजाहिया रुबाइयां न कही जाती हों। लेकिन रुबाइयों में तंज के बावजूद एक रकाव और संजीदगी होती है, एक तरह की गंभीरता होती है। मगर त्रिलोचन शास्त्री के यहां इस गंभीरता की, जो अच्छी शायरी के लिये जरूरी है, कमी महसूस होती है।''
—गुलाब और बुलबुल, स्थापना-७, पटना, सितम्बर १९७०.

बिस्तरा है न चारपाई है
जिन्दगी खूब हमने पाई है

आर्थिक अभाव की इस बात के साथ ही शायद साम्प्रदायिक हत्याओं की ओर संकेत करता हुआ यह शेर :

कल अंधेरे में जिसने सर काटा
नाम मत लो हमारा भाई है

और इसके साथ ही फिर व्यक्तिगत स्थिति

ठोकरें दर-बदर की थीं, हम थे
कम नहीं हमने मुंह की खाई है

लेकिन अगली ही पंक्तियां ऐसी है जो किसी कुंवारी लड़की की ओर संकेत करती हैं, जिसे अपने भावी पति के बारे मे निश्चय करना हो।

तुमने आज तक नहीं विचार किया
आज फिर उनकी बात आई है

अगला शेर हमें किसी महफिल में ले जाता है :

सब से काम लो, जरा ठहरो
बात ज़ालिम ने क्या सुनाई है

और अगला शृंगार की भाव भूमि पर ले आता है :

कब तलक तीर वे नहीं छोड़ते
अब इसी बात पर लड़ाई है

तो और अगला दार्शनिक मूड़ में लिखा गया है :

आदमी जी रहा है मरने को
सब के ऊपर यही सच्चाई है !

लेकिन त्रिलोचन की इनी-गिनी गजलें ऐसी भी हैं जिसमें यह अन्वितिहीनता नहीं है : जैसे वसन्त पर उनकी यह सुन्दर गजल :

कोकिल ने गान गा के कहा आ गया बसन्त
आमों ने बौर ला के कहा आ गया बसन्त
क्यों मुझको छेड़ती है हवा बोल बार बार
उसने जरा बल खा के कहा आ गया बसन्त
हर टहनी में जीवन के नये पत्र आ गये
पीपल ने दल दिखला के कहा आ गया बसन्त
वे पत्र गये, जांय, फूल तो नये पाये
सिर नीम ने उठा के कहा आ गया बसन्त
बस्ती से दूर मुझसे बताया बबूल ने
हमने भी फूल पाके कहा आ गया बसन्त
मैंने प्रभात से कहा : बदले हुए हो आज
तो उसने मुस्करा के कहा : आ गया बसन्त
चौताल की लहर में बोल ढोल के उठे
गांवों ने फाग गा के कहा आ गया बसन्त
पहले की तरह आज भी फिर रेंड गड़ गये
हर कंठ ने गा गा के कहा आ गया बसन्त
दुनियां के राग रंग में गाते हैं त्रिलोचन
हमने पता लगा के कहा आ गया बसन्त !

त्रिलोचन की यह गजल इस संकलन की प्रकृति संबंधी गजलों का प्रतिनिधित्व ही नहीं करती, यह संकलन की श्रेष्ठ गजलों में से भी एक है। बसन्त के विभिन्न बिम्बों की यह माला एक स्वस्थमना कवि के प्रकृति-प्रेम की सुन्दर अभिव्यक्ति है।

अन्य महत्वपूर्ण गजलों में से 'मेरा दिल व दिल है कि हारा नहीं है' तथा 'कुछ बात है कि...' उल्लेखनीय हैं। बीच-बीच में कुछ भरती के शेरों को छोड़ दिया जाय तो 'मेरा दिल' एक अच्छी गजल है :

मेरा दिल व' दिल है कि हारा नहीं है
कहीं तिनके का भी सहारा नहीं है
जो मौजों को देखा तो जी ही न माना
ये मालूम था यह किनारा नहीं है...

जो पतझर के पत्ते सा उड़ता रहा है
कहे कौन किस्मत का मारा नहीं है
य' आकाश है इसमें तारे ही तारे
मगर इसमें मेरा व तारा नहीं है
सुलावण्य आंखों में आता रहा है
हुआ अश्रुजल यों ही खारा नहीं है
किसी का धरा पर हुआ वह न होगा
त्रिलोचन यहां जो तुम्हारा नहीं है।

'कुछ बात है...' की गहराई, दृढ़ता, आस्था पर फिर भी दृष्टि का संतुलन छूता है :

कुछ बात है कि आज भी हारा नहीं हूं मैं
सौभाग्य और सिद्धि का प्यारा नहीं हूं मैं।
आई तो मीच कितनी बार पर चली गयी
उसके लिए भी काम का चारा नहीं हूं मैं।
मेरे लिए संसार, स्वजन, प्राण तज दिये
फिर कैसे कह दूं आज तुम्हारा नहीं हूं मैं
जो जी का स्रोत है कभी सूखेगा वह जरूर
कुछ ब्रह्मपुत्र नद की तो धारा नहीं हूं मैं।
अपने हृदय में स्थान मुझको दो तो त्रिलोचन
क्या दुःख, जग की आंख का तारा नहीं हूं मैं।

समग्र रूप से यही कहा जा सकता है कि त्रिलोचन की ये गजलें, अपने प्रवाह, अपनी सरल भाषा और अपने सादे अन्दाज के कारण याद की जाती रहेंगी, यद्यपि सचेत प्रगतिशील विचारों और भावनाओं की अभिव्यक्ति इनमें अधिक नहीं है—कहीं कहीं छिटपुट लगभग संदर्भ-टूटे हुए वाक्य ही ऐसी अभिव्यक्तियों का एक मात्र प्रकार है, जैसे :

१) पुकार फिर शान्ति की उठी है, मनुष्य जीवन अभय नहीं है
२) मनुज मिट मिट के बनता है, कभी बन बन के तनता है
सचाई देख पाओगे जो वज्राघात में आओ।
३) यत्न कर यत्न, यों पूजा पै बैठ जाने से
संकट आए हैं, नहीं इससे टला है कोई।

४) *ये भी जीते हैं जिन्हें ठौर-ठिकाना भी नहीं*
राह चलने हैं कहीं पांव टिकाना भी नहीं।

५) *हाथ और पांव जिसका चलता है*
आया संकट भी आप टलता है।

तथापि जीवन के प्रति, जिसमें प्रकृति और प्रेम भी शामिल हैं, एक स्वस्थ, सामाजिक और आशावादी दृष्टि उनकी लगभग सभी गजलों से झलकती है।

इसके बाद का त्रिलोचन का अधिकांश कृतित्व पत्र-पत्रिकाओं में छिटपुट प्रकाशन के अतिरिक्त अप्रकाशित ही है। शमशेर जी द्वारा दी गयी सूचना के अनुसार वह स्वयं की तरह त्रिलोचन के विपुल कृतित्व में से भी सख्ती से चुनाव होना जरूरी है। उनका मानना है कि इस चुनाव में सौ-डेढ़ सौ कविताएं ऊंचे दर्जे की मिल जाएंगी, पर उन डेढ़ सौ में से आधी ऐसी होंगी, जो कहीं प्रकाशित ही नहीं हुई हैं। इधर पत्र-पत्रिकाओं में उनका जो कुछ छपता रहा है, उसके छपने के लिए त्रिलोचन खुद जिम्मेदार नहीं हैं।

पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित उनकी रचनाओं में से दो उल्लेखनीय रचनाएं मेरी नजर से गुजरी हैं : एक प्रतीक के नवम्बर ५१ के अंक में प्रकाशित उनका 'आत्मकथा' नामक सानेट और दूसरी स्थापना अगस्त ७० में प्रकाशित गीति-नाटिका 'शैतान और इन्सान'। 'आत्मकथा' में कवि ने जीवन के प्रति अपनी आशावादी-संघर्षशील दृष्टि को अच्छी अभिव्यक्ति दी है और अन्त में आभार व्यक्त किया है : -

आभारी हूं मैं पथ के सब आघातों का
मिट्टी जिनसे वज्र हुई उन उत्पातों का

'शैतान और इन्सान' मे ग्रीस के द्वितीय महायुद्धोत्तर आर्थिक-राजनीतिक स्वाधीनता के संघर्ष को अंकित किया गया है।

हंस, जुलाई ४६ के अंक में त्रिलोचन की धरती की समीक्षा करते हुए गजानन माधव मुक्तिबोध ने लिखा था—"कवि की अनुभूतियां बहुत संयम के साथ प्रकट होती हैं। उसमे चीख पुकार या अट्टहास का आलोड़न नहीं है। न वह चीज है, जिसे आप अतृप्त वासना कह सकते हैं। इन सब दोषों से मुक्त, विचारों और भावनाओं से आलोकित काव्य मिलना कठिन होता है। साथ ही कवि की प्रगतिशीलता अट्टहासपूर्ण आन्तरिक क्षतिपूर्ति के रूप में नहीं आयी

है, वरन् कवि के अपने जीवन संघर्ष से मंज-घिस कर तैयार हुई है।...संघर्ष ने उसकी चेतना को मात्र विकसित ही नहीं किया है, उसे प्रसरणशील भी बनाया है और जीवन के विविध अंगों को समझने की शक्ति भी दी है। इस वैविध्य के प्रति संघर्षात्मक प्रसरण-शील अनुरक्ति ने उसके मन को वस्तून्मुख और बुद्धिप्रधान भी कर दिया है। इसके कारण ही उसके काव्य में बेचैनी और विह्वलता नहीं है, बल्कि एक विशेष प्रकार की तटस्थता है।"

कृति के कविता-विशेषांक, १९६० में प्रकाशित शमशेर बहादुर सिंह ने एक बिल्कुल पर्सनल एसे 'मेरे कुछ प्रिय आधुनिक कवि' में लिखा है : "यह कवि, जो सामान्य में ही असामान्य का दर्शक है, तो वह इसलिए कि इस असामान्य के माध्यम से पुनः सामान्य को और अच्छी तरह समझ सके। त्रिलोचन की कमजोरियों और शक्तियों दोनों को समझने के लिए यह हृदयंगम कर लेना बहुत उपयोगी है कि वह सामान्य को ही असामान्य का दर्जा देने और उसी को व्यक्त करने के लिए कृतसंकल्प है। वह सपाट और स्पष्ट शैली में ही विश्वास करता है।...इनकी दृष्टि और इनका हृदय साधारण जनों और परिस्थितियों और सुखदुःख के क्षणों से स्थायी सत्यों के मर्म बटोरती है, और यही बात उनके यहां अनुपम है।"

त्रिलोचन की इसी विशेषता को एक नये कोण से उभारते हुए हिन्दी के नये कवि और समीक्षक डा. परमानन्द श्रीवास्तव कहते हैं : "व्यक्तित्व की दृष्टि से अलग, सबको झाड़ कर चल देने वाले कवि त्रिलोचन की कविता सीधे सहज जीवनानुभव की कविता है—जीवन के सीधे साक्षात् या सम्पर्क की कविता है।...विडम्बना तो यह है कि प्रायः त्रिलोचन की सहजता ही पाठक की समस्या बन सकती है—क्योंकि काव्यात्मकता का विश्लेपण करने वाले सूत्र तो अन्ततः निकल ही आते हैं—तथाकथित काव्यात्मकता से अलग, जो नितान्त सहज, सांस लेने की तरह स्वाभाविक त्रिलोचन की कविता है, उसे मापने के उपयुक्त औजार हिन्दी आलोचना में विरल हैं। आश्चर्य नहीं कि कबीर या निराला की बहुत-सी विशिष्ट मूल्यवत्ता आंकने में जो कमी रह गयी है, वह इन्हीं औजारों की अपर्याप्तता के कारण हो।"[२६]

त्रिलोचन-काव्य की सहजता पर कई अन्य लोगों ने भी विचार किया है। एक तरुण कवि-समीक्षक मलयज के अनुसार त्रिलोचन औसत भारतीय आदमी

---

२६. परमानन्द श्रीवास्तव : त्रिलोचन की कविता, स्थापना-८, अक्तूबर ७०.

के चितेरे है। वे मानव-अनुभूतियों की विशिष्टता के नही, उनकी मार्मिकता के कवि है। वे अनुभूति की जटिलता को नही, उसकी सम्पन्नता को पकड़ते हैं और अपनी कला में साधते हैं। वे मानव-मर्म के किसी नये सत्य का उद्घाटन नहीं करते, वरन् जीवन-जगत की आपाधापी में जो सहज मानव-सत्य आंख की ओट हो गये हैं, उन्हें एक नयी विश्वसनीय पहचान के साथ हमारे सामने लाते हैं।"[२७]

यह सब सही है। त्रिलोचन की सहजता स्पृहणीय है। पर सहजता ही कविता का एकमात्र गुण नहीं है। श्रेष्ठ कविताओं में हमेशा कोई गहरा दर्द, कोई प्रबल आवेग या कोई जैविक ऊष्मा रहती है। त्रिलोचन की कविताओं में उस आवेग की कमी मुझे बराबर खटकती है, जो एकाएक पाठक को संक्रान्त कर लेता है। मुझे लगता है कि आवेग और ऊष्मा के आपेक्षिक अभाव के कारण ही त्रिलोचन की अधिकांश कविताएं साधारणता और सहजता से अधिक ऊंची नहीं उठ पातीं। पर कोई चाहे तो इस कमी को एक सिफ्त के रूप में भी देख सकता है, जैसा कि श्री रामेश्वर शर्मा ने उसे देखा है। उनके अनुसार क्योंकि त्रिलोचन ने कहीं भी औसत से अधिक बनने की कोशिश नही की है, इसलिए उनके काव्य की चेतना सही माने में भारतीय जनता की चेतना है। उनमें आरोपित क्रान्ति की लफ्फाजी नही है। वे यथार्थवादी हैं, हवा में पेंगें नहीं भरते। उनमें अनुभूति के प्रति एक तटस्थता मिलती है, इसलिए शब्दो की अतिरंजना नही है।"[२८]

रांगेय राघव

काव्य सत्ता के प्रति वास्तविक न्याय की अथक चेष्टा अपनी व्यक्तिगत अनुभूतियों के प्रति ईमानदारी, अपने सामाजिक दायित्व के प्रति आतुर सचेष्टता और इन सबसे परे सतत गूंजने वाले राष्ट्रीयता के अदम्य स्वर"[२९] के कारण रागेय राघव की कृतियां प्रगतिशील काव्य में अपना विशिष्ट और महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। वे हिन्दी के उन इने गिने प्रगतिशील कवियों में से एक हैं, जिन्हें प्रबंध और मुक्तक दोनों प्रकार की काव्य रचना में पर्याप्त सफलता मिली है।

---

२७. त्रिलोचन की कविता, स्थापना-८.
२८. देखिए उनकी पुस्तक राष्ट्रीय स्वाधीनता और प्रगतिशील साहित्य, पृ. १२४.
२९. शिवकुमार मिश्र : नया हिन्दी काव्य, पृ. १६६.

अजेय खंडहर (४४) उनकी पहली काव्य कृति है। इस प्रबंध काव्य (जिसे खंड काव्य कहा जा सकता है) में उन्होंने द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान में सोवियत जनता द्वारा लड़े गये एक ऐसे महत्वपूर्ण युद्ध, स्तालिनग्राद के युद्ध का वर्णन किया है जिस पर उस समय संसार भर की प्रगतिशील जनता की आखें लगी हुई थीं। स्तालिनग्राद के मोर्चे पर लड़े गये इस ऐतिहासिक युद्ध के कुछ बड़े ही सजीव, मर्म-स्पर्शी चित्र इस काव्य में खींचे गये हैं। इस काव्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें कवि ने स्तालिनग्राद के युद्ध को भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के साथ भी जोड़ दिया है :

वन्दी जाग
घर में लग गयी है आग
चल वाग़ी प्रबल हुंकार
जागो याद कर गत मान
मेरे प्राण हिन्दुस्तान
स्तालिनग्राद हिन्दुस्तान !

राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय चेतना की इस अन्विति ने इस काव्य की प्रभावशीलता को व्यापकता दी है।

भाव और उसके साथ ही साथ छन्द का आवेग वैसे तो रांगेय राघव की लगभग सभी रचनाओं की विशेषता है पर एक वीररसात्मक और उद्बोधनात्मक काव्य होने के कारण यह विशेषता अजेय खंडहर में जितनी मुखर है, उतनी और कहीं नहीं है। यहां तक कि रूसी और अंग्रेजी के लम्बे लम्बे शब्दों का भी छन्द मे इतनी कुशलता से प्रयोग किया गया है कि वे कहीं खटकते नहीं :

कौपर वायर से दो एण्टी
टैंक मिनेड बांधकर साथ
लेट भूमि पर शोलन्को ने
खींची एक प्राणदा श्वास

हां, यहां पर एक दूसरी बात जरूर खटकती है : बहुत सी जगह अन्य तुकान्त शब्दों के अभाव में या तो उसी शब्द को फिर दुहरा दिया गया है और या ऐसी तुक का प्रयोग किया गया है जिसके केवल स्वर ही पहली तुक से मिलते

हैं, व्यंजन नहीं।[९] यह प्रवृत्ति कवि के शब्द दारिद्र्य को ही प्रकट करती है। इसी तरह कहीं कहीं वाक्य रचना भी दोष पूर्ण है।"

अजेय खंडहर का मूल वर्ण्य विषय तो खैर स्तालिनग्राद का वास्तविक युद्ध ही है और उसका कवि ने कई बार और विस्तार के साथ वर्णन किया है,[११] पर साथ ही अवसर निकाल कर जारशाही युग के रूस का, वर्तमान पूंजीवादी समाज का, जर्मन अत्याचारों का और युद्ध की समाप्ति के बाद के रूस का प्रभावशाली चित्रण भी किया गया है।[१२]

जर्मन हमलावरों के विरुद्ध लिखे हुए इस काव्य की एक उल्लेखनीय विशेषता यह भी है कि इसमें शत्रु की भी वीरता का वर्णन प्रशंसा के स्वर में किया गया है और फासिस्टों के विरुद्ध पूरी घृणा के बावजूद जर्मन जाति के प्रति कहीं भी घृणा नहीं व्यक्त की गयी है।[१४]

पिघलते पत्थर (४६) की कविताओं का केन्द्रीय विषय महात्मा गांधी के नेतृत्व में चलने वाला भारत का राष्ट्रीयता आन्दोलन और द्वितीय विश्व युद्ध के समय का भारतीय जीवन-यथार्थ है। राष्ट्रीय आन्दोलन के विभिन्न पक्षों को 'भिखारी,' 'मांझी,' 'राष्ट्र की पुकार,' 'तड़फती बेड़ियां,' 'शहीद गणेश

---

१०. जैसे : *भोर हुई थी सैनिक तत्पर*
वोल्गा तट पर देख रहे
दूर पराजय की मलिनाभा
नभ में घुलती देख रहे
और : *हर सैनिक फौलाद बना सा*
स्तालिन मेदी प्रहरी है
अरे आज अज्ञात भूमि यह
बाधा बन कर गरजी है
—अजेय खंडहर, ७

११. *वह पोलैण्ड वाहिनी, जिसकी,*
जगभर में भय कारण थी
—अजेय खंडहर, ३

१२. देखिए अजेय खंडहर, ५, १०, ११ आदि
१३. अजेय खंडहर, ४, २, २, ७ और ११
१४. देखिए अजेय खंडहर, ११

शंकर विद्यार्थी,' 'संधि का पाप,' 'शपथ' आदि कई कविताओं में अंकित किया गया है। गांधी जी इन कविताओं में भारतीय मुक्ति आन्दोलन के एक शलाका पुरुष के रूप में सामने आते हैं पर इन कविताओं में उनके नेतृत्व में चल रहे भारतीय मुक्ति आन्दोलन की शक्तियों और सीमाओं दोनों की ओर संकेत है।

द्वितीय विश्व युद्ध के दृश्य कई कविताओं में उभरे हैं—जैसे 'ब्लैक आउट,' 'शेनान,' 'बरमा में,' 'ऐवैक्युई' आदि में। अन्य कविताओं में (और इन कविताओं में भी) कवि की साम्राज्यवाद, शोषण और वर्गभेद के प्रति घृणा को खुली अभिव्यक्ति मिली है।

संकलन की महत्वपूर्ण कविताओं में 'मूल्यांकन,' 'भिखारी,' 'ऐवैक्युई' 'शपथ' आदि का उल्लेख किया जा सकता है।

'मूल्यांकन' प्रगतिशील कवियों का घोषणा पत्र है:

हम नहीं प्रशंसा के भिक्षुक
हम नहीं किसी के दीन दास
सामंतवाद को ठोकर दे
निर्बन्ध गरजते मुक्त हास
हम रक्त शोषकों को अपनी
करते न समर्पित कला-ज्योति

'भिखारी' महात्मा गांधी हैं जो देश से शक्ति और प्यार की भिक्षा मांग रहे हैं। इस कविता में राष्ट्रनायक के रूप में गांधी जी का सुन्दर बिम्बन हुआ है।

झुक न पाया शीश जिसका
बिजलियों की मार से भी
और जनता गा उठी थी
खोल अपनी आंख
झुक गये तूफान लेकिन
बुझ न पाया दीप
और कारागार में भी घुट न पाया
सत्य मानव की विजय का गीत

'ऐवैक्युई' युद्ध में ध्वस्त-परिवार एक बर्मी भिखारिन की व्यथा की सुन्दर अभिव्यक्ति है। बर्मा में जापानियों से हार कर आये हुए अंग्रेजों और बम से पति के मारे जाने के बाद शरणार्थी बन कर भारत आयी हुई एक बर्मी लड़की के बीच की विषमता को इस कविता में सुन्दर अभिव्यक्ति मिली है:

एक गोरे
एक काली
अस्थि दोनों, आंत दोनों
रक्त दोनों, मांस दोनों
पराजय और स्वार्थ दोनों
देश का बलिदान भूले
एक चरते मत्त बैलों से निडर
दूसरी है मांगती कातर विखर

'शपथ' में गांधी जी की उपवासवादी पद्धति के विरुद्ध कवि के आक्रोश को अभिव्यक्ति मिली है :

रक्त से भींगा मेरा माथ
और घायल है सारी देह
हड्डियां किन्तु रहीं हुंकार
न कर उपवास
न कर उपवास !!
करोड़ों नर नारी और बाल
कह रहे हैं निश्चय रे धीर -
अरे सदियों के भूखे देश
न कर उपवास
न कर उपवास !

संकलन की अधिकांश कविताओं में कवि ने मुखर चिन्तन किया है। पर यह चिन्तन उस व्याख्यात्मकता से अलग है जो अनेक प्रगतिशील कविताओं को सपाट-गद्यात्मक बनाती है। यह मुखर चिन्तन अपनी विशिष्ट भंगिमा—जो रांगेय राघव के अतिरिक्त प्रगतिशील कवियों में सिर्फ मुक्तिबोध में मिलती है—तथा शैली के आवेग और आवेश के कारण कविता बनता है। कभी कभी तो रांगेय राघव इसी मुखर चिन्तन पर अपनी लम्बी लम्बी कविताओं को आधारित कर देते हैं। ऐसी दो लम्बी कविताएं इस संकलन में हैं 'और सोहा' तथा 'आततायी'। पर उस आवेग के कारण जो रांगेय राघव की लगभग हर कविता में मिलता है, ये कविताएं अपने साथ पाठक को एक जबरदस्त बहाव में बहा ले जाती हैं।

राह के दीपक की कविताओं में प्रगतिशील कविता के लगभग सभी

उपकरण—सामाजिक यथार्थ का बिम्बन, एक आवेग और उद्बोधन का स्वर, एक प्रचंड विद्रोह की भावना और मानववाद—विद्यमान है पर एक दो कविताओं को छोड़ कर संकलन की कोई कविता अपने विशिष्ट व्यक्तित्व को उभार नहीं पाती। सामाजिक यथार्थ के अनेक पक्ष जैसे भिखारी, मूर्तिकार, मजदूर, भंगी, कंजर, वेश्या[३५] आदि इन कविताओं में बिम्बित हुए है। कही कही छायावादी शैली का परिपुष्ट रूप दिखाई देता है :

कामना के मूल में चिर वासना है जानता हूं
स्वर्ग का प्रतिदान भी बस यातना है जानता हूं
एक मंद्रा रागिणी सी गूंजती है आज ममता
प्राण के विक्षोभ में है गर्व सा हिमवंत गलता

—घृणा का प्रेम

संकलन की महत्वपूर्ण कविता है 'वन्दना' । यह भारत माता की एक बिल्कुल नयी तरह की वन्दना है, जिसमें उसकी उस तथाकथित संस्कृति को याद नही किया गया है, जो अन्धराष्ट्रवादी अहंकार और आर्यत्व के दंभ को जन्म देती है, बल्कि उसकी उस विद्रोही विरासत को याद किया गया है जो कभी कभी उस तथाकथित आध्यात्मिक संस्कृति की काई फाड़ कर झांक जाती है। कहने की आवश्यकता नही कि एक दास देश को उसकी यही विद्रोही सांस्कृतिक परंपरा प्रेरणा देकर स्वाधीनता के संघर्ष मे ला सकती है।

मेधावी (४७) एक चिन्तन प्रधान प्रबंध काव्य है, पर इसमें साधारणतया जिसे प्रबधत्व कहा जाता है, वैसे प्रबंधत्व का लगभग अभाव ही है। वैसे यह सम्पूर्ण संसार के और विशेष तौर से मानव समाज के विकास की कहानी है—पर इस कहानी में भी क्रमिकता या सुसंबद्धता का ध्यान कम ही रखा गया है। जैसा कि स्वयं रागेय राघव ने प्राक्कथन में कहा है, "दर्शन, भूगोल, इतिहास, काव्य, समाजशास्त्र आदि सबका इसमें समिश्रण है, अतः इसकी भूमिका विस्तीर्ण है। एक नायिका, एक नायक के चरित्र में इतना रूप समाना असभव है। इस काव्य के नायक-नायिका इतिहास और गति हैं और मेधावी के द्वारा वे प्रकट हुए हैं।" वास्तव मे मेधावी का कथ्य उसका कथानक कम, उसके सहारे (और कई जगह मुक्त साहचर्य मे) चलने वाला कवि का या नायक का चिन्तन अधिक है। पर यह चिन्तन भी अधिकतर विशृंखल है।

---

३५. देखिए तूर्यनाद, संतराश, मजदूर, हरिजन, कंजरिया और ताज में वेश्या शीर्षक कविताएं.

संक्षेप में मेधावी का कथ्य यह है : पहले दो सर्गों में मेधावी धरती से ऊब कर तारों का नृत्य देखते हुए सोचता रहता है। तीसरे में सम्पूर्ण सत्ता अपना नृत्य प्रस्तुत करती है। चौथे में मूलतत्व परिवर्तन का नृत्य है। और इन सबके नृत्यों के साथ मेधावी का चिन्तन चलता रहता है। वह सोचता है : दो ही शाश्वत सत्य हैं, एक सत्ता का अविरत खेल और दूसरा परिवर्तन का नृत्य। इन्हीं के कारण सृष्टि अबाध गति से चलती रहती है। यह पूछना व्यर्थ है कि इसकी गति की लय मे लीन, इसका निर्माता कौन है। पांचवें सर्ग में मेधावी महाशून्य के बीच धीरे-धीरे सौर चक्र के निर्माण को, सूर्य, पृथ्वी और उनके पुत्र चन्द्र के जन्म को देखता है। छठा सर्ग पृथ्वी पर भूत तत्व के स्पन्दन और उसके परिणामस्वरूप जीवों के विकास की कहानी कहता है। यह कहानी विकास की वैज्ञानिक धारणाओं पर आधारित है। इस विकास के दौर में मनुष्य का उद्‌भव हुआ और वह प्रकृति को अपने वशीभूत करने के प्रयत्न में लग गया। सातवें सर्ग का ताना बाना मनुष्य के इतिहास की कुछ प्रमुख घटनाओं और उसके कुछ पात्रों के संदर्भों से बुना गया है। आठवें में आदिम मानव के जीवन की, और उसके प्रकृति का ज्ञान प्राप्त करके धीरे-धीरे विकसित होने की कहानी है। नवें में ऋतुओं का गीत-नृत्य है। वे बारी-बारी से आकर अपने बारे में कहती हैं। मनुष्य उन्हें अपने पास बुलाता है पर वे सब उसके पारस्परिक युद्धों में रत, द्वेषपूर्ण और प्रकृति को जीतने के अभिमान से पूर्ण जीवन से घृणा व्यक्त करती हैं। तब मानव अपनी गलती स्वीकार करता है और समझ जाता है कि वह तो महाप्रकृति का एक कण मात्र है, उसका प्रभुपन का अभिमान मिट जाता है और वह प्रकृति के मंच पर हिलमिल कर खेलने और एक दूसरे मे सुबद्ध होकर निर्माण करने का संकल्प करता है। इस संकल्प के साथ ही सब ऋतुएं उसके जीवन को सुखद-सुन्दर बनाने के लिए उसकी सेवा में आ उपस्थित होती हैं। दसवें सर्ग में आर्यों के देशांतरण, द्रविड़ों के साथ उनके संघर्ष और द्रविड़ों पर उनके बर्बर अत्याचारों का वर्णन है और साथ ही है मेधावी का चिन्तन। ग्यारहवें सर्ग में समय और कवि में बातचीत चल रही है। समय कवि को मानव इतिहास की कहानी सुनाता है। प्राचीन मानवीय इतिहास के अनेक प्रसंगों से बुनी हुई यह कहानी नरेश मेहता की 'समय देवता' की तरह एक अन्तर्राष्ट्रीय मानवता की तस्वीर उभारती हुई आगे बढ़ती है। सर्ग के अन्त मे कवि को ही समय मेधावी कह कर पुकारता है। अर्थात कवि ही मेधावी है। बारहवें सर्ग में भी मानव इतिहास के मध्ययुग के कुछ प्रसंगों को, वर्गसंघर्ष के सत्य को रेखांकित करते हुए, छुआ गया है। तेरहवें में भी मध्यकालीन और आधुनिक इतिहास के कुछ प्रसंगों के सहारे मेधावी वर्ग विषमता पर और मानव-प्रगति पर विचार करता है। सर्ग के अन्त

में एक ऐसी समाज व्यवस्था की स्थापना की आकांक्षा व्यक्त हुई है, जिसमें मनुष्य द्वारा मनुष्य का शोषण नही होगा। चौदहवां सर्ग वर्तमान संसार के अन्तर्द्वन्द्वों और उसमे हो रहे न्याय-अन्याय के संघर्ष को चित्रित करता है। पूंजीवादी समाज के अभिशापों : गरीबी, भूख, भीख आदि के चित्र उभारते हुए इस समाज-व्यवस्था के अन्तर्गत मध्यवर्ग, मजदूर-किसान, कवि, दार्शनिक, वैज्ञानिक आदि की स्थिति और कर्तव्य को स्पष्ट किया गया है। इसी क्रम में साम्राज्यवाद और फासिज्म तथा उनके विरुद्ध संघर्ष करने वाली जनशक्ति, फ्रांस की राज्य क्रांति, चीन और भारत के मुक्ति आन्दोलन आदि विषयों को छूता हुआ मेधावी का चिन्तन भविष्य के युद्ध हीन, वर्ग हीन शोषण-हीन मानव-समाज की कल्पना और उसकी प्राप्ति की अनिवार्यता के प्रति एक गहरे विश्वास के साथ समाप्त होता है :

एक दिन मानव का श्रम स्वास
मिटा देगा यह पाप महान
विश्व होगा केवल सुख स्थान
एक घर सी होगी यह भूमि
और भौतिक के दुःख कर चूर
बनायेंगे मानव वह पन्थ
जहां शोषण का रहे न नाम
जहां का सत्य वास्तविक सत्य
जहां स्वातंत्र्य, साम्य, सुख, शान्ति
करेंगे निशि दिन नृत्य

कुल मिला कर यह कहा जा सकता है कि मेधावी मानव के अब तक के इतिहास की कहानी कहते हुए उसे भावी समाजवादी समाज की देहली पर ला खड़ा करता है। लेकिन यह कहानी मेधावी में किसी सुसंबद्ध और सुश्रृंखलित रूप में नही कही गयी है, जहां तहां उसके प्रसंगों और संदर्भों को छुआ मात्र गया है।

दूसरी बात यह कि मेधावी काव्य के छन्द का प्रवाह और इसका शब्द-संयोजन ऐसा है कि पृष्ठ के पृष्ठ बिना अर्थ ग्रहण किये भी, बिना अर्थ पर ध्यान दिये भी, पढे जा सकते है। ऐसा कामायनी में भी होता है। यद्यपि मेधावी की शब्दावली को तो 'छायावादी' नही कहा जा सकता, तथापि अभिव्यक्ति में एक छायाभासीपन के कारण कई जगह अर्थ ग्रहण कठिन हो जाता है।

पर मेधावी की सबसे बड़ी उपलब्धि उसका इतिहास-रस है। सुश्रृंखल इतिहास के न होते हुए भी मानवीय इतिहास के अनेक प्रसंगों के साथ पाठकों के हृदय की रागात्मिका वृत्ति का तादात्म्य स्थापित करने मे कवि बहुत सफल रहा है।

रांगेय राघव की कविता में एक ओर स्वस्थ प्रेम है तो दूसरी ओर सामाजिकता, एक ओर छायावादी सौष्ठव तथा शिल्पसौन्दर्य है तो दूसरी ओर प्रयोगशीलता, एक ओर प्रगतिवादी उग्रता, क्रान्तिवादिता, श्रम साधना तथा अपेक्षित रूक्षता है तो दूसरी ओर मानवता तथा विश्वकल्याण की पुकार। उसमें यदि कहीं वर्ग-विद्वेष की उग्रभावना है तो समस्त सीमाओं को पार करके मानवता के उदात्त शिखर पर आसीन होने की कामना भी है।[१६]

उनके काव्य को समग्र रूप से देखते हुए, एक समीक्षक का यह कथन काफी सत्य मालूम होता है कि रांगेय राघव की साहित्य साधना में धारणात्मक जिज्ञासा और समाधान का उपक्रम ही प्रधान है। इस पद्धति से अपने कथा साहित्य को एक उत्कर्ष बिन्दु तक ले जाने में उन्होंने सफलता भी प्राप्त की है। किन्तु काव्य की प्रकृत भावात्मक भूमिकाओं मे उनकी धारणाएं प्रायः आरोपित ही जान पड़ती है। जीवन और जगत के विभिन्न व्यापारो से निसृत सहज स्फुरण भी एक अतिरिक्त बौद्धिक सजगता द्वारा परिचालित हो कर निःशेप हो जाता है। अवश्य ही रांगेय राघव विश्वास के साथ साम्प्रतिक विश्व मे परिव्याप्त विभिन्न समस्याओ को कभी प्रतीकों और कभी पुरा कथाओं के माध्यम से रूपायित करते हैं। शोपण के अंधे अंधकार को चीर कर आने वाले नव-प्रभात का उत्साह के साथ स्वागत करते हैं। किन्तु नवनिर्माण के प्रशंसनीय संकल्पों के उपरान्त भी उनके दृष्टिकोण का भावात्मक समाहार काव्य में नही के बराबर है।[१७]

उपेन्द्रनाथ 'अश्क'

अश्क जी यद्यपि एक कथाकार और नाटककार के रूप में ही अधिक प्रतिष्ठित हैं, तथापि उनका काव्य-सृजन भी पर्याप्त महत्वपूर्ण है, विशेषतः उनका परवर्ती काव्यसृजन।

---

३६. डा. नरयन सिंह, प्रगति, नई कविता, (सं. वासुदेवनन्दन प्रसाद), जयपुर, ६४.

३७. राजेन्द्र मिश्र, नई कविता में संकलित लेख.

दीप जलेगा (४८) अश्क जी की प्रारम्भिक स्फुट कविताओं का समग्र संकलन है। पुस्तक तीन खंडों मे विभाजित है : **प्रातः दीप, उर्मियां** और **दीप जलेगा**। **प्रातः दीप** में उनकी ३६-३७ की ऐसी कविताएं संकलित हैं जो उन्होंने अपनी पहली पत्नी शीला की मृत्यु से संवेदित होकर लिखी थीं। लगभग सभी कविताएं एक ही छन्द में, एक ही मनःस्थिति की अभिव्यक्तियां हैं। **उर्मियां** में ३८-४१ की रचनाएं हैं। इस खंड की भी अधिकांश रचनाएं एक ही छन्द में लिखी गयी हैं। दोनों खंडों की अधिकतर कविताएं प्रेम की टीस और विरह के दर्द की साधारण रूमानी अभिव्यक्तियां हैं। हां, **उर्मियां** की कुछ कविताओं में व्यक्त कवि का जीवन के स्वस्थ पक्षों के प्रति मोह और एक आशावादी स्वर अवश्य आकर्षित करता है। इस दृष्टि से इस खंड की 'तुम कहते हो आज दुःखी मैं' कविता पठनीय है। तीसरे खंड में एक ही लम्बी कविता है : 'दीप जलेगा'। इस कविता में पहली बार कवि रूमानी भावोच्छ्वास से बाहर निकल कर प्रगतिशील संघर्ष-चेतना को वहन करता है। भूमिका में कौशल्या जी की सूचनाओं से मालूम पड़ता है कि अश्क जी ने यह कविता यक्ष्मा से पीड़ित अवस्था में लिखी थी। अपने जीवन पर मंडराती हुई मौत की छाया के विरुद्ध चुनौती का एक स्वर, जो साधारणीकृत होकर सामान्य रूप से मृत्यु की शक्तियों के खिलाफ जीवन की शक्तियों का आह्वान बन गया है, इस कविता का मूलभूत स्वर है। मानवीय भविष्य के प्रति एक दृढ़ आस्था, मृत्यु को स्वस्थतापूर्वक स्वीकारने वाली एक सैनिक की सी साहसपूर्ण दृष्टि और नारी के प्रति प्रगतिशील दृष्टिकोण इस कविता की अन्य विशेषताएं हैं।

बरगद की बेटी (४९) एक प्रबंध कविता है, जिसमें पंजाब के पीलन नामक किसी गांव मे बसे चरवाहों की एक लड़की लहरां की कहानी कही गयी है। ऊसर को कृषि योग्य बनाने वाले इन चरवाहों के, जमीदार के शोषण में पलते हुए, नये नये किसान जीवन का एक अच्छा चित्र इसमें खींचा गया है। लहरां जमींदार के बेटे अनवर के चक्कर मे आकर उससे प्रेम कर बैठती है। पर अनवर का नौकर सादिक, जो लहरां की बिरादरी और वर्ग का होने के कारण अपने को उसके प्रेम का उपयुक्त पात्र समझता है, एक दिन लहरां और अनवर को आलिंगन बद्ध देख कर, ईर्ष्या और क्रोध के आवेश में अनवर को मार डालता है। बाद में वह स्वयं थाने जाकर अपना अपराध स्वीकार करता है और अश्क जी उसके माध्यम से वर्ग नैतिकता का विरोध करते हैं :

धनी और निर्धन में कैसा प्यार, कहो कैसी उल्फत
उसका मन-बहलावा है औ' इसकी जाती है इज्जत

लहरा की चढ़ती जवानी अब बूढ़े जमींदार की ढली वासना को जगा देती है। वह उससे बलात्कार करना चाहता है पर उसके द्वारा मार दिया जाता है। लहरां उसका गला घोंट कर आत्महत्या कर लेती है। श्री शिवदानसिंह चौहान ने इस खंड काव्य के लिए लिखा है : यद्यपि यह एक प्रेम कथा है, पर इसके ताने-बाने में ग्राम जीवन का यथार्थ इतनी सूक्ष्म संवेदनशील कलात्मकता से गूथा हुआ है कि सामन्तशाही उत्पीड़न और अनाचार का सजीव खाका आंखों के आगे खिंच जाता है।[३८]

कहानी मे दो जगह अश्क जी ने अवसर निकाल कर वर्तमान वर्ग-विषमता पर चोट की है। एक बार तो सादिक के मुंह से वर्ग-नैतिकता की आलोचना करवाई गयी और दूसरी बार कहानी के अन्त मे बरगद की ओर से भावी वर्गहीन समाज की एक कल्पना प्रस्तुत की गयी है। कविता मे कथा और छन्द के प्रवाह का अच्छा निर्वाह हुआ है। पंजाबी अंचल के वातावरण-निर्माण के लिये पेड़-पौधो के पंजाबी नामों और बोलचाल के कई पजाबी शब्दों का प्रयोग किया गया है। पर इसकी अति कई जगह खटकती है। खासतौर से जहा पंजाबी के हिन्दी-क्षेत्र में अप्रचलित शब्दों और मुहावरो का प्रयोग लेखक ने स्वयं अपनी ओर से (किसी पात्र के वार्तालाप मे नही) किया है। जैसे 'जवान' के लिये 'गवरू' और 'वश में किया' के अर्थ में 'राम किया'। इसके अलावा भी अश्कजी की भाषा में अनगढ़पन कई जगह दिखाई देता है। थानेदार को 'थाने का पति' कह कर उन्होने कई बार संबोधित किया है। जमींदार को उन्होंने 'जूतो का सुख पाते हुए' देखा है! इसी तरह तान अलापने की जगह 'तान उड़ाना' और जोरदार प्रहार की जगह 'कारी वार' जैसे प्रयोग खटकते है। भाषा के ढीलेपन का एक उदाहरण है :

राग रंग सब थमा, मूकता ऐसी महफ़िल में छायी
गाने वालों के होठों पर जमी रह गयी अस्थाई।

एक बात और है। यद्यपि लहरां के प्राकृतिक और सामाजिक परिवेश का सचेत चित्रण अश्क जी ने किया है, तथापि उसके पारिवारिक परिवेश का कहीं कोई पता नही है। सस्ती रूमानी फिल्मों की नायिकाओं की तरह वह बिना मां-बाप-भाई-बहिन के, बस एक नायिका मात्र है, जो जब जहां चाहे आ सकती है और जिससे चाहे प्यार कर सकती है। उसके घायल होने पर भी परिवार

३८. अश्क की कविता, 'चांदनी रात और अजगर' (भूमिका), पृ. १७.
इससे पहले के प्रकाशित दोनो संकलन प्रातःप्रदीप (१९३८) और ऊर्मियां (४१) इस पुस्तक में फिर से संकलित हैं.

का कोई व्यक्ति सामने नहीं आता, वह जैसे किसी परिवार की नहीं बरगद की बेटी है—वास्तविक परिवेश से कटी हुई।

अश्कजी की तीसरी कविता-पुस्तक **चांदनी रात और अजगर** भी एक लम्बी कविता है, पर वह **बरगद की बेटी** की तरह निश्चित प्रबन्ध काव्य नहीं है। वास्तव में वह एक लम्बा आत्मचिन्तन है, जिसके क्रम में कवि ने अपने व्यक्तिगत जीवन के कई प्रसंगों को याद किया है। जीवन और जगत के प्रति प्रगतिशील विचारधारा की दुविधाहीन अभिव्यक्ति इस कविता में की गयी है। लेकिन शिल्प की दृष्टि से कई कमजोरियां इस कविता में मुखर होकर सामने आती हैं। पूरी कविता वर्णनात्मक है। जहां भावनाओं की अभिव्यक्ति की गयी है, वहां भी कविता में आवेग और उत्ताप का अभाव है। कविता की मूल भावना यद्यपि प्रगतिशील है पर उस पर एक हल्की सी उदासी की छाया सर्वत्र है। शायद यह इस बात का प्रभाव हो कि यह कविता भी अश्कजी ने अपनी अस्वस्थता में लिखी। इस प्रकार की गंभीर कविताओं की शैली में जो गरिमा अपेक्षित है, उसे अश्क जी की शैली सर्वत्र निभा नहीं पाती। बीच-बीच में कुछ निम्नस्तरीय प्रयोग उस गरिमा को आघात पहुंचाते हैं। उदाहरण के लिए :

निर्धनता को लगे अनगिनत
सूखे सड़े रुग्न 'मरजाने'

इसी तरह—'कौन प्रकृति के भेद खोल कर मानव की मुट्ठी में भीचे।' कवि कहना यह चाहता है कि पता नही इनमें से कौन विज्ञानवेत्ता बन कर प्रकृति के रहस्यों का उद्घाटन करे। पर 'भीचे' शब्द इस बात की गरिमा के कितना प्रतिकूल है। फिर कविता के मूल प्रतीक पर भी आपत्ति उठाई जा सकती है। अजगर को अश्कजी ने श्रम शक्ति का प्रतीक बनाया है। प्रगतिशील कविता में अजगर को ज्यादातर पूंजीवाद का प्रतीक बनाया गया है। और यह प्रतीकात्मकता अजगर के आलस, उसकी परोपजीविता और उसकी हिंसता के कारण उचित भी है। फिर पुराने भारतीय साहित्य में भी अजगर आलसियों का प्रतीक माना जाता रहा है :

अजगर करे ना चाकरी पंछी करे न काम
दास मलूका कह गये सबके दाता राम

पर अश्कजी ने उसे मेहनत का प्रतीक बना कर कहा है :

देख रहा हूं पलट रहा युग
खोल रहा है कुंडलि श्रम का सोया अजगर !

कारण सिर्फ यह है कि लक्ष्मीपति की शैया शेषनाग है, इसलिए वह शोषितों का प्रतीक बन गया। पर प्रतीकों की उपयुक्तता-अनुपयुक्तता का निर्णय बहुधा उनकी परम्परा के आधार पर ही किया जा सकता है। चांदनी रात और अजगर के रस मे यह विपरीतप्रतीकत्व बाधा डालता है।

सड़कों पे ढले साये अश्कजी का अगला सकलन है। इस संकलन में उनकी शैली बहुत बदल गयी है। समसामयिक हिन्दी कविता की शिल्पगत प्रगति का उन्होंने लाभ उठाया है और नयी शैली में प्रयोग किये हैं। पर कवि की भावभूमि अब भी स्वस्थ और सामाजिक है।

सकलन की महत्वपूर्ण कविताओं मे 'ढूढता हूं राह,' 'खिला दिन,' 'छिप-कली सी मुहब्बत,' 'मिडियाकरों का गीत,' 'नार्सिसस का उपदेश,' 'क्षमा करना,' 'बकरोटे की ढलान,' और 'विशाखापट्टम के सागर तट पर' प्रमुख हैं। 'ढूढता हूं राह' में जिन्दगी के जंगल मे सही राह ढूढते हुए पथिक का एक प्रभावशाली बिम्ब हमारे सामने उभरता है। और जंगल के पेड़-पौधे-लताए सब एक सार्थक प्रतीकात्मकता की गंध से सुवासित हो उठती हैं :

जिन्दगी के जंगलों में ढूढ़ता हूं राह !
ऊंचे गगनचुम्बी अहं में रत : पेड़
अपनी क्षुद्रता में मग्न कांटों को बिछाते : झाड़
लतरें : लिजलिजी सी
देख रुख बढ़ती हवा का
कभी मुड़तीं, कभी झुकतीं
लोट यों जातीं
कि झंझाएं गुजर जाएं
न उनको रौंद पायें
किन्तु पा अवसर पुनः वे सिर उठाएं
और छा जाएं तनों पर, डालियों पर
फूल पत्तों पर, तनावर पेड़ खा जाएं

'खिला दिन' स्वस्थ मन की उन्मुक्त दशा की सुन्दर अभिव्यक्ति है :

बहुत दिनों के बाद खिला दिन
जमीं बर्फ शिखरों पर गिरिवर धवलधार के
मेरे मन का जमा हुआ हिम लेकिन पिघला
जी होता है गाऊं जी भर गीत प्यार के...

शिखरों पर घूमूं आवारा
खड्डों में उतरूं, नद, नदियां, नाले लांघूं
ठीकरियां फेंकूं सर के निथरे पानी पर...
जी होता है वन जाऊं मैं खिला हुआ दिन
खिले हुए दिन सा मैं जग का कलुष मिटा दूं!

प्रकृति का यह स्वस्थ, उन्मुक्त और कुंठा-नाशक अंकन प्रगतिशील प्रकृति-चित्रण का एक सुन्दर उदाहरण है।

'छिपकली सी मुहब्बत' आज के प्यार पर अच्छा व्यंग है। लजीली, भीरु, अपने ही नाम से सहम कर सिमट जाने वाली और अंधेरे कोने मे से भाकने वाली छिपकली सी यह मुहब्बत कवि को वितृष्णा से भर देती है और वह पूछता है:

है कहां वह प्रीति
गह कर बांह प्रिय की
ले चले बरबस जो अपने साथ?
हाथ में अपने लिए सर
है कहां वह प्रेम उन्मद
चल पड़े जो जीत लाने
प्रियतमा का हाथ?
है कहां वह प्रीति
चुन ले भर सभा में
स्वयं मन का वर
बढ़ा कर डाल दे उसके गले में हार
छोड़कर संकोच गणना दुःख-सुख की
और गत-आगत का लेखा
घोषणा कर दे कि मुझको
प्रिय तुम्हीं से प्यार!

"मिड्यािकरों का गीत" ऐसे लोगो पर व्यंग है, जो कमल नही बन सकते, इसलिए काई बनाना चाहते हैं, ताकि दूसरों के विकास में बाधा डाल सकें। 'नार्सिसस का उपदेश' एक आधुनिक समस्या—आत्मरति—को सुन्दर ढंग से चित्रित करती है। ऐसे लोग जो अपनी प्रियतमा की आखो में भी अपने ही रूप का प्रतिविम्ब देख कर उसे प्यार करते हैं, और इसी आत्मरति को प्यार

समझते है; वास्तविक प्यार, बेशर्त समर्पण, को नहीं समझ पाते, नार्सिसस उन्हीं का प्रतीक है। 'क्षमा करना' आज के जीवन की स्वार्थपूर्ण व्यस्तताओं और उलझनों में उलझे मन की स्थिति का सुन्दर चित्र है। फागुन के शुरू के दिनों की सुनहली, ओस भीगी, मुस्करा कर निमन्त्रण देती हुई धूप, लाल-पहले-दुधिया फूल, एक सुन्दर कला कृति और सिरिस की डालियों में लटके चांद के प्रति मोह प्रकट करने के बाद कवि कहता है :

पर थका मन ग्रसित बीसों उलझनों में
जिन्दगी ने बाँध रक्खे हैं सभी क्षण
ओ सुनहली धूप
बगिया के निराले फूल
ओ कला ओ मधुरिमा !
क्षमा करना
मैं अभी खाली नहीं हूं !

'बकरोटे की ढलान पर' में आजाद देश के उस आजाद नागरिक का चित्र खींचा गया है, जो क्षण-क्षण घिरती धुंध और बरसती बूंदनियों में फटे हुए पैरों में मोटी चप्पलें पहने एक लम्बा सा भारी शहतीर उठाये धीरे धीरे पहाड़ से उतर रहा है और जो जी तोड़ परिश्रम के बाद भी भूखों मरने के लिए आजाद है।

'विशाखापट्टम के सागर तट पर' एक सुन्दर कविता है, जिसमें सकुल नगरों की गंदी गलियों के एक निवासी के हहराते सागर के प्रति राग की एक सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। सागर की विराटता का एक सुन्दर बिम्ब प्रस्तुत किया गया है। कवि का दृष्टिकोण स्वस्थ और सामाजिक है। पहले वह छाया-वादियों की तरह जीवन से—नगरों के सकुल, गंदे अंधेरे जीवन से—भाग कर सागर का मीन बनने की आकाक्षा करता है, लेकिन शीघ्र ही वह अपनी इस आकांक्षा की अवाछनीयता को समझ जाता है :

आह ! किन्तु मैं मीन नहीं मनु का बेटा हूं
अतुल सृष्टि के क्रम विकास में आगे बहुत निकल आया हूं...
मैंने ही ये नगर बसाये
मैं इनका नासूर भरूंगा

कविता के अन्त में कवि ने अपने मन पर पड़े हहराते सागर के प्रसार को सुन्दर अभिव्यक्ति दी है :

मैं जाऊंगा
लेकिन तेरे साथ बिताये ये क्षण भुला नहीं पाऊंगा
जन संकुल नगरों, रेलगाड़ियों
कारों, तांगों, छकड़ों के पुरजोर शोर में
जन-जन के अनवरत रोर में
तेरी गरज सदैव सुनाई देगी मुझको
व्यस्त बही जाती घड़ियों की भागदौड़ में
एक अंश ही मेरा जैसे पांव पसारे
सदा रहेगा व्यामोहित बैठा इस तट पर !

खोया हुआ प्रभामंडल (६५) अश्क जी का पाचवा और नवीनतम संकलन है। संकलन की भूमिका 'अश्क की काव्य-यात्रा' में किन्हीं सुरेन्द्रपाल ने लिखा है कि यह सकलन अश्क की काव्य धारा का नया मोड़ है और कि इसकी अधिकांश कविताओं में 'व्यक्तिमूलक एकान्तवादी स्वर' अधिक प्रखर हो उठा है। पर बात ऐसी नही है। इस संकलन मे भी अश्क का मूल स्वर जनवादी ही है। हां यह अलग बात है कि कई कविताओं में उन्होंने व्यक्तिगत कटुताओं और आक्रोशो को ही जनवादी लिवास में प्रस्तुत किया है। ऐसा लगता है कि या तो इस बीच कवि को अपने परिवेश से बहुत अनुचित उपेक्षा और कटुता मिली है और या आत्म-चेतना के अधिक प्रखर हो जाने के कारण उसे सामान्य उपेक्षा और कटुता भी अधिक तीव्रता से अनुभूत हुई है। 'लकड़-बग्घे', 'रेगिस्तान', 'एक चेतावनी', 'बिके हुए' आदि कविताओं मे उसने अपने परिवेश के प्रति अपने आक्रोश को बहुत कटुता के साथ अभिव्यक्ति दी है। 'मास नोचने,' 'लौहू पीने' और 'खून आलूदा गाल' जैसी पदावली का प्रयोग इन कविताओं में एकाधिक बार हुआ है। आक्रोश और कटुता ही नही एक प्रति-हिंसा का स्वर भी कुछ कविताओं में, जैसे 'परीक्षित-पुत्रों के प्रति' आदि मे, स्पष्ट सुनाई पड़ता है। संकलन की उल्लेखनीय कविताओं में 'लकड़बग्घे', 'बिके हुए' और 'एक फूल की मौत' प्रमुख है।

'लकड़बग्घे', में कवि ने उस पर नाराज रहने वाले 'अमुक' और 'अमुक' लोगों पर अपने आक्रोश को कलात्मक अभिव्यक्ति दी है :

सड़ा मांस न जाने कबसे पड़ा दुर्गन्ध में मदहोश है
उसे आक्रोश है
कि शेष कोई क्यों जीवित है
धड़कता है !

गुंधा नर्म आटा नालां है
हर उससे
जो कठिन है कड़कता है !

यही कवि का आक्रोश केवल उसी का नहीं रह जाता, सब विद्रोहियों का, उन सबका जो झुकने की अपेक्षा टूट जाना पसन्द करते हैं, आक्रोश बन जाता है। कविता का अन्त बहुत व्यंजना पूर्ण है :

अमुक और अमुक और अमुक
जिस दिन मुझपर प्रसन्न होंगे
मैं समझ लूंगा—
लकड़बग्घे जंगल में व्यर्थ नहीं चीख रहे हैं
मैं मरणोन्मुख हूं।

दुश्मन जब प्रसन्न होने लगता है, दोस्त बनने लगता है, तब किसी व्यक्ति की यह आशका स्वाभाविक है कि कहीं वह अपने सिद्धान्तों से डिग तो नहीं रहा है। कवि का अपने शत्रुओं की प्रसन्नता को अपनी मरणोन्मुखता का प्रमाण कहना, उसकी अपनी स्थिति पर दृढ़ता को व्यक्त करता है।

'बिके हुए' में थोड़ी-सी छिछली और एकाध जगह पर भौंडी शब्दावली में अश्कजी ने अपने उन भूतपूर्व साथियों को याद किया है 'जो कभी मानव वह लाते थे और जगल को दानवों से मुक्त कर उसे रहने लायक बनाने, क्रान्ति लाते उधार खाते थे,' लेकिन जो आखिर दानवों के हाथों मे बिक गये। कविता में एक जगह संकीर्ण प्रगतिवादियों (कुत्सित समाजशास्त्रियों) पर अच्छा व्यंग है:

दो बन्दर एक बया का घोंसला खसोट रहे थे
उन्हें गिला था
कि जब वे (थोथे) नारे लगा रहे थे
वह कमबख्त
कला की बारीकियों में जान खपा रहा था।

'एक फूल की मौत' मुक्तिबोध के अस्थि-विसर्जन पर लिखी हुई एक व्यंग कविता है, जिसमें समसामयिक साहित्यकारों की इस ओछी वृत्ति पर व्यंग है कि वे किसी का सम्मान भी निश्छल भाव मे नहीं, अपने को स्थापित करने के लिये, अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिये ही करते हैं।

स्पष्ट है कि अश्कजी के काव्य में धीरे-धीरे काफी निखार आ गया है। सीधीसादी प्रगतिशील कविताओं से लेकर उन्होंने सूक्ष्म संवेदनाओं और समसा-

मयिक जीवन की जटिलताओं को व्यक्त करने वाली कविताओं तक कई तरह की रचना की है।

शंकर शलेन्द्र

स्वर्गीय शैलेन्द्र आज एक लोकप्रिय फिल्म-गीतकार के रूप में ही अधिक प्रसिद्ध हैं, पर इससे पहले वे मजदूर-आन्दोलनों से घनिष्ठता से सम्वद्ध हिन्दी के एक प्रसिद्ध राजनीतिक रुझान के प्रगतिशील कवि भी रहे हैं, यह शायद हिन्दी फिल्म-दर्शकों में से बहुत कम लोग जानते होंगे। वास्तव में शैलेन्द्र के काव्य-सृजन के तीन दौर रहे है। पहले दौर में उन्होंने रूमानी कविताएं लिखी। दूसरे में उन्होने राजनीतिक आन्दोलनों में सीधे भाग लिया और भारत के संघर्षशील मजदूर-आन्दोलन को अपनी कविता में वाणी दी। और तीसरे में उन्होंने फिल्मी गीत लिखे, जो सभी तरह के है, क्योंकि फिल्मी आवश्यकताओं को ध्यान में रख कर लिखे गये थे।

शैलेन्द्र का जन्म और पालन-पोषण रावलपिंडी नगर के एक दलित शूद्र परिवार में हुआ था। उनके पिता एक मिलिट्री हॉस्पिटल में एक मामूली क्लर्क थे। हाई स्कूल परीक्षा पास करने के बाद उन्होने मथुरा के रेलवे वर्कशाप में नौकरी की। बाद में वे बम्बई के रेलवे वर्कशाप में काम करने लगे। बम्बई मे वे रेलवे मजदूर आन्दोलन के सम्पर्क में आये। कविता लिखना उन्होंने ४१ में शुरू किया। ४२ के आन्दोलन में भाग लेने के कारण उन्हें जेल जाना पड़ा। जेल से छूटने के बाद उन्होंने जननाट्य संघ (इप्टा) के क्रियाकलापों में सक्रिय भाग लिया। 'इप्टा' के मंच से गाये गये उनके गीत शीघ्र ही बम्बई की जनता पर छा गये और वे मजदूरों और प्रगतिशील बुद्धिजीवियों के प्रिय गीतकार हो गये।[३९]

एक इंजीनियर के रूप मे कारखाने में किये गये काम ने उनके जीवन को बहुत प्रभावित किया। स्वयं उन्ही के शब्दो में उन्होंने पूरे आठ साल 'मशीनों के तानपूरे पर गीत गाये'।[४०]

राजकपूर की फिल्म 'बरसात' से वे फिल्म जगत में आये। पहली ही फिल्म के उनके गीत बहुत लोकप्रिय हुए। उसके बाद तो उन्होंने बूट पालिश, श्री चार सौ बीस, दाग, अनाड़ी, आवारा, जिस देश में गंगा बहती है, सीमा, मधुमती, सूरत और सीरत, बन्दिनी आदि अनेक प्रसिद्ध फिल्मों के गीत लिखे,

---

३९. ललित मोहन अवस्थी : आज के कवि, पृ. ८४.
४०. देखिए शैलेन्द्र का लेख, धर्मयुग, १६ मई ६५.

जिन्होंने उन्हें फिल्म संसार का एक प्रथम श्रेणी का हिन्दी गीतकार बना दिया।"[41]

अपने जीवन के अन्तिम दौर की उनकी सबसे बड़ी उपलब्धि उनकी बनाई हुई फिल्म 'तीसरी कसम' है। यह फिल्म हिन्दी फिल्म जगत में एक बड़ा साहित्यिक दुस्साहस थी। प्रसिद्ध आंचलिक उपन्यासकार फणीश्वरनाथ रेणु की एक कहानी के आधार पर बनाई हुई यह फिल्म शैलेन्द्र की सुरुचि और कलात्मक क्षमताओं का एक ज्वलन्त प्रमाण है। फिल्म को राष्ट्रपति पुरस्कार मिल चुका है।

न्यौता और चुनौती शैलेन्द्र की कविताओं का एकमात्र प्रकाशित संकलन है। संकलन की बहुत सी कविताएं आज के पाठकों को साधारण ही लगेंगी, चाहे वे रूमानी हों या राजनीतिक। क्योंकि प्रारम्भ की सात-आठ रूमानी कविताओं में कोई भी ऐसी चीज नहीं है, जो उन्हें साधारणता से ऊपर उठाती हो,[42] और बाद की राजनीतिक कविताओं में से अधिकतर तात्कालिक राजनीतिक आवश्यकताओं और संदर्भों से जुड़ी हुई है, इसलिए आज के पाठक को उतनी प्रभावित नहीं करती। फिर भी संकलन में कुछ ऐसी कविताएं बच जाती हैं जो अपनी अभिव्यक्ति की सहजता, व्यंग की वक्रता, और सामाजिक चेतना की प्रखरता के कारण हृदय को छूती हैं। ऐसी कविताओं में 'तू जिन्दा है', 'नेताओं को न्यौता', 'भगतसिंह से', 'उठे कदम', 'आजादी हो तो ऐसी हो', 'मुझको भी इंगलैंड ले चलो', 'बस की प्रतीक्षा में', आदि कविताएं उल्लेखनीय हैं।

'नेताओं को न्यौता' में बम्बई के मजदूरों की वास्तविक स्थिति का सुन्दर अंकन है। छन्द का प्रवाह कविता की प्रभावशीलता का एक विशेष उदाहरण है। 'उठे कदम' और 'तू जिन्दा है' सुन्दर प्रयाणगीत हैं :

क्रान्ति के लिए जली मशाल
क्रान्ति के लिए उठे कदम !
भूख के विरुद्ध भात के लिए
रात के विरुद्ध प्रात के लिए

---

४१. माधुरी, २६ अगस्त ६६, पृ. २६.

४२. सिवाय इन पंक्तियों के :

जिस दिन तुमको बाहों में भर तन का ताप मिटाया
प्राण कर लिये पुण्य, सफल कर ली मिट्टी की काया।

मेहनती गरीब जात के लिए
हम लड़ेंगे, हमने ली कसम !
छिन रही हैं आदमी की रोटियां
बिक रही हैं आदमी की बोटियां
किन्तु सेठ भर रहे हैं कोठियां
लूट का यह राज हो खतम !
तय है जय मजूर की, किसान की
देश की, जहान की, अवाम की
खून से रंगे हुए निशान की
लिख गयी है मार्क्स की कलम !

'तू जिन्दा है' में जिन्दगी की प्रगति और विजय में उनका अटूट विश्वास और दुनिया को हसीन बनाने की उनकी उत्कट अभिलाषा बहुत सुन्दर और सशक्त ढंग से व्यक्त हुई है। छन्द की लय इतनी प्रबल है कि मन के साथ तन को भी एक अदम्य प्रेरणा से भर देती है :

तू जिन्दा है तो जिन्दगी की जीत में यकीन कर
अगर कहीं है स्वर्ग तो उतार ला जमीन पर
ये गम के और चार दिन, सितम के और चार दिन
ये दिन भी जाएंगे गुजर, गुजर गये हजार दिन
सुबह औ शाम के रंगे हुए गगन को चूम कर
तू सुन जमीन गा रही है कब से झूम झूम कर
"तू आ मेरा सिंगार कर, तू आ मुझे हसीन कर !"
तू जिन्दा है तो जिन्दगी की जीत में यकीन कर !

'भगतसिंह से', 'आजादी हो तो ऐसी हो,' और 'मुझको भी इंगलैण्ड ले चलो', शैलेन्द्र की प्रसिद्ध व्यंग कविताएं हैं। प्रगतिशील कवियों में नागार्जुन के बाद कदाचित शैलेन्द्र सर्वाधिक सफल व्यंगकार हैं। नागार्जुन की तरह ही उनका व्यंग भी बड़ा तीखा और तिलमिला देने वाला है।

भगतसिंह के साथियों और उनकी परम्परा के जनवादियों को कांग्रेसी सरकार जेलों में डाल रही है, इस तथ्य के संदर्भ में इस कविता की ये पंक्तियां कितनी प्रभावपूर्ण हो जाती हैं :

भगतसिंह इस बार न लेना काया भारतवासी की
देश भक्ति के लिए आज भी सजा मिलेगी फांसी की
यदि जनता की बात करोगे, तुम गद्दार कहाओगे
बम्ब सम्ब की छोड़ो, भाषण दिया कि पकड़े जाओगे
निकला है कानून नया, चुटकी बजते बंध जाओगे
कांग्रेस का हुक्म, जरूरत क्या वारन्ट, तलाशी की!

'आजादी हो तो ऐसी हो' में भारत को ४७ मे मिली पूंजीवादी आजादी का प्रभावशाली ढंग से मजाक उड़ाया गया है:

जो राजा थे, हैं राज प्रमुख
जनता के हित सहते हैं दुःख
असमंजस में हैं सब किसान
क्या सतयुग लौट आया महान!

'मुझको भी इग्लैंड ले चलो' में इंग्लैंड की रानी के राज्याभिषेक समारोह मे नेहरू जी के शामिल होने पर सुन्दर व्यंग किया गया है:

मुझको भी इंग्लैण्ड ले चलो पंडित जी महराज
देखूं रानी के सिर कैसे धरा जायगा ताज
रूमानी कविता लिखता था, सो अब लिखी न जाय
चारों ओर अकाल, जियूं मैं कागज-पत्तर खाय?
मुझे साथ ले चलो कि शायद मिले नयी इस्फूर्ति
बलिहारी वह दृश्य, कल्पना अधर-अधर लहराय
साम्राज्य के मंगल-तिलक लगायेगा सौराज!
मुझको भी इग्लैंड ले चलो पंडित जी महराज!

शैलेन्द्र की व्यंग-कविताओं की सबसे बड़ी शक्ति है, एक सहजता, एक सरलता, एक ठेठ मजदूरपन। कभी-कभी वे ऐसी वाक्यरचना करते हैं जो बिल्कुल मजदूरों के मुहावरों में होती है। जैसे:

गवरमिन्ट बटुवा दिखलाती, कहती कौड़ी पास नहीं
चाहो तो गोली खिलवा दें, गोली अभी खलास नहीं!

कई बार वे जिस फक्कड़ाना ऊंचाई से अपने विरोधियों पर व्यंगात्मक प्रहार करते हैं, वह कबीर के फक्कड़पन से भरे व्यंगों की याद दिलाती है।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है शैलेन्द्र की काव्य प्रतिभा का एक बड़ा अंश फिल्म-गीतों के निर्माण में लगा है। अपने फिल्म गीतों में उन्होंने आवश्यकता और अवसर के अनुकूल नारी-सौन्दर्य, प्रणय, पारिवारिक स्नेह, देश प्रेम, प्रकृति सौन्दर्य, कठिन परिस्थितियों के विरुद्ध संघर्ष के साहस, मानवीय श्रम के गौरव और मानवीय भविष्य के प्रति आशा और विश्वास की उदात्त भावनाओं को वाणी दी है। यद्यपि एक फिल्मी गीतकार को बहुत सी थोपी हुई सीमाओं में ही रचना करनी होती है, फिर भी शैलेन्द्र के फिल्म-गीतों में उनका प्रगतिशील स्वर उभर कर सामने आया है। छोटे-छोटे बूट-पालिश करने वाले कमकर बच्चों के इस गीत के माध्यम से कैसे सहज ढंग से उन्होंने मानवीय भविष्य के प्रति अपनी आस्था व्यक्त की है :

नन्हें मुन्ने बच्चे तेरी मुट्ठी में क्या है ?
मुट्ठी में है तकदीर हमारी, हमने किस्मत को बस में किया है !
भोली-भाली मतवाली आंखों में क्या है ?
आंखों में झूमे उम्मीदों की दीवाली,
आने वाली दुनियां का सपना सजा है !

इसी तरह एक और गीत में दलित-शोषितों की जीवन-विषमताओं को कितनी सुन्दर अभिव्यक्ति मिली है :

ये दुनियां, ये दुनियां, हाय हमारी ये दुनियां
शैतानों की बस्ती है, यहां जिन्दगी सस्ती है
ये दुनियां, ये दुनियां !
दम लेने को साया है तलवारों का
सो जाने को बिस्तर है अंगारों का
कदम चूम तू ज़र के अंधे पीरों के
करना है तो सिजदा कर दीवारों का
ये दुनियां, ये दुनियां !

वास्तव में शैलेन्द्र की रचनाओं में हमें भारत के औद्योगिक शहरों में रहने वाले मजदूरों के जीवन और उनकी आशा आकांक्षाओं के सही चित्र मिलते हैं। मजदूरों के बीच रह कर उन्होंने उनके जीवन की समस्याओं का अनुभव किया है, इसलिये उनकी कविताओं में मध्यमवर्गीय प्रगतिशील कवियों की तरह की, मजदूरों के प्रति एक दूर की सहानुभूति नहीं, उनके दिल की टीस और हूक

मिलती है। उनकी कविताओं में मजदूर वर्ग का दयनीय ही नहीं, एक क्रान्तिकारी रूप भी सामने आता है, क्योंकि उनके पीछे संगठित भारतीय मजदूर वर्ग के क्रान्तिकारी आन्दोलन का इतिहास है। तभी तो वे उनकी ललकार को ऐसी सबल वाणी दे पाते हैं[४३]:

हम मौत के जबड़े तोड़ेंगे, एका हथियार हमारा है!
हर जोर जुल्म की टक्कर में, हड़ताल हमारा नारा है!

उनकी ये सशक्त पंक्तियां सचमुच ही क्रान्तिकारी मजदूर वर्ग का एक नारा बन गयी हैं।

शील

शील, जिनका वास्तविक नाम मन्नूलाल शर्मा है, कानपुर जिले के एक छोटे से गांव पाली भोगीपुर मे एक पंडिताई और पुरोहिती करने वाले किसान परिवार में जन्मे-पले। बचपन में ही गांव के किसान जीवन के अभिशाप और जमींदारी दमन तथा अत्याचार के दृश्य उन्हें देखने को मिले और उनका हृदय विद्रोह तथा प्रतिहिंसा की भावनाओं से भर उठा। तेरह वर्ष की उम्र में ही वे गांधी जी की पुकार पर घर से निकल पड़े और सत्याग्रह में भाग लेकर जेल चले गये।[४४] बड़े होने पर कांग्रेस के भीतर के वामपंथी तत्वों और कानपुर के मजदूर आन्दोलनों के सम्पर्क में आये और आतंकवादी क्रियाकलापों में भाग लेने लगे। और आगे चल कर वे साम्यवादी हो गये तथा सक्रिय रूप से मजदूर-किसान आन्दोलनों में हिस्सा लेते रहे।[४५] उनकी कविताएं इन्हीं मजदूर-किसान आन्दोलनों की देन हैं, और अधिकाश मे इन्हीं आन्दोलनों की आशाओं आकांक्षाओं को अभिव्यक्ति दी गयी है। अपनी रोजी और अपने विचारों के लिए उन्हें काफी संघर्ष करना पड़ा। प्रेस की नौकरी से, कोयले की दुकान, रिक्शा चलाना, और नुमाइश में चाय की स्टाल लगाने तक के काम और पुलिस से लुकाछिपी से बरसों की जेल यात्रा तक कई तरह का जीवन उन्हें जीना पड़ा है।[४६] उनका काव्य किसी खाते-पीते, आराम से जीते हुए व्यक्ति का नहीं, एक शोषित, पीड़ित पर फिर भी संघर्षरत कवि का काव्य है।

शील की कविताओं के अब तक चार सकलन (उनके बिल्कुल आरंभिक

४३. ललित मोहन अवस्थी : आज के कवि, पृ. ६०-६२.
४४. देखिए राम आसरे की भूमिका, उदयपथ.
४५. देखिए ललितमोहन अवस्थी: आज के कवि, पृ. २०-२६.
४६. वही

संकलन 'चर्खाशाला' को छोड़ कर) प्रकाशित हुए हैं : अंगड़ाई (४४), एक पग (४६), उदय पथ (५३) और लावा और फूल (६७)

प्रारंभ में हम उन्हें गांव के और किसान जीवन के सरल चित्र उतारते हुए पाते हैं :

हे विश्व प्राणदाता किसान, हे श्रेष्ठ लोक भ्राता किसान
तुम सरल हृदय तुम शान्ति मूर्ति, तुम निरत श्रमी तुम तपःपूत
तुम शस्य सृष्टि के निर्माता, व्यापार जगत के बल अकूत

अंगड़ाई की अधिकांश कविताएं छायावाद से प्रभावित शब्दावली में छन्द बद्ध की हुई प्रगतिवादी विचारों की कविताएं हैं। इनमें कहीं हम गांव की झोंपड़ी में चक्की पीसती हुई दुखिया नारी का, कहीं जमीदार की लड़की को भूलते देख रघुआ की मचलती हुई रधिया का, कही घास काटने वाले घसियारे का, कहीं खेत में काम करते हुए किसान का और कहीं उसके लिए सिर पर छोटी सी पोटली में पनेथी-साग लेकर आती हुई उसकी पत्नी का चित्र देखते हैं। वर्ग संघर्ष के विभिन्न पक्षो को भी इन कविताओं में चित्रित किया गया है, जो शील के अगले संकलनों में और भी बढ़ते जाते हैं। एक संघर्षपूर्ण जिन्दगी का बिम्ब शील की समस्त कविताओं में से उभर कर सामने आता है। **उदयपथ** की इन पंक्तियों में उन्होंने इस नयी जिन्दगी को सुन्दर उपमानों में रूपायित किया है :

पानी सी प्रिय, स्वच्छ आग सी, निर्मल कान्ति पर्व सी पावन
हंसती हुई कृषक बाला सी, उगते खेतों सी मन भावन
खिलती हुई कली सी पुलकित, उड़ते हुए भ्रमर सी चंचल
नयी दृष्टि के पृष्ठ खोल कर, लाई नई जिन्दगी हलचल
संघर्षों में बीज फोड़ कर, अंकुर सी बढ़ चली जिन्दगी
मनुष्यता की नयी सुबह में सूरज सी चढ़ चली जिन्दगी

—जिन्दगी, **उदयपथ**

शील की कविताओं में उनके देखे और भोगे यथार्थ के बहुरंगी चित्र मिलते हैं : किसानों और मजदूरों के संघर्ष, नारी की वेदना, क्रान्तिकारी का दर्द, लेखकों का आह्वान, नये इन्सान की वाणी, नाविक विद्रोह, कोरिया की क्रान्ति, एशिया का बढ़ता हुआ शान्ति आन्दोलन, साम्प्रदायिक दंगे, एक मई आदि विषयों को उन्होंने अपनी कविताओं का आधार बनाया है। उनकी कविताओं

में किसान से मजदूर बनता हुआ राघू है, पीठ पर ईंटों का अम्बार ढोए हुए जमींदार कुन्दन सिंह की बैंत खाता हुआ सुदामा है, बाप पर चोरी का इल्जाम लगा कर थाने में बंद करवाने वाले और बेटी को उठा लाने वाले छोटे मालिक हैं और हैं इस सारे यथार्थ को अपना खून देकर बदलने की कोशिश करने वाले मजदूर और किसान।[४७] शील का मनोबल तगड़ा है। पस्तहिम्मती और निराशा के वातावरण में भी वे कहते है :

मेरे दीपक जलते रहना, जब तक रात रहे
जब तक सूरज नयन न खोले
खिल कर कमल न मुख से बोले
तब तक मेरे उर के दीपक चौमुख ज्योति बहे

—एकपग

यह सब है, पर शील की कविताओं की सबसे बड़ी कमजोरी यह है कि उनमें कविताएं बहुत कम हैं। ज्यादातर प्रगतिवादी सिद्धान्तों को ही या समाज के यथार्थ को ही उन्होंने पद्यबद्ध किया है। इन विचारों और तथ्यों से अनजान लोगों को प्रगतिवादी विचारधारा से परिचित करवाने के अतिरिक्त उनकी अधिकांश रचनाओं की कोई और सार्थकता नजर नही आती। उनके पहले तीन संकलनों में से शायद ही दो-चार से अधिक महत्वपूर्ण कविताएं ढूंढ़ी जा सकें। ऐसी कविताओं में 'नया आदमी', 'जिन्दगी' और 'आदमी का गीत' के नाम लिये जा सकते हैं। 'आदमी का गीत' उनका प्रसिद्ध गीत है :

देश हमारा धरती अपनी, हम धरती के लाल
नया संसार बनायेंगे, नया इन्सान बनायेंगे

पर पूरे गीत में वह सघनता और सुघड़ता नही है, जिसकी ऐसे किसी गीत से आशा की जा सकती है। 'जिन्दगी' में संघर्षशील परिस्थितियों में अंकुरित होती हुई, और नये युग की अगवानी करती हुई, देश देश में जन्म ले रही, नयी जिन्दगी और नयी जवानी को रूपायित किया गया है। 'नया आदमी' शायद इन तीनों कविताओं में से भी सबसे सफल कविता है :

अंगड़ाई ली, नयन तरेरे, देख चुका दुर्दिन के फेरे
बदल रहा इतिहास, बदलने को हैं अब ये सांझ-सवेरे
छल का राज न चल पाएगा, जल का दिया न जल पाएगा

---

४७. जीवन और कवि, उदयपथ

अब न धरा पर शेष रहेगा, लोहू का व्यापार !
नया आदमी मांग रहा है जीने का अधिकार !

लावा और फूल (६७) उनकी चुनी हुई कविताओं का एक समग्र संकलन कहा जा सकता है। इसमें उनकी १६३४ से ६६ तक की ६४ कविताएं संकलित हैं। लावा और फूल की उल्लेखनीय कविताओं में 'सत्य,' 'भाई का पत्र,' 'कोयल बोल रही', 'वरगद के नीचे', और 'मजदूर की झोंपड़ी' आदि के नाम लिये जा सकते हैं।

अन्तिम दो कविताओं में मजदूर और किसान जीवन के संघर्ष और दुःखदर्द की दो हृदय स्पर्शी कथाएं प्रभावक ढंग से प्रस्तुत की गयी हैं, जिनमें चक्की की घरर-घरर आवाज में एक मजदूर की पत्नी अपना हृदय पीसती रहती है और उसके पति को चोरी के इल्जाम में पुलिस पकड़ ले जाती है, तथा जागीरदार के अत्याचारों से पीड़ित होकर मधुआ किसान डाकू बन जाता है। 'कोयल बोल रही' प्रकृति और जीवन-संघर्ष के सायुज्य का एक सुन्दर गीत है :

पीत वर्ण मधुकलश शीश धर
सन्ध्या श्री उतरी,
बाग में कोयल बोल रही।
द्रुम-द्रुम पात-पात आन्दोलित
कवि के हुए सुप्त स्वर मुखरित
छलक पड़ी जीवन पनघट पर
पीड़ा की गगरी,
बाग में कोयल बोल रही !

'सत्य' हमारे युग के, राष्ट्रों की संकीर्णताओं को भेद कर उभरने वाले, मानव सत्य को और उसे दमित-पीड़ित-शोषित रखने की कोशिश करने वाले भयानक सत्य को अच्छी अभिव्यक्ति देती है। इस कविता मे शील सन इक्कावन के बाद विकसित नयी प्रगतिशील कविता की शैली अपनाते प्रतीत होते हैं, जो शमशेर, नरेश मेहता की ऐसी कविताओं के तट छूती हुई लगती है :

जहां कहीं भी हो तुम मित्रो !
गर्म सर्द अपने देशों में
काले गोरे भूरे पीले किसी रंग के
कितने प्यारे शहर तुम्हारे !

'भाई का पत्र' कदाचित इस संकलन की सबसे सुन्दर कविता है। पत्र के माध्यम से बड़ी सहजता और स्वाभाविकता के साथ ग्राम्य जीवन के संघर्षों और दुःख-दर्दों का बहु-आयामी यथार्थ प्रस्तुत किया गया है। इसमें जहां भाई के बैल के मरने का जिक्र है :

पिछली बार गिरा जो धौला, फिर न उठ सका
चला गया सुरधाम हाय साथी मेहनत का
मांग-चांग कर बैल बीज धरती में डाले
पर हो गये अनाथ लगा खेती को झटका
बिन बैलों की काश्त स्वप्न में मोर नचाना
बिन सरगम का गीत, भूख में गाल बजाना
तुम तो कवि हो जरा कल्पना करके देखो
छोड़ दिया है यहां जवानी ने इठलाना

वहां समस्त गांव पर आयी हुई विपदाओं की कहानी भी है :

बिना दवा के मरी अभी कंचन की साली
लखपतशाह दाब बैठे हैं लोटा थाली।
कुछ लोगों को छोड़ गांव का गांव दुःखी है
अब की अपने गांव न आयेगी दीवाली।
इसुरी पंडित बुरी तरह हैं काल-गाल में
उनके यहां पड़ गया डाका अभी हाल में।
दिन में लूटे गये फूट बस गांव न सनका
डूब मरी सुखदा खेरे के देवताल में।

कविता में समसामयिक भारतीय ग्राम जीवन के यथार्थ का नमूने की तरह एक समग्र-सा चित्र उभार कर रख दिया गया है।

अन्त में हम डॉ. शिवकुमार मिश्र के इस मूल्यांकन को उद्धृत कर सकते हैं कि "साम्राज्यवाद और पूंजीवाद के क्रूर पंजों से देश की स्वतंत्रता की उत्कट प्यास, विषम से विषम परिस्थितियों में भी आस्था, उत्साह और दृढ़ता का स्वर और मानवता तथा मानव की शक्ति पर अडिग विश्वास—शील के काव्य की वे विशेषताएं हैं, जो सैद्धान्तिकता, मतवादिता और बहुधा ही छा जाने वाली गद्यमयी निविड़ता के बावजूद भी आकर्षण का केन्द्र बन जाती है।"[४८]

---

४८. नया हिन्दी काव्य, पृ. १६६.

रामविलास शर्मा

वैसे तो रामविलास जी हिन्दी में एक प्रगतिशील आलोचक के रूप में ही प्रसिद्ध हैं, पर उन्होंने न केवल कविताएं भी लिखी हैं, बल्कि उनकी कविताएं अज्ञेय द्वारा सपादित तार सप्तक में ही नहीं सम्मिलित की गयीं, अलग से एक संकलन रूप तरंग के रूप में भी प्रकाशित हुई हैं। स्वयं रामविलास जी के अनुसार वे अब मुख्यतः गद्य-लेखक हैं, कविताएं उन्होंने किसी जमाने में लिखी थीं, लेकिन फिर भी प्रगतिशील कविता के आन्दोलन से, उसके जन्मकाल से ही निकट संबंध रखने के कारण और अपनी कविताओं की कुछ विशेषताओं के कारण प्रगतिशील कविता के इतिहास में उनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।

अपने अंचल बैसवाड़ा के किसान जीवन और प्रकृति के चित्र उनकी कविताओं की सबसे बड़ी विशेषता है। प्रगतिशील कविता में ग्रामीण किसानों का इतने व्यापक स्तर पर चित्रण निराला, पन्त और केदार के बाद रामविलास की कविताओं में ही मिलता है। पर प्रकृति और कृषक जीवन के यथातथ्य वर्णन की ओर झुकाव उनका इतना अधिक है कि उनकी कई कविताएं मात्र ग्राम्य जीवन की रिपोर्ट या प्रकृति का एक सीधासादा चित्र मात्र बनकर रह गयी हैं।

आंचलिकता और अंचलों की लोक-संस्कृति के तत्व उनकी कविताओं में जगह-जगह मिलते हैं। इसी संदर्भ में श्री रघुनाथ विनायक तावसे ने कहा है कि वे अपने अनुभवो को ईमानदारी से कलात्मक रूप से व्यक्त कर देते हैं— इस प्रकार कि जिससे उनमे भारतीय वैशिष्ट्य का भाव खंडित न होने पाये।[४९] 'बैसवाड़ा' आंचलिकता की दृष्टि से उल्लेखनीय है :

एक धनी अमराई सा यह हृदय अवध का
जहां सतत बहती है गंगा
कोयल और पपीहे के स्वर से मुखरित है।
चांदी सी नम उर्वर धरती
सई, लोन नदियों के जल से भीज गयी है।
खेतों में सनयी, गोहवा, सरसों की शोभा
तालों में खिलती हैं सुन्दर कोकाबेली
दुनिया में अनुपम हैं यहा शरद की सांझें।

'डलमऊ में गंगा' में भी आंचलिक यथार्थ वर्णन के साथ अंचल की लोक संस्कृति मुखर हो उठी है। 'खजुराहो', 'कैमासिन', 'केरल' 'कृष्णा पर विजय-

---

४९. परिचय, रूप तरंग, पृ. १०.

वाड़ा', 'महाबलिपुरम का समुद्र तट', 'पीर पंजाल', 'चिदम्बरम, 'मातृतीर्थः तिरुच्चिरापल्ली', 'बांदा में निराला जन्म-दिवस समारोह', आदि कविताएं भी आंचलिक कविताएं ही कही जाएंगी, यद्यपि इनमें से कई कविताएं उस स्थान विशेष के रेखाचित्र से अधिक कुछ भी नहीं हैं।

निराला और रवीन्द्रनाथ कवि के प्रिय कवि रहे हैं। डा. रामविलास की कई कविताएं उनके प्रिय साहित्यकारों से संदर्भित हैं। जैसे 'गुरुदेव की पुण्य भूमि' रवीन्द्र से, 'कवि' और 'बादा में निराला जन्म-दिवस समारोह,' निराला से, 'मातृतीर्थं' सुब्रह्मण्य भारती से, 'कश्मीरी कवि महजूर के स्वर्गवास पर', महजूर से, 'किसान कवि और उसका पुत्र', पढीस से और 'आगरे में इलिया एरेनबुर्ग' एरेनबुर्ग से संबंधित है।

अपनी जन्म भूमि के प्रति निश्छल प्रेम और उसके उज्ज्वल भविष्य के प्रति एक स्वस्थ आशावादिता उनकी कविताओं में पग पग पर मिलती है।

रामविलास जी की प्रारंभिक कविताओं पर निराला जी का काफी प्रभाव है, उनकी शब्दावली भी पन्त और निराला की छायावादी शब्दावली है, पर आगे चल कर उनका शब्दचयन यथार्थ वर्णन के उपयुक्त और स्थानीय रंगों से युक्त बन जाता है। एक ही छन्द को उन्होंने अपनी कई कविताओं में दुहराया है, जैसे रूपतरंग की 'प्रत्यूष के पूर्व', 'कतकी', 'शारदीया', 'सिलहार' आदि कविताओं में। आंचलिक वातावरण के सम्मूर्तन के लिए आंचलिक शब्दों का भी प्रयोग उन्होंने किया है। जैसे पन्त जी की परवर्ती कविताओं में 'स्वर्ण' भरा पड़ा है, वैसे ही रामविलास जी की इन कविताओं में खूब 'चांदी' है।[५०] शायद यह उनके किसान-प्रेम, लोक जीवन से उनके तादात्म्य का ही प्रतीक हो।

---

५०. उदाहरण के लिए देखिए :

(क) *चांदी की झीनी चादर सी फैली है वन पर चांदनी*
चांदी का झूठा पानी है यह माह-पूस की चांदनी
—चादनी, रूपतरंग पृ. ४.

(ख) *चांदी की किरणों से छूकर*
उठा रहा ऊपर दल के दल
धुंधले से कोहरे के बादल
—कुहरे के बादल, रूपतरंग, पृ. ६३.

(ग) *चांदी सी नम, उर्वर धरती*
सई, लोन नदियों के जल से भीज गयी है
—बैसवाड़ा, रूपतरंग, पृ. ७०.

यद्यपि रामविलास जी को स्वयं अपनी कोई भी कविता पसन्द नहीं है,[५१] तथापि रूपतरंग की कुछ कविताएं वास्तव में काफी अच्छी बन पड़ी हैं। ऐसी कविताओं में 'किसान कवि और उसका पुत्र', 'तूफान के समय', 'गुरुदेव की पुण्य-भूमि', तथा 'और भी ऊंचा उठे झंडा हमारा' के नाम लिए जा सकते हैं।

'किसान कवि और उसका पुत्र' में ग्रामीण प्रकृति और किसान जीवन के सुन्दर चित्रण को किसान कवि पढ़ीस की कहानी के साथ संयुक्त करके अच्छी प्रभावशीलता उत्पन्न की गयी है। मानव और उसके भविष्य के प्रति एक अकुंठ आस्था का सबल स्वर इस कविता की विशेषता है :

यह मानव का हृदय क्षुद्र इस्पात नहीं है
भय से सिहर उठे वह तरु का पात नहीं है

'तूफान के समय' में प्रकृति की अंध शक्तियों के विरुद्ध जूझने वाली मानवीय आत्मा की जय का स्वर है। 'गुरुदेव की पुण्य भूमि' बंगाल के अकाल के संदर्भ में लिखी गयी है। 'और भी ऊंचा उठे झंडा हमारा' हमारी राष्ट्रीय स्वाधीनता का स्वागत करती हुई, हमारी जनता की प्रगति की शुभ कामना से भरी हुई एक प्रभावशाली कविता है, जो कवि के उत्कट देश-प्रेम की प्रतीक है।

इन कविताओं में यद्यपि कुल मिला कर प्रकृति और ग्राम्य जीवन की वर्णनात्मकता और इतिवृत्तात्मकता ही अधिक है, तथापि कहीं कहीं किसानों के जीवन के विभिन्न चित्र पर्याप्त राग के साथ खींचे गये हैं। जैसे किसानों के दैनिक क्रियाकलापों का यह सरल सा चित्र :

बीच खेत में सहसा उठ कर, खड़ी हुई वह युवती सुन्दर
लगा रही थी पानी झुक कर, सीधी करे कमर वह पल भर...
इधर उधर वह पेड़ हटाती, रुकती जल की धार बहाती
मांगी से फिर उसे रोकती, बिगही में जब धवा फ़ोड़ती
धीरे धीरे बिगही भरती, धवा बांध वह आगे बढ़ती

—कुहरे के बादल, रूपतरंग, पृ. ६४.

रूपतरंग की इन कविताओं के अतिरिक्त रामविलास जी ने 'निरंजन' और 'अगिया बैताल' के नाम से पत्र-पत्रिकाओं में सामयिक राजनीतिक स्थितियों पर प्रतिक्रिया स्वरूप ढेरों व्यंगात्मक कविताएं भी लिखी हैं। शिवकुमार मिश्र

---

५१. इन पंक्तियों के लेखक को लिखे उनके एक पत्र के आधार पर

के अनुसार इनमें बहुधा व्यंग की मर्यादा का अतिक्रमण हुआ है।[५२] हां उनकी व्यंग कविताओं में से एक 'सत्यं शिवं सुन्दरम्', जो तार सप्तक में संकलित है, अवश्य ही महत्वपूर्ण है। कविता में शुद्ध कलावादियों पर प्रभावशाली व्यंग किया गया है :

शुद्ध कला के पारखी, कहते हैं उस पार की
इस दुनिया की कौन कहे, भव सागर में कौन बहे
जै हो राधारानी की, या जिसने मनमानी की
राधा या अनुराधा से, छिप कर अपने दादा से
कैसी बढ़िया चाल की, बलिहारी गोपाल की
उसके भक्तों में से हम, सत्यं शिवं सुन्दरम्!

लेकिन पूरी कविता व्यंग और सपाट कथन का बेमेल मिश्रण है। कविता के अन्त के 'मोरल' ने, सपाट कथन ने, (इसलिए नहीं कि वह अपने आप में गलत है, बल्कि सिर्फ इसलिए कि वह एक व्यंग कविता के अन्त में आया है) कविता की प्रभावशीलता को काफी कम कर दिया है।

महेन्द्र भटनागर

प्रतिभा के, और किसी उत्कट प्रेरणा के अभाव में सिर्फ मेहनत के बल पर जब कविता लिखी जाती है, तब वह साधारणता के कौन कौन से निम्नतर स्तरों को छू सकती है, यह देखना हो तो श्री महेन्द्र भटनागर की अधिकांश कविताएं देखी जा सकती हैं। प्रगतिशील कविता पर जो सपाट सामाजिकता, इश्तहारात्मकता तथा गद्यात्मकता का आरोप लगाया जाता है वह कदाचित सबसे अधिक सच श्री महेन्द्र भटनागर की कविताओं के संबंध में है। श्री महेन्द्र भटनागर को कविता लिखते हुए तीस वर्ष हो गये ('अन्तराल' के फ्लैप पर सूचना है कि कविता लिखना उन्होंने १९४१ से शुरू किया)। उनका पहला संकलन टूटती शृंखलाएं १९४९ में प्रकाशित हुआ था और उनका ग्यारहवां संकलन संवर्त १९७२ में प्रकाशित हुआ है। इस बीच उनके जो नौ संकलन प्रकाशित हो चुके हैं उनके नाम हैं: नयी चेतना, बदलता युग, अभियान, अन्तराल, तारों के गीत, जिजीविषा, विहान, मधुरिमा, और संतरण।

महेन्द्र भटनागर की लगभग सभी कविताओं की विषयवस्तु प्रगतिशील है। 'राही-मंजिल', 'रात-सबेरा', 'दीप-तूफान' आदि प्रगतिशील कविता के इस

५२. नया हिन्दी काव्य, पृ. १८३.

उपमानों के माध्यम से ही उन्होंने अपनी आशा और आस्थावादी दृष्टि को अभिव्यक्ति दी है। पारंपरिक और मुक्त दोनों छन्दों का उन्होंने प्रयोग किया है पर उनकी अधिकाश कविताओं मे या तो ऊष्माहीन उद्‌बोधन का स्वर है या प्रभावहीन चित्रण का। पहली तरह का एक उदाहरण लिया जाय :

मैं शोषित दुनिया के
आज करोड़ों इन्सानों से कहता हूं
मैं भूखों नंगों पददलितों
बेबस और निरीहों की आहों से कहता हूं
अब और अंधेरे में
मत खोजो पथ अपना
अब और न देखो
अन्तर की आंखों से सपना !
खोलो पलकों को साथी
नया सबेरा
आज तुम्हारे स्वागत को तैयार
कोयल वृक्षों के झुरमुट से
कहती आज पुकार पुकार
नया सबेरा, नया ज़माना
बदल गया संसार !

—मैं कहता हूं, जिजीविषा

लेकिन फिर भी किसी किसी कविता में मुक्त छन्द का प्रवाह और किसी किसी की गीतात्मकता प्रभावित करती है। जैसे,

यदि आंधियां आएं तुम्हारे पास
उनसे खेल लो
जितनी बड़ी चट्टान वे फेंकें तुम्हारी ओर
उसको झेल लो !
तुम तो जानते हो
आजकल बरसात के दिन हैं
गगन में खलबली है

दौरदौरा है घटाओं का
तुम्हारे सामने अस्तित्व हो उनकी सदाओं का !

—हिम्मत न हारो, जिजीविषा

भाषा महेन्द्र भटनागर की अधिकतर जनवादी ही है, पर छायावादी शब्दावली का मोह भी बहुत सी कविताओं में परिलक्षित किया जा सकता है।

प्रसुप्त
प्रस्तरों की चादरों को छोड़
प्रांशुमाल, प्राज्यशक्ति, ध्रुव प्रतीति ले
उठा रहा प्रहारना का अस्त्र !
है असांच-गर्व मृत
असार अस्तमन, विधुर, विपन्न
अब विभीषिका-विभावरी
विभास से विभीत पिंगला !

—जागते रहेंगे, नयी चेतना

ऐसी ही कविताओं को ध्यान में रख कर श्री प्रयाग नारायण त्रिपाठी ने कहा है कि महेन्द्र भटनागर की कविताओं की सार्थकता का एकमात्र संभव तर्क—कि ये साधारण जनता तक क्रान्तिकारी भावनाएं और विचार पहुंचाने के लिए लिखी गयी हैं, और इसलिए यदि इनमें शिल्प शैली का सौन्दर्य नहीं भी है, तो भी ये अपना उद्देश्य तो पूरा करती ही हैं,—भी कट जाता है।[५३] क्योंकि यह भाषा और शब्दावली साधारण जनता तक तो शब्दों की ध्वनि और छन्द के प्रवाह के अलावा कुछ नहीं पहुंचा सकती।

इस प्रकार महेन्द्र भटनागर की कविताओं का 'परिमाणात्मक महत्व' स्वीकार करते हुए भी जहां तक गुणात्मक महत्ता का सवाल है, हम श्री प्रयाग नारायण त्रिपाठी के इस मूल्यांकन से पूरी तरह सहमत हैं कि "टूटती शृंखलाएं' से 'संतरण' तक उनके कवि की यात्रा मुझे एक ऐसे गायक की यात्रा लगी, जिसके चारों ओर किसी ने लक्ष्मण रेखा खींच दी हो। क्रान्ति, आक्रोश, उद्बोधन, नाश निर्माण, भविष्य चिन्तन, इच्छित विश्वास—ये सभी श्लाघ्य काव्य विषय हो सकते हैं और हुए हैं। परन्तु यदि कोई कवि ऐसी ही स्थितियों से घिरा रहे जो उसके चिन्तन से तो सर्वथा मेल खाती हों, परन्तु जीवन में

---

५३. माध्यम, नवम्बर ६५, पृ. ६४.

गहरे न उतर पाई हों, जो उसकी अपनी रागात्मक उपलब्धियां न लग कर बौद्धिक सहानुभूति की उपजीव्य ही लगें, तो क्या कहा जाय।" [५४]

वास्तव मे महेन्द्र भटनागर की अधिकांश कविताएं देशकाल निरपेक्ष आशा, विश्वास और आस्था की कविताएं हैं: इसी कारण प्रभावशाली नहीं हैं। वे आस्था और आशा की बात तो करते हैं पर आस्था और आशा को किसी निश्चित देश, काल, घटना, पृष्ठभूमि में रख कर रूपायित नही करते, उनकी आशा और उनका विश्वास हवा में लटकते हुए अमूर्त आशा और विश्वास लगते है।

सुदर्शन चक्र

कानपुर के प्रसिद्ध मजदूर कवि सुदर्शन चक्र मूलत: उन प्रगतिशील जन-कवियों की परम्परा के कवि हैं, जो मजदूर-किसानों और साधारण जनता को उन्ही की भाषा में राजनीतिक चेतना देते आ रहे हैं। हिन्दी भाषी क्षेत्र की विभिन्न जन भाषाओं की प्रगतिशील कविता को, क्योंकि मैंने इस पुस्तक के विवेचन क्षेत्र से बाहर रखा है, इसलिए उस परम्परा के अनेक पुरस्कर्ताओं पर यहां विचार नही किया गया है। पर सुदर्शन चक्र की काव्य भाषा, मुख्यतः खड़ी बोली हिन्दी ही है।

स्कूली शिक्षा और बाकायदा काव्य-शिक्षा से वंचित इस सर्वहारा कवि ने जो कुछ सीखा और लिखा, वह अपने मजदूर-जीवन के वास्तविक अनुभव और स्वाध्याय से ही। एक मजदूर की सच्ची भावनाओं और वास्तविक विचारों को ही उसने साधारण जनता की भाषा में पद्यबद्ध किया है।

कवि सुदर्शन चक्र की अब तक कोई पन्द्रह-सोलह छोटी छोटी काव्य पुस्तिकाएं, दो कविता-संग्रह और एक प्रबंध काव्य प्रकाशित हो चुके हैं। उनकी पहली काव्य पुस्तिका **मजदूरों की रणभेरी** १६३७ में प्रकाशित हुई थी, जबकि वे अभी सोलह ही वर्ष के थे। १६३८ में उनकी **झांसी की रानी** नामक दूसरी काव्य पुस्तिका प्रकाशित हुई, पर यह शीघ्र ही ब्रिटिश सरकार द्वारा जब्त कर ली गयी। इसी वर्ष उनकी एक और पुस्तिका **आल्हा आम हड़ताल** भी प्रकाशित हुई, जो कानपुर के मिल मजदूरों की तत्कालीन ५२ दिन की ऐतिहासिक हड़ताल पर लिखी गयी थी। चौथी पुस्तिका '४२ में प्रकाशित **लाल सेना की विजय** है और पांचवी तथा छठी इसी वर्ष में प्रकाशित **मजदूर की करुण कहानी** और **सोवियत रूस जिन्दाबाद**। इन पुस्तिकाओं के नामों से

५४. वही, पृ. ६३.

ही इनकी विषय वस्तु स्पष्ट है। विश्व शान्ति से संबंधित नीली पताका उनकी सातवीं काव्य पुस्तिका है, जो १९५१ में प्रकाशित हुई। इसी वर्ष उनकी अगली पुस्तिका भूख मार्च प्रकाशित हुई। इस पुस्तक के पहले हिस्से में कवि ने वर्तमान पूंजीवादी समाज की वास्तविक तस्वीर प्रस्तुत की है, दूसरे में साम्यवादी दुनिया की झलक है और तीसरे में भूख मार्च को उसकी आखिरी मंजिल तक पहुंचाने के लिए जनता का आह्वान किया गया है। समाज के अनेक वर्गों और पक्षों के संक्षिप्त चित्र इस कविता की विशेषता हैं। उनकी अगली पुस्तिकाएं हैं : **साम्यवाद का शिवतांडव, जिन्दगी का मेला** (५२), **रोटी की लड़ाई, रावण राज** (५२), **स्तालिन की ललकार, शहीदों की कतार** (५३), **उन्नीस सौ सत्तावन** (५३) और **वोट की चोट**। **जिन्दगी का मेला** में वर्णित है विश्व शान्ति की मांग को लेकर हुए अन्तरराष्ट्रीय तरुण समारोह का वर्णन है और **रावण राज** कांग्रेसी राज्य की वास्तविकता सामने लाती है। **शहीदों की कतार** में कवि ने १८५७ के शहीदों—मंगल पाडे, झांसी की रानी, कुंवर सिंह, अजीजन रण्डी—से लेकर भगत सिंह, गणेश शंकर विद्यार्थी, आजाद, डायर को लंदन में उसके घर जाकर मारने वाले ऊधम सिंह, महात्मा गांधी, रुद्रदत्त भारद्वाज आदि तक कई शहीदों को अपनी श्रद्धांजलियां अर्पित की हैं। कवि की जनवादिता इतनी मुखर है कि उसने झांसी की रानी के ही साथ अजीजन रण्डी की भी वन्दना की है। **उन्नीस सौ सत्तावन** एक लम्बी कविता है जिसमें १८५७ से लेकर १९५७ तक के राष्ट्रीय और समानतावादी आन्दोलन के संदर्भ में विचार और प्रतिक्रियाएं प्रकट की गयी हैं।

सच्ची कविताएं (५६) और **कम्युनिज्म कवितावली** (५८) कवि की पत्र-पत्रिकाओं मे प्रकाशित विभिन्न कविताओं के संग्रह हैं। **सच्ची कविताओं** की प्रस्तावना में पंडित सुंदर लाल ने लिखा है कि इन कविताओं में देश भक्ति है, अन्तरराष्ट्रीय भाईचारा है, सब मनुष्यों की बराबरी, सबकी आजादी, सबकी भलाई, और सबकी खुशहाली का संदेश है। अत्याचार और अन्याय का विरोध है, शान्ति और सत्य का समर्थन है। वास्तव में **सच्ची कविताएं** कवि की समसामयिक राजनीतिक घटनाओं और राष्ट्रीय तथा कुछ अन्तरराष्ट्रीय स्थितियों की सच्ची तस्वीरें हैं, जो कवि ने अपने मानस-दर्पण में उतारी हैं। विषय-वैविध्य कवि की विस्तृत संवेदनशीलता को व्यक्त करता है। 'सन चौवन का लेखा जोखा' नामक एक कविता की प्रारंभिक पक्तियां हैं :

शुरूआत ही सबसे सच्ची, बिना दवा के जूझी बच्ची
बच्चे का भी पढ़ना छूटा, फीस बढौती का बम फूटा
महगाई ने नयी मोड़ ली, बेकारी ने कमर तोड़ दी

अपने व्यक्तिगत जीवन की इन कठिनाईयों को दो चार पंक्तियां समर्पित करते ही कवि अपने देश और मानवमात्र की समस्याओं पर आ जाता है :

पाक-अमरीका का गठबंधन, पूर्व बंग का विप्लव-मंथन
रूस-चीन की रेल चल गयी, मास्को-पेकिंग-मेल चल गयी
अब देखेंगे नये सीन को, चले जवाहरलाल चीन को

यद्यपि संकलन की लगभग सभी कविताएं साधारण ही हैं, काव्य-कला की दृष्टि से उनमें कोई विशिष्ट उपलब्धि नहीं है, तथापि कहीं कहीं कुछ सुन्दर और भावपूर्ण पंक्तियां भी दिखाई देती हैं :

बेईमानी की दुनिया में एक दिवस ईमान का
एक मई त्यौहार सृष्टि के मेहनतकश इन्सान का

'कम्युनिज्म कवितावली' में तीन चार कविताएं कवि कर्म के प्रति कवि के दृष्टिकोण को व्यक्त करने वाली है, दो तीन विश्व शान्ति को समर्पित है, तीन गौतम बुद्ध, तुलसीदास और रवीन्द्रनाथ को अर्पित की गयी श्रद्धांजलियां हैं; और दो हैं कवि की 'भूख-मार्च' और 'सोवियत सत्ताइसी' नाम की प्रसिद्ध कविताएं। 'सोवियत सत्ताइसी' इस संकलन की एक महत्वपूर्ण रचना है।

'कम्युनिस्ट कथा' एक विशालकाय प्रबंध काव्य है, जिसमें अवधी भाषा और रामचरित मानस की शैली में विश्व कम्युनिस्ट आन्दोलन के इतिहास, और उसके भविष्य को एक विस्तृत फलक पर चित्रित किया गया है। निश्चय ही यह कवि की सर्वाधिक महत्वपूर्ण रचना है।

सुदर्शन चक्र की कविता की सबसे बड़ी विशेषता है उनकी जनवादिता, साधारण जनता तक उनकी पहुंच। शिव वर्मा के शब्दों में "हमारे खयाल से सुदर्शन चक्र की सबसे बड़ी ताकत है, उनका जनता से सीधा सम्पर्क। वे स्वयं तो मजदूर रहे ही हैं, साथ ही वे अब भी मजदूरों के बीच रहते हैं, उन्हीं के दृष्टिकोण से सोचते हैं, और फिर जैसे भी भाव आते हैं; उन्हें आसान से आसान भाषा में बगैर किसी कृत्रिमता के ज्यों का त्यों रख देते है, वे तीर की भांति दिल की गहराई तक पहुंच जाते हैं।"

फिर यद्यपि सुदर्शन राजनीतिक रुझान के कवि हैं, उनकी कविताओं का अधिकांश राजनीतिक संघर्षों और आन्दोलनों से संबंधित है, तथापि उनमें वह संकीर्णता और कट्टरता कम ही दिखाई देती है, जिसकी पूरी तरह से अपने काव्य को राजनीति की सेवा में लगा देने वाले ऐसे कवियों से आशा की जा सकती है। यह असंकीर्णता खासतौर से उन कविताओं में मुखर है,

जिनमें कवि ने भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन और उसके नेताओं का—जिन्हें वह स्वयं बूर्जुवा नेता मानता है—बहुत सम्मान के साथ जिक्र किया है।

दलितों और विशेष तौर से उपेक्षित दलितों के प्रति गहरी सहानुभूति, उनकी कविता का एक और गुण है। जहां इस कवि ने मार्क्स-लेनिन और स्तालिन को श्रद्धांजलियां अर्पित की हैं, वहां अजीजन रण्डी, गंगू बाबा मेहतर, लाल इमली के शहीद मजदूर नेकीदास आदि की भी उपेक्षा नहीं की। यह कवि की विकसित जनवादिता का ही प्रमाण है कि वह सिर्फ प्रभामडलों से प्रभावित नहीं हुआ है, उसने उपेक्षित पर जनता के लिए लड़ने वाले सच्चे बहादुरों को स्वयं प्रभामंडल देने का भी प्रयत्न किया है।

सुदर्शन चक्र के काव्य की सबसे बड़ी कमजोरी उसका शिल्प पक्ष ही है। कवि ने प्रत्येक विषय पर कविता लिखने के प्रयत्न में उसकी खूब उपेक्षा की है, पर क्योंकि वह मुख्यतः मजदूरों का ही कवि है, इसलिए उसकी कविताएं कलात्मक दृष्टि से साधारण होते हुए भी अपने उद्देश्य में सफल हैं।

मलखान सिंह सिसौदिया

मलखान सिंह सिसौदिया ने लिखना तब शुरू किया (४३ मे) जब एक ओर तो द्वितीय महायुद्ध चल रहा था और दूसरी ओर भारतीय राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन अपनी गंभीरतम अवस्थाओं में से गुजर रहा था—बंगाल का अकाल और साम्प्रदायिक दंगे, उस पृष्ठ भूमि के दो और महत्वपूर्ण तत्व थे। ४३-४७ तक उन्होंने समसामयिक विषयों पर ठोस साम्यवादी दृष्टि से अनेक कविताएं लिखी जो हंस और नया साहित्य में प्रकाशित होती रही। ४६ में उनका एक कविता संग्रह **बंगाल के प्रति** प्रकाशित हुआ।

सकलन की भूमिका में डॉ. रामविलास शर्मा ने सूचित किया है कि मलखान सिंह बचपन से ही किसानों और मजदूरों के सम्पर्क में रहे हैं। और कि उनकी भाषा और रहन-सहन में मजदूरों की सी सादगी है, बुद्धि जीवी वर्ग का एक भी कुसंस्कार उन्होंने अपने भीतर नहीं आने दिया है।"[५५]

संकलन की अधिकांश कविताएं सामयिक राजनीतिक और सामाजिक गतिविधियों से संबंधित हैं। इस दृष्टि से मलखान सिंह को प्रगतिशील कविता के केन्द्रीय वर्ग की उस शाखा में रखा जा सकता है जो अपनी राजनीतिक रुझान के कारण अलग की जाती है, और जिसमें शील, शैलेन्द्र आदि आते हैं। इन कविताओं में 'चटगांव के प्रति', 'बंगाल का अकाल', 'देश देश ने करवट बदली,

५५. परिचय, बंगाल के प्रति, जन प्रकाशन गृह, बम्बई-४, पृ. १.

'कसाई का दलाल,' 'गुमराह देश भक्त से', 'खोलो आजादी का निशान', 'गरजा है अब हिन्दोस्तान' आदि उल्लेखनीय हैं।

द्वितीय महायुद्ध को फासिज्म विरोधी जनयुद्ध के रूप में देखने की साम्यवादी दृष्टि इन कविताओं में व्यक्त हुई है। इसी दृष्टि के प्रभाव मे कवि भारतीय राष्ट्रीय आजादी की लड़ाई को भी इस व्यापक लड़ाई से अलग नहीं मानता है।

'चटगाव के प्रति' चटगाव मे हुए क्रान्तिकारी प्रयत्नो को सम्मान के साथ अभिव्यक्ति देती है और इसे चटगांव की पुरानी क्रान्तिकारी परंपरा से जोड़ती है:

शस्त्रागार काण्ड का कुचला पौधा पेड़ हुआ है
सिर पर गिरी बिजलियां तो भी लाल फूल निकला है
जिसके लोहू से खूनी ने शिलाखंड नहलाये
जिसे निगल जाने को कब से अजगर है मुंह बाये
भूख और बीमारी सह कर जो जौहर दिखलाये
लोहू सने देश के सिर को ऊंचा अभी उठाये।

'देश-देश ने करवट बदली' द्वितीय महायुद्ध के अन्तिम दिनों में संसार भर मे राष्ट्रीय स्वतंत्रता और आर्थिक समानता के जन आन्दोलनों में जो एक अभूतपूर्व ज्वार आया उसे अपना विषय बनाती है।

'खोलो आजादी का निशान' और 'गरज उठा है हिन्दोस्तान' युद्ध के समाप्ति के आसपास की जन भावना को चित्रित करती है:

कस कस कर तीर कलेजे में अब तवारीख ने मारा है
दम तोड़ रहा है बूढ़ा जग बहती लोहू की धारा है
फासिस्ट लुटेरों की नैया, पानी में खाती है चक्कर
जनबल का सोया हुआ शेर अब तड़प उठा है गुर्राकर

संकलन की कुछ कविताएं कवि के व्यक्तिगत जीवन संघर्ष से भी संबंध रखती हैं: जैसे 'शोणित के नाले'। मम्मट ने काव्य के उद्देश्यों मे 'शिवेतरक्षय' भी गिनाया था। यह कविता कवि ने अपनी बीमारी टी. बी. के विरुद्ध लिखी है, और निश्चय ही इस कविता ने उसे टी. बी. से लड़ने और उसे पराजित करने में बहुत सहायता दी होगी:

डटकर लड़ने की शिक्षा ही मिली दूध में माता के
फिर मैं क्यों परवाह करूं क्या अक्षर किसी विधाता के?
मानव का लोहू बहता है मेरी स्फीत शिराओं में
है प्रहार करने की ताकत अब भी सबल भुजाओं में!

इस संकलन के अतिरिक्त पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित उनकी कुछ अन्य कविताएं भी विचारणीय हैं। 'फिर वसन्त आया,' 'सोवियत रूस के प्रति', 'हम तूफान सर्वहारा हैं', 'किसने यह संसार बनाया,' और 'आ गया पतझर'।

'फिर वसन्त आया है, में युद्ध के बाद खिले जनवादी फूलों—कई देशों की आजादी—पूर्वी यूरोप में कई समाजवादी जनतंत्रों के जन्म—का अभिनंदन है:

पतझर के दिन बीत चुके हैं फिर बसन्त आया है
विश्व विटप पर फिर जन-युग का विहग चहचहाया है
देशों की उजड़ी डालों पर नये सुमन विकसा कर
सजा रहा है मानवता के उपवन को कुसुमाकर
है स्वतंत्र निज निज विकास को जाति जाति की क्यारी
शोभित है नव रंग रंग के फूलों से फुलवारी !

'हम तूफान सर्वहारा हैं' मेहनतकशों का घोषणापत्र है, भावानुकूल छन्दशिल्प में 'थीम' का क्रमिक विकास, प्रश्नवाचक शैली और कवि की थोड़ी सी शिल्प-सजगता ने इस कविता को साधारणता के स्तर से काफी ऊपर उठा दिया है:

मेहनत है ईमान हमारा मेहनत मजहब-देश !
हम तूफान सर्वहारा हैं विप्लव के संदेश !
कौन पहाड़ तोड़ कर देता है समतल मैदान ?
कौन धरा को चीर खोदता सोना-चांदी खान ?
कौन कारखानों खेतों का जलता हुआ जमाल ?
कौन जवानी का जौहर है, श्रम का कौन कमाल ?
हम नवयुग के लाल हरावल समता ज्योति अशेष
मेहनत है ईमान हमारा, मेहनत मजहब-देश !

इस प्रकार यद्यपि मलखान सिंहजी की सामयिक विषयों पर लिखी अधिकांश कविताएं साधारण ढंग की प्रगतिशील कविताएं हैं तथापि कहीं कहीं उनमें शिल्प कुशलता के साथ स्तरीय काव्यात्मकता के दर्शन होते हैं। कई नये और सार्थक प्रयोग हमें उनकी कविताओं में मिलते हैं; जैसे—

आजादी का सिर्फ लिफाफा रात है जब कि गुलामी का

* * *

कलमुंही फूट का कफन आज एके का झंडा बनता है

सामाजिक यथार्थ को प्राकृतिक प्रतीकों के द्वारा उन्होंने कई जगह सुन्दर अभिव्यक्ति दी है। उनकी अधिकतर कविताओं में यद्यपि सीधी सादी बयानी

शैली के ही दर्शन होते हैं पर समय पर अन्य प्रकार की शैलियों का प्रयोग भी वे सफलता के साथ कर सकते हैं : प्रमाण स्वरूप उनकी कविता 'तूफान आ रहा है' की ये पक्तियां देखी जा सकती हैं :

दुर्लंघ्य तुंग पर्वत पथ को न रोक सकते
उन्मत्त हरहराते नद भी न टोक सकते
उद्दाम शक्ति-गति के हैं क्षिप्र चरण-चंचल
कर ध्वस्त नियति-कारा विक्षुब्ध वायुमंडल
उंचास पवन-रथ चढ़
युग रोष आ रहा है
तूफान आ रहा है
तूफान आ रहा है

इन पंक्तियों में तूफान की विकरालता की नादार्थव्यंजक शब्दों में सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।

चन्द्रदेव शर्मा

चन्द्रदेव राजस्थान के प्रसिद्ध प्रगतिशील व्यंगकार थे। आजादी के बाद के राजस्थान की खासतौर से बीकानेर-जोधपुर क्षेत्र की राजनीति का उनकी कविताएं एक सच्चा दर्पण हैं—एक शोषित पर सचेत जनवादी हृदय-दर्पण, जिसमें सामन्तों, पूंजीपतियों और उनकी प्रतिनिधि पार्टी कांग्रेस तथा धर्म के ठेकेदारों की घिनौनी करतूतों का वास्तविक रूप प्रतिबिम्बित हुआ है। पुस्तक रूप में अभी उनकी बहुत कम कविताएं प्रकाशित हुई हैं—उनका एकमात्र संग्रह **पंडित जी गजब हो रहा है** एक छोट सा संग्रह है। सिर्फ इसके आधार पर उनकी मुख्य प्रवृत्तियों को नहीं समझा जा सकता।

चन्द्रदेव की समस्त कविताओं को तीन बड़े बड़े वर्गों में विभाजित किया जा सकता है : (१) व्यंग, (२) हास्य-कविताएं, इसी वर्ग में उनका बच्चन, महादेवी, सुभद्रा कुमारी चौहान आदि की कुछ प्रसिद्ध कविताओं पर लिखी हुई पैरोडियां भी आ जाती हैं, और (३) गम्भीर कविताएं। तीसरे वर्ग को फिर दो उपवर्गों में बांटा जा सकता है : गम्भीर स्वर की प्रगतिशील कविताएं और गम्भीर स्वर की दार्शनिक कविताएं। यद्यपि यह अन्तिम वर्ग कविताओं की संख्या की दृष्टि से एक बहुत छोटा वर्ग है, तथापि समग्र रूप से उनकी कविताओं पर विचार करते हुए उसकी भी उपेक्षा नहीं की जा सकती।

प्रगतिशील दृष्टि से उनकी कुछ गंभीर कविताएं और व्यंग विचारणीय हैं। कुछ ऐसी हास्य रसात्मक कविताएं भी इस परिधि में आ जाती हैं, जिनमें

सामाजिक यथार्थ के विभिन्न अंगों और पक्षों पर परिहास पूर्ण दृष्टि डाली गयी है। ऐसी कविताओं में 'ला कॉलेज क़ा स्टूडेन्ट', 'अशिक्षित पति-शिक्षित पत्नी', 'रसिक साहित्यकार', 'पनिहारिन', 'पशुमेला और 'पत्रकार कब तक बन लेंगा', के नाम लिये जा सकते है, सामाजिक यथार्थ की भावपूर्ण या उद्‌बोधनात्मक प्रगतिशील अभिव्यक्तिओ मे 'खुदाराम' (साम्प्रदायिक दगों पर), 'लानत ब्राह्मण है तुझ पर' (धर्म के सेठाश्रय पर), 'पैसे का कोढ', 'रूप का बाजार', 'अखबार की बातें' (पूजीवादी शोषण पर), 'धर्म के ठेकेदार' और 'उद्‌बोधन' उल्लेखनीय है। ये कविताए अधिकतर सीधी सपाट शैली मे प्रगतिशील विचारो की अभिव्यक्तियां है। हा 'खुदाराम' अवश्य एक प्रभावशाली कविता है।

चन्द्रदेव के कवि-व्यक्तित्व का जौहर वैसा और कही नही दिखाई देता जैसा उनके व्यगों मे दिखाई देता है। उनके व्यंग का मुख्य विषय आजादी के बाद के राजस्थान की दक्षिणपथी राजनीति है। इस राजनीनि मे भी उनका पहला शिकार बनती और बिगड़ती हुई कांग्रेसी सरकारें और उनके नेता हैं, फिर से गया जमाना वापस लाने की कोशिश करने वाले सामन्ती तत्व तथा धर्म और भारतीय संस्कृति की दुहाई देने वाली पुनरुत्थानवादी पार्टियों को भी उन्होंने माफ नहीं किया है :

बिजली का युग है भोदू जी, अब भी दीपक जला रहे हैं।
इन चेलों को स्वयं 'गुरूजी', भांग घोट कर पिला रहे हैं।
जला जला इन्सान मारते, इधर जानवर जिला रहे हैं।
गो माता के सेवक मां का, दूध वेच कर पिला रहे हैं।

—धारा सभा चुनाव

कांग्रेसी नेताओं पर व्यग देखिए—

नेता बनना उद्योग नया,
यह खूब मुनाफा देता है
भाषण की गोली बेच
भेंट में थैली चित कर लेता है
अफसर तक सारे डरते हैं,
जब मांगो परमिट मिलता है
चंदे के बल पर नेता क्या,
सारा घर भर ही पलता है

खुद लिख लिख कर अखबारों में
अपनी तारीफ छपाते हैं
व्यापार नये, उद्योग नये,
भारत में बढ़ते जाते हैं ।

और आजादी के बाद देशी राजा महाराजाओं की मनः स्थितियों की यह व्यंगात्मक अभिव्यक्ति—

ताज महल होटल में बैठे,
सब राजा महाराजा
सोच रहे सामन्ती युग का,
उठता देख जनाजा
कैसे वापस आये फिर से,
गुजरा हुआ जमाना
इस जीवित रहने से अच्छा,
दारू पी मर जाना

—महाराजा यूनियन

भारत की पुरानी अध्यात्मिक संस्कृति पर व्यंगात्मक प्रहार उनकी कविताओं की प्रधान विशेषता है। 'विवाह की बात' में वे अपने किसी मित्र दयाराम के साथ एक कानी-कुरूप-अपढ़ स्त्री से धोखे में शादी की जाने की कहानी सुनाने के बाद कहते हैं—

पर दयाराम मत रोओ तुम, हम हिन्दू हैं, यह भारत है
यह भारत जिसके सम्मुख नित, ईश्वर का होता सिर नत है
यह देव लोक से भी उत्तम यह कर्म-मोक्ष-मय पुण्य धरा
यह आदर्शों की तपो भूमि ! गुण गाते थकती स्वयं गिरा
चुप रहो पोंछ लो तुम आंसू, बंध गया गले जो यहां ढोल
बस उसे बजा ही सुख पाओ, भारत मां की जय बोल-बोल !

'हमारा देश' नामक एक कविता में वे भारत के बारे में दो विदेशियों के श्रद्धापूर्ण दृष्टिकोण को व्यक्त करने के बाद अपनी ओर से कहते हैं—

मैं बोला-यह सब गलत बात, मैं इसी देश का हूं वासी
तुम कहते हो जिनको योगी, मैं कहता हूं सत्यानाशी

सामाजिक यथार्थ के विभिन्न अंगों और पक्षों पर परिहास पूर्ण दृष्टि डाली गयी है। ऐसी कविताओं में 'ला कॉलेज का स्टूडेन्ट', 'अशिक्षित पति-शिक्षित पत्नी', 'रसिक साहित्यकार', 'पनिहारिन', 'पशुमेला और 'पत्रकार कब तक बन लेगा', के नाम लिये जा सकते है, सामाजिक यथार्थ की भावपूर्ण या उद्बोधनात्मक प्रगतिशील अभिव्यक्तिओं मे 'खुदाराम' (साम्प्रदायिक दंगों पर), 'लानत ब्राह्मण है तुझ पर' (धर्म के सेठाश्रय पर), 'पैसे का कोढ', 'रूप का बाजार', 'अखबार की बात' (पूजीवादी शोषण पर), 'धर्म के ठेकेदार' और 'उद्बोधन' उल्लेखनीय हैं। ये कविताएं अधिकतर सीधी सपाट शैली मे प्रगतिशील विचारों की अभिव्यक्तिया हैं। हा 'खुदाराम' अवश्य एक प्रभावशाली कविता है।

चन्द्रदेव के कवि-व्यक्तित्व का जौहर वैसा और कही नहीं दिखाई देता, जैसा उनके व्यगो मे दिखाई देता है। उनके व्यंग का मुख्य विषय आजादी के बाद के राजस्थान की दक्षिणपंथी राजनीति है। इस राजनीति में भी उनका पहला शिकार बनती और बिगड़ती हुई कांग्रेसी सरकारें और उनके नेता है, फिर से गया जमाना वापस लाने की कोशिश करने वाले सामन्ती तत्व तथा धर्म और भारतीय संस्कृति की दुहाई देने वाली पुनरुत्थानवादी पार्टियों को भी उन्होंने माफ नहीं किया है :

बिजली का युग है भौंदू जी, अब भी दीपक जला रहे हैं।
इन चेलों को स्वयं 'गुरूजी', भांग घोट कर पिला रहे हैं।
जला जला इन्सान मारते, इधर जानवर जिला रहे हैं।
गो माता के सेवक मां का, दूध बेच कर पिला रहे हैं।

—धारा सभा चुनाव

कांग्रेसी नेताओं पर व्यंग देखिए—

नेता बनना उद्योग नया,
यह खूब मुनाफा देता है
भाषण की गोली बेच
भेंट में थैली चित कर लेता है
अफसर तक सारे डरते है,
जब मांगो परमिट मिलता है
चंदे के बल पर नेता क्या,
सारा घर भर ही पलता है

खुद लिख लिख कर अखबारों में
अपनी तारीफ छपाते हैं
व्यापार नये, उद्योग नये,
भारत में बढ़ते जाते है।

और आजादी के बाद देशी राजा महाराजाओं की मनः स्थितियों की यह व्यगात्मक अभिव्यक्ति—

ताज महल होटल में बैठे,
सब राजा महाराजा
सोच रहे सामन्ती युग का,
उठता देख जनाजा
कैसे वापस आये फिर से,
गुजरा हुआ जमाना
इस जीवित रहने से अच्छा,
दारू पी मर जाना

—महाराजा यूनियन

भारत की पुरानी अध्यात्मिक सस्कृति पर व्यगात्मक प्रहार उनकी कविताओं की प्रधान विशेषता है। 'विवाह की बात' में वे अपने किसी मित्र दयाराम के साथ एक कानी-कुरूप-अपढ़ स्त्री से धोखे में शादी की जाने की कहानी सुनाने के बाद कहते है—

पर दयाराम मत रोओ तुम, हम हिन्दू हैं, यह भारत है
यह भारत जिसके सम्मुख नित, ईश्वर का होता सिर नत है
यह देव लोक से भी उत्तम यह कर्म-मोक्ष-मय पुण्य धरा
यह आदर्शों की तपो भूमि ! गुण गाते थकती स्वयं गिरा
चुप रहो पोंछ लो तुम आंसू, बंध गया गले जो यहां ढोल
बस उसे बजा ही सुख पाओ, भारत मां की जय बोल-बोल !

'हमारा देश' नामक एक कविता में वे भारत के बारे मे दो विदेशियों के श्रद्धापूर्ण दृष्टिकोण को व्यक्त करने के बाद अपनी ओर से कहते है—

मैं बोला-यह सब गलत बात, मैं इसी देश का हूं वासी
तुम कहते हो जिनको योगी, मैं कहता हूं सत्यानाशी

ये धर्म धर्म करने वाले, जितने भी इनमें पंडे हैं,
लूटा करते हैं भोलों को, पाखण्डी, ढोंगी, गुण्डे हैं
इनका जितना भी ज्ञान-ध्यान, सीमित है गांजे सुल्फे में
है चिलम चमेली में ईश्वर है योग भगत के हलवे में
सट्टे का आंक बता देंगे, बस चमत्कार यह सारा है
ढोंगों का देश हमारा है,
पाखण्डी देश हमारा है !

'गोबर का युग' में उन्होंने भारत वासियों के पिछड़ेपन पर प्रभावशाली व्यंग किये हैं। 'गोबर' के रूप मे उन्होंने सचमुच ही गो-भक्त हिन्दुओं को मूढ़ता का बड़ा उपयुक्त प्रतीक चुना है—

युग बदल जांय चाहे लाखों, भारत में अब भी सतयुग है
एटम, उदजन की व्यर्थ बात, अपने तो गोबर का युग है
बिजली से दुनिया जगमग है, या कहीं गैस नित जलती है
अपने भारत की धरती पर, केवल थेपड़ी सुलगती है।
चूल्हे में गोबर जलता है, हुक्के में गोबर जलता है
सच कह दूं तो पंडितजी का, गोबर से भेजा चलता है !
ज्यों ही बच्चा पैदा होता चट से गोबर आ जाता है
गोबर का लड्डू हाथ लिये, मुर्दा मरघट तक जाता है
गोबर में धर्म सनातन है गौ माता हमको प्यारी है
चाहे इन्सान मरें लाखों, हम गोबर पर बलिहारी हैं
गोमूत पियो गोबर खाओ, बस सभी पाप धुल जायेंगे
तुम औ' बीबी-बच्चे ही क्या, पुरखे तक भी तर जाएंगे।

भारत की अध्यात्मवादी संस्कृति पर सबसे सबल व्यंग उनकी प्रसिद्ध कविता 'अमर रहे अध्यात्म हमारा' में किया गया है। यह कविता वास्तव में उनकी एक श्रेष्ठ कविता है—

वेद, उपनिषद, शास्त्र, ग्रंथ से
सीखा हमने मूलमंत्र है
कैसा प्रजातंत्र भारत में,
युग युग से यह धर्मतंत्र है

भौतिक सुख से दूर लंगोटी
बांध गुजारा करते आये
हम तो 'अमर भावना' लेकर,
जीते आये, मरते आये
यहां नहीं संघर्ष रहा है,
द्वैतभाव मिथ्या-माया है
सदा हमारे ऋषि-मुनियों ने,
दर्शन ने यह समझाया है
'एक सत्य है एक तत्व है',
अब भी यही हमारा नारा
भारत का दरबारी पंडित
राधाकृष्णन उधर पुकारा
"भौतिकवाद विनाश कर रहा,
अमर रहे अध्यात्म हमारा।"
कार्ल मार्क्स मर गया बिचारा !

चन्द्रदेव वास्तव में एक सफल व्यंगकार थे। उनकी व्यंग कविताओं का तीखापन प्रभावित करता है, पर श्रेष्ठ व्यंग काव्य के लिए जिस कसाव और संक्षिप्ति की आवश्यकता होती है उसके आपेक्षिक अभाव के कारण उनकी बहुत सी व्यंग कविताएं उतनी प्रभावशाली नही बन पायी हैं, जितनी वे हो सकती थी।

गणपतिचन्द्र भण्डारी

भण्डारी जी एक भूतपूर्व रियासत—जोधपुर—के सामन्ती परिवेश में पले-बढ़े, इसलिए उनकी कविता में सामन्ती अत्याचारों और अन्यायों के विरुद्ध विद्रोह का स्वर मुखर है। सामन्ती शोषण के यथार्थ को उन्होंने स्वयं देखा और भोगा है, इसलिए उसके मार्मिक चित्र उनकी कविताओ की एक विशेषता है।

रक्तदीप भंडारी जी की कविताओं का एकमात्र संग्रह है। संकलन की कविताओं में सामन्त युग की क्रूर बेगार प्रथा, भयंकर सामाजिक विषमता, नारी के लिए समान अधिकारों की मांग, मानव की क्षमता और उसके उज्ज्वल भविष्य के प्रति आस्था, अट्ठारह सौ सत्तावन की क्रान्ति, पेय पानी के अभाव और उसके कारण साधारण जनों की कठिनाइयां, दफ्तरशाही और लालफीता-

शाही के अभिशाप, सामन्ती परिवेश मे नारी के पिछड़ेपन, तृतीय श्रेणी में रेल यात्रा की कठिनाइयों और भारतीय नेताओं की अंग्रेजीभक्ति आदि सामाजिक यथार्थ के अनेक पक्षों का वर्णनात्मक या व्यंगात्मक प्रतिफलन है।

संकलन की उल्लेखनीय कविताएं हैं: 'रक्तदीप', 'हम चले देखने दीवाली', 'स्वामी बनाम सेवक' और 'देहली मेल'।

'रक्तदीप' एक गरीब मजदूरिन की आवश्यक आक्रोश के साथ कही हुई करुण कथा है, जिसे अपने बीमार पति की एवज में, उसे उसी स्थिति में घर छोड कर, जागीरदार का मकान बनाने के काम मे बेगार पर जाना पड़ता है। कविता का वह स्थल तो बहुत ही मार्मिक है, जहां अपने दूध के लिए मचलते हुए बच्चे को वह चूने का घोल पिलाने लगती हैं:

आखिर जब धीरज छूट गया, बच्चे का क्रन्दन सुन सुन कर
बेटे की भूख बुझाने मा, लपकी चुल्लू में चूना भर
धरती न डिगी, सागर न डुला, न फटा व्योम, न हिले शेष
सब मौन रहे पाषाण बने ब्रह्मा श्रीपति, अम्बा, महेश

'दीवाली' आवश्यक छन्द प्रवाह से युक्त एक सुन्दर वर्णनात्मक कविता है। इस कविता मे सामाजिक विषमता को पर्याप्त प्रभावशाली बिम्बो के सहारे रूपायित किया गया है:

वे बैठे सेठ करोड़ीमल, जिनकी यह कपड़े की दुकान
आंखें झप जातीं देख चमकते खीन खाब के सजे थान
कुछ रेशम के कुछ मलमल के कुछ जरी और गोटा किनार
कुछ गाज, सिफुन या जारजेट, कुछ चमकदार सलमा सितार
दुनिया नाहक चिल्लाती है, कहती कपड़े का काल पड़ा
बढ़िया से बढ़िया कपड़े का देखो कैसा भंडार भरा
हां अलबत्ता मुश्किल उनकी, जिनकी हो जेब रही खाली
हम देख रहे थे दीवाली

बिलखते हुए बच्चे को अपने वक्ष से लगाये हुए एक भिखारिन का करुण चित्र खींच कर कवि कहता है:

सिक्कों पर कुंकुम लगा उधर लक्ष्मी की पूजा होती थी
जब बाहर खड़ी एक लक्ष्मी दाने दाने को रोती थी

भारत माता का एक लाल जब दूध ! दूध ! चिल्लाता था
निर्जीव स्वर्ण के सिक्कों पर तब दूध उड़ेला जाता था
भगवान दूध से न्हाये पर बच्चे का पेट रहा खाली
हम रहे देखते दीवाली !

'स्वामी बनाम सेवक' मन्त्रियों और अधिकारियों के 'जन सेवकत्व' और दफ्तरशाही पर व्यंग है। 'देहली मेल' भारतीय रेलों की तृतीय श्रेणी मे यात्रा करने वालों की भयंकर स्थिति को रूपायित करती है। भीड़ भरे डिब्बे के भीतर की स्थिति का यह चित्र देखिए -

भीतर झांका तो शिवदयाल अवाक् देखते रहे खड़े
इन्सान नहीं मानों मिट्टी के थैले ही थे चुने पड़े
कुछ इधर खड़े कुछ उधर खड़े औरों की टांगें जाम किये
कुछ ठूंसे थे खुद को खिड़की में औरों की हवा हराम किये
कुछ आड़े टेढ़े बैठे थे तर बतर पसीने में होकर
कोहनी से कोहनी सटा सटा टांगों से टांगें उलझा कर
सैंतीस सीट के डिब्बे में सत्तर प्राणी थे भरे हुए
कितने ही और बैठने को हर खिड़की पर थे खड़े हुए !

यद्यपि गणपतिचन्द्र भंडारी का अब राजनीति और साहित्य दोनों में ही प्रगतिशील आन्दोलन से कोई संबध नही रहा है, पर रक्तदीप राजस्थान में लिखी-छपी प्रगतिशील काव्य कृतियों मे अपना निश्चित ऐतिहासिक स्थान रखती है, इसमे कोई संदेह नहीं।

विजय चन्द

श्री विजय चंद की कविताओं के दो संकलन **चेहरे और जंग लगे सपने** तथा एक 'काव्य उपन्यास' या लम्बी कविता **वेश्या** प्रकाशित हुई हैं। सामाजिक-यथार्थ का चित्रण और रेखांकन विजय चन्द की प्रधान विशेषता है। **चेहरे** में उन्होंने समाज के विभिन्न वर्गों के कुछ टाइपों के रेखांकन किये हैं।

वेश्या (१९६०) अपनी तरह का एक ही काव्य है। हिन्दी कविता में वेश्या जीवन का समग्र चित्रण और बेबाक विश्लेषण करने वाली यह अकेली कृति है। एक वेश्या के जीवन-यथार्थ और मनः कल्पनाओं का एक हृदयस्पर्शी लेकिन साथ ही प्रामाणिक और यथार्थवादी चित्रण यहां वेश्यावृत्ति की समस्या को उसकी निश्चित सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि मे रख कर किया गया है। इन

आदि काल से शोषित और पददलित नारियों के प्रति एक सच्ची ईमानदार भावना से प्रेरित यह काव्य उनके प्रति करुणा कम जगाता है, उनकी वीभत्स जीवन-परिस्थितियों के प्रति एक जुगुप्सा और उस व्यवस्था के प्रति, जो उनकी जिम्मेदार है, एक तीखा आक्रोश अधिक जगाता है। यह इस काव्य की सबसे बड़ी उपलब्धि है। लेखक ने भूमिका में लिखा भी है : "मैंने कोशिश की है कि जहां मितली आनी चाहिये, वहा चटखारा नही उभरे और जहां होठ मुड़ जाने और आखें ठहर जानी चाहियें, वहां वे लार नहीं टपकाने लगें।" निश्चय ही वह इस कोशिश मे सफल हुआ है। नारी की मूलभूत कमजोरी—विवाह और पुत्रजन्म—के प्रभावक चित्र वेश्या की मनःकल्पनाओं में उभारे गये हैं और उनको उसके वास्तविक वीभत्स जीवन के कन्ट्रास्ट में रक्खा गया है :

सपना पूरा हुआ
'बहू' मैं बन गयी
पर न एक सास की
पर न एक पुरुष की
विधि ने सुहाग की
रेख बड़ी खींच दी !

वेश्यावृत्ति के संबंध मे पुरुष जीवन की बडी-बडी ही नही, कुछ छोटी-छोटी वीभत्सताओं को भी विजयचद ने सधे हुए हाथों से उभारा है :

इस नगर
सब निरे पुरुष हैं
यहां पर
नहीं और रिश्ते हैं
नहीं और नाते हैं
मामा-भानजे,
चाचा-भतीजे
साथ साथ आते है
वाहन के फालतू व्यय को बचाते हैं !
बनिये के बेटे हैं—
थोक में सौदा सस्ता पटाते हैं !!

वेश्यावृत्ति पर लिखे हुए इस काव्य में कवि की विश्लेषण-क्षमता गहरी है—उसने तथाकथित पवित्र गृहस्थ जीवन के भीतर व्याप्त सूक्ष्म-सी वेश्यावृत्ति को

भी उभार कर प्रकट वेश्यावृत्ति के उन बीजों को हमारे सम्मुख प्रस्तुत किया है। एक बच्ची के जन्मदिवस के समारोह का चित्र खींचते हुए उसने उसके नाचने-गाने पर एक अंकिल के दस रुपये का नोट उसे इनाम देने और बाद में उसे मां द्वारा ले लेने की पूरी घटना को वेश्या जीवन की पूरी घटनावली के साथ प्रतीकात्मक ढंग से जोड़ कर हमारे सामाजिक संबंधों की सूक्ष्म वेश्यावृत्ति—सौदावृत्ति—को उभारा है। दुम्बे के रूपक ने इस प्रसंग की अन्तिम टिप्पणी को कितना मर्म-स्पर्शी बना दिया है :

मुलायम केक नहीं
अब वह हर रोज़
अपनी कलेजी काटती है—
दुम्बे की दुम की तरह
जो केवल एक रात में
दुबारा उग आती है

पूंजीवादी व्यवस्था ने हमारे दाम्पत्य जीवन को भी किसी हद तक वेश्यावृत्ति ही बना दिया है, बल्कि कभी-कभी तो वह वेश्यावृत्ति से भी अधिक वीभत्स हो जाता है, यह क्रूर सत्य भी कवि की नजरों से ओझल नहीं हुआ है :

कि मुझ दो टके की वेश्या से
व्यभिचारिणी, दुश्चारिणी मुझ खजीली कुतिया से
कोई भी राजा, महाराजा
बड़े से बड़ा मंत्री, राष्ट्रपति
पुरुष-पशु कोई
बलात्कार नहीं कर सकता है...
तुम्हारी एक ही बार क्रीत कर ली गयी
सुशीला, पतिव्रता धर्मपत्नी की अपेक्षा
मैं कम से कम
इस एक विषय में
अधिक स्वतंत्र हूं

काव्य के अन्त में भारत सरकार द्वारा कानून बना कर वेश्यावृत्ति बन्द कर देने के बचकानेपन पर कुछ जोरदार टिप्पणिया की गयी हैं। उनमें से एक है :

दूकाने न होने से
खरीदारी नहीं मिट जाती है

चाहे वह कुछ दिन को घट जाती हो;
बेशक दिखना भी हट जाती हो
लेकिन खरीदारी मिट जाने पर
दूकाने स्वयं उठ जाती हैं

काव्य मे कुछ शब्दों की गलत बनावट जरूर अखरती है, जैसे 'देवाकार' के लिए उर्दू के प्रभाव मे 'देवाकारी'—'देवाकारी किराये'; और 'सौदागर' की जगह सौदागरी—'मास के सौदागरी' आदि, लेकिन अपनी बुनावट के प्रवाह मे यह काव्य पाठक को निश्चय ही केवल बहाता नही है, अधिक प्रबुद्ध बना कर भी छोड़ता है।

जंग लगे सपने (६८) की कविताएं आम तौर पर आज के नकली जीवन पर और विशेष तौर से प्रेम-संबधो में कार्यरत 'पूजीवादी मनोवृत्तियों तथा सममामयिक दाम्पत्य और प्रेम जीवन की बेहूदगियों पर प्रकाश डालती हैं या व्यग करती है। प्रेम-विषयक कविताओ मे वे विवाह-बाह्य सबंधों पर व्यग करते हुए कभी-कभी एकनिष्ठता को सब परिस्थितियो से अलग, एक निरपेक्ष श्रेय की तरह मान कर चलते हुए दिखाई देते है—जब कि आज के जटिल और सकुल जीवन ने उसे मात्र एक पाखंड, या एक बहुत ही ऊंचा पर साधारणतया अव्यवहार्य आदर्श बना कर रख दिया है। 'महज इतना कहो' कविता मे कवि केवल सतानोत्पत्ति को ही प्रेम और दाम्पत्य जीवन का एकमात्र उद्देश्य मानने की पुरानी भारतीय फूहड दृष्टि को स्वीकार करता नजर आता है। फिर भी इनमें से कुछ कविताओ मे आज के जीवन के नकलीपन को और उसकी विडम्बनाओं को अच्छी अभिव्यक्ति मिली है :

वेश्याएं पत्नियों सरीखी सादगी दिखला रही हैं
पत्नियां वेश्याओं सरीखी कुटिलता अपना रही हैं...
मैं अतृप्त
काम के बाजार
शुद्ध वासना पाने गया
पाया सिर्फ गृहणी का फूहड़ अभिनय
घर में
सहज धूप सरीखे नेह की याचना की
पायी केवल
झूठी नौटंकी
मेरी रेगिस्तानी प्यास किसी से नहीं बुझी।

आधुनिक जीवन की रूढ़िवादिता और कृत्रिमता से उत्पन्न विडम्बनाओं को उभारने वाली कविताओं में 'परंपरा', 'परतंत्र', 'हाथी के दांत', 'डेल कारनेगिस्ट,' कविताएं उल्लेखनीय हैं और विद्रोह को सटीक अभिव्यक्ति देने की दृष्टि से 'कौवे' शीर्षक कविता। 'डेल कारनेगिस्ट' में सब की हां में हा मिलाने वाले विनयशील व्यवहारवादियों पर अच्छा व्यंग है, जिनके अपने कोई विचार, कोई व्यक्तित्व ही नही है। 'कौवे' मे उसे विद्रोही का प्रतीक बना कर प्रस्तुत किया गया है : *कौवे। सब तुम्हें दुत्कारते हैं। ढेले मारते हैं। क्योंकि तुम। दूसरों के दस्तरखान से। अपना भाग गिड़गिड़ा कर नहीं मांगते। छीन कर खाते हो। क्योंकि तुम। बाज़ारू कोयल की तरह। गाना नहीं सुनाते। असभ्य कौवे। तुम पकड़े जा कर। अपनी काली-चिकनी पूंछ उठा कर। घूम घूम कर क्यों नहीं नाचते? दूसरों के मनोरंजन के लिए। पालतू कबूतर की तरह। काम क्रीड़ा क्यों नहीं करते?*

लेकिन यह कहना होगा कि **चेहरे** की तरह **जंग लगे सपने** की अधिकाश कविताएं भी कविताएं कम, सीधेसादे स्केच ही अधिक है। पर इस साधारणता से कवि स्वयं अपरिचित नही है, सकलन की पहली कविता 'स्वयवरा' में वह कहता है कि मैं साधारण लोगों का साधारण कवि हूं और अपनी रचनापुत्रियों का विवाह किसी राजा या सामन्त, किसी धनपति या विद्वान मे नही, साधारण मे साधारण लोगो से ही करना चाहता हूं।

मेघराज मुकुल

मुकुल यद्यपि अधिक प्रसिद्ध अपनी राजस्थानी कविताओं के ही लिए है, पर उनके काव्य-सृजन का मुख्य माध्यम हिन्दी ही है। राजस्थान के पिछड़े हुए सामन्ती वातावरण मे प्रगतिशील आन्दोलन की अलख जगाने वाले कवियो की पहली पीढ़ी में उनका महत्वपूर्ण स्थान है।

उमंग (५४) उनका पहला कविता संग्रह है। संकलन की लगभग सभी कविताएं एक तरुण कवि के प्रगतिशील उत्साह की अभिव्यक्तियां है। इन कविताओ मे कवि ने जनता और मजदूर-किसानो का जयगान किया है, भारत माता की प्यासी मिट्टी के गीत सुनाए है, जिन्दगी, क्रान्ति, युगसत्य और नये इन्सान को वाणी दी है, उपनिवेशवाद, साम्राज्यवाद और पूंजीवाद का विरोध किया है और जीवन के प्रति आशावादी तथा आस्थापूर्ण दृष्टिकोण को अभिव्यक्ति दी है। कवि अपनी काव्य-दृष्टि व्यक्त करते हुए कहता है :

अर्थहीन ध्वनि मात्र और केवल संगीत नहीं हूं
मैं संकेतों में छिप कर, अब बेबस गीत नहीं हूं
जीवन के विरुद्ध जो चलती, वह कविता कुलटा है
कला नहीं उसकी सन्तति है, आराधक उलटा है
शाश्वत और चिरन्तन का सुख, युगमति को हरता है
बिना सींग का कवि-पशु, केवल हरी घास चरता है !

—पथसंधान, उमंग

वह भारत माता की वन्दना करता है पर भारत माता की उसकी धारणा जनवादी है :

श्रमजीवी जनता है मेरी भारत माता
मेरा रक्त सर्वहारा की विजय सुनाता

—भारतवंदना, उमंग

कहीं कहीं शोषित वर्गों की दृष्टि से आज के सामाजिक यथार्थ के अच्छे चित्र खींचे गये हैं :

तुम्हीं बताओ कैसे आज बसन्त मनाऊं
रोता सारा देश और मैं गीत सुनाऊं
जहां विवशता पीती रहती सदा जवानी
कभी न पूरी हुई क्रान्ति की शपथ पुरानी
मरण-यज्ञ की आहुति बन कर जलती आशा
बहरों का है देश, मूक है युग की भाषा।

यद्यपि इस संकलन में कोई कविता ऐसी तो नहीं है, जिसे विशेष रूप से उपलब्धिपूर्ण कहा जा सके, पर कवि का स्वस्थ, पौरुषशील दृष्टिकोण, जो लगभग सभी कविताओं में व्यक्त होता है, प्रभावित करता है।

केन्द्रीय वर्ग के अन्य कवि

इन प्रमुख कवियों के अतिरिक्त भी इस वर्ग में आने वाले कई और कवि हैं, जिन्होंने प्रगतिशील काव्यधारा में यथाशक्ति योग दिया है, ऐसे कवियों में कन्हैयाजी, वीरेश्वर सिंह 'गोरा बादल', देवेन्द्र सत्यार्थी, मानसिंह राही, हरि नारायण विद्रोही, मनुज, मुक्ति कुमार, कमलेश, प्रकाश उप्पल, खगेन्द्र प्रसाद ठाकुर, विद्या भास्कर अरुण, मरुधर मृदुल, अशान्त त्रिपाठी तथा रामकृष्ण मिश्र के नाम उल्लेखनीय हैं।

देवेन्द्र सत्यार्थी एक लोकगीत-संग्रही के रूप में अधिक प्रसिद्ध हैं, पर उन्होंने पंजाबी और हिन्दी में कविताएं भी लिखी हैं। बंदनवार (४६) उनकी हिन्दी कविताओं का एकमात्र संग्रह है। उनकी कविताओं पर भी लोकगीत शैली और लोक संस्कृति का प्रभाव दिखाई देता है (देखिए 'मणिपुरी लोरी' 'टोडा संस्कृति', आदि कविताएं)। कुछ कविताओं पर बंगाल के अकाल की छाया है (जैसे 'हिन्दुस्तान', 'रेशम के कीड़े', 'काफी हाउस')। इनमें कवि के हृदय का दर्द, कहीं कहीं व्यंग बन कर भी उभरा है। लेकिन देवेन्द्र सत्यार्थी जी की अधिकांश कविताएं मात्र काव्यात्मक स्थितियां हैं, उनका पूरा उपयोग वे नहीं कर पाये हैं। अनुभूति की गहराई और कलात्मक अभिव्यक्ति बहुत कम कविताओं में मिलती है, अधिकाश में सतही भावुकता और सपाट अभिव्यक्ति है। साधारणता से ऊपर उठने वाली कविताओं मे 'एशिया', और 'मणिपुरी लोरी' का नाम लिया जा सकता है। 'एशिया' मे युद्धों और क्रान्तियों के बीच उभरते हुए एक नये एशिया का चित्र खींचा गया है। 'मणिपुरी लोरी' लोक उपमानों तथा लोकगीतों के अन्य तत्वो से सुसज्जित एक सुन्दर कविता है।

मानसिंह राही उज्जैन के प्रगतिशील कवि हैं। जन आन्दोलनो में लगातार भाग लेते रहने के कारण उनकी कविता जन संघर्षों की आवाज है। राही की कविताएं अधिकतर साप्ताहिक जनयुग के अंकों में प्रकाशित होती रहती हैं। कविताओं के शिल्प पर राही ने बहुत कम ध्यान दिया है। अधिकांश कविताएं सामयिक घटनाओं पर लिखी गयी हैं। जून ५६ में केरल की वैधानिक सरकार पर प्रतिक्रियावादियों के हमलों को विषय बना कर लिखी गयी उनकी कविता 'केरल पर हमला सब के लिए चुनौती है' की कुछ पंक्तियां देखने लायक हैं :

क्या बढ़ने वाले कदम मंजिलों के पहले रुक जायेंगे
क्या जनतंत्री आदर्श धमकियों के आगे झुक जायेंगे
क्या नये सुधारों के बदले आतंक कहकहे मारेगा
क्या प्रगतिशील इन्सान रूढ़ियों के द्वारे पर हारेगा
क्या नये नये निर्माणों के कानून रद्द हो जायेंगे
क्या नयी व्यवस्था लाने के मजमून रद्द हो जायेंगे
क्या खून क़त्ल इस आजादी की दुल्हन का गहना होगा
क्या दफ़न किया जिन जुल्मों को फिर उनको ही सहना होगा
इतिहास के उजले पृष्ठों पर यह किसने कालिख पोती है
याद रखो केरल पर हमला सबके लिए चुनौती है !

एक दूसरी कविता 'आया उनसठ का साल' की कुछ पंक्तियां हैं :

अभी क्षितिज पर मंडराते हैं जलते हुए सवाल
कई समस्याएं लेकर आया उनसठ का साल
बारह वर्ष गये युग बीता आजादी को आज
किन्तु अभी जन जन के सपनों का है कहां सुराग
नगर नगर में डगर डगर पर बेकारों की फौज
घटे काम करने वाले बढ़ता है श्रम का बोझ
देशी और विदेशी पूंजी का फैला है जाल
कई समस्याएं लेकर आया उनसठ का साल

'मनुज' देपावत राजस्थान के सामन्ती वातावरण में विद्रोह की ज्वाला जलाने वाले साहसिक कवि थे, जो असमय ही एक रेल दुर्घटना में मारे गये। मरणोपरान्त उनका प्रतिनिधि कविता संकलन विप्लव गायन बीकानेर के लेखक संघ ने १९५६ मे प्रकाशित किया। संकलन की कविताओं को, जैसा कि सम्पादकीय मे भी कहा गया है, तीन वर्गों मे विभाजित किया जा सकता है : गीतात्मक, वर्णनात्मक और उद्‌बोधनात्मक। गीतात्मक कविताओं मे छायावादी शैली मे प्रणय और उसके सुख-दुःख, आशा-निराशा को अभिव्यक्ति दी गयी है। मनुज का विद्रोही प्रगतिशील रूप उनकी वर्णनात्मक और उद्‌बोधनात्मक कविताओं मे ही उभर कर सामने आया है। इन कविताओं में महत्वपूर्ण हैं— 'निर्वासित' (हे गाव तुझे मैं छोड़ चला'), 'आज शोषण की सबल दीवार ढहती जा रही है', 'मैं विप्लव का कवि हूं', 'मैं प्रलय वह्नि का वाहक हूं', 'लोहित मसि में कलम डुबा कर', 'तुम कहते संघर्ष कुछ नहीं', 'उर मे असन्तोष पलता है' तथा 'वे रक्तपात से सनी हुई'।

'हे गाव तुझे मैं छोड़ चला' एक सुन्दर कविता है, जिसमें 'मनुज' के शब्दों मे ''जन्मभूमि के वियोग के समय, उच्छ्‌वासों मे प्रस्फुटित, कृषक-हृदय की मूक कथा का छन्दबद्ध वाणी में प्रकटीकरण'' किया गया है। वास्तव मे यह 'शोषण की एक सजल कहानी' है। एक किसान की बेदखली और परिणामस्वरूप उसका गाव से निर्वासन ही कविता की मुख्य विषयवस्तु है। रेगिस्तान के सामन्ती वातावरण मे एक असहाय किसान के उत्पीडन और मातृभूमि के प्रति उसके सहज राग की सुन्दर अभिव्यक्ति इस कविता में हुई है। सामन्ती समाज मे मनुष्य की औकात क्या है ? :

मानव मिट्टी का रोड़ा है, बस जब चाहा तब तोड़ दिया
मानव टमटम का घोड़ा है, बस जब चाहा तब जोड़ दिया

वह पायदान का कीड़ा है, किलबिल करता है सुबह शाम
वह पूंछ हिलाता कुत्ता है, अपने मालिक का चिर गुलाम
वह अपनी हस्ती बेच चुका, अपने मालिक के हाथों में
हे गांव तुझे मैं छोड़ चला, लाचार, भरे इस भादों में!

संकलन की कविताओं में सामन्ती रूढ़ियों, अत्याचारों, धार्मिक पाखंडों और सामाजिक-आर्थिक विषमताओं के प्रति आक्रोश भरा हुआ है:

जो मजहब कहलाता, मानव को अत्याचार सिखाता है
जिससे प्रेरित होकर भाई, भाई का खून बहाता है
जो पाखंडों में पलता है, शोषित, दुर्बल को दलता है
उस प्रबल पाप के पुंज धर्म की धूल बनाने आया हूं!

एक कविता 'वे रक्तपात से सनी हुई' में कवि ने अपनी उसी चारणी काव्य-परंपरा का विरोध एक आक्रोश के स्वर में किया है, जो उन्हें पारिवारिक विरासत में मिली थी:

बस एक यही पेशा उनका,
बस एक यही था काम उन्हें
रच रच कर झूठे शब्द जाल
गा गा कर गान लुटेरों के
उन राज सभाओं में, अपनी
वे धाक जमाया करते थे
फिर निमित्त दान के मिले हुए
उन टुकड़ों पर जीकर, अपना
वे गुजर चलाया करते थे;
कविराज कहाया करते थे!

हरिनारायण विद्रोही भी राही की तरह सामयिक घटनाओं पर मजदूर-चेतना को जगाने वाली कविताएं लिखते हैं। केरल पर लिखी हुई उनकी एक कविता 'केरल में मत हाथ लगा पूंजी के पहरेदार' की कुछ पंक्तियां हैं:

आज चाय के बागानों से आती यही पुकार
केरल में मत हाथ लगा पूंजी के पहरेदार
जहां तिजोरी में न कैद है आजादी
जहां न बेकारी, लाचारी, बरबादी

मान जहां पाणी पुत्रों का होता है
धन और धरती बंटती शोषण रोता है
उस केरल में जुल्म सितम के हमराही
चाह रहे हैं करना फिर से मनचाही
सोच रहे कर पायें कैसे सत्ता पर अधिकार
केरल में मत हाथ लगा पूंजी के पहरेदार !

प्रकाश उप्पल का एक संकलन उपवन कुजबिहारी पांडेय के साथ संयुक्त रूप से निकला है। जैसा कि सुमन जी ने भूमिका में कहा है : उप्पल की 'मधुर स्वर लहरी में एक ओर तो उन्मन गुंजन का झीनापन है और दूसरी ओर प्रभाती का वैतालिक के स्वरों में आह्वान भी, गति को वे जीवन का सार मानते हैं :

रुक जाऊं अधिकार नहीं है,
बढ़े बिना निस्तार नहीं है
जीवन की गति रुक जाने पर
जीवन का कुछ भार नहीं है

—गतिमय जीवन, उपवन

प्रकाश उप्पल को आज के शोषित जीवन के कुछ विशिष्ट चरित्रों को उभारने में अच्छी सफलता मिली है—'अध्यापक', 'क्लर्क', 'होटल ब्वाय', 'ट्रेन में गोलियां बेचने वाला लड़का', 'चपरासी', आदि उनकी कुछ ऐसी ही कविताएं हैं। इन कविताओं में कहीं कहीं तो संबधित चरित्र के परिवेश के अनुकूल उपमानों के चयन से उन्होंने कुछ सुन्दर पंक्तियों को जन्म दिया है :

बदरंग 'टेग' की तरह शीश के बाल हो गये
ढेर भरी मिसलें पढ़ कर ये हाल हो गये
ढीली टेबल की तरह जिन्दगी हिलती जाती
और पेंसिल सी दिन पर दिन छिलती जाती
आलपिनों के कुशन सरीखा छिदा हुआ मन
मेजपोश की तरह हो गया मैला जीवन

—क्लर्क

पदमसिंह शर्मा 'कमलेश'

कमलेश एक निर्धन किसान परिवार में जन्मे। शैशव में ही पिता की मृत्यु के कारण उनकी माता जी को चक्की पीस पीस कर उन्हें पालना-पोसना पड़ा। उनका प्रारंभिक जीवन अभाव, गरीबी और भूख प्यास में बीता। इन्हीं परिस्थितियों ने उनके हृदय में विद्रोह की चिनगारी सुलगाई और उन्हें कवि बनाया। कविता लिखना उन्होंने १९३४ में शुरू किया। जीवन में उन्हें सम्पन्न लोगों की उपेक्षा बहुत सहनी पड़ी। इसी कारण उनके काव्य में सम्पन्नों के प्रति आक्रोश बहुत है। प्रगतिशील आन्दोलन में वे अपनी 'जन्म-जात गरीबी' के कारण और राहुल जी और कृष्णस्वामी की प्रेरणा से आये।[५६]

उनके अभी तक तीन कविता संग्रह प्रकाशित हुए हैं : तू युवक है (४९), दूब के आंसू (५२), और धरती पर उतरो (५२)। दूब के आंसू मे उनके प्रेमगीत संकलित है, और शेष दो में उनकी प्रगतिशील कविताएं।

कमलेश के काव्य में बढ़ते हुए सर्वहारा की चेतना है, मिट्टी के पुतलों का आह्वान है :

मिट्टी के विश्वास सजग हो गीत प्रगति के गाओ तुम
अपनी नित नूतन रचना में भू को स्वर्ग बनाओ तुम
अब अदृष्ट की डोर पकड़ कर भटको मत सूनेपन में
पौरुष का प्रदीप ले जग में अभिनव पथ दिखलाओ तुम

और है स्वाधीनता के बाद का स्वप्नभंग। उनके संकलन 'धरती पर उतरो' की अधिकांश कविताओं की विषयवस्तु स्वाधीनता के प्रति जनता की आशाओं और स्वाधीनता के बाद की वस्तु स्थितियों के बीच की खाई है।

कमलेश जी की कविताओं में युगजीवन की विषमताओ और वर्ग-संघर्षों का वर्णन एक सरल, सपाट और सूत्रात्मक प्रगतिवादी शैली में किया गया है। एक उदाहरण लिया जाय,

हुआ नशे में डालर के अमरीका अंधा
करता छोटे देशों में अड्डों का धंधा
नहीं सोचता है कि मरेगा वह जल्दी ही
और न देगा उसे विश्व में कोई कन्धा

—पशु और मानव, धरती पर उतरो

५६. कवि द्वारा लेखक को दी हुई सूचनाओं के आधार पर

जीवन की जटिलताओं का आभास उनकी कविताओं से कम ही होता है। उद्बोधन ही उनका प्रधान स्वर है :

वासन्ती सुषमा हंसती है, पतझड़ का क्षण बीत गया
रुका नाश का नृत्य सृजन का भाव अनोखा जीत गया
ओ मिट्टी के पुतलो जागो, युग युग की तंद्रा त्यागो
सुनो कि वसुधा के कण कण में गूंज नया संगीत गया।

उनके काव्य की सबसे बड़ी कमजोरी है उनका अध्यात्मवाद। नये चीन के प्रतिनिधियों के स्वागत गान में वे कहते है :

मेरा यह भारत ऋषियों की पुण्य भूमि है
आध्यात्मिकता की संस्कृति इसकी थाती है

यही नहीं। वे अपने देशवासियों का आह्वान करते है कि

पदमर्दित भारत के वासी
ऋषियों के पद चिन्हों पर चल

वास्तव में 'हिन्दू संस्कृतिवाद' का उन पर इतना प्रभाव है कि वे 'नाविक हीन देश' का नेतृत्व करने के लिए 'विक्रमादित्य' से अवतार लेने की प्रार्थना करते हैं, अर्जुन और महाराणा प्रताप को पुकारते हैं, यहां तक कि जब वे क्रान्ति के लिये प्रतिज्ञा करते हैं तो भी जनता को नही, ब्रह्मा, विष्णु और महेश को ही साक्षी बनाते है :

आज प्रतिज्ञा करते हैं हम
साक्षी हों सुर-नर, मुनि-किन्नर
साक्षी ब्रह्मा, विष्णु, दिगंबर .

नियतिवाद भी कई जगह उनकी कविताओं में मिलता है।

मुक्ति कुमार मिश्र सर्वहारा वर्ग के एक तरुण कवि हैं। अपने पिता सुदर्शन चक्र की परंपरा को उन्होंने आगे बढ़ाया है। उनका कविता संकलन है **फूल और फौलाद** (७०)। मुक्तिकुमार साम्यवादी आन्दोलन के उस रूप से सम्पृक्त हैं, जिसे आमतौर पर नक्सलवाद कहा जाता है। **फूल और फौलाद** में तरुण कवि की कुछ प्रणयानुभूतियों की कविताओं के अतिरिक्त शेष सब कविताएं सामाजिक-यथार्थ और क्रान्ति के उद्बोधन से सम्बद्ध हैं। विषयवस्तु की दृष्टि से इन कविताओं का दायरा विशाल है, कविताओं के कुछ शीर्षक ही इसका प्रमाण है: 'फूल और फौलाद', 'नारी',

'बम्बई', 'हिमालय की बेटी मसूरी', 'ताजमहल', 'वीर भोग्या वसुन्धरा', 'कैसा स्वराज्य ?', 'कवि और कविता', 'आत्म परिचय', 'नेताओं से', 'महामानव लेनिन', 'भारत को प्रणाम', 'साम्यवाद', 'कलकत्ता', 'कानपुर के नाम पाती', 'चटगांव के शहीद सूर्यसेन', 'जन-कम्यून जनक माओ', 'क्रान्ति साहित्यकार गोर्की', 'क्रान्तिदूत इनवर होक्सा', 'सेनापति स्तालिन', 'क्रान्तिकारी शिवकुमार', 'पन्द्रह अगस्त', 'वियतनाम और भारत', 'क्रान्तिदूत सरदार भगतसिंह', 'विश्व-पिता कार्ल मार्क्स', 'अमर वीरांगना ल्यू हू लान', 'राजगुरू सुखदेव'। नक्सलवाद भी यहां भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन और 'अजिता' भी यहां बालकृष्ण शर्मा नवीन और त्रिशूल जी के साथ एक ही कविता में गुथे हुए मिल सकते है। मजदूरों की राजनीतिक दीक्षा में शायद ऐसी कविताए सहायक होती हों, पर साहित्यिक दृष्टि से उनका स्तर बहुत ही साधारण है। शब्द-रचना और छन्द-विधान की त्रुटियां यत्रतत्र दिखाई देती है, और इन रचनाओ में कई ऐसी अभिव्यक्तिया भी हैं, जिन्हें शिष्ट रुचि के संदर्भ मे फूहड़ ही कहना पडेगा।

विद्या भास्कर 'अरुण' का एक संकलन है **सवेरा और साया**। संकलन की लगभग सभी कविताओं मे कवि के पौरुषपूर्ण-संघर्षशील और प्रगतिशील दृष्टिकोण की छाप है। सकलन की उल्लेखनीय कविताओं मे 'प्रगति गीत', 'जुल्म की दीवार बह जाए पिघलकर', 'रिक्शा वाला', 'सिपाही' और 'जनयुग की अगवानी' का नाम लिया जा सकता है।

'प्रगतिगीत' छन्द के प्रभावपूर्ण प्रवाह से युक्त एक प्रयाणगीत है। 'जुल्म की दीवार' में एक भावनाशील प्रगतिशील कवि के कर्तव्य और रोमांस के बीच के द्वन्द्व का चित्र है :

सत्य है प्रिय प्यार का यह स्वर्ग तेरा
सत्य ही है रूप की चिर प्यास, हास विलास नव नव
किन्तु पीड़ा और क्रन्दन की ये धरती सत्य सबसे !

'सिपाही' में साम्राज्यवादी-राष्ट्रवादी युद्ध मे लड़ते हुए एक सिपाही की मानसिकता का यथार्थ चित्र है। 'जनयुग की अगवानी' उभरती हुई जनक्रान्ति का स्वागत करती है :

देख जागते अंगड़ाई ले बुनियादों के पत्थर
कांप रहे हैं गुम्बद, कलसे, दर-दीवारें, थर-थर
आज करोड़ों कण्ठों चरणों का समवेत हुआ स्वर
बांधे हुए कफ़न निकले हैं भूखे डगर-डगर पर

राजस्थान के प्रगतिशील कवियों में **मरुधर मृदुल** का नाम भी उल्लेखनीय है। यद्यपि उन्होंने अधिक कविताएं नहीं लिखी हैं, और उनका कोई संकलन भी अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ है, तथापि उनके कुछ प्रगतिशील गीत काफी लोकप्रिय हैं। छन्द विधान पर उन्हें अच्छा अधिकार है। उनकी एक प्रसिद्ध गेय कविता 'मनुष्य की परंपरा' की कुछ पंक्तिया इस प्रकार हैं :

वेद के, पुराण के, विधान में नहीं रुकी
शक्ति के समक्ष भी कभी कहीं नहीं झुकी
मनुष्य की परंपरा रही सदा विकास की
मंजिलें बनीं भले, न मंजिलें मगर रुकी
राह थक गयी भले, चरण कभी नहीं थके
रुकी मनुष्यता नहीं, न जी मनुष्य का भरा
युग थके, थकी नहीं मनुष्य की परम्परा !

रामकृष्ण मिश्र ने बांदा जिले के जन जीवन के कुछ अच्छे यथार्थवादी चित्र अपनी 'गहोरा', 'जूडर', 'पाठा और आदिवासी कोल' आदि कविताओं में खीचे हैं। सामाजिक यथार्थ और भावी समाजवादी क्रान्ति का आवाहन उनकी कविताओं के मुख्य विषय हैं।

रूमानी रुझान के कवि

हिन्दी में छायावादी काव्य धारा के विरुद्ध प्रतिक्रिया मुख्यतः दो रूपों में व्यक्त हुई। उसकी स्वप्निल, वायवी रूमानियत के विरुद्ध कुछ कवियों ने मांसल रूमानियत को अपनाकर यौवन और वासना के गीत लिखना प्रारंभ किया और कुछ कवियों ने उसके व्यक्तिवाद के विरुद्ध सामाजिक दृष्टिकोण और सामाजिक चेतना को अभिव्यक्ति देना प्रारंभ किया। पहली काव्य धारा को छायावादोत्तर स्वच्छन्दतावादी और दूसरी को प्रगतिशील काव्यधारा कहा जाता है। पर प्रारंभ में इन दोनों में अन्तर नही किया गया। और ये दोनों धाराएं एक ही शब्द 'प्रगतिवाद' से अभिहित की गयी। वास्तव में कुछ कवियों मे इन दोनों का मिलाजुला रूप एक साथ भी दिखाई दिया। जैसे अंचल में। बाद में ये धाराएं तो यद्यपि अलग अलग स्थापित हो गयी, पर कुछ कवियो पर दोनों का सम्मिलित प्रभाव दिखाई देता रहा। ऐसे ही कवियों को मैं रूमानी रुझान के प्रगतिशील कवि कहता हूं।

ऐसे कवियो में सुमन, अंचल, नरेन्द्र शर्मा, नीरज, वीरेन्द्र मिश्र और वीरेन्द्र कुमार जैन प्रमुख हैं।

शिवमंगल सिंह सुमन

हिल्लोल (३९) सुमन जी का पहला संकलन है। सकलन का मूल स्वर छायावादोत्तर स्वच्छन्दतावादी है। यद्यपि संकलन की एकाध कविता में (जैसे 'मेरे पावन, मेरे पुनीत') छायावादी रहस्य भावना का प्रभाव दिखाई देता है, तथापि अधिकांश कविताएं भाव और भाषा दोनों की दृष्टि से दीवानों के उसी वर्ग की हैं, जिसमें बच्चन, नवीन, भगवतीचरण वर्मा वगैरह आते हैं। वही पार्थिव मांसल प्रेम भावना, वही मस्ती और फक्कड़पन और कही कहीं वही क्रान्तिकारी स्वच्छन्दतावाद का स्वर। प्रेम और आकर्पण संकलन की अधिकांश कविताओं का केन्द्रीय विषय है। संकलन की कविताओं को तीन वर्गों मे बांटा जा सकता है: (१) प्रेम और मनुहार की कविताएं, (२) मस्ती और दीवानगी की कविताएं जो कही कही क्रान्तिकारी स्वच्छन्दतावादी स्वरों को अभिव्यक्ति देने लगती हैं; जैसे 'हम दीवानों का क्या परिचय', 'हम बड़े विकट मतवाले हैं', 'मुझको न सुख संसार दो और 'चलना हमारा काम है' और (३) ऐसी कविताएं

जिनमें जीवन-संघर्ष की ओर भी कवि का ध्यान गया है, प्रगतिशील भावभूमि की कविताएं। इस वर्ग की कुछ कविताओं में तो कवि ने रोमांस और संघर्ष के बीच दुविधा सी प्रकट की है जैसे 'संघर्ष-प्रणय', और 'असमंजस' में। और कुछ में लगता है कि उसने रोमास और संघर्ष में से संघर्ष का पथ चुन लिया है, जैसे 'क्रान्ति' में।

मस्ती और दीवानगी की स्वच्छन्दतावादी कविताओं मे, जैसा कि ऊपर संकेत किया गया है, कही कहीं कवि का स्वर क्रान्तिकारी स्वच्छन्दतावादी हो उठता है। ये कविताएं असल में कवि के प्रणय और संघर्ष की कविताओं के बीच का सेतु हैं। बच्चन के स्वच्छन्दतावाद का प्रभाव इन कविताओं की भावभूमि और शैली दोनों पर स्पष्ट परिलक्षित होता है। 'हम दीवानों का क्या परिचय' एक साथ 'मिट्टी का तन मस्ती का मन, क्षण भर जीवन मेरा परिचय' और 'हम दीवानों की क्या हस्ती आज यहां कल वहां चले', की याद दिलाता है। 'हम बड़े विकट मतवाले हैं', में नवीन जी वाला 'अनिकेतन' फक्कड़पन प्रभावित करता है :

हम को इस जग का ध्यान नहीं
कुछ मान नहीं, अपमान नहीं
हम दीवानों की दुनियां में
कुछ भले बुरे का ज्ञान नहीं
हम भेद-भाव मय जगती के सब भेद मिटाने वाले हैं
हम बड़े विकट मतवाले हैं।

'मुझको न सुख संसार दो' की इन पंक्तियों में वही क्रान्तिकारी स्वच्छन्दतावाद है, जिसने बच्चन की वाणी में कहा था : *तीर पर कैसे रुकूं मैं आज लहरों में निमंत्रण।*

साहस हृदय में दो अमर
चूमूं तरंगों के अधर
नौका भंवर में डाल कर, चाहे न फिर पतवार दो
मुझको न सुख संसार दो।

'असमंजस' और 'संघर्ष-प्रणय' में कवि प्रणय से संघर्ष की ओर बढ़ता दिखाई देता है। वह प्रणय के महत्व को कम नही करता पर लाचारीवश उसे संघर्ष की ओर बढ़ना भी अनिवार्य लगता है :

लाचारी है, आखिर मैंने ऐसे युग में जन्म लिया है
जहां सभी ने रूप सुधा को छोड़ गरल का पान किया है

* * * .

और कभी प्रति ध्वनित करेगी मधुगायन स्वर लहरी मेरी
आज चाहती दुनियां सुनना मेरी वाणी में रण-भेरी।

'क्रान्ति' कविता में वह पूरी तरह अपनी वाणी में रणभेरी सुनाने लगता है।

जीवन के गान (४०) मे कवि की मूल भाव भूमि प्रगतिशील हो उठती है। 'हिल्लोल' में वह मानव मुक्ति की कुंजी श्रमिक वर्ग के सामूहिक संघर्ष हैं, यह बात समझ गया था, पर जीवन के गान में वह स्वयं भी उन्ही सामूहिक संघर्षों में कूद पड़ता है। यहा वह सामाजिक विषमता से संवेदित और उद्वेलित होता हुआ, अपने वैयक्तिक सपनों को मुट्ठी मे मसलता हुआ पूजीवाद और साम्राज्यवाद के विरुद्ध जिहाद बोल देता है :[1]

हाय यहां मानव मानव में समता का व्यवहार नहीं है
हाहाकारों की दुनियां में सपनों का संसार नहीं
इसीलिए अपने स्वप्नों को मुट्ठी में मलता जाता हूँ

'प्रलय सृजन' (४४) मे कवि उस नयी दिशा में, जो उसने 'जीवन के गान' मे पकड़ी थी दृढ़ कदमों के साथ बढ़ चलता है। संघर्ष का स्वर कवि का मूल स्वर हो उठता है। संकलन की उल्लेखनीय कविताएं है—'कंकड़ पत्थर', 'चल रही उसकी कुदाली', 'गुनिया का यौवन', 'मास्को अब भी दूर है', 'चली जा रही है बढी लाल सेना', 'कलकत्ते का अकाल', 'स्तालिन ग्रेद', 'तूफानो की ओर', 'फिर भी मेरा विश्वास अटल', 'और गाने को अभी अवशेष'।

'कंकड़ पत्थर' और 'चली जा रही है बढ़ी लाल सेना' सुमन जी की श्रेष्ठ कविताओं में से है।[2]

'कंकड़ पत्थर' में राह पर पड़े हुए कंकड़ों-पत्थरो तक को अपनी संवेदनशीलता के क्षेत्र में खींच लाने वाली कवि की विकसित सहृदयता के ही दर्शन नही होते साथ ही यह पाठक का ध्यान इस सामान्य से सत्य, कि हमारे समाज में इन ककड़ों-पत्थरों से भी अधिक पद-दलित लोग भी रहते हैं, की ओर एक

---

१. शिव कुमार मिश्र : नया हिन्दी काव्य, पृ. १६३-६४.
२. कंकड़ पत्थर के लिए श्री ब्रज किशोर चतुर्वेदी ने कहा है 'वास्तव में प्रगतिशील साहित्य में यह रचना और इसकी ऊंची कल्पना अद्वितीय है।' आधुनिक कविता की भाषा, पृ. ४५६.

विचित्र चौक के साथ खींचती है और यह सर्वविदित सत्य भी हमें एक दम नये, गहरे और अब तक अनजाने सत्य की तरह लगने लगता है। राह के पत्थर की यह वेदना देखिए :

आहें भर सकता तो अपनी निश्वासों से जग भर देता
पर मुझे सांस तक लेने का मिल पाया है अधिकार नहीं
मैं पद-लुंठित, पद-मर्दित बन आया हूं जीवन के पथ पर
परवश अपनी सीमाओं में मैं मूक व्यथाओं का घर हूँ।
मै पथ का कंकड़-पत्थर हूँ।

और देखिए उसकी यह गर्व भावना :

पर मैंने कल पथ पर देखी पद-दलित मानवों की टोली
थी जिनकी आह कराहों में मेरी परवशता की बोली
उनकी भी हाहाकारों पर देता था कोई ध्यान नहीं
अपने सूखे जर्जर तन में लगते थे मेरे हम-जोली
जीवन में पहले पहल मुझे अपने ऊपर कुछ गर्व हुआ
मैं जड़ होकर भी इन चेतन नर-कंकालों से बढ़ कर हूं।
मैं पथ का कंकड़-पत्थर हूँ।

भाषा का सौष्ठव और छन्द का प्रवाह 'चली जा रही है बढ़ी लाल सेना' को भी एक सुन्दर कविता बना देते हैं। लाल सेना पर लिखी हुई हिन्दी कविताओं में कदाचित यह सर्वश्रेष्ठ कविता है :

प्रलय के सृजन के सभी साज सज कर
ढहे खंडहरों का क्षणिक मोह तज कर
विजय-वेष, आंखें लगीं रक्त ध्वज पर
चली जा रही है बढ़ी लाल सेना
युगों की सड़ी रूढ़ियों को कुचलती
जहर की लहर सी लहरती मचलती
अंधेरी निशा में मशालों सी जलती
चली जा रही है बढ़ी लाल सेना

अन्य कविताओं में 'मास्को अब भी दूर है,' 'स्तालिन ग्रेद' और 'कलकत्ते का अकाल' द्वितीय महायुद्ध के समय के सामाजिक यथार्थ के चित्र हैं। अकाल से संबंधित कविता में कवि की संवेदना व्यक्त हुई है। मास्को अब भी दूर है

कविता यद्यपि साधारणता से ऊपर उठी है, तथापि विषय के अनुकूल उदात्त रचना-विधान के अभाव में अधिक अच्छी नही बन सकी। फिर भी बीच-बीच में कुछ पंक्तियां काफी प्रभावित करती हैं।

'चल रही उसकी कुदाली' और 'गुनिया का यौवन' ग्रामीण जीवन के कुछ चित्र प्रस्तुत करती हैं। 'तूफानों की ओर', 'फिर भी मेरा विश्वास अटल' और 'गाने को अभी अवशेष' सुमन जी के तीन अच्छे गीत हैं, जो जीवन और उसकी प्रगति के प्रति उनकी आस्था शील, पौरुषशील दृष्टि को व्यक्त करते हैं।

विश्वास बढ़ता ही गया (५५) में मानवीय प्रगति और उसके सुखद भविष्य के प्रति एक दृढ़ आशा का स्वर सर्वत्र मुखरित है—बढना, गति संकलन का मूल स्वर और शब्द है। 'मैं मनुष्य के भविष्य से नही निराश', 'छोटे मोटे आघातों से हार नहीं सकता मन मेरा', 'जीवन वहता ही जाता है', 'विश्वास बढ़ता ही गया', आदि कविताओं की प्रथम पक्तिया ही उस दृढ़ आशावादिता और आस्था को अभिव्यक्ति देती हैं।

'दे दो अपने अश्रु मुझे प्रिय मधुमय गान न दो', मे संघर्षशील व्यक्ति की संक्रान्तिकालीन मन:स्थिति को अभिव्यक्ति दी गयी है :

प्रलय-सृजन की इन घड़ियों में
कवि का मान कहा करता है—
तुम युग का अभिशाप झेल लो
पर वरदान न लो।

'नयी आग है' द्वितीय विश्वयुद्ध के समाप्ति के दिनों में सम्पूर्ण एशिया में भड़की हुई राष्ट्रीय स्वाधीनता और शोषण-मुक्ति की आग को विषय बना कर लिखी गयी है।

'आज देश की मिट्टी बोल रही है' नाविक विद्रोह से प्रेरित ओजस्विनी कविता है। समस्त पदावली और कठोर वर्णो के द्वारा क्रान्तिकारी प्रचंडता को बड़ी कुशलता से व्यक्त किया गया है। ओज पूरी कविता में व्याप्त है। पदावली और आवेग 'राम की शक्ति पूजा' की याद दिलाती है।

'मेरा देश जल रहा कोई नहीं बुझाने वाला' आजादी के साथ आने वाले साम्प्रदायिक दंगों के विषय में लिखी गयी कविता है—कवि साम्प्रदायिक दंगों से विषण्ण होकर सोचता है कि

भगतसिंह, अशफाक, लाल मोहन, गणेश बलिदानी
सोच रहे होंगे हम सब की व्यर्थ गयी कुरबानी

जिस धरती को तन की देकर खाद खून से सींचा
अंकुर लेते समय उसी पर किसने ज़हर उलीचा

धर्म के नाम पर हत्याएं करने वालों पर कुपित होकर वह उनसे पूछता है :

जब भूखा बंगाल तड़प मर गया ठोक कर किस्मत
बीच हाट में बिकी तुम्हारी मां बहिनों की अस्मत
जब कुत्तों की मौत मर गये बिलख-बिलख नर-नारी
कहां गयी थी भाग उस समय मरदानगी तुम्हारी
तब अन्यायी का गढ़ तुमने क्यों न चूर कर डाला
मेरा देश जल रहा, कोई नहीं बुझाने वाला।

'जल रहे हैं दीप जलती है जवानी' इस संकलन की सबसे लम्बी कविता है। दीपावली के संदर्भ में लिखी हुई इस कविता में राम-रावण की कहानी को नया संस्कार देकर उसे शोषितों और शोषकों के संघर्ष की कहानी बनाने का प्रयत्न किया गया है। छन्द की गति और प्रवाह प्रशंसनीय है :

उधर थी संगठित सेना अनेकों यंत्र दुर्धर थे
इधर हुंकारते हाथों में केवल पेड़-पत्थर थे
मगर था एक ही आदर्श जीने का जिलाने का
विगत जर्जर व्यवस्था को स्वयं मिट कर मिटाने का

पर आखें नहीं भरीं (५६) में सुमन जी का मूल रूमानी रूप फिर मुखर होकर आया है। वे मूलत. हैं भी सौन्दर्य और प्रेम के मुग्ध गायक ही। संकलन की अधिकांश कविताओं में यही है। फिर भी सकलन मे प्रगतिशील भावभूमि की कई कविताएं है। ऐसी कविताओं मे 'मैं चलता जा रहा', 'मिट्टी की महिमा', 'बात की बात', 'कलाकार के प्रति', 'सांसों का हिसाब', 'आश्वासन', 'युग-सारथी गांधी के प्रति', और 'महात्मा जी के महानिर्वाण पर' प्रमुख हैं।

'मैं चलता जा रहा' में पथिक का एक परंपरागत प्रगतिवादी बिम्ब है। 'मिट्टी की महिमा' मिट्टी के माध्यम से मानव की महिमा गाती है। 'बात की बात' इस बदलती हुई दुनिया में प्यार और ,वियोग के प्रति एक स्वस्थ पथिक की दृष्टि को व्यक्त करती है। स्वच्छन्दतावादी प्रभाव यहा भी स्पष्ट है :

जो भी अभाव भरना होगा, चलते चलते भर जाएगा
पथ में गुनने बैठूंगा तो जीना दूभर हो जाएगा

'कलाकार के प्रति' कविता में इस तथ्य की ओर संकेत है कि इस संसार में कला के विषयों की कमी नही है, बशर्ते कि कलाकार अपने से बाहर निकल कर जीवन और प्रगति को देखे। 'सासों का हिसाब' सुमन जी की प्रसिद्ध कविता है। कविता में बहुत सरल और प्रवाह पूर्ण शैली में सांसों की सार्थकता का संदेश है :

सांसों का फौलादी पौरुष भी देखा
कितनी सांसों ने की पत्थर पर रेखा ?
जितनी भी सांसों पथ के रोड़े बिनतीं
हर सास सांस की देनी होगी गिनती
तुम इनको जोड़ों बैठ कहीं एकाकी
बेकार गई जो उनको कर दो बाकी
जो शेष बचें उनका मीजान लगा लो
जीवित रहने का सब अभिमान जगा लो
मृत से जीवित का अब अनुपात बता दो
सांसों की सार्थकता का मुझे पता दो
लज्जित क्यों होने लगा गुमान तुम्हारा ?
क्या कहता है बोलो ईमान तुम्हारा ?
तुम समझे थे तुम सचमुच ही जीते हो
तुम खुद ही देखो मरे या कि रोते हो

'आश्वासन' में कवि स्वयं अपनी पहले की उद्दाम प्रगतिशीलता से रूमानी भाव-भूमि पर आने की बात को परिलक्षित करता है :

गुनगुना रहे हो जो जीवन के गाने
उनका सुर मुझसे पीछे छूट गया है

लेकिन साथ ही वह अपने साथियों को आश्वासन देता है कि

लेकिन मुझसे इसलिए न रूठो साथी,
मैं लुटने दूंगा नहीं तुम्हारी थाती
बट लेने दो यह रूखी सूखी बाती
इसमें फिर से जनमन का स्नेह ढलेगा
अवरोधों का हिमगिरि तप कर पिघलेगा
युग की गंगा का मुक्त प्रवाह बहेगा

संकरान की पाच छह कविताएं गांधी जी के प्रति हैं। अधिकांश में वही ऊष्मा-

रहित पूजा का स्वर है जो बच्चन, पन्त और नरेन्द्र शर्मा की ऐसी कविताओं में हैं। 'युग सारथी गांधी के प्रति', जो बापू की नोआखली यात्रा के समय लिखी गयी, में पौराणिक उपमानों की एक श्रृंखला के माध्यम से साम्प्रदायिक वैमनस्य की पृष्ठभूमि में गांधी जी के मानवतावाद को उभारा गया है। हां 'महात्मा जी के महानिर्माण पर' कविता में भावना का वेग और ऊष्मा दिखाई देती है :

यह वध मानवता को पशुता की सबसे बड़ी चुनौती है
यह वध है उन आदर्शों का जिन पर मानवता टिकी हुई
यह वध है उन उत्कर्षों का जिन पर यह दुनिया टिकी हुई
यह वध है पुण्य-प्रसू धरती की परम पुनीता सीता का
यह वध है युग युग के काल पुरुष का, वासुदेव का गीता का

विन्ध्य-हिमालय (६६) सुमन जी की ५४ से ६० तक की रचनाओं का संकलन है। इस संकलन में कवि प्रमुखतः एक स्वस्थमना प्रकृति प्रेमी कवि के रूप में हमारे सामने आता है। बदलती हुई ऋतुओं की भूमिका में जीवन के रागरंग और मस्ती के अनेक चित्र संकलन की कई कविताओं में खींचे गये हैं—'शरद पूर्णिमा', 'होली', 'रंग पंचमी', 'आ गया बसन्त', 'आसों आम बहुत बौराये' आदि कविताएं इसी प्रकार की हैं। इस मस्ती में कान्हा और गोपिकाओं के रास की चर्चा अक्सर उभर आयी है। कुल मिला कर ये कविताएं कवि की जिन्दादिली और जीवन के सुख-भोगों के प्रति उसके स्वस्थ आकर्षण का प्रमाण हैं :

अंगों अंगों में रस की बरसात हो
रंगों रंगों में रंगों की बात हो'
सब की खातिर हो बिछुड़े मेहमान सी
राशि राशि खुशियां उमड़ें खलिहान सी
मन में भरा हुलासों का हुलसाव हो
डालों डालों बौरों का बौराव हो
बौराए जो नहीं जवानी उसकी क्या !
गदराए जो नहीं कहानी उसकी क्या !

—रंग पंचमी, विन्ध्य-हिमालय

संकलन की दो-एक कविताओं में कवि का पिछला दृढ़ प्रगतिशील स्वर भी सुनाई देता है। ऐसी कविताओं में 'नया मोड़' और 'युग की गायत्री', के नाम लिए जा सकते हैं। 'नया मोड़' नवयुग के साथ उसकी जागृति को, उसकी

जिम्मेदारी को वाणी देती है। नये संदर्भों में पुरानी शब्दावली का प्रयोग चमत्कारपूर्ण है :

जगा सको तो बंधु मशीनों का अध्यात्म जगाओ
फैक्टरियों की उर्ध्व चिमनियों की आत्मा पहचानो
दग्ध भट्टियों की दहकन में नव तेज अनुमानो

'युग की गायत्री' संसार के प्रति कवि के गहरे राग को अंकित करती हुई, भारत के वर्तमान नेताओं से कहती है कि यदि तुमने सर्वहारा का विश्वास खो दिया और क्रान्ति के साथ गद्दारी की तो :

इतिहास न तुमको माफ करेगा याद रहे
पीढ़ियां तुम्हारी करनी पर पछताएगी
पूरब की लाली में कालिख पुत जाएगी
सदियों में फिर क्या ऐसी घड़ियां आएंगी

कुल मिलाकर इस संकलन में कवि साधारणता के स्तर से ऊपर कम ही जगह उठ पाया है।

मिट्टी की बारात (७२) सुमन जी का नवीनतम संकलन है। अपने नाम को सार्थक करता हुआ यह संकलन सचमुच मिट्टी की महिमा का ही गायन है। मिट्टी शब्द अपने अनेक पर्यायों के रूप मे इस सकलन में इतनी अधिक बार प्रयुक्त किया गया है कि वह इसका बीजमंत्र ही हो गया है। भूमिका के ही शब्दों मे कहा जाय तो प्रस्तुत संकलन 'भानुमती का पिटारा है'। चार खंडों और एक परिशिष्ट मे तरह तरह की कविताए संकलित की गयी है। प्रथम खंड में मिट्टी की महिमा है, दूसरे में कुछ कविताएं व्यंगात्मक हैं, कुछ प्रणयानुभूतियो से सम्वद्ध और कुछ सामाजिक चेतना प्रधान; तीसरे खड में गाधी, नेहरू, लालबहादुर शास्त्री, मालवीय, पुश्किन तथा लेनिन की महत्व स्वीकृति से संबंधित इतिवृत्तात्मक-सी कविताएं हैं और चौथे में मारीशस से संबंधित तीन कविताएं। परिशिष्ट की कुछ कविताएं स्वातंत्र्योत्तर भारत की रिक्तता और दुर्दशा को अंकित करती हैं।

कविता की दृष्टि से पहले ही खंड की कविताएं अधिक महत्वपूर्ण हैं। इन कविताओं में मिट्टी अपने सारे फलितार्थों में चरितार्थ हुई है। इनमे असाढ की उमड़ी घटाएं हैं, तपन है, गेहूं की पकी फसले है, पलाश के फूल-पत्ते हैं, चैतिया प्रभात और फागुनी पूर्णिमाएं है, टूटी हुई छाजन वाले मिट्टी के कच्चे घर हैं और हैं बँसवाड़ा के बलुहे खेत। 'मिट्टी की बारात' शीर्षक कविता में कवि ने जवाहरलाल नेहरू और कमला के अवशेषों की मिट्टी को गंगा की धारा मे

मिला कर मिट्टी के एक जीवन्त संसार को उभारा है। करुणा के स्पर्श ने इस कविता को काफी मर्मस्पर्शी बना दिया है। जवाहर और कमला की विशिष्ट मिट्टी को यहां सामान्य मिट्टी के स्तर पर उतर कर और भी अधिक महिमा-मंडित कर दिया गया है।[3]

अपने वर्ग के कवियों में सुमन जी अपनी सहज और प्रवाहपूर्ण शैली और अपने स्वभाव की मस्ती के कारण अलग से पहचाने जा सकते हैं।

यद्यपि उनकी शैली मुख्यत: मात्रिक छन्दों के वर्णनात्मक विधान में ही अधिक निखरी है तथापि उन्होंने कुछ मनोरम गीतों की भी रचना की है। प्रकृति चित्रण की दृष्टि से उन्होंने कुछ काफी सुन्दर कविताओं की रचना की है।[4] उदाहरण के लिए उनकी 'शरद सी तुम कर रही होगी कहीं सिंगार' कविता ली जा सकती है। श्री रामदरश मिश्र के अनुसार उनकी कविताओं में अभिधा शक्ति का प्रयोग अधिक है, जो अनेक स्थानों पर कविता को सपाट बना देता है।

एक समीक्षक ने लिखा है: सुमन जी मूलत: रोमाण्टिक कवि हैं। सामाजिक और सांस्कृतिक भूमिकाएं भी उनकी बहुत सी रचनाओं का आधार है, किन्तु इन दोनों संदर्भों मे उत्तेजना का केन्द्रीय स्थान है। प्रथम संदर्भ में उत्तेजना प्रचुर ऐन्द्रिक प्रतीतियों के साथ उपस्थित होती है तथा द्वितीय संदर्भ मे वह किसी व्यक्ति या समस्या को आधार बना कर कवि को इतिवृत्तात्मक उपचार में लगाती है। तात्कालिक इन्द्रियबोध के इस स्तर पर सुमन की प्रसिद्ध रचनाएं निर्मित हुई हैं।[5]

रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'

अंचल मूलत: छायावादोत्तर स्वच्छन्दतावाद के कवि हैं और उनमें इस धारा के प्रमुख स्तंभ बच्चन जी से भी कही अधिक वासना का उद्दाम वेग, मांसलता का प्रबल आकर्षण और रूप की अनबुझ प्यास है। छायावादी अशरीरीपन और सूक्ष्मता के विरुद्ध स्थूल शारीरिकता का नारा बुलन्द करने वालों में वे संभवत: सबसे पहले थे, इसी बात को लक्ष्य करके आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी ने उन्हें उस समय 'नवीन हिन्दी कविता का क्रान्ति दूत' कहा था।[6] अपने पहले दो काव्य-संकलनों—**मधूलिका** (३८) और **अपराजिता**

---

३. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी : मिट्टी की बारात, समीक्षा, सितम्बर १९७२.

४. रवीन्द्र भ्रमर : हिन्दी के आधुनिक कवि, २१५.

५. राजेन्द्र मिश्र, प्रगति, नयी कविता (सं. वासुदेव नन्दन प्रसाद) जयपुर ६४ में संकलित.

६. अपराजिता की भूमिका

(३९) में अंचल का यही वासनावादी और क्षणभोगवादी रूप सामने आता है। प्रगतिशील कविता की दृष्टि से उनके अगले तीन संकलन **किरण बेला** (४१), **करील** (४२) और **लाल चूनर** (४४) ही उल्लेखनीय हैं।

किरणवेला और **करील** में कवि ने प्रमुख रूप से समाज में व्याप्त विषमताओं का अंकन किया है। मजदूर वर्ग की दयनीय स्थिति और पूंजीपतियों की शोषक-वृत्तियों को प्रस्तुत करते हुए उसने मजदूरों के प्रति सहानुभूति और पूंजीपतियों के प्रति घृणा के भाव व्यक्त किये है। अनेक कविताओं में नारी-स्वातंत्र्य की बात भी कही गयी है।[७]

लाल चूनर (४४) की प्रस्तावना में **मिट्टी के फूल** के नरेन्द्र शर्मा की भांति ही अचल ने भी स्वीकार किया है कि क्योंकि उनमें जनता के प्रति गहरी संवेदना और क्रान्तिकारी मनोवल नही है, अतः वे प्रगतिशील कवि नही हैं। वास्तव में एक तो अचल की तृष्णा और वासना इतनी असन्तुलित है कि वे स्वयं उसे नन्ददुलारे वाजपेयी की तरह 'क्रान्तिकारी' कहने की हिमाकत नही कर सकते, दूसरे तत्कालीन प्रगतिशील चिन्तन पर कुत्सित समाजशास्त्रीय प्रभावों के कारण वे प्रेम की कविताओं और क्रान्ति की कविताओं में एक स्थायी विरोध भाव कल्पित कर लेते है। स्वभाव में उनके रूप की प्यास है, वासना का उद्दाम आवेग है, पर श्रेय वे क्रान्तिकारी कविताओं को मानते है।

लाल चूनर की 'नारी' शीर्षक कविता मे कवि नारी के प्रति भोगवादी दृष्टि से छुटकारा पाना चाहता है :

देख कर तुझको बिछौने की गुलाबी सुधि न आये

उसे इस वात का गम है कि नारी उसके सामने एक शक्ति, एक प्रेरणा वन कर क्यों नही आती, एक पीड़ा वन कर ही क्यो कलेजे में कसकती रहती है, लेकिन इस चाह के वावजूद भी नारी को भोग्या मात्र मानने की उसकी दृष्टि में कोई परिवर्तन नही आता।

लाल चूनर में प्रगतिशील दृष्टि से तीन-चार कविताए उल्लेखनीय कही जा सकती हैं—'तरुणाई : इन्कलाव से', 'वोल अरे कुछ वोल', 'जनगीत', 'तुम्हें सौगंध है कय्यूर के उन जां-निसारों की' और 'मजिल'। पर इनमे भी 'जनगीत' के सिवा सभी कविताएं साधारण किस्म के विचार-कथन मात्र हैं। हां जनगीत का आवेश उसे थोड़ा अलग ले जाता है।

वर्षान्त के बादल (५४), **विराम चिह्न** (५७) और **प्रत्यूष की भटकी किरण यायावरी** (६०) में पुरुष और नारी के मांसल प्रेम की आशा-निराशा, व्यथा-उल्लास और तृष्णा-आकांक्षा के व्यापक चित्र है। इन सौन्दर्य और प्रेम

---

७. राजेन्द्र प्रसाद मिश्र, आधुनिक हिन्दी काव्य, कानपुर, ६६, पृ. ३५०.

सम्बन्धी कविताओं में यद्यपि कहीं कही प्रेम का मानसिक पक्ष भी व्यंजित हुआ है, तथापि प्रधानता उसके शारीरिक पक्ष की ही है। सौन्दर्य और प्रेम, विरह और मिलन का चित्रण कोई अप्रगतिशील बात नहीं है, पर यदि जीवन के इस एक सत्य को इतना खींचाताना जाय कि वही एक मात्र सत्य लगने लगे, तो यह जीवन के प्रति असन्तुलित दृष्टि का ही प्रमाण माना जायगा।

इन संकलनों की रूमानी कविताओं मे मांसल प्रेम और प्रकृति के कई सुन्दर और हृदयस्पर्शी चित्र हैं (जैसे 'परिचय का प्रथम क्षण,' 'जा रहे वर्षान्त के बादल,' 'तुमने कहीं पुकारा,' 'खुले शिशिर की श्याम छटा,' तथा 'करेंगे अब हम तुमसे प्यार नहीं' आदि कविताओं में) और कहीं कही इस बात के इक्के दुक्के प्रमाण भी हैं कि कवि ने प्रगतिशील आदर्शों से बिल्कुल ही नाता तोड़ लिया हो, ऐसी बात नहीं है। इस दृष्टि से वर्षान्त के बादल की 'मौन ममता' और 'मैं निरन्तर लड़ रहा हूं', तथा विराम चिन्ह की 'नवयुग का दीप जलाएं', 'दलित-उत्पीडित मनुज' और 'नूतन अभियान,' 'अलविदा', 'नही जलेगी', आदि कविताएं उल्लेखनीय हैं। पर कला की दृष्टि से इनमें से लगभग सभी कविताएं साधारणता के स्तर से ऊपर नहीं उठ पाती। हां 'विराम चिह्न' की 'नहीं जलेगी' तथा 'अलविदा' अवश्य कवि के 'क्षयी रोमांस' और प्रगति के बीच के अन्तर्द्वन्द्व की ईमानदार अभिव्यक्ति के कारण कुछ अलग हो पाती हैं। 'नही जलेगी' में कवि उन मध्यमवर्गीय कवियो (और वह भी उनसे अलग नही है) की इस बात के लिए भर्त्सना करता है कि वे मंगनी की मोटरों पर चढ़ कर कवि-सम्मेलनों में प्रगति के सस्ते गीत सुनाते हैं, न्यस्त स्वार्थों और धन-सत्ता को कोसते फिरते है और फिर भी उन्ही की चाटुकारिता में रत रहते हैं, तारीफ प्राप्त करने के लिए उन्ही का मुंह जोहते हैं। अपने सहित ऐसे कवियों के लिए वह कहता है :

भरे पड़े हैं दाग विलासों के चुम्बन के
होठ तुम्हारे भीग गये हैं मन की रति से
सूख गया है बलिदानों का रक्त नसों में
नहीं जलेगी—आग क्रान्ति की इन फूंकों से नहीं जलेगी।

और कविता के उत्तरार्द्ध में वह अपनी सीमाओं की नम्रतापूर्वक स्वीकृति के साथ ही प्रगतिपंथी शक्तियों की करुणा पर विश्वास प्रकट करता है कि वे उसे पराया नही समझेंगी :

मेरी ही मादकता मुझको लिपट लिपट कर घेरती
जनम जनम की विफल वासना रह रह मुझको टेरती
कुछ भी हो पर मुझे तुम्हारी करुणा पर विश्वास है
पैर भले डगमग हों मेरे मन मंजिल के पास है।

नरेन्द्र शर्मा

नरेन्द्र शर्मा भी अंचल की तरह ही मूलतः छायावादोत्तर रूमानी कवि हैं। अन्तिमदौर में वे पन्त जी की तरह अरविन्दवाद के व्यापक प्रभाव में आये, लेकिन बीच में उनपर प्रगतिशील आन्दोलन का भी गहरा प्रभाव पड़ा। वैसे प्रमुखतः वे अपने ही शब्दों में 'मन की दुर्बलताओं के कवि'[८] है।

लाल निशान (४३) उनके प्रगतिशील जन गीतों का समग्र संकलन है। इसके अतिरिक्त उनकी कुछ प्रगतिशील कविताएं उनके अन्य संकलनों में भी मिल जाती हैं। ऐसी कविताओं में **पलाश बन** (४०) की कुछ प्रकृति संबंधी कविताए—'खुली हवा', 'आषाढ', और 'ज्येष्ठ का मध्याह्न'; **मिट्टी और फूल** (४२) की *'आज'*, *'युग और मैं'*, *'संकल्प'* और 'मनु के सपूत', **हंसमाला** (४६) की 'हिन्दू-मुसलमान', 'क्षुधा-सिन्धु', 'चेतावनी', 'जागरण नयन जावा', और 'एक गीत जय हिन्द', **अग्नि शस्य** (५१) की, 'कवि-किसान', 'क्रान्ति-स्वर' और 'गिद्ध लगे मंडराने', तथा **प्यासा निर्झर** (६४) की 'प्यासा निर्झर', 'पत्थर की दीवारों में', 'श्रमिक' और 'नेता-अभिनेता' आदि उल्लेखनीय हैं।

लाल निशान (४३) जन गीतों का संग्रह है। सीधी सादी भाषा और सरल अभिव्यक्ति से पूर्ण इस संकलन की कविताओं में प्रमुख है: 'लाल रूस', 'स्तालिन ग्राड', 'योम सोवियत,' और 'यकुम मई'।

'लाल रूस' नरेन्द्र शर्मा की प्रसिद्ध कविता है। सीधी-सरल शब्दावली में सोवियत भूमि के प्रति श्रद्धा और प्रेम व्यक्त किया गया है और मजदूरों के प्रिय बिम्बों में वहां की नयी समाज व्यवस्था को चित्रित किया गया है:

वहां राज है पंचायत का, वहां नहीं है बेकारी
वहां न लड़ती दाढ़ी-चोटी, वहां नहीं साहूकारी
मीलें वहां मजूरों की हैं, धरती वहां किसानों की
लाल रूस है ढाल साथियों सब मजदूर किसानों की!

और ऐसी धरती की रक्षा का संकल्प जगाया गया है:

लाल रूस का दुश्मन साथी दुश्मन सब इन्सानों का
दुश्मन है सब मजदूरों का, दुश्मन सभी किसानों का

अपनी रवानी के कारण यह कविता एक समय बहुत लोक प्रिय रही। 'योम सोवियत' द्वितीय महायुद्ध की वास्तविकता को सामने रखती है:

इसे जर्मनी और रूस की समझो नहीं लड़ाई भर
नाजी जर्मन की रूसी पर समझो नहीं चढ़ाई भर

८. देखिए **मिट्टी और फूल** का निवेदन.

आज रूस के मैदानों पर दुनियां भर का निपटारा
लाल फौज का वीर सिपाही ही नवयुग का हरकारा।

क्योंकि उस समय रूस :

देश नहीं वह, राष्ट्र नहीं वह, वह मानवता की आशा
लाल रूस के इन्कलाब की गाथा, दुनियां की गाथा।

'यकुम मई' एक लम्बी पर सुन्दर कविता है—करुण दृश्यों और दृढ़ संकल्पों से पूर्ण यह कविता शिकागो के मजदूरों के ऐतिहासिक १ मई १८८६ के आन्दोलन का प्रभावशाली वर्णन है :

सुनो साथियो एक देश है पूरे सात समन्दर पार
अमरीका का नाम बड़ा है, उसका बढ़ा चढ़ा व्यापार
दूर देश अमरीका जिसमें शहर शिकागो है विख्यात
सन अट्ठारह सौ छ्यासी में यकुम मई की है यह बात

कविता मे सरमायादारों की सत्ता और राज्य के वर्ग-स्वरूप को अच्छी अभिव्यक्ति मिली है :

मंदिर उनके, मस्जिद उनकी, गिरजे उनकी बाजू में
पैगम्बर, औतार, मसीहा, जैसे बाट तराजू में
दीन भी उनका, दुनियां उनकी, उनकी तोप और तलवार
उनके अफ़सर और गवर्नर, उनके ही साहब, सरकार!

और बसन्त के परिवेश में मजदूरों के जुलूस पर गोली चलने के बाद का यह दृश्य कितना मार्मिक है :

बागों बागों फूल खिले थे, छायी थी सब ओर बहार
ऊंचे-ऊंचे भवन सजे थे, सजा हुआ था चौक बजार
खिली सुबह की धूप सुनहली, बुलबुल डालों पर गाती
आसमान था नीला-नीला, चील एक दो मंडराती
लोथ पे लोथ पड़ी थी साथी, थी लोथों से सड़क भरी
सड़क के पत्थर लाल लाल थे, लाल थी रस्ते की बजरी!

यद्यपि इन गीतों में कहीं कहीं छन्द भंग (*क्या अमीर जीने के लिए हैं? गरीब मरने के लिए*, लाल निशान, पृ. ३४.) और कहीं कहीं अनगढ शब्दों का प्रयोग है (*वह इस दुनिया की हलचल को समझ सका क्या हब्बा भर*), तथापि रवानी और दो टूक बातों के कारण साधारण मजदूरों मे ये कविताएं लोकप्रिय हुई।

अन्य संकलनों में बिखरी हुई प्रगतिशील कविताओं में कही तो कवि अपने मन की दुर्बलता के विरुद्ध संघर्ष करता हुआ और अपने मन को समझाता हुआ नजर आता है :

उजड़ रही अनगिनत बस्तियां,
मन मेरी ही बस्ती क्या ?
धब्बों से मिट रहे देश जब
तो मेरी ही हस्ती क्या ?

—युग और मैं, मिट्टी और फूल

तो कही प्रकृति के कुंठा नाशक बिम्बों के सहारे अपने से बाहर निकलता और प्रणय जन्य निराशा से छुटकारा पाता हुआ दिखाई देता है। ऐसी कविताओं में प्रकृति का स्वस्थ और स्वास्थ्य दायक चित्रण किया गया है :

खुली हवा है, खुली धूप है
दुनियां कितनी सुन्दर रानी
आओ सारस की जोड़ी से
निकल चलें हम दोनों प्राणी

—खुली हवा, पलाश वन

कही कही प्रकृति का सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति के लिए सफल प्रतीकात्मक प्रयोग भी किया गया है, जैसे पलाश वन की 'ज्येष्ठ का मध्यान्ह' कविता में। कई कविताओं में कवि इतिवृत्तात्मक ढग से, क्रान्तिकारी आन्दोलनों की याद दिलाकर अपने पाठकों का आह्वान करता है, जैसे हंस माला की 'चेतावनी' मे, और कहीं सामाजिक यथार्थ के इक्के दुक्के चित्र खीचता है, जैसे अग्नि शस्य की 'गिद्ध लगे मंडराने' और प्यासा निर्झर की 'नेता-अभिनेता' में।

कुल मिला कर नरेन्द्र शर्मा की प्रगतिशील कविताओं में वर्णन और विचार-कथन ही अधिक है, रागात्मक ऊष्मा की कमी है, और वे साधारणता से यदा-कदा ही ऊपर उठ पायी हैं।

नीरज

रूमानी रुझान के प्रगतिशील कवियों में नीरज कदाचित् सबसे महत्वपूर्ण कवि हैं। उनका जन्म इटावा जिले के पुरावली गाव में एक साधारण कायस्थ जमींदार के घर १९२६ में हुआ था। उनके पिता जी ने जमींदारी बेच डालने के बाद कानपुर जिले मे एक मवेशी खाने में नौकरी कर ली थी। उनका देहान्त बालक गोपालदास को छः वर्ष की उम्र में ही हो गया

था। परिवार में मां के अतिरिक्त तीन और दुधमुहे बच्चे भी थे। गोपालदास को उसकी बुआ ले गयी और उसके पास रह कर ही उसने ४२ में हाई स्कूल की परीक्षा पास की। इसके बाद उसने टाइपिस्ट से लेकर पान-बीड़ी बेचने और कॉलेज में पढ़ाने तक न जाने कितने काम किये। अपने जीवन की मूर्ति उसने स्वयं अपने हाथों से मिट्टी-पानी एकत्र करके बनायी।[९]

नीरज का पहला संकलन संघर्ष (४४) है (दूसरे संस्करण में इसका नाम नदी किनारे कर दिया गया)। स्वयं नीरज के शब्दों में इस संकलन में पाठकों को उनके किशोर मन की छटपटाहट के सिवा कुछ नहीं मिल सकता। संकलन पर 'निशा निमंत्रण' और 'एकान्त संगीत' के बच्चन का गहरा प्रभाव है— भाषा और छन्द ही नहीं, भावभूमि भी बच्चन की ही है।

दूसरे संकलन अन्तर्ध्वनि (४६) का भी (दूसरे संस्करण में इसका नाम लहर पुकारे कर दिया गया) मूल स्वर यद्यपि छायावादी और छायावादोत्तर रोमांस का है, तथापि यहा प्रगतिशील आन्दोलन का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देने लगा है। संकलन की प्रारंभिक कविताओं पर निराला, पन्त, महादेवी और बच्चन की भाषा शैली का काफी प्रभाव दिखाई देता है।[१०] उत्तरार्ध में कवि अपनी एक अलग शैली बनाता नजर आता है। संकलन की प्रगतिशील कविताओं मे 'नर होकर कर फैलाता है', 'मजदूर का स्वप्न', 'हिम्मत मत हार रे', 'वह भी इस जग का मानव है', 'विद्रोही', 'जन्म नव जब-जब मुझे दो', 'प्राण ! नर तन दो' आदि का नाम लिया जा सकता है।

इन कविताओं में दलित शोषित मानवों के प्रति न केवल कवि के हृदय की मानववादी सहानुभूति ही व्यक्त होती है, बल्कि उनके लिए संघर्ष करने की चाह भी वाणी प्राप्त करती है—'मजदूर का स्वप्न' इन कविताओं में कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। सरल सहज भाषा में किसान जीवन की एक मार्मिक कहानी के आधार पर लिखी हुई इस कविता का अन्त इन शब्दों में होता है :

मां का दूध हराम तुम्हें यदि
बदला यह न चुकाओ,
जीना तुम्हें गुनाह न यदि
इसकी तुम खाक उड़ाओ

---

९. ललित मोहन अवस्थी; आज के कवि, पृ. १५७-५८.

१०. जैसे 'जयति हिन्द', 'कब्र का दिया', 'मैं किसी के चल चरण का चिह्न हूं', 'दूर मत करना चरण से', 'सजल सजल निज नील नयन घन' आदि कविताओं पर.

मानव तुम सौगंध तुम्हें है
अपनी मानवता की
ईंट हिला देना नर-भक्षक—
इस वैभव सत्ता की !

लहर पुकारे, पृ. २

लहर पुकारे के बाद की कविताओं में 'जीवन-गीत' कविता, जो दो गीत (५२) संकलन का उत्तरार्ध है, और जो वास्तव में १९४५ में रचित (और अप्रकाशित) नीरज के खंड काव्य 'शान्तिलोक' का ही एक अंश है, उल्लेखनीय है। जीवन-गीत जैसा कि नीरज जी ने स्वयं दो गीत के निवेदन में स्वीकार किया है, कामायनी की छाया में लिखा गया था, और उसकी भाषा शैली से बहुत प्रभावित है। एक पुरुष और नारी के बीच के वार्तालाप के रूप में लिखी हुई यह कविता नारी-सौंदर्य के ही नहीं, मानव-गौरव के भी विराट वर्णन के कारण स्मरणीय है। नारी को यहां एक जाग्रत करने वाली प्रेरक शक्ति के रूप मे प्रस्तुत किया गया है। जीवन-गीत के कुछ अंश—विशेषतौर से मानव-गरिमा के विराट वर्णन से संबंधी अंश—काफी सुन्दर और प्रभावशाली बन पड़े है :

तुम्हारी ऊंचाई को देख
स्वयं पर लज्जित नीलाकाश
तुम्हारी गंभीरता विलोक
ले रहा सागर फेनोच्छ्वास
तुम्हारी मुट्ठी में भूकम्प
तुम्हारे इंगित में तूफान
तुम्हारे कम्पन में विस्फोट
ठोकरों में असंख्य वरदान
तुम्हारे आलिंगन में मुक्ति
अमृत की अधरों में मुस्कान
अस्थियों में शत वज्र अजेय
नयन-कोरों में निशा-विहान
तुम्हारी तन जाती जब भौंह
खौलने लगता सिन्धु अधीर
डोलता इन्द्रासन भय भीत
स्वर्ग बरसाने लगता नीर

'जीवन गीत' की शैली यद्यपि कामायनी की शैली से बहुत प्रभावित है, तथापि कहीं-कहीं नीरज की उस विशिष्ट शैली के दर्शन होने लगते हैं, जिसका विकसित रूप उनकी बाद की कविताओं की विशेषता है :

गलाता निज की देह हिमाद्रि
गूंथने को नदियों के केश

विभावरी (५१) मे कवि जीवन तथा यौवन की क्षण भगुरता, मृत्यु, नियति आदि की बार-बार चर्चा करता हैं और इनसे बचने के लिए अपनी 'सुनयना' से जी भर कर पिलाने का आग्रह करता है। इस सकलन मे मृत्यु और वासना के ही स्वर प्रधान है।

मृत्यु भावों से उसका हृदय इतना आतकित है कि उसे धरती कब्र और आसमान कफन लगता है, जन्म मे वह मरण त्यौहार देखता है यहा तक कि उसे लगता है कि :

हर पखेरू का यहां है नीड़ मरघट पर
है बंधी हर एक नैया मृत्यु के तट पर
खुद बखुद चलती हुई यह देह अर्थी है...
भूमि से, नभ से, नरक से, स्वर्ग से भी दूर
हो कहीं इन्सान, पर है मौत से मजबूर !

यहा तक कि उसे प्रकृति मे भी मृत्यु-बिम्ब ही दिखायी पड़ते है : 'देख धरा की नग्न लाश पर नीलाकाश खड़ा है' और 'सूर्य उठाये हुए चांद की अर्थी निज कधो पर'।

और वासना ? नीरज विभावरी मे अतृप्त वासना के कवि के रूप मे सामने आते है : 'सागरो की देह' उनको प्यासी बाहुओं के कुज में शरमाई हुई पड़ी दिखाई देती है और वे ऐसे मासल बिम्ब प्रस्तुत करते हैं :

खिसक खिसक जाता उरोज से अभी लाजपट
अंग अंग में अभी अनंग-तरंगित कर्पण
केलिभवन के तरुणदीप की रूप शिखा पर
अभी शलभ के जलने का उल्लास शेष है।

लेकिन फिर भी सकलन में कही कही कवि का प्रगतिशील रूप भी व्यक्त होता है :

मै तूफानों में चलने का आदी हूं
तुम मत मेरी मंजिल आसान करो

और

तुम मुझे इसके लिए चाहे करो बदनाम

क्यों न कितने ही बुरे मेरे धरो तुम नाम
दंड भी चाहे कठिन तुम दो मुझे इतना
डूब जाये आंसुओं में हर सुबह हर शाम
पर यही अपराध मैं हर बार करता हूं
आदमी हूँ आदमी से प्यार करता हूं!

दो गीत का पूर्वार्ध 'मृत्युगीत' है। यह एक मार्मिक और भावपूर्ण कविता है। जहा एक ओर मृत्यु का त्रास, जीवन की नश्वरता का आभास और काल की क्रूरता के सामने झुकने की मजबूरी की भावनाएं इस कविता में एक दर्द-भरे स्वर मे अभिव्यक्त हुई हैं, वहां दूसरी ओर जीवन की शक्तियों के प्रति एक दृढ़ आस्था, चेतन की अमरता में गीतानुवर्ती विश्वास, मृत्यु की, जीवन की प्रगति की ही एक कडी के रूप मे कल्पना, और मृत्यु को एक साहसी वीर की तरह स्वीकार करने का ब्राउनिंग जैसा भाव इस कविता की विशेषताएं हैं।

'मृत्यु गीत' मे नीरज की अपनी काव्यशैली की समृद्धि पहली बार स्पष्ट रूप से हमारे सामने आती है। काल के विषय में लिखते हुए कवि कहता है :

है उसे पता क्या एक सिसकते आंसू में
कितनी क्वांरी साधों का लोहू रोता है

मृत्यु नीरज के प्रिय विषयों में से एक है, इसीलिए कई आलोचकों ने उसे मृत्युवादी कवि तक कह दिया है। मृत्युबोध आधुनिक कविता का एक प्रमुख स्वर माना जाता है। पश्चिम की ह्रासोन्मुख कविता इस मृत्युबोध से त्रस्त है। पर मृत्यु पर कविता लिखने मात्र से किसी को मृत्युवादी नही कहा जा सकता। मृत्यु जीवन का एक सत्य है, और इसलिए जीवन की तरह उसका भी काव्य-विषय होना बिल्कुल स्वाभाविक है। मूल प्रश्न यह है कि कोई कवि मृत्यु को किस तरह देखता है?

जहां तक नीरज की इस कविता का सवाल है यह स्वीकार करना होगा कि बीच-बीच में मृत्यु के आगे समर्पण की मजबूरी से उद्भूत निराशा की अभिव्यक्तियों और मृत्यु की चुनौती के विरोध में आत्मा की अमरता के खोखले उत्तर के बावजूद कविता का मूल स्वर न केवल आशावादी है, बल्कि मृत्यु की विभीषिका पर जीवन की जयकार से भी भरा हुआ है।

उदाहरण के लिए नश्वरता के भीतर ही अमरता के दर्शन करने वाली ये पक्तियां देखिये :

है एक किरण ऐसी सूरज की आंखों में
बुझ कर भी जो हर भोर जगाया करती है
है एक बूंद ऐसी बादल के आंचल में

सारी दुनिया को जो नहलाया करती है
मिट्टी की पुतली में है ऐसा एक स्वप्न
जिसके कारण इन्सान नहीं मर सकता है

और मृत्यु के त्रास की छाया में जीवन की सार्थकता का यह स्वर सुनिये :

लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कभी दोस्त
केवल तुम अपने लिए जियो, जग को भूलो
तुम जलो जहां, हो जाय प्रकाशित धरा वहां
मधुमय हो सारा विश्व, कभी यदि तुम फूलो

कविता का अन्त भी एक मानववादी प्रेम के स्पर्श के साथ होता है—

लो चला, संभालो तुम सब अपना साजबाज,
दुनिया वालों से प्यार हमारा कह देना
भूले से कभी अगर मेरी सुधि आ जाए
तो पड़ा धूल में कोई फूल उठा लेना !

यह सब देखते हुए कवि का यह दावा गलत नहीं लगता कि उसने मृत्यु के बहाने जिन्दगी की बात कही है :

जो अब तक इतनी देर कही मैंने तुमसे
वह बात जिन्दगी की थी, मृत्यु बहाना था ।

प्राणगीत (१९५३) की भूमिका में कवि ने कविता और जीवन के बारे में अपने दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति दी है। यहां उसने अपनी अनुभूति द्वारा उपलब्ध चार सत्यों की ओर संकेत किया है—सौन्दर्य, प्रेम, मृत्यु और रोटी। सौन्दर्य को वह चिति शक्ति मानता है। इसके स्पर्श की सुन्दर अभिव्यक्तियां नीरज की कई कविताओं में मिलती हैं—

एक ऐसी हंसी हंस पड़ी धूल यह
लाश इन्सान की मुस्कुराने लगी
तान ऐसी किसी ने कहीं छेड़ दी
आंख रोती हुई गीत गाने लगी

और

कहां दीप है जो किसी उर्वशी की
किरन अंगुलियों को छुए बिन जला हो

यहां उवर्शी सौन्दर्य का प्रतीक है और दीपक के रूपक से चेतना के जन्म की ओर संकेत है।[11]

---

११. प्राणगीत, दृष्टिकोण, पृ. १ ।

प्रेम नीरज जी के लिए गति का पर्याय है। प्रेम को वे एक रहस्यपूर्ण शक्ति के रूप में कल्पित करते हैं, हृदय की अनिवार्य- भूख मानते हैं और 'आवागमन के चक्र' का कारण प्रत्येक आत्मा द्वारा अपने आत्मिक साथी की असफल खोज मानते हैं, आत्मिक साथी की प्राप्ति ही मुक्ति है। आत्मिक साथी की खोज में हम बारंबार भटक जाते हैं, क्योंकि—

खोजने जब चला मैं तुम्हे विश्व में
मन्दिरों ने बहुत कुछ भुलावा दिया
खैर पर यह हुई उम्र की दौड़ में
ख्याल मैंने न कुछ पत्थरों का किया
पर्वतों ने झुका शीश चूमे चरण
बांह डाली कली ने गले में मचल
एक तस्वीर तेरी लिए किन्तु मैं
साफ दामन बचा कर गया ही निकल

इस तरह पूजा-अर्चन, मंदिर-मस्जिद, और प्रकृति हमें अपने आत्मिक साथी की खोज से कई बार भटका देते है—क्योंकि हमारा आत्मिक साथी तो मनुष्यों में ही मिल सकता है। आत्मिक साथी की यह खोज अन्त में हमें विश्वात्मा तक पहुंचा देती है—और यही मनुष्य की मुक्ति है—

मैं तो तेरे पूजन को आया था तेरे द्वार
तू ही मिला न मुझे वहां मिल गया खड़ा संसार

क्योंकि

विश्व में तुम, और तुम में विश्व भर का प्यार
हर जगह ही अब तुम्हारा द्वार !

इस तरह थोड़े से रहस्यवादी स्पर्शों के बावजूद प्रेम के प्रति नीरज का दृष्टिकोण मूलतः मानववादी और प्रगतिशील है। प्रेम वे समष्टि के सामने व्यष्टि के समर्पण को मानते हैं, शेष सृष्टि के साथ मनुष्य के रागात्मक संबंध को मानते हैं—उसे व्यक्ति को अहं की संकुचित सीमाओं से बाहर निकालने वाली एक बहुत बड़ी शक्ति के रूप में कल्पित करते हैं।

मृत्यु, गति का पर्याय, आत्मा के साथी की लम्बी खोज—जीवन—के बीच-बीच में पड़ने वाला विश्राम स्थल है। चौथे सत्य रोटी को भी वे प्रेम के अन्तर्गत लेते हैं, क्योंकि जिस प्रकार प्रेम के माध्यम से आखिर हम मानव एकता पर पहुंचते हैं, उसी प्रकार रोटी के माध्यम से भी।

प्राणगीत में पहली बार नीरज का ओजस्वी और दृढ़ प्रगतिशील रूप इतनी बुलन्दी के साथ सामने आता है। संकलन की पचास कविताओं में से सात अरविन्द की कविताओं के अनुवादों को, सात जीवन की नश्वरता तथा जीवन और मृत्यु के द्वन्द्व से सम्बंधित कविताओं ['एक पांव चल रहा अलग अलग', 'कहते कहते थके', 'इस तरह तय हुआ', 'यूंही', 'यूंही आदमी है मौत से लाचार', 'फूल की सारी कहानी', और 'नसैनी'] पांच रूमानी प्रेम और शृंगार की कविताओं ['अब न तुम ही मिले', 'मुझे न करना याद', 'जब सूना सूना लगे तुम्हें जीवन अपना', 'तुम्हारे बिना आरती का दिया यह', और 'कौन तुम हो'] तथा एक अहिंसावादी ['दुश्मन को अपना हृदय जरा देकर देखो'] कविता को छोड़ कर सकलन की शेप सब कविताएं (तीस) प्रगतिशील भावभूमि की हैं। रूमानी गीतों में से भी दो में ['जब सूना सूना लगे तुम्हें जीवन अपना' और 'तुम्हारे बिना आरती का दिया यह'], प्रेम के त्यागपूर्ण और प्रेरणायुक्त पक्ष का उद्घाटन किया गया है और इसलिए इन्हे भी प्रगतिशील कविताओं मे ही गिनना उचित होगा।

हिन्दी की प्रगतिशील कविता के इतिहास मे **प्राणगीत** सकलन का महत्व कई दृष्टियों से है। प्रगतिशील कविता के किसी और सकलन में एक साथ परिमाण और गुण दोनों दृष्टियों से इतनी और इतनी अच्छी कविताएं मिलना थोड़ा कठिन है।

विभावरी की मृत्यु भावना और रूमानियत यहां भी है, पर तुलनात्मक रूप मे प्रगतिशील दृष्टि इतनी मुखर है कि वे सब दबी हुई लगती हैं। निश्चय ही **प्राणगीत** ने हिन्दी को एक दर्जन के करीब सुन्दर और मर्मस्पर्शी प्रगतिशील कविताएं दी हैं। **प्राणगीत** की ऐसी कविताओं में से 'कोई नहीं पराया', 'मेरा घर सारा संसार है', 'जगत सत्यं ब्रह्म मिथ्या', 'आदमी को प्यार दो', 'भूखी धरती', 'मनुष्य की एवरेस्ट विजय पर', 'लेकिन मन आजाद नहीं है' तथा 'अब युद्ध नहीं होगा', आदि को भुलाया नहीं जा सकेगा।

'कोई नहीं पराया' एक सूफी मस्ती और कबीरी फक्कड़पन के साथ गाया हुआ मानववादी गीत है, जिसमे परलोक और मन्दिर-मस्जिदों में बंद धर्मों को इहलोक और मानव धर्म की चुनौती है। 'जगत सत्यं ब्रह्म मिथ्या' में 'इहलोकवाद' इस लोक की प्रकृति के प्रति आकर्षण के रूप में बड़े सुन्दर ढंग से व्यक्त हुआ है; धरती के प्रति कवि हृदय का राग मर्म को छूने वाला है—

निज धानी चूनर उड़ा उड़ा कर नयी फसल
जब दूर खेत से मुझको पास बुलाती है
तब मेरे तन का रोम रोम गा उठता है
औ सांस सांस मेरी कविता बन जाती है

यह कविता परलोकवाद पर इहलोकवाद और ब्रह्मवाद पर मानववाद की विजय का गान है।

'सूनी सूनी जिन्दगी की राह' मनुष्य के प्यार का गीत है—हर स्थिति मे मनुष्य का प्यार ही कवि के लिए महत्वपूर्ण वस्तु है :

एक चांद के बगैर सारी रात स्याह है
एक फूल के बिना चमन सभी तबाह है
जिन्दगी तो खुद ही एक आह है कराह है
प्यार भी न जो मिले तो जीना फिर गुनाह है
धूल के पवित्र-नेत्र नीर से
आदमी के दर्द-दाह पीर से
जो घृणा करे उसे प्रहार दो
प्यार करे उस पे दिल निसार दो
आदमी हो तुम कि उठो आदमी को प्यार दो, दुलार दो

'भूखी धरती' शोषित और दलित लोगों के विद्रोह की आवाज है। सीधी आह्वान मूलक होकर भी यह कविता कम प्रभावशाली नही है :

मासूम लहू की गंगा में आ रही बाढ़
नादिरशाही सिंहासन डूबा जाता है
गल रही बर्फ सी डालर की काली कोठी
एटम को भूखा पेट चबाए जाता है
निकला है नभ पर नये सवेरे का सूरज
हर किरन नयी दुलहन सी सेज सजाती है
हो सावधान, संभलो ओ ताज-तख्त वालो !
भूखी धरती अब भूख मिटाने आती है !

'मनुष्य की एवरेस्ट विजय पर', मानवीय शक्ति और गौरव का गान है। मनुष्य की प्रगति और भविष्य के प्रति दृढ आस्था इस कविता में कूट कूट कर भरी हुई है—

आखिर मुट्ठी भर धूल पहुंच ही गयी वहां
जा सके न पांव जहां इतिहास पुराणों के

आखिर धरती के बेटों ने गूंथ ही दिये
बरफीले बाल पहाड़ों के, चट्टानों के

'अब युद्ध नहीं होगा', इस संग्रह की तो सर्वश्रेष्ठ कविता है ही, नीरज की श्रेष्ठ प्रगतिशील कविताओं मे भी उसका महत्वपूर्ण स्थान है। युद्ध के विरोध मे इतनी सशक्त और प्रभावपूर्ण कविता कदाचित ही हिन्दी में कोई और लिखी गयी हो। कविता में जगत और जीवन के प्रति एक अदम्य मोह और आकर्षण को पृष्ठभूमि बना कर युद्ध की विभीषिका को बहुत ही कुशलतापूर्वक चित्रित किया गया है—

मैं सोच रहा हूं युग जो इतिहास लिख रहा
क्या रक्त घुलेगा उसकी सारी स्याही में ?
क्या लाशों के पहाड़ पर सूरज उतरेगा
क्या चांद सिसकियां लेगा ध्वंस-तबाही में
क्या गोली की बौछार मिलेगी सावन को
क्या डालेगा विनाश झूला अमराई में ?

दर्द दिया है (५६) प्रगतिशील दृष्टि से नीरज का दूसरा महत्वपूर्ण संकलन है। **दर्द दिया है** की भूमिका में कवि कहता है "मेरी मान्यता है कि साहित्य के लिए मनुष्य से बड़ा और कोई दूसरा सत्य संसार में नहीं है, और उसे पा लेने में ही उसकी सार्थकता है।" और "मानवीय संबंधों मे मेरे विचार से प्रेम का संबंध सर्वश्रेष्ठ है। प्रेम और विशेष रूप से मानव प्रेम मेरी कविता का मूल स्वर है।"

इस भूमिका में कवि ने प्रेम के पांच स्तरों का उल्लेख किया है जिन्हें वह क्रमशः वासना या आकर्षण, प्रेम, भक्ति, सामाजिक चेतना और जनमंगल की तथा व्यक्ति-चेतना के विश्व-चेतना में पूर्ण तिरोभाव की स्थिति कहते हैं और इनका संबंध क्रमशः अन्नमय कोष, प्राणमय कोष, मनोमय कोष, विज्ञानमय कोष और आनन्दमय कोष से जोड़ते हैं। उनके अनुसार वास्तविक प्रगतिशील कविता का जन्म प्रेम के चौथे स्तर में होता है और प्रेम का पाचवा स्तर प्रगतिशील कविता का अन्तिम सोपान है।

यहां नीरज जी ने निश्चय ही प्रगतिशील कविता के दो स्तरों—साधनावस्था और सिद्धावस्था—की ओर सही संकेत किया है और साहित्य में प्रगतिवाद को उसके राजनीतिक रूप मात्र में न देख कर उसके सम्पूर्ण सांस्कृतिक और मानवीय रूप को ध्यान में रखा है, लेकिन प्रगतिशील कविता के इन स्तरों

को 'विज्ञानमय' और 'आनन्दमय' कोष की अध्यात्मवादी शब्दावली से जोड़ने से साहित्य-समीक्षा के क्षेत्र में वैचारिक अस्पष्टता और भटकाव ही बढ़ सकता है।

इस संकलन की ३१ कविताओं में से भी २० के करीब प्रगतिशील कविताएं हैं शेष रूमानी प्रेम और शृंगार की और जीवन की नश्वरता तथा जन्म-मरण के द्वन्द्व की कविताएं है। संकलन की विशिष्ट प्रगतिशील कविताओं में 'मेरा गीत दिया बन जाए', 'हजारों साभी मेरे प्यार के', 'उदजन बम के परीक्षण पर', 'गर कलम न छीनी गयी', 'अमर वह व्यक्ति', 'अहं की कारा', 'मैं कवि नही हूं', आदि प्रमुख हैं।

'उदजन बम के परीक्षण पर' इस संकलन की विशिष्ट कविता कही जा सकती है। स्वयं नीरज इसे अपनी दस श्रेष्ठ कविताओं में से एक मानते है, लेकिन लगभग ऐसे ही विषय पर लिखी हुई उनकी पहली कविता 'अब युद्ध नही होगा' के मुकाबले यह कविता साधारण स्तर की है। नीरज की विशिष्ट लाक्षणिकता का प्रयोग इसमें भी कुशलतापूर्वक हुआ है। श्रम के गौरव का वर्णन इस कविता की एक और विशेषता कही जा सकती है।

संकलन की छह-सात कविताएं काव्य-कला और कवि-धर्म संबंधी हैं— 'मेरा गीत दिया बन जाए', 'दुनियां के घावों पर मरहम जो न बने, उन गीतों का शोर मचाना पाप है', 'अब जमाने को खबर कर दो कि नीरज गा रहा है,' 'गर कलम न छीनी गयी तो हिन्दुस्तान बदल कर छोड़ूंगा,' 'अमर वह व्यक्ति अमर व्यक्तित्व', 'मैं कवि नही हूं' और 'काव्य को पर वाद का कंगन न बनने दो'। ये सब कविताएं कविता के प्रति कवि के प्रगतिशील मानववादी दृष्टिकोण को व्यक्त करती हैं, और काव्य-कर्म के प्रति कवि की सजगता का प्रमाण हैं।

दर्द दिया है में नीरज की प्रेम संबंधी कविताओं के स्वर में भी मांसलता की जगह एक भक्ति की, एक एकान्त समर्पण की भावना दिखाई देती है:

तुमसे लगन लगायी
उमर भर नींद न आयी
सांस सांस बन गयी सुमिरनी
मृग छाला सब की सब घरिणी
क्या गंगा कैसी वैतरिणी
भेद न कुछ कर पायी!

यह प्रवृत्ति कवि पर आगे आने वाले वैष्णव अध्यात्मवादी प्रभावों का बीज रूप कही जा सकती है।

इस तरह इस संकलन में एक ओर तो कवि का मानववादी स्वर और भी बुलदियों को छूने लगा है और दूसरी ओर इतर आध्यात्मिक प्रभाव उस पर बढ़ते गये हैं।

आसावरी (५८) की अधिकांश कविताएं शृंगार और प्रेम—मिलन और विरह की रूमानी अभिव्यक्तिया हैं। एक सुन्दर कविता मृत्यु के विषय मे है—'सपन भरे फूल से'। कुछ कविताओं में प्रगतिशील विचारधारा की अभिव्यक्ति भी की गयी है। ऐसी कविताओं में 'बुलबुल और गुलाब', 'अस्पृश्या', 'सिक्का', 'हम सब अमरीकन खिलौने है', 'जनपद की धूल', और 'नई सभ्यता', के नाम लिये जा सकते है। लेकिन इनमें से अधिकांश कविताएं साधारण स्तर की हैं। सिवाय 'हम सब अमरीकन खिलौने हैं' और 'नई सभ्यता' के, जो सुन्दर व्यंग कविताएं हैं।

नीरज की पाती (५८) प्रगतिशील दृष्टि से नीरज का तीसरा महत्वपूर्ण संकलन है। संकलन की कई पातियां नीरज की लोक प्रिय कविताएं हैं। 'कानपुर के नाम', 'नील की बेटी के नाम', 'काश्मीर के नाम', 'पाकिस्तान के नाम', 'दक्षिण अफ्रीका की रंग भेदी नीति के नाम', 'पुर्तगाल के नाम', 'सांसों के मुसाफिर के नाम' और 'फिरकापरस्तों के नाम' पातियां, इस संकलन की उल्लेखनीय कविताएं हैं और इस बात का प्रमाण है कि नीरज जी अपने आस-पास के संसार की सामाजिक-राजनीतिक घटनाओं से संवेदित होते रहे है। लेकिन शिल्पगत एकरसता, एक जैसी पृष्ठभूमि और उन्ही उपमाओं की फिर-फिर दुहराहट के कारण सकलन की अधिकांश कविताएं अधिक प्रभावशाली नही बन पायी हैं। हां 'नील की बेटी के नाम' और 'सांसों के मुसाफिर के नाम' अवश्य नीरज की ही नही प्रगतिशील काव्य धारा की भी श्रेष्ठ उपलब्धियां हैं।

'नील की बेटी के नाम' हिन्दी कवि की संवेदनाओं के अन्तरराष्ट्रीय फैलाव का एक ज्वलंत उदाहरण है:

और ऐसे में बिठाये सामने लौ थरथराती
नील की बेटी तुझे मैं लिख रहा हूं प्रेम पाती
कौन हूं, क्या हूं बताने की जरूरत कुछ नहीं है
सिर्फ इतना जान कवि हूं हर जमीं मेरी जमीं है
प्रिय मुझे जितना कि भारतवर्ष जो मेरा वतन है
कम नहीं उससे तनिक प्यारा मुझे तेरा चमन है!

नील की बेटी मिश्र की प्रकृति और संस्कृति का एक रागभीना बिम्ब इस कविता के प्रभावशाली अंशो मे से एक है:

वे पिरामिड, ढूह वे, ममियां वही सदियों पुरानी
ताड़ की पांतें खजूरों की कतारें आसमानी
काफ़िले वे, ऊंट वे, वे घंटियां वंशी-विजन की
प्यास रेगिस्तान की, गर्मी बगूलों के हवन की
मस्जिदें जिनकी अजानों से सुबह जग में हुई है
वे रूई के फूल, पाकर रेत जिनको हंस गयी है

और एक नव-स्वतंत्र सहयात्री देश की भूमि और उसके लोगों के प्रति इस गहरे राग में से ही पैदा होता है यह आक्रोश :

पर न घबरा नील तेरा पुत्र नासिर सा जवां है
साथ सारा एशिया है साथ सब हिन्दोस्तां है
हाथ जो तुझ पर उठेगा हम उसे झकझोर देंगे
जंग की जो भी करेगा बात वह मुंह तोड़ देंगे
चोर जो आज़ादियों का, चोर वह ईमान का है
शत्रु है जो शान्ति का वह शत्रु हर इन्सान का है
हम बता देंगे कि कितनी नील की गहरी सतह है
हम बता देंगे कि कैरों में न चोरों को जगह है
हम बता देंगे कि धरती पौंड से बंटती नहीं है
धार पानी की कभी तलवार से कटती नहीं है !

'सांसों के मुसाफिर के नाम' एक सूफी मस्ती से भरा हुआ मानववादी तराना है :

इसको भी अपनाता चल, उसको भी अपनाता चल
राही हैं सब एक डगर के सब पर प्यार लुटाता चल
बिना प्यार के चले न कोई, आंधी हो या पानी हो
नई उमर की चुनरी हो या कमरी फटी पुरानी हो
तपे प्रेम के लिए धरित्री जले प्रेम के लिये दिया
कौन हृदय है नहीं प्रेम की जिसने की दरबानी हो
तट तट रास रचाता चल, पनघट पनघट गाता चल
प्यासी है हर गागर दिल का गंगाजल छिड़काता चल
राही हैं सब एक डगर के सब पर प्यार लुटाता चल !

लाक्षणिक प्रयोग इन पंक्तियों की प्रभावशीलता का एक प्रमुख उपकरण हैं। आज की दुनियां की यथार्थ स्थिति को कितने सुन्दर ढंग से रूपायित किया गया है :

हृदय-हृदय के बीच खाइयां लहू बिछा मैदानों में
घूम रहे हैं युद्ध सड़क पर, शान्ति छिपी शमशानों में
जंजीरें कट रहीं मगर आज़ाद नहीं इन्सान अभी
दुनियां भर की ख़ुशी कैद है चांदी-जड़े मकानों में।

और कितनी मर्मस्पर्शी है ये पंक्तियां :

नयन नयन तरसें सपनों को, आंचल तरसें फूलों को
आंगन तरसें त्योहारों को, गलियां तरसें झूलों को
किसी होंठ पर बजे न बंशी, किसी हाथ में बीन नहीं
उम्र समंदर की दे डाली किसने चन्द बबूलों को।

निश्चय ही ये दोनों कविताएं हिन्दी की प्रगतिशील कविता के दो मील पत्थर हैं!

बादर बरस गयो (५८) मूलतः नीरज की स्वच्छन्दतावादी और रूमानी कविताओं का संग्रह है, अधिकांश कविताएं विरह-मिलन, रूप-शृंगार और जीवन की क्षण भंगुरता तथा जन्म-मृत्यु-सृजन-ध्वंस से संबंधित है। संकलन की प्रगतिशील कविताओं में—'रुके न जब तक सांस', 'मुस्कराकर चल मुसाफिर', 'मैं तूफानों में चलने का आदी हूं', 'मैं अकम्पित दीप प्राणों के लिये', 'पन्थ की कठिनाइयों से मान लूं मैं हार यह संभव नहीं है', 'चांदी का यह देश' और 'मुश्किलों में मुस्कुराना धर्म है' कविताओं के नाम गिनाये जा सकते हैं। इनमें से प्रारंभिक पांचों कविताएं बीहड़ राहों में भी आगे बढ़ते जाने वाले एक पथिक का बिम्ब प्रस्तुत करती हैं। पथिक का बिम्ब प्रगतिशील कविता का लोकप्रिय और बहुत दुहराया गया बिम्ब है। और नीरज ने भी इसे लगातार पांच कविताओं में दुहराया है—फिर भी यह नीरज की शिल्प कुशलता ही कही जायेगी कि इनमें से कोई भी प्रभावहीन नहीं बन पायी है।

मुक्तकी (६०) में नीरज की सौ रुबाइयां संकलित हैं। अधिकांश रुबाइयां सौन्दर्य, प्रणय, नियति और मृत्यु से संबंधित है। कुछ में विद्रोह और मानवता के स्वर भी हैं। जैसे :

आदमी फौलाद को पी सकता है
आदमी चट्टान को सी सकता है
यह तो सब ठीक मगर प्यार बिना
आदमी कहीं भी न जी सकता है।

तन की हवस मन को गुनहगार बना देती है।
बाग के बाग को बीमार बना देती है

भूखे पेटों को देशभक्ति सिखाने वालो
भूख इन्सान को गद्दार बना देती है ।

क्या करेगा प्यार वो भगवान को
क्या करेगा प्यार वो ईमान को
जन्म लेकर गोद में इन्सान की
कर न पाया प्यार जो इन्सान को ।

कई रुबाइयों मे हमारी 'आजादी' का मजाक उड़ाया गया है :

है भोर, कहीं किन्तु किरन तक भी नहीं है
मधुमास है, फूलों पे खिलन तक भी नहीं है
आजादी कहें इसको कि बरबादी कहें हम
लाशों पे उढ़ाने को कफन तक भी नहीं है ।
बन गये हुक्काम वे सब जो कि बेईमान थे
हो गये लीडर की दुम जो कल तलक दरबान थे
मेरे मालिक और तो सब है सुखी तेरे यहां
सिर्फ वे ही हैं दुखी जो कुछ न बस इन्सान थे ।
जो भी मोटी थी तिजोरी और मोटी हो गयी
जो भी थी छोटी कुटी, वह और छोटी हो गयी
बांटने वाले तराजू कौन सी है हाथ में
पाई तो पैसा बनी, धोती लंगोटी हो गयी ।

रुबाई सूक्ति रूप में बात कहने के लिए एक सुन्दर छन्द है । आधुनिक हिन्दी कवियों ने इसे खूब आजमाया है । नीरज इसका सफल प्रयोग करने वालों में से एक हैं । पर कभी कभी वे भी, अन्य कई रुबाई लेखकों की तरह ही, अपनी बात तो अन्तिम दो ही पंक्तियों में कह लेते हैं और पहली दो पंक्तियां उनके साथ तुक जोड़ने के लिए यों ही जोड़ देते है । ऐसी स्थिति में पूरी रुबाई में अन्विति नहीं आ पाती । एक उदाहरण लिया जाय :

शोख शीशा सलिल नहीं होता
अंश है वह अखिल नहीं होता
बावले किसको सुनाता है व्यथा
रूप के पास दिल नहीं होता

स्पष्ट है कि पहली दो पंक्तियां, (या कम से कम दूसरी पंक्ति) दिल के साथ

तुक मिलाने के लिए ही लिखी गयी हैं। पर यह प्रसन्नता की बात है कि नीरज जी की अधिकांश रूबाइयों में यह अन्विति-हीनता नही है।

गीत भी अगीत भी की मूल भावभूमि प्रेम और निर्वेद की है। अधिकांश गीत नीरज के पिछले प्रेम गीतों की ही परम्परा में हैं और उनमें कोई रेखांकित करने योग्य विशिष्टता नही है। कई कविताओं में थकान और निर्वेद की अभिव्यक्ति भी हुई है, जो नीरज की भक्तिवादी परम्परा की ही परिणतियां हैं। जैसे 'मा अब गोद सुला ले' और 'साधो हम चौसर की गोटी' आदि। कुछ कविताएं भारत-चीन संघर्ष से उद्‌भूत राष्ट्रीय आवेश से संदर्भित भी हैं।

फिर भी संकलन में तीन चार प्रगतिशील भावभूमि की रचनाएं भी हैं—'जीवन नही मरा करता है', 'नया हिसाब', 'हलों की फाल तेज करो', और 'आदम का लहू' ऐसी ही कविताएं हैं; यद्यपि इन कविताओं में ऐसा कोई वैशिष्ट्य नही है जो इन्हे इसी परम्परा की नीरज की पहली कविताओं से अलग व्यक्तित्व देता हो। 'हलों की फाल तेज करो' में नीरज की उस विशिष्ट शब्दावली की, जो उनकी कुछ अच्छी कविताओं की विशेषता है, दुहराहट उबाती है। हां 'आदम का लहू' का स्वर थोड़ा भिन्न है और प्रभावित करता है :

भर लो चाहे गोदामों में, बेचो चाहे बाजारों में
चढ़वा दो चाहे सूली पर, चुन दो चाहे दीवारों में
जुल्मों से कहां घबराता है—आदम का लहू, आदम का लहू।
मिट जाती है हर नादिरशाही, मुड़ जाते हैं रुख तलवारों के
ढह जाते हैं गुम्बद महलों के, झुक जाते हैं ताज पहाड़ों के
जब भी पानी पर आता है—आदम का लहू, आदम का लहू।

समग्र रूप से नीरज के प्रगतिशील काव्य की क्या उपलब्धियां और सीमाएं हैं?

कविता का—चाहे वह प्रगतिशील कविता ही क्यों न हो—एक महत्वपूर्ण मूल्य है उसका रागात्मक ऐश्वर्य। और रागात्मक ऐश्वर्य की दृष्टि से नीरज हिन्दी के एक श्रेष्ठ प्रगतिशील कवि हैं। उनके काव्य में सामाजिक चेतना की प्रखरता भले कम हो पर सामाजिक अनुभूति की गहराई और विस्तार का उसमें अभाव नहीं है।

एक सहज मानववादी स्वर, एक सूफी मस्ती और एक कबीरी फक्कड़पन उनकी लगभग सभी श्रेष्ठ कविताओं में मिलता है। यह फक्कड़पन नवीन को छोड़ कर हिन्दी के किसी और प्रगतिशील कवि में नही दिखाई देता। बौद्धिक

जटिलताओं से आक्रान्त कविता के इस युग में यह मस्ती और फक्कड़पन साहित्य मे विरल होता जा रहा है। यह मस्ती और यह फक्कड़पन नीरज के जीवन दर्शन की सहजता के साथ जुड़ा हुआ है।

दर्द दिया है की भूमिका में नीरज कहते है कि गद्य लिखने पर लिखा जाता है पर कविता स्वयं लिख-लिख जाती है, उसे लिखे बिना रहा नहीं जा सकता। उसी तरह जैसे फूलों पर ओस अपनी कहानी लिख जाती है। कवि का अभिप्राय स्पष्ट है : उसके अनुसार कविता सचेत सृष्टि नहीं है, भावावेश की स्वयंस्फूर्त रचना है। नीरज जी की कविता की सहजता और सरलता का रहस्य भी शायद उनकी रचना-प्रक्रिया का यह रूप है। पर इस प्रकार की रचना प्रक्रिया ने जहां उन्हें सहजता, सरलता और मर्मस्पर्शिता दी है, वहां वैचारिक असजगता और आध्यात्मिक-रहस्यात्मक स्पर्श भी दिये है, जो उनकी कविता की शायद एक प्रमुख सीमा है। यद्यपि नीरज का मानवतावाद एक स्पष्ट सीमा रेखाओं वाला जीवन दर्शन है, तथापि वह हर जगह सजगता-पूर्वक संगत दर्शन नही है, कही-कहीं उसमे बेमेल वस्तुओ का मेल भी दिखाई देता है—उनके जीवनदर्शन के ऐसे 'बाहरी' तत्वों मे कभी कभी उभरने वाला उनका आध्यात्मिक और मृत्युवादी स्वर भी है।

मृत्यु उनकी कई कविताओं पर एक अस्वस्थ सीमा तक छायी हुई है :

बज रही सरगम मरण की भू, गगन में
है चिता की राख लिपटी हर चरण में
हंस रहा हर डाल पर पतझर समय का
एक विष की बूंद हैं सबके नयन में
प्राण ! जीवन क्या, प्रणय या प्यार ?
एक आंसू, और एक अंगार
आदमी है मौत से लाचार
जी रहा है इसलिए संसार
चल रहा है गीत आंसू की डगर में
मृत्यु से हारा सदा जीवन-समर में
मत कहो रण क्षेत्र है संसार
हारता आया मनुज हर बार !
आदमी है मौत से लाचार

—प्राणगीत, पृ. ४५-४६

कई जगह इसी मृत्यु के आधार पर भोग का तर्क भी दिया गया है :

रंक-राजा मूर्ख-पंडित रूपवान-कुरूप
सांझ के आधीन सबकी जिन्दगी की धूप
आखिरी सबकी यहां पर है चिता ही सेज
धूल ही शृंगार अन्तिम, अन्त-रूप अनूप
किसलिए फिर धूल का अपमान
मत करो प्रिय रूप का अभिमान
कब्र है धरती कफन है आसमान

—बादर बरस गयो, पृ. १६

लेकिन सिर्फ मृत्यु पर ही जोर नीरज ने हर जगह नहीं दिया है, ज्यादातर वह जीवन और मृत्यु, सृजन और ध्वस दोनों को साथ-साथ रख कर देखते हैं—

चढ़ रहा है सूर्य उधर, चांद इधर ढल रहा
झर रही है रात यहां, प्रात वहां खिल रहा
जी रही है एक सांस, एक सांस मर रही
बुझ रहा है एक दीप, एक दीप जल रहा

—बादर बरस गयो, पृ. २५

प्रेम नीरज का सर्वाधिक प्रिय विषय है—दोनों तरह के प्रेम के, व्यक्ति-प्रेम और मानव-प्रेम के गीत उन्होंने जी भर कर गाये है। मानव-प्रेम के कई सुन्दर उदाहरण उनके प्राणगीत मे मिलते हैं। लेकिन व्यक्ति-प्रेम की उनकी कई कविताएं भी प्रेम के विराट् प्रभाव-चित्रण या उसे दिये हुए पवित्रता के स्पर्शों या उसके त्यागपूर्ण पक्ष पर जोर के कारण व्यक्ति-निष्ठ कविताएं मात्र बन कर नही रही हैं। प्रेम के ये प्रभावशाली चित्र भी भावनाओं के परिष्कार और उदात्तीकरण के साधन होने के कारण प्रगतिशील ही माने जाएंगे :

दो गुलाब के फूल छू गये, जब से होठ अपावन मेरे
ऐसी गंध बसी है तन में, सारा जग मधुबन लगता है।
रोम-रोम में खिले चमेली
सांस-सांस में महके बेला
पोर-पोर में झरे मालती
अंग-अंग जुड़े जुही का मेला
पग पग लहरे मानसरोवर, डगर डगर छाया कदम्ब की,
तुम जब से मिल गये, उमर का खंडहर राज भवन लगता है।
दो गुलाब के फूल छू गये......

इसी तरह व्यक्तिगत प्रेम उनकी कविताओं में मानव प्रेम का आधार बन जाता है :

दूर जब तुम थे, स्वयं से दूर मैं तब जा रहा था
पास तुम आए ज़माना पास मेरे आ रहा था
तुम न थे तो कर सकी थी प्यार मिट्टी भी न मुझको
सृष्टि का हर एक कण मुझमें कमी कुछ पा रहा था
पर तुम्हें पाकर, न अब कुछ शेष है पाना इसी से
मैं तुम्हीं से, बस तुम्हीं से, लौ लगाना चाहता हूं
मैं तुम्हें अपना बनाना चाहता हूं

—बादर बरस गयो, पृ. ७५

निश्चय ही नीरज जी ने जितनी संख्या में हिन्दी की श्रेष्ठ प्रगतिशील कविताओं की रचना की है, उतनी संख्या में शायद ही किसी और कवि ने की हो। उनकी 'नील की बेटी के नाम', 'भूखी धरती', 'आंधी उठाने का जमाना', 'अब युद्ध नहीं होगा', 'सांसों के मुसाफिर के नाम', 'गंगा की कसम जमना की कसम' और 'सारा जग मधुवन लगता है' आदि कविताएं हिन्दी की प्रगतिशील काव्य धारा की मूल्यवान निधियां है।

वीरेन्द्र मिश्र

वीरेन्द्र मिश्र ने कविता लिखना देशभक्ति के आवेग की अभिव्यक्ति के रूप मे प्रारम्भ किया। ४२ के आन्दोलन ने उनके हृदय में देशभक्ति और राष्ट्रीयता की भावना जगायी और इसी ने उन्हें कविता लिखने की प्रेरणा भी दी।[11] अपने जीवन संघर्ष ने उन्हें अन्य शोषितों के प्रति सहानुभूति और शोषक वर्गों के प्रति आक्रोश दिया।

गीतम (५३) उनके गीतों का पहला संग्रह है। साफ, सरल और स्वच्छ अभिव्यक्ति से युक्त उनके ये गीत भावनाओं के प्रसार के साथ-साथ अनुभूति की गहराई, ईमानदारी व सच्ची मानववादी एषणा और इन सबके अतिरिक्त एक सहज कोमल सगीतात्मकता से आद्यन्त अनुस्यूत हैं। कहना न होगा कि सामाजिक चेतना और मानववादी दृष्टि कवि की पहली और सबसे महत्वपूर्ण विशेषता है, जो उसे गीतों की सीमित परिधि में भी नये युग के सजग कवि का गौरव प्रदान करती है।[12]

---

११. ललित मोहन अवस्थी : **आज के कवि**, पृ. ६८.
१२. देखिए शिव कुमार मिश्र : **नया हिन्दी काव्य**, पृ. ३१७.

लेखनी बेला (५८) वीरेन्द्र जी का दूसरा संकलन है। लेखनी बेला की कविताओं को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है, प्रकृति संबंधी कविताएं, प्रणय संबंधी कविताए और मानवता और उसके संघर्ष संबंधी कविताएं। सब प्रकार की कविताओं में स्वस्थता, अकुंठता, और एक सांस्कृतिक स्तर दिखाई पड़ता है। वीरेन्द्र चाहे प्रकृति का वर्णन कर रहे हों, चाहे प्रणय की बात और चाहे एशिया के जागरण का गीत गा रहे हों, उनके दृष्टिकोण मे एक स्वस्थता है और उनकी अभिव्यक्ति में एक परिष्कृत रुचि। उनकी प्रणय-संबंधी कविताओ मे छायावादोत्तर रूमानियत की मांसलता या वासनात्मकता, जो अंचल, नरेन्द्र शर्मा आदि की कविताओं की मूलभूत विशेषता है, लगभग नही मिलती। और न उनमें छिछली भावुकता या फिल्मी सस्तापन ही मिलता है, जो नीरज जी के कई ऐसे गीतों में मिलता है। वीरेन्द्र के प्रणय गीत अधिकतर स्वस्थ मन के परिष्कृत गीत है। 'मिल गये हो मददगार हम उम्र तुम' इस दृष्टि से उनका एक श्रेष्ठ गीत है। इस गीत में कवि ने उन्मुक्त कंठ से अपनी प्रिया द्वारा दिये हुए प्यार की प्रशंसा की है :

मिल गये हो मददगार हम उम्र तुम
लग रहा है चमकता सितारा मुझे
स्वार्थी विश्व में है किसे क्या पता
प्यार कितना मिला है तुम्हारा मुझे !

सचमुच कवि के भाग्य पर ईर्ष्या होती है कि 'स्वार्थी विश्व में' उसे न केवल इतना गहरा प्यार मिला, बल्कि साथ ही उसकी इतनी प्रशंसा करने वाला इतना बड़ा दिल भी मिला—

रोशनी दे रहे चांद-सूरज, मगर
दर्द दिल का नहीं वे बंटा पा रहे
एक तुम प्राण के दीप हो मन चले
साथ मेरे ख़ुशी से जले जा रहे
यह जलन है मधुर, यह तपन है बहुत
जन्म लेना पड़ेगा दुबारा मुझे
उम्र में प्यार का कर्ज चुकना कठिन
प्यार इतना मिला है तुम्हारा मुझे !

संकलन की प्रकृति संबंधी कविताओं में मसूरी और झुह्नू स्मृति महत्वपूर्ण हैं। यद्यपि पहली कविता कुछ अधिक ही लम्बी हो गयी है, और इसलिए उसकी

गठन में एक प्रकार की शिथिलता आ गयी है फिर भी मसूरी के शब्द चित्र प्रभावक हैं :

ठण्डी ठण्डी छांव है
मीठा मीठा राग है
धरती जैसी आंख में
सपने जैसा बाग है।

उनकी प्रकृति संबंधी एक और सुन्दर कविता 'कश्मीर', पिछले दिनों धर्म युग में प्रकाशित हुई थी—वह कविता इन कविताओं से अधिक सफल है :

जहां बर्फ की राजकुमारी खोयी है स्वर लहरी में
चलो चलें फूलों की घाटी में, नावों की नगरी में।
किसी पहाड़ी पीले फूल किसी पहाड़ी नीले फूल
कहीं गुलाबों के आलम में हैं शबनम से गीले फूल
गंध-भरा गुलमर्ग यही, स्वर्ग यही है स्वर्ग यही
कल्हण वाली 'राजतरंगिणि' श्याम घटा की गगरी में

तीसरे वर्ग की कविताओं में लेखनी बेला की 'देश', 'आवाज आ रही है', और 'एशिया हमारा' महत्वपूर्ण है।

'देश' (लो अब गाता हूं !) वीरेन्द्र मिश्र की प्रसिद्धतम और सुन्दरतम कविता है। इतनी स्वस्थ राष्ट्रीयता, अपनी मिट्टी और अपनी संस्कृति के प्रति इतना गहरा राग और इतनी सुन्दर अभिव्यक्ति हिन्दी की कम ही कविताओं में मिलती है। कविता की- सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसकी राष्ट्रीयता राष्ट्राहंकार से दूर, एक स्वस्थ और प्रगतिशील राष्ट्रीयता है। अपने देश को कवि ने देश की जीवन्त परम्पराओं और उसकी संस्कृति के उज्ज्वल पक्षों के रूप में रूपायित किया है :

इसकी मिट्टी में गर्मी है काल की,
इसमें ताकत है उठते भूचाल की
इतिहासों की गाथा इसके मूल में
एक चमकती दुनियां इसकी धूल में
इसके पवन झकोरों में वह प्यास है
सिर्फ बहारों को जिसका आभास है
संझा और सकारे ऐसे हैं कहां
सूरज चांद सितारे ऐसे हैं कहां

श्याम घटा, बिजली, बरखा मन भावनी
रिमझिम बूंद फुहार चंदनियां सावनी
आल्हा की हुंकार, रमायन की कथा
वृन्दावन के रास, गोपियों की व्यथा
त्योहारों की धूम, दिवाली के दिये
होली के रंगों बिन कोई क्या जिये
मणीपुरी के नृत्यों की चंचल परी
और भरत नाट्यम पर छिड़ती बांसुरी
ये सब मेरी दुनियां की आवाज हैं
इस पर ही तो होता मुझको नाज है
लो अब गाता हूं,
कोई हंसती-गाती राहों में अंगार बिछाए ना
पथ की धूल है ये, इस से प्यार मुझको
कोई मेरी खुशहाली पर खूनी आंख उठाए ना
मेरा देश है ये, इससे प्यार मुझको

'आवाज आ रही है' (कलम के जादूगरो उठो !) साहित्यकारों का आह्वान करती है :

कलम के कारीगरो उठो !
कलम के मेहनतकशो उठो
कलम के जादूगरो उठो
तुम्हें मिली अनमोल लेखनी सौदा नहीं करो !

कविता में यद्यपि कवि ने कवियों के सामने पूंजीवादी समाज में बिना-बिके जनवादी आदर्शों के लिए संघर्ष करने का आह्वान किया है, तथापि बीच में बाण और हर्ष, कालिदास और भोज, भूषण और छत्रसाल आदि का संदर्भ दे कर यह कहा है कि आज हर्ष, भोज और छत्रसाल कहा है ? कवि शायद यह भूल गया है कि आज के 'वेतनभोगी कवियों' की अपेक्षा दरबारी कवि बनना कोई अच्छी स्थिति नही होगी।

'एशिया हमारा' पूरे एशिया को एक पीड़ित इकाई के रूप में सोच कर लिखी हुई एक सुन्दर युद्ध-विरोधी कविता है, यद्यपि कहीं कहीं कथ्य की अस्पष्टता पाठक के रस में बाधा डालती है :

गूंज भरे जंगल में, धूल भरे अंचल में
रात के अमंगल में मंगली सितारा !

ललक है, अब यह सीमित सुखों-दुखों के लिए, अबोध मृगशावकों या रोते हुए बच्चों के लिए किये जाने वाले लोरी-युग के सृजन से विदा चाहता है :

बन्दी हुआ यह गुनहगार मन
टूटा कि फिर टूटता ही गया
हर डबडबाता हुआ अश्रुकण
फूटा कि फिर फूटता ही गया
'शबनम' वही 'फूल' भी तो वही
'नैया' वही 'कूल' भी तो वही
पारम्परिक सर्जकों के लिए
गाये बहुत गीत इतने दिनों।

'प्रसारण कलाकार' में रेडियो-तंत्र के अनुशासन में घुटते हुए कलाकार की स्थिति को अच्छी अभिव्यक्ति मिली है :

कहीं नहीं होगी ऐसी माया नगरी
दीवारें भी करती रहती गुप्तचरी
हंस शीश धुनते उलूक के चरणों में
कंठ कंठ में नाग फांस अनुशासन की
आवाजों ने मुझे जिया मैं जिया नहीं
लघु तरंग हूं मैं भी ध्वनि-विस्तारण की।

'बापू बिस्तर' कुल मिला कर कवि के दिल्ली-प्रवास के अनुभवों को [illegible] कर उसके सामने यह विकल्प प्रस्तुत कर

अधरूपरी संस्थाओं को नमन करूं
[illegible] के मंदिर जाऊं
अब तो [illegible] रह गया है

दूसरी विशेषता उनकी संगीतात्मकता है। गीत के ढांचे में उन्होंने नये नये संगीत के प्रयोग किये हैं। शायद ही हिन्दी के किसी और गीतकार के गीत संगीतात्मक प्रयोगों की दृष्टि से इतने सम्पन्न हों, जितने वीरेन्द्र मिश्र के है।

लेकिन उनकी एक बड़ी कमजोरी है—कई गीतों में सुसंगठन का अभाव। कई गीतों में वे कथ्य की अन्विति से दूर चले जाते हैं—शब्दों और तुकों के सौन्दर्य के पीछे वे मूल भाव से दूर चले जाते है। उनके अधिकांश लम्बे गीत उतने सुसंगठित नही हैं, जितने प्रभावान्विति के लिए होने चाहिए।

वीरेंद्र कुमार जैन

वीरेन्द्र कुमार जैन को हम आध्यात्मिक रुमान के प्रगतिशील कवि भी कह सकते हैं। ऐसे किसी वर्ग में हम निराला और पंत को भी गिन सकते है। लेकिन वीरेंद्र कुमार की स्थिति उनसे काफी अलग है। निराला के काव्य मे उनका प्रगतिवाद और उनका अध्यात्मवाद दो अलग-अलग धाराओ की तरह बहते हैं और उनमें से कोई एक धारा दूसरी धारा के मार्ग में बाधा बन कर नही आती। केवल निराला का विभाजित व्यक्तित्व ही उन दोनों धाराओं को जोड़ता है। पंत जी की बाद की कविताओं में प्रगतिवाद और अध्यात्मवाद मिल-जुल कर एक ही धारा के रूप में हमारे सामने आते है पर उस धारा में गहरा रंग अध्यात्म का ही है। पर वीरेंद्र कुमार जैन की कविता एक तो प्रगतिवाद, उत्तर छायावादी रूमानियत और अध्यात्मवाद, तीनों का त्रिवेणी संगम है—साम्यवादी क्रांतिकारिता, 'कृष्णपंथी' भोगवाद और अरविंद दर्शन, तीनों का प्रभाव उन पर असंदिग्ध है—और दूसरे अपनी 'सनातन सूर्योदयी' शब्दावली के बावजूद उन पर अध्यात्म के रंग उतने गहरे नही हैं कि उन्हें 'अकवि' बना दें। वे मूलतः इसी धरती के मांसल सौंदर्य और निर्मम संघर्षों के कवि हैं। आध्यात्मिक प्रभावों ने उनकी कविता को एक विशेष प्रकार की पवित्रता और विराटता ही दी है, उसे ज्यादा नुकसान नहीं पहुँचाया है।

अनागता की आँखें (५९) उनका पहला संकलन है। संकलन की महत्वपूर्ण कविताओं मे 'तुम नही तो मैं नही हूं', 'मेरी पुकार का उत्तर नहीं लौटा है', 'मेरी ममता के एकांत गोपन कक्ष में', 'तुम्हारी गोरी बांह की उर्मिला रोमाली, और 'मेरा प्रणाम लो, मेरी चुनौती लो, अभिताभ' ! प्रमुख हैं।

'तुम नही तो मैं नही हूं' नारी और उसके प्रेम की विराट शक्ति का गायन है। प्रेम को यहां जीवन के मूलभूत व्यापार के रूप मे प्रतिष्ठित किया गया है। प्रारंभ मे प्रेम-विहीन जीवन का एक सुंदर चित्र खींचते हुए बताया गया है कि

ललक है, अब वह सीमित सुखों-दुखों के लिए, अबोध मृगशावकों या रोते हुए बच्चों के लिए किये जाने वाले लोरी-युग के सृजन से विदा चाहता है :

बन्दी हुआ यह गुनहगार मन
टूटा कि फिर टूटता ही गया
हर डबडबाता हुआ अश्रुकण
फूटा कि फिर फूटता ही गया
'शबनम' वही 'फूल' भी तो वही
'नैया' वही 'कूल' भी तो वही
पारम्परिक सर्जकों के लिए
गाये बहुत गीत इतने दिनों।

'प्रसारण कलाकार' में रेडियो-तंत्र के अनुशासन में घुटते हुए कलाकार की स्थिति को अच्छी अभिव्यक्ति मिली है :

कहीं नहीं होगी ऐसी माया नगरी
दीवारें भी करती रहतीं गुप्तचरी
हंस शीश धुनते उलूक के चरणों में
कंठ कंठ में नाग फांस अनुशासन की
आवाजों ने मुझे जिया मैं जिया नहीं
लघु तरंग हूं मैं भी ध्वनि-विस्तारण की।

'बांधू बिस्तर' कुल मिला कर कवि के दिल्ली-प्रवास के अनुभवों को संजो कर उसके सामने यह विकल्प प्रस्तुत करती है :

अधकचरी संज्ञाओं को नमन करूं
विज्ञप्त विशेषण के मंदिर जाऊं
अब तो विकल्प यह शेष रह गया है
देवता रचें कविताएं, मैं गाऊं
अपने ही द्वारा वर्जित संबल लूं?
या बांधू बिस्तर और कहीं चल दूं

वीरेन्द्र मिश्र की कविताओं की सबसे बड़ी विशेषता है उनकी सांस्कृतिकता। एक पवित्र सांस्कृतिक वातावरण उनकी लगभग सभी अच्छी कविताओं में बना रहता है, यह तत्व उन्हें छिछली भावुकता से ऊपर उठाता है, उनकी कविताओं को स्थायित्व देता है।

दूसरी विशेषता उनकी संगीतात्मकता है। गीत के ढांचे में उन्होंने नये नये संगीत के प्रयोग किये हैं। शायद ही हिन्दी के किसी और गीतकार के गीत संगीतात्मक प्रयोगो की दृष्टि से इतने सम्पन्न हों, जितने वीरेन्द्र मिश्र के हैं।

लेकिन उनकी एक बड़ी कमजोरी है—कई गीतों में सुसंगठन का अभाव। कई गीतो मे वे कथ्य की अन्विति से दूर चले जाते है—शब्दों और तुकों के सौन्दर्य के पीछे वे मूल भाव से दूर चले जाते है। उनके अधिकांश लम्बे गीत उतने सुसंगठित नहीं हैं, जितने प्रभावान्विति के लिए होने चाहिए।

वीरेंद्र कुमार जैन

वीरेन्द्र कुमार जैन को हम आध्यात्मिक रुझान के प्रगतिशील कवि भी कह सकते हैं। ऐसे किसी वर्ग में हम निराला और पंत को भी गिन सकते हैं। लेकिन वीरेंद्र कुमार की स्थिति उनसे काफी अलग है। निराला के काव्य में उनका प्रगतिवाद और उनका अध्यात्मवाद दो अलग-अलग धाराओं की तरह बहते हैं और उनमे से कोई एक धारा दूसरी धारा के मार्ग में बाधा बन कर नही आती। केवल निराला का विभाजित व्यक्तित्व ही उन दोनों धाराओं को जोड़ता है। पंत जी की बाद की कविताओं में प्रगतिवाद और अध्यात्मवाद मिल-जुल कर एक ही धारा के रूप में हमारे सामने आते है पर उस धारा में गहरा रंग अध्यात्म का ही है। पर वीरेंद्र कुमार जैन की कविता एक तो प्रगतिवाद, उत्तर छायावादी रूमानियत और अध्यात्मवाद, तीनों का त्रिवेणी संगम है—साम्यवादी क्रांतिकारिता, 'कृष्णपंथी' भोगवाद और अरविंद दर्शन, तीनों का प्रभाव उन पर असंदिग्ध है—और दूसरे अपनी 'सनातन सूर्योदयी' शब्दावली के बावजूद उन पर अध्यात्म के रंग उतने गहरे नहीं हैं कि उन्हें 'अकवि' बना दें। वे मूलतः इसी धरती के मांसल सौंदर्य और निर्मम संघर्षों के कवि हैं। आध्यात्मिक प्रभावों ने उनकी कविता को एक विशेष प्रकार की पवित्रता और विराटता ही दी है, उसे ज्यादा नुकसान नहीं पहुँचाया है।

अनागता की आँखें (५१) उनका पहला संकलन है। संकलन की महत्वपूर्ण कविताओं मे 'तुम नही तो मैं नही हूं', 'मेरी पुकार का उत्तर नही लौटा है', 'मेरी ममता के एकांत गोपन कक्ष में', 'तुम्हारी गोरी बांह की उर्मिला रोमाली, और 'मेरा प्रणाम लो, मेरी चुनौती लो, अभिताभ' ! प्रमुख हैं।

'तुम नही तो मैं नही हूं' नारी और उसके प्रेम की विराट शक्ति का गायन है। प्रेम को यहां जीवन के मूलभूत व्यापार के रूप मे प्रतिष्ठित किया गया है। प्रारंभ में प्रेम-विहीन जीवन का एक सुदर चित्र खीचते हुए बताया गया है कि

ऐसी ही स्थितियां संसार को नश्वर, दुखपूर्ण और असत्य मानने की प्रेरणा देने लगती हैं। नारी और उसके प्रेम का विराट वर्णन इस कविता की शक्ति है:

तुम कि जो विच्छिन्नता की इन तमावृत खंदकों में
नाश-क्षय की चिर-विछोहिनि रात्रियों में
चेतना के क्षितिज पर
निरवछिन्ना ज्योति-सरिता-सी निरंतर बह रही हो,
तुम कि जो हर नाश के दारुण निराशा-छोर पर
नित नये आकाश के नीलाभ इन वातायनों पर
चिर कुंवारी साध की नव बालिका-सी खेलती हो!

औद्योगिक सभ्यता ने मनुष्य की चेतना और रागात्मकता मे जड़ता लाकर उसे निश्छल और नि.स्वार्थ प्रेम के लिए जिस तरह अयोग्य बना दिया है, उसकी ओर एक भावपूर्ण सकेत उनकी कविता 'मेरी पुकार का उत्तर नही लौटा है' करती है। कवि प्रारंभ में बताता है कि किस तरह जब-जब वह 'आत्मा की परम वेदना से बेबस होकर' पुकारता है, जंगल, पहाड़ और कंदराएं भी प्रतिध्वनियों में उसकी पुकार का उत्तर देती है लेकिन जब-जब उसने जीते जागते, धडकते, ज्ञानी-विज्ञानी मनुष्यों के हृदयों मे आवाज दी है,

तो जवाब में लौटी हैं मौत की खामोशियां
लौटे हैं प्यार के शर्तनामे
लौटे हैं संबंध-मर्यादाओं के बेजान चौखाने
लौटी हैं पाप-पुण्य, नैतिकता और पवित्रता की दुहाइयां
लौटे हैं अर्थ के बारीक स्वार्थ
पारमार्थिक व्याख्याओं के गंभीर चोगे धारण कर,
लौटी हैं भावी के सुख-दुख की हिसाबी बहियाँ

कार्ल मार्क्स ने जब यह कहा कि **पूंजीवाद ने ऊंची से ऊंची भावनाओं और भोली से भोली भावुकताओं पर आना-पाई का मुलम्मा चढ़ा दिया है और जहां-जहां उसने सत्ता प्राप्त की है, वहां-वहां मनुष्यों के बीच नग्न स्वार्थ के हृदय-हीन व्यवहार के सिवा कोई दूसरा संबंध बाकी नहीं रहने दिया"** तब वे इसी तथ्य की ओर सकेत कर रहे थे। वीरेंद्र कुमार जैन ने भी अपने संवेदनशील हृदय मे इस कटु यथार्थ का अनुभव किया है। तभी तो उन्होंने जब भी मानव के किसी बेटे-बेटी को बेबस आसू की तरह ढुलक कर अपने आलिंगन मे लेना चाहा, देखा:

---

१३ मार्क्स और एंगेल्स: कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र, पृ. ३७.

कि उनके उमड़ते हृदयों में
भय के भयावने नुकीले पत्थर उग आते हैं
उनके पुलकित रोमों में शंका के कांटे कसक जाते हैं
उनकी वासना-विह्वल आंखों में
जाने कितने कपटों के
अंधेरे रहस्यमय तहखाने झांक जाते हैं
उनके होठों की रसभरी महीन मुस्कानों में
स्वार्थों की राजभरी साजिशें झलक जाती हैं
उनके चुंबनों में खून से नहायी
आदिम शूलियों की गंध आती है

और उन्हें नजर आता है नारियों के उमड़ते गर्म आंसुओं में भी एक सोने का मारीच, उनकी आत्माओं के साथ बलात्कार करता हुआ एक मायावी दैत्य। कविता की ये सशक्त पंक्तियां निश्चय ही वर्तमान पूंजीवादी सभ्यता के उस अभिशाप को अनावृत करती हैं, जिसने न केवल मनुष्यों के शरीरों को ही बाजार की एक वस्तु बनाया है, बल्कि उनकी आत्माओं को भी अपने जाल में जकड़ लिया है।

हिन्दी कविता में प्रगतिशील आंदोलन के उषःकाल में पंत जी ने प्यार को मुक्त करने का आह्वान करते हुए मनुष्य को धिक्कारा था :-

धिक् रे मनुष्य, तुम स्वस्थ, स्वच्छ, निश्छल चुंबन
अंकित कर सकते नहीं प्रिया के अधरों पर ?

पर मनुष्य ऐसा क्यों नहीं कर पाता, इसका विश्लेषण उन्होंने नहीं किया था। वीरेंद्र कुमार जैन की कविता ऐसा करती है। और इसीलिए स्पष्ट शब्दों में घोषित करती है :

कि जब तक सुवर्ण का यह दैत्य
धन और वैयक्तिक अधिकार का यह महिषासुर
अंतिम रूप से मर नहीं जाता
जब तक जीवन के आधार
धन-धान्य, धरा-धाम का यह विपुल पसारा
सबके लिए सुलभ एक माता की गोद नहीं बन जाता :
तब तक राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर
ईसा-मुहम्मद के योग-अध्यात्म के सारे उपदेशों के बावजूद

सारे ज्ञान-विज्ञान की प्रगतियों के बावजूद
चेतन पर अचेतन की विजय सदा होनी है।

'मेरी ममता के एकांत गोपन कक्ष में' मानवीय भोग को आध्यात्मिक पवित्रता और विराटता देने वाली और अध्यात्म को भोग में साकार करने वाली एक सुंदर कविता है। इस कविता में कवि ने 'मिथ' तत्व का समुचित उपयोग करते हुए राम, कृष्ण, विश्वामित्र, शिव और अजंता, भुवनेश्वर, जगन्नाथ, खजुराहो के संदर्भों से, सहज मानवीय भोग के पवित्रीकरण का सफल प्रयत्न किया है। स्वस्थ मानवीय भोग का यह विराट वर्णन निश्चय ही प्रभावशाली है :

जब निखिल रमण की उन्मुक्त कामना से आकुल होकर
मैं चढ़ता हूं अपनी प्रिया के संग
उसके कल्प-महलों की गगन-अटारी पर :
तो दिगंतों के पलंगों पर बिछ जाती है
ग्रह-नक्षत्रों की मृदुल मंदार शैया
और उस पर
सूरज और चंदा के तकिये ढल जाते हैं
पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश, वायु
तब हमारे पायताने
हमारे आज्ञाकारी सेवक बन कर खड़े हो जाते हैं।
कि तब निर्बंध जल तत्व सागर
हमारे आलिंगन के ऊष्म आलोड़न में बंध आता है :
कि दुर्दांत समुद्रों की सत्यानाशिनी लहरों पर
मानव के विशाल जलयान
मस्ती से डोलते चले जाते हैं
और उनमें अभय निश्चिंत चलती हैं
जीवन की रास-रंग-नाच-गान-क्रीड़ाएं।
कि हमारे बाहु-बंधनों में बंध कर
दुर्दाम नदियां
हमारे रभस-परस की माधुरी विद्युत-तरंगें बन जाती हैं :
कि सकल लोक के घर-घर
बिजली के ऊष्म आलोक से जगमगा उठते हैं।

यहां मानवीय भोग का विराट रूप में वर्णन मात्र नहीं है, मानवीय राग

की शक्ति की भी काव्यात्मक अभिव्यक्ति है, व्यंजना यह है कि प्यार के ही कारण मनुष्य के सामने समुद्र और नदियां, प्रकृति की सभी शक्तियां, पराजित हुई हैं। मानवीय भोग की पवित्रता और मानवीय प्रेम की विराटता के उदात्त वर्णन से पूर्ण यह कविता निश्चय ही हिंदी में अपनी तरह की एक ही कविता है।

इसी से मिलती-जुलती, पर भोग के मूल संदर्भ को कम और मानवीय गौरव को अधिक महत्व देती हुई, वीरेंद्र कुमार जैन की दूसरी सुंदर कविता है : 'तुम्हारी गोरी बांह की उर्मिला रोमाली'। अपनी प्रिया की गोरी बाह की रोमावली को किसी विशेष मनःस्थिति में देखते हुए कवि के सामने मुक्त साहचर्य के द्वारा प्रकृति के विरुद्ध संघर्ष करते हुए मानव का विराट रूप झलक उठता है और उसकी आँखों में, अपनी हथेलियों पर भूगोल लिये हुए, अपनी परम इच्छा के रूप और आकार में संसार को बदलते हुए आदम के बेटे का एक गरिमापूर्ण बिंब उभर आता है। प्यार और विद्रोह, भोग और मानवीय गरिमा एक गंगा-जमुनी ताने-बाने में बिन कर इस सुंदर कविता की रचना करते हैं। कविता का प्रारंभिक अंश है :

आज जब अचानक नजर आ गयी
तुम्हारी गोरी बांह की उर्मिल। रोमाली
आत्मा के चतुर्दिक वातायनों पर
नये क्षितिज झलक उठे द्वाभा के
चेतना के नीलाभ क्षितिजों पर उतर आयी
कपूर की लौ-सी हिमानी, सुगंधिनी
ऊष्मावती, नये युग की ज्योतिर्कन्या
अपनी लीलायित अंगड़ाइयों के अंगों में
नवयुग परिचालक लाल सूर्यों को उतारती-सी !

'मेरा प्रणाम लो, मेरी चुनौती लो, हे भगवान अमिताभ !' कदाचित कवि के जीवन-दर्शन को सर्वाधिक समग्रता से अभिव्यक्ति देती है। इस लंबी कविता में कवि ने बुद्ध के विरागवादी-पलायनवादी दर्शन का विरोध कर, अपने भौतिक-आत्मिक के समन्वय वाले दर्शन का विस्तार से प्रतिपादन किया है। लेकिन बुद्ध और उनके दर्शन का जो मूल्यांकन इस कविता में किया गया है, उसे एकांगी ही कहना होगा। क्योंकि कविता में सिर्फ बुद्ध के पलायनवाद को ही देखा गया है, बार-बार इसी बात के लिए उनकी निंदा की गयी है कि उन्होंने 'वैदिक ऋषियों के आनंद-उल्लास-यज्ञ' को भंग कर दिया, यह नहीं

देखा गया है कि यह आनंद-उल्लास यज्ञ स्वयं कितनी हिंसा, कितने शोषण और वैषम्य पर आधारित था और इसलिए बुद्ध के दर्शन के उस पक्ष को नही देखा गया है, जिसमें बुद्ध ने अपने समय के शोषण, हिंसा और वैषम्य (वर्णाश्रम) पर प्रहार किया। कुल मिला कर कविता बुद्ध के विरागवाद और पलायनवाद के विरुद्ध कवि के अपने भोगवाद और इहलोकवाद की प्रभावशाली व्याख्या है। कविता मे इस नाम-रूपात्मक संसार के विविध व्यापारो के प्रति कवि का राग मर्म को छूता है :

अमर है रे, दूर के अनजाने प्राण-कूलों का
मोहाकुल आवाहन;
अमर है रे, राह चलती किसी अपरिचित
चितवन का आमंत्रण;
अमर है रे किसी अनायास के परस का पागल सम्मोहन;
अमर है रे रोम-रोम को गूंथते निविड़ रमण-आलिंगन;
अमर है रे वल्लभा के केशों की गहन
कस्तूरी-गंध में मूर्च्छित आत्मा के मासूम हिरन।
अमर है रे गेहूँ और गन्ने के खेतों से लरजता
मेरी प्यारी वसुन्धरा का आंचल यह !

यातना का सूर्य पुरुष (६६) वीरेन्द्र कुमार जैन का दूसरा काव्य-संकलन है। इसका भी मूल स्वर रूमानाध्यात्म का है। सौन्दर्य और प्रेम का एक उष्ण-मांसल और फिर भी मांसलता को अतिक्रान्त कर जाने वाला एक ऐश्वर्यपूर्ण काव्य संसार इन कविताओं मे अवतरित है।

संकलन की प्रगतिशील दृष्टि से महत्वपूर्ण कविताओ में 'तुम एयरकण्डीशन मे बैठते हो', 'मुक्तिदूत जॉन केनेडी की शहादत पर', 'सावधान, गलतफहमी में न रह जाना', 'यातना का सूर्य पुरुष' तथा 'मैं आगामी मन्वन्तर का अनिर्वार सूरज हूं' प्रमुख हैं।

'तुम एयरकण्डीशन मे बैठते हो' भूख और गरीबी की पीठ पर एक नकली ऐश्वर्य और विलास से पूर्ण जीवन जीने वाले भोगवादी पूंजीपतियो का एक तिरस्कार-व्यंग से भरा चित्र प्रस्तुत करती है :

तुम्हारा दिल मांस का भी नही
सिर्फ प्लास्टिक का है :
उसमें खून नही शेम्पेन बहती है :
'चिकन-ब्लड-ईसेंस' से ही उसमें गर्मी रहती है !

तो केनेडी की शहादत पर लिखी हुई कविता इस शहादत को एक बहुत व्यापक और पवित्र सदर्भ देकर प्रस्तुत करती है :

आज फिर भगवान को गोली मार दी
आदम के बेटे ने :
आज फिर जीसस चढ़ गया क्रास पर
आज फिर परम पिता अब्राहम (लिंकन) की
सनातन मंदिर-वेदी पर
भगवान के मेमने को जिबह कर दिया
प्रभुता के उन्मादी शैतान ने
आज फिर असंख्यवीं बार
मानवता ने किया है आत्मघात।

'सावधान, गलतफहमी मे न रह जाना' भोग और अध्यात्म के स्पर्शों से सर्वथा मुक्त स्वस्थ और सहज सामाजिक विद्रोह की कविता है। पर विद्रोह को यहा उसके संकीर्ण राजनीतिक रूप में नहीं, व्यापक मानवीय और सांस्कृतिक संदर्भों मे अभिव्यक्ति मिली है :

हम सिर्फ तुम्हारी इस सिमटती भूगोल तक सीमित नहीं हैं
लाल झंडों तक महेदूद नहीं हैं
ये स्तालिन, माओ, ख्रुश्चेव
हमारी नियति के आखिरी ध्रुव पुरुष नहीं हैं।...
हम बगावत की आग की वे अविच्छेद्य नदियाँ हैं
जो हर देश-काल की भूमिगत सरहदें तोड़ कर
अनतिनी भूमा के आर-पार बहती हैं...
हम सिर्फ धरातल पर नहीं हैं।
हम सिर्फ तुम्हारी पार्लमेंट की फर्श पर नहीं हैं।
हम स्वयं धरती की आखिरी इच्छा हैं :
हम स्वयं महाकाल का अनिवार आगामी चरण हैं।

'यातना का सूर्य पुरुष' ऐसे योगीश्वरों, तीर्थंकरों और बोधिसत्वों को चुनौती है, जो 'अप्प दीपो भव' और 'अनासक्ति योग' का उपदेश देते हैं, कि वे आकर आज के कवि के उस नारकीय परिवेश में रहें जहा अपनी ही आवाज दूर के वीरान अपरिचित सागर-तटों से बेबस अनुत्तरित डूबती करुण-कातर पुकार-सी लगती है और जहां चेतना के खंडहरों में अपने छिन्न-भिन्न सपनों

की विद्रूप प्रेतनियां दिन-रात क्रंदन करती नाचती हैं। पर अपने परिवेश के यथार्थ का कटु-तिक्त चित्रण करते हुए भी वीरेंद्र कुमार जैन का परिपेक्ष्य गड़बड़ाया नहीं हैं, वे कैलाश वाजपेयी और श्रीकांत वर्मा की तरह 'मृत्यु-बोध' में आक्रांत नहीं हुए हैं। क्योंकि वे जानते हैं :

जहां मेरी रोटी का हर ग्रास, पानी का हर घूंट
मेरी नींद की हर चैन की सांस
मेरी आंखों में अनायास भर आने वाला आकाश
मेरी मिलन-घड़ियों की निर्बाध तन्मयता तक
समर्थों की मधुर मर्जी के इशारे की कायल है
जहां मेरे प्राण की हर प्यास, मेरे हृदय के हर भाव
मेरी आत्मा की हर अनुभूति का नियंता-विधाता है
अर्थ का सर्वग्रासी देवता!

स्पष्ट है कि वीरेंद्र कुमार जैन अपने परिवेश की विरूपताओं और विद्रूपताओं को न तो अपनी नियति मान कर अस्तित्ववादियों की तरह निराश होते हैं और न वे उसके मूल में स्थित कारण को ही छिपाते हैं।

'मैं आगामी मन्वंतर का अनिर्वार सूरज हूं' में कवि अपने आपको सारी सृष्टि की विद्रोह-चेतना के साथ तदाकार कर देता है। यद्यपि इस विद्रोह-चेतना का मूल स्वर रूमानी है, तथापि इस तादात्म्य ने कुछ बहुत सुंदर पंक्तियों को जन्म दिया है :

मैं ऐसी एक खतरनाक आवारा अनंतिनी पुकार हूं—
प्यास हूं—छोरहीन, अंतहीन, बाधाहीन;
मैं कण-कण की ऐसी एक चिर बेचैन अभीप्सा हूं
मैं हर कुमारी के सीने में कसकती वह कुचली हुई साध हूं—
जो तुम्हारी इस दुनिया में सदा अपूरित ही रहती आयी है।
मैं युग-युगांतर के चिरंतन कवि का वह सपना हूं
जो तुम्हारी दुनिया में सदा टूटता ही आया है
मैं हर सर्वहारा के हृदय की
शताब्दियों की घुटी कामना हूं, बुभुक्षा हूं।
मैं हर दिल के भीतर दहकती हुई
वह अनपहचानी आग हूं
कि जिसका अहसास, इकरार, ऐलान

तुम्हारी दुनिया में गुनाह समझा जाता है...:
ओ यातना मां
तुम्हारे गर्भ में चिर बंदी
मैं आगामी मन्वंतर का अनिवार सूरज हूं !

ऊपर के विवेचन से कवि की काव्य-प्रतिभा और उसके जीवन-दर्शन के कई आयाम स्पष्ट हुए हैं। यहां उसके जीवन-दर्शन पर समग्र रूप से भी एक दृष्टि डाल लेना अप्रासंगिक न होगा। 'अनागता की आंखें' की लंबी भूमिका में उसने स्वयं अपने जीवन-दर्शन की विस्तृत व्याख्या की है।

इस भूमिका के अनुसार जीवन के मूलभूत प्रश्नों के निदान खोजते हुए जब उसका परिचय अरविंद के योग से हुआ तो उसे लगा कि सब सवालों का जवाब उसे मिल गया है। और उसने अरविंद को भावी मानवता के मुक्तिदूत के रूप में स्वीकार लिया। लेकिन जब अरविंद ने १९४९ में नये चीन को मान्यता देने का विरोध किया और साम्यवादी शक्तियों को आसुरी शक्तियां कहा तब अरविंद का विधान कवि को प्रतिगामी लगने लगा। और वह मार्क्स की ओर आया। उसे लगा कि उसके दर्शन में स्वयं भगवान असत्य, अन्याय, अंध कर्म और भाग्य के मायावी पर्दों को चीर कर मानव के स्वाधीन पुरुषार्थ द्वारा साध्य लोक-मंगल की परम विधायिनी वाणी बोले थे। मार्क्स से मिलने के बाद उसे समाधान मिल गया। साफ प्रतीत हुआ कि न अरविन्द मेरी सीमा है, न मार्क्स। अरविंद के पास है सत्ता का केवल आत्मिक अनुभूतिशील पक्ष : मार्क्स के पास है सत्ता का भौतिक अभिव्यक्तिशील पक्ष। पर सत्ता अपने मौलिक रूप में अनेकांतिक है : आत्मिक और भौतिक उसके दो संयुक्त पहलू हैं, जिनके बीच अविनाभावी संबंध है। काल के एक ही अविभक्त निमिष में एकबारगी ही आत्मिक भौतिक का निर्णय-निर्माण कर रहा है और भौतिक आत्मिक का। उनके बीच पूर्वापरता स्थापित करना संयुक्त सत्ता को विच्छिन्न करना है।... मानव-आत्मा में चिरकाल से यह जो पूर्णतम-प्यार और अमर मिलन की चाह है, इसी के भीतर से मैंने आत्मिक और भौतिक के इस महामिलन का सपना देखा है। वासना-कामना का तिरस्कार मुझे स्वीकार्य नहीं। हमें अपनी आंतरिक पुकारों के अनुरूप ही एक ऐसा संपूर्ण और संवादी (हारमोनियस) भौतिक का निर्माण करना है जिसमें मानव की समस्त अनादि वासनाओं को पूर्ण तृप्ति मिलेगी।

स्पष्ट है कि इस प्रकार का दर्शन—पंत जी ने भी लगभग ऐसे ही दर्शन को स्वीकृति दी है—अपनी कुछ दार्शनिक असंगतियों और अपने कुछ रहस्य-वादी-अवैज्ञानिक तत्वों के बावजूद कोई समाज-विरोधी और प्रतिक्रियावादी

दर्शन नहीं होना चाहिए । इसकी असंगतियों का विश्लेषण किया जा सकता है, पर इनके आधार पर हमें कवि की सदिच्छा पर संदेह करने का कोई अधिकार नही है, उसकी सदिच्छा की, पत जी की सदिच्छा की तरह ही, प्रशसा ही की जानी चाहिए । स्वस्थ भोग अपने आप मे कोई बुरी चीज नही है, बुरी क्यों, वह अपने आप में मानव-जीवन का एक अनिवार्य आधार है। पर जहा तक वीरेंद्र कुमार जैन की कविताओं मे इसकी अभिव्यक्ति का सवाल है, वह सब जगह स्वस्थ और अकुठित नही है। कई जगह उनके भोगवाद ने असतुलित और स्वेच्छाचारी रूप धारण कर लिया है । यह उन पर डी. एच. लारेंस का प्रभाव मालूम होता है । इस प्रभाव में कई जगह वीरेंद्र कुमार जैन भी लारेंस की तरह ही, मनुष्य की वर्तमान नैतिकता से तग आ कर उसे कुत्तो के नैतिक स्तर तक 'उठाने' का प्रयत्न करते प्रतीत होते है। 'पी कहां' कविता में उन्होंने मनुष्यों के जटिल और कुंठित प्रेम-सबधो की तुलना मे सूअरों के 'अकुठ' प्रेम की प्रशंसा की है। 'यह फाल्गुनी पूर्णिमा की रात' मे उन्मुक्त और असतुलित 'कृष्णपंथी' भोग का समर्थन किया गया है। 'पातिव्रत्य, पाप और प्रेम' मे कवि यह नही कहता कि पातिव्रत्य या दापत्य जीवन का आधार सिर्फ प्रेम ही होना चाहिए; वह न केवल दापत्य सीमाओं से बाहर के प्रेम को पवित्र घोषित करता है, बल्कि पातिव्रत्य के प्रति घोर उपेक्षा भाव भी व्यक्त करता है।[१४] परकीया-प्रेम या दापत्य-जीवन के बाहर के प्रेम के प्रति, वर्तमान सक्राति काल में, जब कि दापत्य का आधार प्रेम नही, कोई और बाहरी विवशता है, एक उदार स्वीकृति का भाव और बात है और उसे अपने आप मे साध्य, वरणीय बताना और बात। निश्चय ही इस का असतुलित प्रकार भोग, जिसकी प्रेरणा शायद कवि को अपने 'अनन्य आराध्य एकमेव वल्लभ रसश्वर कृष्णचद्र' से मिली है कलह, सघर्ष और सामाजिक विषमता का आधार बन कर मानसिक और भौतिक रोगो की ही सृष्टि करेगा।

वीरेंद्र कुमार जैन नयी संवेदनाओ और नयी अभिव्यक्तियों के कवि हैं। नवीनतम शिल्प-शैली का समुचित उपयोग उन्होंने अपनी कविताओ में किया है। इद्रिय-बोधो का सम्मिश्रण, और शिल्पवादी 'नये' कवियों की तरह ऊल-जलूल नही—जिसे वे एक अतर-ऐंद्रिक सौंदर्य-बोध का प्रमाण मानते है, उनके शिल्प की एक मुखर विशेषता है। वे क्षणो की 'नीली गहराइयां' का देखते हैं, 'शीतल अगूरी हवाओ' का स्पर्श महसूस करते है, और विदेशी सेंट की 'नीली अनपहचाई गध' का अनुभव करते हैं। कवि के विकसित सौदर्य-बोध का प्रमाण उसकी कई कविताओ में मिलता है। एक विवृत बिंब देखिए :

---

१४. द्र. 'अनागता की आखें', पृ. १४३, १६३ और १७३

जापान की जसमीना से महमेहाती चांदनी रातें !
नदी की धार पर केलिको मलमल-सी टंगी हवा की हंड्डियां :
किनारे सरकडे और बांसों की रेखाली महीन छांहों में
एक लिली के नीले फूल-सा लकड़ी का जापानी बंगला
सूने बंद फाटक पर छायी अंगूर की रेशमी बेलियां
पोर्च पर लटकते हुए कागजी फानूस की
फूलों-भरी अलसायी रोशनी ।
खिड़की-दरवाजों के फूल-पत्ती-चिड़िया चित्रित फेनिल पर्दों पर
पन्ने-सी मीठी गहरी हरी आभाएं ।
एक खुली खिड़की के सूने चौखट पर
निर्जन वायलेट उजाला :
इतना अनाविल, निस्तरंग, निस्पंद
कि जैसे अभी-अभी वहां कोई आयेगा ।
अभी कोई चमेली की तैरती गंध का पीताभ चेहरा
वहां आविर्भान हो जायेगा...

—'छाया, महफिल और जापानी बंगला'

/ 'मुक्त साहचर्य' शैली का प्रयोग भी वीरेंद्र कुमार जैन ने काफी किया है। कवि को अपनी प्रिया की गोरी बांह की रोमावली पता नही कहां-कहां किन-किन बिंबों के पास ले जाती है। वर्षा की पहली फुहार उसे किसी की शवनमी अंगुलियों की याद दिला देती है और वे अंगुलिया किसी दूधिया साड़ी की आभा उसके कमरे मे फैला देती हैं। कवि एक बिंब से दूसरे बिंब तक एक ही राग के सेतु के सहारे बढ़ता जाता है। और एक राग से दूसरे राग तक एक ही बिंब के सहारे। क्या इसे मुक्त साहचर्य की जगह 'रागात्मक साहचर्य' कहना ज्यादा उपयुक्त होगा ?

नये शिल्प-विधान के बावजूद न तो वीरेंद्र कुमार जैन में शिल्पवादी-प्रयोग-वादी कवियों सी दुरुहता और शिल्पगत विशृंखलता है और न चौंकाने की वृत्ति। नये प्रयोग उन्होंने महज शब्दो से खेलने के लिए नही किये, किसी आंतरिक आवश्यकता की पूर्ति के लिए ही किये है।

एक बात और। अपने अध्यात्मवादी रुझान के बावजूद वीरेंद्र कुमार जैन ने पंत जी की तरह 'सिद्धात-कथन' नही किया है। उनकी कविताएं सब रुझानों के बावजूद कविताएं है। 'अनागता की आंखें' की बत्तीस कविताओं में से सिर्फ एक ही कविता—'योगरात्रि'—में सीधा-सादा सिद्धांत-कथन मिलता है। अरविंद के प्रभाव ने, जैसा कि प्रारंभ में भी संकेत किया जा चुका है, उन्हे

दो चीजें दी हैं। एक तो प्रबल वासना की कविताओं में भी पवित्रता के स्पर्श बिखेरने की क्षमता और दूसरे एक मसीहाई उन्माद का स्वर, जो उनकी कई कविताओं को एक जबर्दस्त प्रभावशीलता देता है। (द्र. 'मैं तुम्हारी चरम चाहत का हिरण्य-गर्भ जाया हूं', और 'मेरा प्रणाम लो, मेरी चुनौती लो हे भगवान अमिताभ !' कविताएं) एक पवित्रता का, उदात्तता का वातावरण उनकी लगभग सभी कविताओं में मिलता है। और इसका मूल रहस्य है उनका **अतींद्रिय, अतलांत, वलयित, चिरंतन, तमिस्र, आरोहण, अवरोहण, ऊर्ध्व, अनाहत, चराचर, दिगंत, विराट, अमित, अनिर्वार, अक्षुण्ण** जैसे शब्दों का पर्याप्त प्रयोग।

हिंदी की प्रगतिशील कविता में वीरेंद्र कुमार जैन की कविताएं अपनी दो विशेषताओं के कारण महत्वपूर्ण है। एक तो अपने विराट तत्व के कारण और दूसरे मानवीय भोग को पवित्रता देने के कारण, उसके प्रति दकियानूसी कुंठाओं से मुक्ति के कारण। विराट तत्व वीरेंद्र कुमार जैन में सिर्फ मानवीय गौरव-गायन और भौगोलिक विराटता के रूपों में ही अभिव्यक्त नहीं हुआ है। इन रूपों के अतिरिक्त एक 'खगोलिक' रूप में—एक कॉस्मिक रूप में—भी सामने आया है। नारी के रूप-सौंदर्य और उसके प्यार की शक्ति का जो विराट वर्णन उनकी कविताओं में मिलता है, वह हिंदी में अपने ढंग की एक ही चीज है।

इंदीवर

फिल्मी गीतकार इंदीवर की कविताओं का एक संग्रह **प्यार बांटते चलो** (५६) प्रकाशित हुआ है। इंदीवर भी रूमानी रुझान के प्रगतिशील कवि हैं। इस संकलन की सभी कविताएं उर्दू से प्रभावित शैली में परपरागत छन्दोबद्ध रचनाए है। प्रारंभ में कवि ने अपनी कविता के प्रति अपनी दृष्टि को इन पंक्तियों में प्रकट किया है :

कुछ लोग सोचते हैं मेरे ये गीत जल्द मर जायेंगे
जो काम इन्हें सौंपा मैंने, वो काम मगर कर जायेंगे
सूरज न सही मैं शमा सही, बस एक रात ही काफी है
जिससे कि बदल जाये जीवन, बस एक बात ही काफी है।

सौंदर्य और प्रेम उनकी कविताओं के प्रधान विषय हैं। उनकी शैली में सरलता, सहजता और गीतात्मकता है। पर यह सरलता, कभी कभी थोड़े नीचे स्तर पर उतर कर एक हल्कापन, फिल्मीपन या बाजारूपन भी ला देती है। ऐसी कविताएं अनपढ़ मजदूर वर्ग को तो प्रभावित करती हैं पर सुसंस्कृत मनों को ये 'सस्ती' लगती हैं। जैसे :

धन वाले से प्यार जताकर तूने अपना मन बेचा है
तू कहती है ब्याह किया है मैं कहता हूं तन बेचा है
वेश्या बिकती है क्षण को, तूने सारा जीवन बेचा है!

प्यार संबंधी इन कविताओं में कहीं उसने पूंजी की तरह प्यार का भी 'समाजीकरण' करने की मांग रखी है, और शायद उसने इसे अपनी प्रगतिशीलता का प्रमाण भी समझा है :

मेरे ही आगे तुम ममता का भंडार न डालो
मेरी ही झोली में अपना सारा प्यार न डालो
कितने ही ऐसे जिनका दामन खाली जीवन खाली
जिनके प्यासे होंठों से गुजरा है हर सावन खाली
प्यार बांटती चलो किसी की पूंजी नहीं बनाओ तुम
मरुथल बहुत पड़े हैं, सागर को न यहीं बरसाओ तुम

आलंकारिक अर्थ में सब पर प्यार लुटाने की बात तो समझ में आती है, पर वास्तव में पूंजी की तरह उसके समाजीकरण की धारणा कोई प्रगतिशील धारणा नहीं है, वह निम्न मध्यम वर्गीय फूहड़ धारणा है।

पर इंदीवर की विशेषता यह है कि उसने बहुत सहज शैली में, साधारण अनपढ़ लोगों के समझ में आ सकने लायक ढंग से कई नये नये विषयों पर कविताएं लिखी हैं : उदाहरणस्वरूप उनकी कविता 'कोई हरिश्चन्द्र' वेश्या जीवन के दर्द पर लिखी हुई एक सुन्दर कविता है। 'परित्यक्ता' में नारी के प्रति नर के युगों पुराने अत्याचार को चुनौती दी गयी है :

नर ही समाज का नेता है, जो चाहे सो कर लेता है
घर पर भी उसकी जीत और बाहर भी वही विजेता है
मां ने बालक को जन्म दिया, जग नाम पिता का लेता है!

'आंसू को पसीने में बदलो' दुखियों को कर्म की प्रेरणा देती है :

कब ओस से भरता है सागर, अश्कों से दिया कब जलता है
आंसू को पसीने में बदलो, मेहनत से नसीब बदलता है

'मेहनत में भगवान छुपा है' ईश्वर के प्रति रावीन्द्रिक मानववादी भावना को अभिव्यक्ति देती है :

वो खेत में मिलेगा, खलिहान में मिलेगा
भगवान तो ए बन्दे इन्सान में मिलेगा

रहता है पुल के नीचे फुटपाथ पे सोता है
दूकान में किसी की वो प्यालियां धोता है
वो प्यालियां धोता है—दूकान में मिलेगा !

'मरघट में दीपक जलता है' में वही भावना व्यक्त की गयी है जो पन्त जी की कविता 'ताज' में की गयी है पर कितने जीवन्त ढंग से। पन्त जी की कविता इसके सामने निष्प्राण सिद्धान्तकथन मात्र लगती है :

कुटियों में अंधेरा ही देखा, मरघट में दीपक जलता है
कब्रों को चूमता है ये जहां, जिन्दों को रौंदता चलता है
मिलता है, न्याय कभी जग में दावों से और दलीलों से ?
बहसों से और अपीलों से, पैसों पर बिके वकीलों से ?
अब पढ़ो बाइबिल गिरजों में और करो पाप का प्रायश्चित
पहले ईसा को मार चुके तुम स्वयं क्रास पर कीलों से
अस्तित्व मिटा डाला पहले, अब नाम से संवत चलता है
कब्रों को चूमता......

'ओ आत्मघात करने वाले' एक सबल प्रेरणा देने वाली कविता है :

जहर खा लिया क्यों तू ने ओ आत्मघात करने वाले ?
जीवन से डर गया, मौत से भी न अरे डरने वाले !...
आंचल पर मर गया, न देखा तू ने परचम लहराता
मिटना ही था गर तुझको, तू मिटे हुओं पर मिट जाता !

'कलाकार' उन लोगों का विरोध करती है, जो अपने आपको कलाकार कह कर सामाजिक उत्तरदायित्वों से बचने की कोशिश करते है :

पहले तू इन्सान बाद में कलाकार है
ताजमहल तू पीछे पहले इक मजार है...
शायद तुझको साकी और शराब चाहिए
तुझे हसीन तसव्वुर, रंगीं ख्वाब चाहिए
हवस छुपाने को यूं बोल नकाब चाहिए
दुनिया में रह कर क्यों दुनिया से फरार है
पहले तू इन्सान...

'औरों के लिये जो जीता है' अपने लिए नहीं, समाज के लिए जीने की प्रेरणा देती है। 'ताज' उस प्रेमी के सच्चे प्यार के सम्मान में लिखी गयी है, जिसने प्यार के लिए सिंहासन भी छोड़ दिया था।

इंदीवर की कविताओं में उसका जनवाद और उसकी प्रगतिशीलता वोलती है, उसकी सामाजिक भावनाएं और उसकी राजनीतिक चेतना वोलती है, पर कहीं कही उस पर कुत्सित समाजशास्त्र का और कही कही कुत्सित मनोविज्ञान का प्रभाव अखरता है। प्यार के 'समाजीकरण' के सदर्भ में लिखी गयी कविताएं और 'इतिहास पढ़ाना वन्द करो' नामक कविता में कुत्सित समाजशास्त्र का प्रभाव दिखाई देता है और 'रूपान्तर' तथा 'क्या चुन लू' में कुत्सित मनोविज्ञान का। रूपान्तर में उन सभी चीजों और आदर्शों की, जिन्हे पवित्र और ऊंची माना जाता है, उसने खिल्ली उड़ाई है :

दुनियां की हर कला वासना का सुन्दर सा रूपान्तर है
पावनता, खुल जाय न अपना भेद किसी पर, इसका डर है
असमत और सतीत्व, कल्पना कितनी सुन्दर कितनी प्यारी
पुरुषों की इस कविता पर हंसती होगी मन में हर नारी !
खुद की चाहों पर मरते हैं, खुद को प्यार किया करते हैं
मुझे अमुक से प्यार नाम औरों का लोग लिया करते हैं
प्यार, न देखा गया, न पाया गया कहीं भी ऐसा नाता
ये है नग्न प्यास, सौ सौ पर्दों में जिसे छुपाया जाता
मानव का मन क्या कहिये युग युग से पाखंडों का घर है
दुनियां की हर कला...

यह फ्रायड का ही प्रभाव है कि वह हर चीज को घृणित रूप मे ही देखना चाहता है। इसी प्रकार 'क्या चुन लू' कविता में कवि ने वड़ी 'सरलता' से एक भेदभरी वात हमें वता दी है कि 'तोजो' और 'हिटलर' किसी सुन्दरी के दिल तोड़ने से ही तोजो और हिटलर बन गये और मार्क्स और लेनिन, इसीलिए मार्क्स और लेनिन बने कि 'किसी सुन्दरी ने उन्हे अपने आचल के साये मे पाल-लिया'; इस सादगी पे कौन न मर जाए ए खुदा ! मगर मुश्किल यह है कि यह सादगी फूहड़ और कुत्सित मनोविज्ञान के सिवा कुछ भी नही है !

गंगाराम 'पथिक'

पथिक राजस्थान के प्रमुख रूमानी और प्रगतिशील गीतकार हैं। उनको निकट से जानने वाले लोग आश्चर्य किया करते हैं कि कैसे इतना दुर्गतिशील जीवन जीते हुए पथिक ने इतने सुन्दर प्रगतिशील गीतों की रचना की है।

जय बापू वाजार की ओर धुंआ उठ रहा है पथिक के कविता-संकलन हैं। पथिक की कविताओं को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। प्रेम

और सौंदर्य तथा प्रणय जन्य दर्द, घुटन और निराशा के रूमानी गीत, प्रगतिशील-उद्बोधनात्मक गीत और समसामयिक राजनीतिक-सामाजिक असंगतियों पर व्यंग की कविताएं।

धुंआ उठ रहा है के रूमानी गीतों में 'दर्द तेरा और मेरा एक है, इसलिए तुमसे शिकायत क्या करूं ?', 'अकेला कितनी दूर चलूं', 'नीर भरे कजरारे मेघ नहीं भाते', 'सांझ पड़ी', और 'मासूम बहुत है दिल, जल्लाद जमाना है' महत्वपूर्ण हैं। इन गीतों में प्रेम की आशा निराशा को रागभीनी अभिव्यक्तियां दी गयी हैं।

पथिक के महत्वपूर्ण प्रगतिशील गीतों में 'जिन्दगी मे कशमकश है तो सभी कुछ है', 'भूखा नंगा देश मुक्ति का पर्व मनाता है', 'शायद कोई तूफान मचलने वाला है', 'न जाने कहां से धुंआ उठ रहा है', आदि गीतों का उल्लेख किया जा सकता है।

'जिन्दगी में' वह शहीदाना अन्दाज में संघर्ष को गौरवान्वित करता है :

जिन्दगी में कशमकश है तो सभी कुछ है
गर कहीं आराम मिल जाता, बुरा होता।
बेबसी कितनी बुरी है कौन समझाता
कौन बतलाता जहर का स्वाद कैसा है
सिर्फ कहने के लिए इन्साफ है लेकिन
दर असल उसका भी मालिक है तो पैसा है
सब तरफ ईमान ही ईमान बिकता है
दर्द गर नीलाम हो जाता बुरा होता।

'भूखा नंगा देश' स्वतंत्रता दिवस पर लिखी हुई है। 'शायद कोई' और 'न जाने कहां से' आने वाली क्रान्ति की भविष्यवाणी के दो सुन्दर गीत हैं :

धरती के दिल की धड़कन ने बतलाया है
मिट्टी के कण कण में विद्रोह समाया है
सन्नाटे की सूनी गलियों से टकरा कर
आतंक प्रलय के दरवाजे पर आया है
पाषाणों का अभिमान पिघलने वाला है
शायद अन्तिम परिणाम निकलने वाला है
शायद कोई तूफान मचलने वाला है
युग जीवन का इतिहास बदलने वाला है।

यह एक सुन्दर गीत है पर अन्तिम 'स्टैंजा' (वरदान न कहना... रख वाला है) इसमें व्यर्थ ही जोड़ दिया गया है। न केवल वह पूरे गीत की प्रभावान्विति को तोड़ता है, बल्कि वह अपने आप में भी संगत नहीं है।

तीसरे वर्ग की कविताओं में पथिक के पहले संकलन की शीर्षक-कविता 'जय बापू बाजार की' के अतिरिक्त दूसरे संकलन की 'ये बस्ती बटमारों की' और 'शोर मचाओ' उल्लेखनीय है। पथिक में एक सधा हुआ व्यंगकार है जो राजनीतिक और सामाजिक पाखंड को बड़ी निर्ममता से उधेड़ता है। बापू को बाजार बना कर कमा खाने वालों पर यह व्यंग देखिए :

चापलूस कठमुल्ला मूरख, देश भक्त कहलाता है
चरखा रोज चलाता है पर मिल मालिक बन जाता है
सेवा-सेवा चिल्लाता है, चोर बजार चलाता है
कभी घूंस से और कभी चन्दे से परमिट पाता है
जय बापू बाजार की! जय नेहरू दरबार की!

और ऐसे नेताओं की छत्रछाया में पनपने वाले दफ्तरशाहों का क्या हाल है ?:

यहां करोड़ों की लागत के बांध बनाये जाते हैं
होते ही बरसात तनिक सी सबके सब बह जाते हैं
अधिशासी अभियन्ता गण ही सबसे बड़े फ़रिश्ते हैं
कौन पूछने वाला है जी, फाड़ फाड़ कर सीते हैं
जय हो मोटर कार की! बड़े कमीशन दार की!
जय बापू बाजार की! जय नेहरू दरबार की!

'ये बस्ती बटमारों की' भी एक सुन्दर व्यंग कविता है, जो समसामयिक जीवन के तीन मुख्य पक्षों—प्रेम, सामाजिक-राजनीतिक जीवन और सांस्कृतिक जीवन में फैली हुई धांधली को व्यंग का विषय बनाती है :

हर पत्थर भगवान यहां का, हर पंडा पैगम्बर है
गाय यहां माता बन पुजती अब बकरी का नम्बर है
यह ऋषियों की भूमि घुली है भंग यहां के पानी में /
भरमों का मनहूस बुढ़ापा, मिलता भरी जवानी में
ये सब काली करतूतें हैं धरम के ठेकेदारों की
सोच समझ कर चलना भैया, देख संभल कर चलना भैया,
ये बस्ती बटमारों की!

'शोर मचाओ' भाषण-बाज नेताओं पर अच्छा व्यंग है :

जो भी नारा मिले उसे सिलबट्टे पर घोटो, पी जाओ,
सबसे बड़ी समझदारी है, कुछ मत समझो, सब समझाओ,
राजनीति के बनो खिलाड़ी, जोड़-तोड़ का पाठ पढ़ाओ
समय पड़े गूंगे बन जाओ, काम बने बहरे बन जाओ
रोटी छीनो, सपने बांटो, सबको बहलाओ, बहकाओ
कुछ न करो लेकिन केवल करने-धरने का शोर मचाओ !

रूमानी रुझान के अन्य कवि

रूमानी रुझान के अन्य प्रगतिशील कवियों में श्री सुरेन्द्र कुमार श्रीवास्तव, चन्द्र कुवर बर्त्वाल, जयनाथ 'नलिन', तारा प्रकाश जोशी, शान्ति भारद्वाज 'राकेश', मगल सक्सेना, जय कुमार 'जलज' (संकलन-'सूरज की आस्था') और सत्यप्रकाश जोशी (संकलन-सहस्रधारा) के नाम लिये जा सकते हैं।

सुरेन्द्र कुमार श्रीवास्तव के तीन संकलन प्रकाशित हुए हैं : मजदूर, जागरण के गीत और अनागता।

मजदूर (४६) की अधिकाश कविताए मजदूर-किसान और गुलाम भारतीय जनता के दुख-दर्दों और संघर्षों से सम्बंध रखती है। एक कविता रूस की प्रगति और एक नाजी आक्रमण के समय रूसी किसानों के नाम सोवियत सरकार के संदेश से संबद्ध है। तीन चार कविताओं में कवि के व्यक्तिगत जीवन के सघर्षों को और दो मे स्वस्थ अकुंठित दाम्पत्य प्रेम को अभिव्यक्ति मिली है। कुछ कविताएं प्रकृति संबंधी भी हैं। साधारणतया सभी कविताओं, और विशेषतः प्रेम और प्रकृति-संबंधी कविताओं की शब्दावली पर छायावादी प्रभाव गहरे हैं। एक गीत—'कैसे कह दूं दुःख ही होगा मधु संगीतों का उद्गम'—पन्त जी की 'वियोगी होगा पहला कवि' का उत्तर है। यह ठीक है कि कवि ने अनेक विषयों को छुआ है, पर संकलन की कविताएं साधारण स्तर की प्रगतिशील कविताएं ही कही जाएगी, उनसे कवि का कोई अलग व्यक्तित्व उभर कर सामने नही आता।

जागरण के गीत (५२) में जहा पहले संकलन की अपेक्षा भाषागत प्रौढ़ता दिखाई देती है, वहां छायावादी प्रभाव और भी मुखर हुए हैं। संकलन की अधिकांश कविताएं छायावादी ढंग की हैं—दो एक मे रहस्यभावना के कुछ स्पर्श भी हैं। जैसे 'तू कौन बता दे री सुन्दरि' और 'निद्रा' में। सकलन की बत्तीस कविताओं में पांच-छह प्रगतिशील भावभूमि की है—'पनिहारिन',

'आह्वान', 'स्वतंत्रता की हलचल', 'अतीत के चरण', 'जावा की क्रान्ति', 'कवि के स्वर'। श्री विजयशंकर मल्ल के अनुसार सुरेन्द्र कुमार श्रीवास्तव के काव्य की सबसे बडी विशेषता अकम्पित जीवनास्था है।

अनागता (५८) कवि का तीसरा संकलन है। संकलन का मूल स्वर यद्यपि रूमानी है, पर कई कविताएं प्रगतिशील है। ऐसी कविताओं में 'मैं कहता हूं गाता जा रे', 'तुम पथिक हो', 'तरु के पंछी गाओ', 'निश्चय', 'सैनिक', 'बड़ा कठिन है' और 'नयी लहर' का नाम लिया जा सकता है। इन कविताओं में कवि की पिछली कविताओं की अपेक्षा अभिव्यक्ति की थोड़ी प्रौढ़ता दिखाई देती है। एक स्वस्थ जीवनास्था इन कविताओं में व्यक्त हुई है:

गीतों से कलियां खिल जाएं
तारक दल ऊपर मुस्काएं
जग के सोये कण को भी
गायक, आज जगाता जा रे!

'सैनिक' कविता समसामयिक युद्धों के स्वरूप-विश्लेषण की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। युद्ध की परिभाषा कवि ने यह दी है:

युद्ध है कलाकार गर्हित कुरूपता का
मौत की भट्टी है।

इस कविता में न्याय और अन्याय-पूर्ण युद्धो में भेद किया गया है और तथाकथित मानवतावादियों की तरह युद्धमात्र की निन्दा नही की गयी है।

चन्द्र कुंवर बर्त्वाल गढवाल के एक प्रतिभाशाली कवि थे, जो सन ४७ में २७ वर्ष की छोटी सी उम्र मे ही गुजर गये।[१५] नन्दिनी नामक खंडकाव्य के अतिरिक्त उनके दो कविता संकलनों—गीत माधवी और पयस्विनी—के प्रकाशन की सूचना डॉ. पुत्तूलाल शुक्ल ने दी है। डॉ. नामवर सिंह के शब्दों में "समीक्षकों द्वारा उपेक्षित तथा अकाल ही धरती से उठ जाने वाले कवि बर्त्वाल ने प्रतिभा के अनेक जौहर दिखाये। विषय-वैविध्य तथा रूप-वैभिन्य की दृष्टि से उन्होने अनेक सफल रचनाएं उपस्थित कीं और रूमानी छाया की सीमा में भी अद्भुत सामाजिक चेतना का परिचय दिया।"[१६]

---

१५. प्रतीक—४ के लेखक परिचय से.
१६. नामवर सिंह, हिन्दी कविता के पिछले दस वर्ष, आलोचना—४.

जगन्नाथ नलिन के कविता संकलन धरती के बोल (५८) की अधिकांश कविताएं छायावादी-सी शब्दावली में लिखी गयी उत्तर छायावादी मांसल रूमान की कविताएं हैं। पर कई कविताएं प्रगतिशील भी हैं। ऐसी कविताओं में 'जुहू तट', 'काफिला', 'गरल की घूट', 'जागरण का अभियान', 'समुद्र साहसी', 'तीन तस्वीरें', 'दीनू का सपना', 'मेरा विश्वास', और निर्मम इतिहास' के नाम लिये जा सकते हैं। कवि की अधिकांश प्रगतिशील कविताओं की शब्दावली भी छायावादी ही है। हां, 'समाज-सिरताज' और 'तीन तस्वीरें' इसका अपवाद हैं। नलिन जी की ज्यादातर कविताएं रेखाचित्रात्मक हैं। कवि की चित्रण-क्षमता प्रशंसनीय है—इस दृष्टि से संकलन की 'जुहू तट' और 'नर्तकी' कविताएं पठनीय है। नलिन जी की कविताओं में स्वाधीनता के बाद भी जनता की दलित स्थिति, पूंजीपतियों की शोषणवृत्ति और पाखंड, और आधुनिक जीवन की कृत्रिमता का उद्‌घाटन किया गया है और सामुद्रिक जीवन के कुछ सुन्दर तथा साहसपूर्ण चित्र खींचे गये हैं। इस दृष्टि से उनकी 'असफल नाविक', 'लौट आओ' और 'समुद्र साहसी' कविताएं पढ़ने लायक हैं। 'समुद्र-साहसी' में मछुआरों के जीवटपूर्ण जीवन को सुन्दर लय मे बांधा गया है। मछुआरों के जीवन चित्रों से प्रगतिशील कविता को नलिन जी ने एक अछूते क्षेत्र की सम्पन्नता दी है।

तारा प्रकाश जोशी के तीन कविता सग्रह कल्पना के स्वर, शंखों के टुकड़े और जलते अक्षर तथा एक खंडकाव्य समाधि के प्रश्न प्रकाशित हुए हैं और लेनिन के संबंध में एक प्रबंधकाव्य पर अभी वे काम कर रहे हैं। पहले संकलन की अधिकांश और दूसरे की आधी से अधिक कविताएं स्वच्छन्दतावादी रूमानी कविताएं हैं। शंखों के टुकड़े के पहले खंड ज्योतिप्रहर में उनकी प्रगतिशील भावभूमि की और दूसरे खंड राष्ट्र का अहम् मे चीनी आक्रमण से उत्पन्न राष्ट्रीय भावभूमि की कविताएं संकलित है। जलते अक्षर में तारा प्रकाश के सामाजिक यथार्थवादी झुकाव अधिक मुखर हुए हैं। इन संकलनों की प्रगतिशील दृष्टि से 'सूरज किरणें और दिन', 'नये साहित्यकार के नाम', 'आत्म-परिचय', 'गजल', 'आकाश में अकाल', 'अकाल में बसन्त का स्वागत', 'गिन्सबर्ग के नाम' और 'जगत गुरू शंकराचार्य के नाम' कविताएं उल्लेखनीय हैं। कवि अपना परिचय देते हुए कहता है :

किसी के पास प्रभुता है
किस के पास वैभव है
हमारे पास कुछ है तो हमारी लेखनी ही है!
किसी की पास-बुक में लाख की पू जी जमा होगी,

मगर हमने खरीदे मुफ़लिसी के बैंक के हिस्से
सुनहरे अक्षरों के नामपट को छोड़कर हमने
जड़ाए द्वार पर अपने किसी विद्रोह के किस्से ।

और अकाल उसकी चेतना को इतना झकझोर देता है कि उसे सूरज और ऊषा भी अकालराहत के सिलसिले में सड़क बनाते हुए मजदूर-मजदूरिन के रूप में दिखाई देते हैं :

नग्न बदन सूरज
फटे वसन ऊषा
पड़ गया अकाल, फिरे मांगते मजूरी
बिन पगार बाबू हम
कैसे घर जाएंगे
संध्या क्या रांधेगी
तारे क्या खायेंगे ।
दग्ध किरण सूरज
तिक्त नयन ऊषा
देख रहे जीवन में कितनी मजबूरी !

अकाल के दर्द को तारा प्रकाश ने कई कविताओं में सचमुच सुन्दर अभिव्यक्ति दी है :

सूनी हैं झोंपड़ियां, खाली हैं गांव
अशुभ शकुन स्यारों के चीखते विराव
भोर कर्जदार है, सांझ है उधार
बुझे हुए चूल्हों में सीझते अभाव !

शान्ति भारद्वाज 'राकेश' कवि सम्मेलनों के लोकप्रिय कवि है। समय की धार उनका कविता संकलन है। सकलन की महत्वपूर्ण कविताओं में 'बड़े लोगों की बस्ती', 'शिशु के प्रति', 'बिगुल बज गया है', 'मित्र के नाम' और 'सैनिक के नाम' उल्लेखनीय हैं। 'बड़े लोगों की बस्ती' बस्तियों और झुग्गियों के बीच की विषमता को उजागर करती है। 'शिशु के प्रति' वात्सल्य भाव की स्वस्थ अभिव्यक्ति है और शेष तीनों कविताएं भारत-चीन संघर्ष के संदर्भ को एक मर्मस्पर्शिता के साथ अभिव्यक्ति देती है। 'मित्र के नाम' भारत-चीन संघर्ष पर लिखी हुई भूषणी देशभक्ति की आवेशपूर्ण कविताओं से अलग, एक भूतपूर्व मित्र

से संघर्ष की विडम्बना और दर्द को, एक चिन्तापूर्ण शैली में अभिव्यक्ति देती है। 'सैनिक के नाम : एक मनस्थिति' कदाचित इन कविताओं में सबसे ज्यादा मर्मस्पर्शी कविता है। सीमान्त पर खड़े सैनिक के साथ देश के एक नागरिक के भावात्मक तादात्म्य से उत्पन्न यह रागात्मक तरलता से सम्पन्न कविता निश्चय ही काफी सुन्दर बन पड़ी है :

तेरे जूतों कि खट खट अब मुझे सोने नहीं देती...
लगता है
जैसे वह रोटी तेरी थी जिसे छीन कर मैं खा गया हूँ
तेरी पत्नी की नींद जैसे मेरी पत्नी ने चुरा ली है
और मेरा बेटा जैसे तेरी वसीयत का दूध पी रहा।

मंगल सक्सेना रूमानी रुचियों के तरुण गीतकार हैं। **मैं तुम्हारा स्वर** उनका एकमात्र संकलन है। संकलन में रूमानी भावभूमि के कुछ सुन्दर गीतों के अतिरिक्त युद्ध से संबंधित राष्ट्रीय आवेश की कुछ कविताएं हैं। एक कविता 'युद्ध के आतंक' को यथार्थवादी ढंग से सुन्दर अभिव्यक्ति देती है। दर्द और प्यार का गायक यह कवि दर्द और प्यार से संतुष्ट नहीं है, किसी बृहत्तर मानवीय सत्य की टोह में है :

दर्द मिल गया, प्यार मिल गया सपना तक साकार मिल गया
फिर भी एक प्रतीक्षा है, पता नहीं वह किसकी है।

संकलन की प्रगतिशील दृष्टि से उल्लेखनीय कविताओं मे 'हम निराला के पुत्र', 'आधुनिक पोशाकों के विरोधियों से', तथा 'दे उपदेश' प्रमुख हैं। इन कविताओं मे पुराणपंथिता और रुढ़िवादिता पर कहीं सीधे प्रहार और कहीं व्यंग हैं, और जीवन के स्वस्थ-भोगवादी पक्ष को उभारा गया है। 'दे उपदेश' अच्छा व्यंग है, जो आज के नेताओं की ओर निर्देशित है :

रोटी मांगे, दे उपदेश।
रोजी मांगे, दे उपदेश।
चीख पड़े तो दे उपदेश।
मूक रहे तो दे उपदेश।
भारत की सन्तान को—दे उपदेश।
भूखी-नंगी जान को—दे उपदेश।
बदतमीज इन्सान को—दे उपदेश।

प्रयोगशील रुझान के प्रगतिशील कवि

इस वर्ग के कवियों को हिन्दी में साधारणतया 'नये कवि' कहा जाता है और इनके काव्य को नयी कविता में गिना जाता है, पर जैसा कि हम अन्यत्र[1] स्पष्ट कर चुके हैं, ये वास्तव में नयी प्रगतिशील कविता के कवि हैं। यहां प्रश्न उठता है कि अन्य प्रगतिशील कवियों, विशेष तौर से केन्द्रीय वर्ग के प्रगतिशील कवियों के काव्य से यह 'नयी प्रगतिशील' कविता किस अर्थ में भिन्न है ?

सबसे पहली बात तो है शिल्प की। शिल्पगत नवीनता और आधुनिक मुहावरे के कारण ही इस कविता को साधारणतया नयी कविता कहा जाता है। शेष प्रगतिशील कविता की तरह यह कविता वाणी की सार्थकता विचार वहन मात्र में नहीं मानती। वह शिल्प के प्रति अधिक सजग है। नरेश मेहता की 'समय देवता' और मुक्तिबोध की 'अंधेरे मे' आदि कविताओं की शिल्प-शैली सामान्य रूप से प्रगतिशील कविता की शिल्प-शैली से बहुत भिन्न है।

दूसरी यह कि यद्यपि नयी प्रगतिशील कविता भी अपने मूल रूप मे सामाजिक कविता ही है, तथापि उसकी सामाजिकता उस सपाट और सूत्रात्मक सामाजिकता से काफी अलग है, जो प्रतिनिधि प्रगतिवादी कवियो मे मिलती है। नयी प्रगतिशील कविता की सामाजिकता व्यक्तित्व के उचित विकास को भी महत्व देती है। यही कारण है कि यह व्यक्ति के सुख-दुःख और उसकी समस्याओ से कतराई नही है।

प्रयोगशील रुझान के कवियों ने प्रगतिशील कविता की यथार्थ-चित्रण क्षमता को भी नयी ऊंचाइयों और गहराइयों तक पहुंचाया है। न केवल सामाजिक यथार्थ की नयी जमीनें जोती गयी है, बल्कि मानसिक यथार्थ के गहन अंधकार-लोक में भी अधिक साहस के साथ प्रवेश किया गया है। जिसे 'अन्तरराष्ट्रीयता बोध' कहा जा सकता है, उसकी अधिकांश अभिव्यक्तियां इन कवियो के प्रगतिशील काव्य में ही प्राप्त होती है।

इन नये प्रगतिशील कवियों मे मुक्तिबोध, गिरिजा कुमार माथुर, शमशेर, नरेश मेहता, भारत भूषण अग्रवाल, दुष्यन्त कुमार, रामदरश मिश्र और केदारनाथ सिंह प्रमुख हैं।

---

१. देखिए लेखक की पुस्तक परिप्रेक्ष्य में संकलित निबंध 'नयी कविता का प्रवृत्तिगत वर्गीकरण'.

गजानन माधव मुक्तिबोध

मुक्तिबोध नयी प्रगतिशील कविता के स्रष्टाओं में अपना एक विशिष्ट और महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। अपने वर्ग के अन्य कवियों से वे कई दृष्टियों से काफी अलग और विशिष्ट कवि हैं। वे मूलतः और अन्ततः आन्तरिक संघर्ष और अन्तर्द्वन्द्व के कवि हैं। "उनकी कविताओं का केन्द्रीय विषय है: आज के व्यक्ति का अन्तर्द्वन्द्व। सामाजिक अन्तर्द्वन्द्व की जो छाया व्यक्ति के जागरूक मन में प्रतिबिम्बित होती है, उसी के मार्मिक चित्रण का प्रयास मुक्तिबोध ने बार बार किया है। इस तरह मुक्तिबोध आत्मविश्लेषण के माध्यम से इस युग के सामाजिक संघर्ष को समझना चाहते हैं। उनकी कविताओं में इसी आत्म-संघर्ष से छिटकी हुई चिनगारियों की चित्र-शृंखला मिलती है।"[२]

मुक्तिबोध की कविताएं संकलन रूप मे हमें सबसे पहले तार सप्तक मे मिलती हैं। जैसा कि उन्होंने तार सप्तक के अपने वक्तव्य में स्वीकार किया है, यहां संकलित उनकी लगभग सभी कविताएं मानसिक संघर्ष और 'वर्गसोनीय व्यक्तिवाद' की कविताएं हैं। सिर्फ एक कविता—'पूंजीवादी समाज के प्रति' अपवाद है। इसमें उनके जीवन दर्शन और काव्य में आये हुए उस नये मोड़ का प्रभाव स्पष्ट है, जिसमे कि वे 'मार्क्सवाद के अधिक वैज्ञानिक, अधिक मूर्त और अधिक तेजस्वी', दृष्टिकोण की ओर झुके। इस कविता में सारी पूंजीवादी संस्कृति को शोषण के मूलभूत सत्य को टालने और ढंकने के एक प्रयास के रूप में प्रस्तुत किया गया है:

इतने काव्य इतने शब्द इतने छन्द
जितना ढोंग, जितना भोग हैं निर्बंध
इतना गूढ इतना गाढ सुन्दर जाल—
केवल एक जलता सत्य देने टाल।

शेष सभी कविताओं में एक ऐसा द्वन्द्वग्रस्त और विभाजित-व्यक्तित्व कवि उभर कर सामने आता है जिसके हृदय का घोर असन्तोष उसे कहीं टिकने नहीं देता। "उसकी सौंदर्यानुभूति घुटघुट कर रह जाती है। उसे किसी वस्तु में सार नहीं प्रतीत होता। नाश ही उसका आराध्य बन जाता है।"[३] और जो कहता है:

---

२. नामवर सिंह: गजानन माधव मुक्तिबोध, कवि, (बनारस) अप्रैल ५७, पृ. ५१-५२.

३. शिवकुमार मिश्र: नया हिन्दी काव्य, पृ. २७८, ७९.

मैं अपने से ही सम्मोहित, मन मेरा डूबा निज में ही
मेरा ज्ञान उठा निज में से, मार्ग निकाला अपने से ही ।

—अन्तर्दर्शन, तार सप्तक

यही नही, जीवन और जगत को, वह एक रोगी दृष्टिकोण से देखता है।[3] हां एकाध जगह अवश्य वह अपने से बाहर निकलने के लिए छटपटाता हुआ और किसी 'महान' के विस्तृत उर के परिरंभण की आकांक्षा व्यक्त करता हुआ दिखाई देता है।

मुक्तिबोध का पहला स्वतन्त्र संकलन, **चांद का मुंह टेढ़ा है** (६४) तार सप्तक के प्रकाशन के कोई २० वर्ष बाद प्रकाशित हुआ। सकलन की अधिकांश कविताएं लम्बी कविताएं हैं।

मुक्तिबोध की लम्बी कविताएं परंपरागत लम्बी कविताओं से काफी अलग तरह की रचनाएं हैं। क्योंकि वे न तो किसी केन्द्रीय भाव पर आधारित है और न उनमें किसी स्पष्ट कथानक का ही आभास मिलता है। वे अपनी कविताओं की परिकल्पना प्रायः एक फंटेसी के रूप में करते हैं। कुछ दूर चल कर उनकी अंतर्योजना इतनी जटिल और अस्पष्ट होकर बिखर जाती है कि कविता के सूत्र को पकड़े रहना कठिन हो जाता है। और होता यह है कि एक रूपक से शुरू होने वाली कविता अन्त तक आते आते विचारों और बिम्बों के विभिन्न टुकड़ों में बंट जाती है, या उसके सिलसिले उलट पुलट जाते हैं।[4]

मुक्तिबोध की लम्बी कविताओं की इस विशृंखलता का संबंध उनके व्यक्तित्व के द्वन्द्वो से तो खैर गहरा है ही, पर उसका एक कारण उनकी केन्द्रापगामी प्रवृत्ति भी है। मूल भाव या विषय से दूर जाने की प्रवृत्ति छायावादी कविता में बहुतायत से मिलती है। लेकिन वहां अधिकतर वह अप्रस्तुत

---

३ *ये सूर्य चन्द्र*
नभ-वक्ष लुब्ध
ये अमित वासना के शिकार
वे गगन दीप
वे रसिक-रुग्ण
पुंसत्वहीन वेश्या-विहार

—विहार, तारसप्तक

४. कीर्तीचौधरी : भोगे हुए वास्तव की प्रतीति : मायावी वातावरण के माध्यम से, **धर्मयुग**, २७ जून, १९६५, पृ. ३५

विधान की एक शृंखला के रूप में ही (जैसे पन्त की 'छाया' कविता मे) दिखाई देती है। पर मुक्तिबोध में यह प्रवृत्ति कहीं अधिक व्यापक है। वे अपनी कई कविताओं में एक विचार से दूसरे विचार और एक बिम्ब से दूसरे बिम्ब की ओर इस कदर मुक्त आसंग मे भटकने लगते हैं कि कविता का कोई अन्वित प्रभाव नही रह जाता। उनकी ऐसी कविताएं फूलों का कोई एक पौधा न रह कर ऐसी झाड़ी की तरह हो जाती है, जिसके कांटों में कहीं-कहीं किसी ने दूसरे पौधों से तोड़-तोड़ कर महत्वपूर्ण विचारों और प्रभावशाली बिम्बों के फूल टांक दिये हों। उदाहरण के लिए उनकी 'डूबता चांद कब डूबेगा' कविता ली जा सकती है। कविता में कुछ महत्वपूर्ण विचार और कुछ सुन्दर अभिव्यक्तियां हैं, पर उनकी कोई समग्रता, कोई अन्विति नही है। यह विशृंखलता कुछ कम ज्यादा मात्रा मे मुक्तिबोध की लगभग सभी लम्बी कविताओं मे विद्यमान है।

वैसे तो इस संकलन की अधिकांश कविताएं स्वर, शैली और विषयवस्तु की दृष्टि से इतनी मिलती-जुलती है कि उन्हें अलग-अलग करके पहचानना मुश्किल है, इनको कई बार पढ़ने के बाद भी इनके किसी अलग व्यक्तित्व की रूपरेखा पाठक के मन पर स्पष्ट नही होती और इसलिए इन सबका यदि कोई एक ही नाम 'एक अन्तर्द्वन्द्व' या 'एक स्वप्न कथा' होता तो भी कोई फर्क नही पड़ता। संकलन की कविताओं को तीन वर्गों मे बांटा जा सकता है।

पहले वर्ग में वे कविताएं आती हैं जिनमें कवि का अन्तर्संघर्ष उसके परिवेश के जन-संघर्षों में घुल मिल गया है। ऐसी कविताओं में प्रमुख हैं: 'चांद का मुंह टेढ़ा है,' 'अंधेरे में,' 'लकड़ी का बना हुआ रावण', 'एक भूतपूर्व विद्रोही का आत्म कथन,' 'मुझे याद आते है', 'चकमक की चिनगारियां' और 'जब प्रश्न चिह्न बौखला उठे'।

इनमे 'लकड़ी का रावण' कदाचित सर्वाधिक बहिर्मुखी कविता है, क्योंकि इसमें कवि का अपना अन्तर्संघर्ष लगभग नहीं है। लकड़ी का रावण शोषण पर आधारित कमजोर नीव वाली सत्ता का प्रतीक है। 'जनतंत्री वानर' उसकी वास्तविकता को, उसके कागजी शेरपन को—उसके बांस और कागज के पुट्ठे के बने होने के सत्य को—समझते हैं और उसे धराशायी करने के लिए शिखर पर चढ़ते आते है। जनवादी क्रान्ति की एक सुन्दर प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति कविता में हुई है।

'चांद का मुंह टेढ़ा है' मुक्तिबोध की कुछ प्रसिद्ध लम्बी कविताओं मे से एक है। नागपुर के मिल मजदूरों की हड़ताल और उन पर गोली चलने का त्रासपूर्ण वातावरण इसकी पृष्ठभूमि में है। आतंक, भय और संदेह के षड्यंत्रपूर्ण

वातावरण के निर्माण में मुक्तिबोध कुदाल हैं। गगन में करफ्यू, पक्षियों के खाली पड़े घोंसलों में पड़े हुए कारतूसों के खोल, जंगली मैमथ की सूड की तरह आगे बढ़ी हुई बरगद की डाल, खपरेलों पर मद्धिम चांदनी में एकाएक आकर चुपचाप ठहर जाने वाली एक बिल्ली, जेल के कपड़े की तरह फैली हुई चादनी आदि अनेक अनुकूल बिम्बों से इस वातावरण को रूपायित किया गया है। कविता का मूल कथ्य आधी रात को जगह-जगह लगे हुए लाल भभकते हुए अक्षरों में लिखे हुए हड़ताली पोस्टर हैं :

लाल लाल घनघोर
धधकते पोस्टर
गलियों के कानों में बोलते हैं
धड़कती छाती की प्यार-भरी गरमी में
भाप बने आंसू के खूंखार अक्षर
चटाख-से लगी हुई
रायफली गोली के धड़ाकों से टकरा
प्रतिरोधी अक्षर
जमाने के पैगम्बर
टूटता आसमान थामते हैं कन्धों पर
हड़ताली पोस्टर

साथ ही टेढे मुंह चाद की ऐयारी रोशनी का अनेक उपमानों के सहारे किया गया ऐसा वर्णन है, जो कवि की केन्द्रापगामी प्रवृत्ति का द्योतक है : उसे भीमाकार पुलों के नीचे बैठे चोर-उचक्कों सी, नदी के पानी पर झुके पेड़ों के नीचे बैठे हुए मछलिया फांसने वाले आवारा मछुओं सी, सेक्स के कवियों के काम सी, खूबसूरत अमेरिकी मैगजीन के पृष्ठों सी, नंगी-सी नारियों के उभरे अंगों के विभिन्न पोजों सी, सफेद अन्डर बीयर सी, और आधुनिक प्रतीको सी कहा गया है। कविता में कहीं कहीं मायकोवस्की की शैली का प्रभाव दिखाई पड़ता है। मुक्तिबोध भी संघर्ष के युग में कला की बारीकियों पर सीधे प्रचार को तरजीह देते प्रतीत होते हैं :

फिलहाल तस्वीरें
इस समय हम
नहीं बना पायेंगे
अलबत्ता पोस्टर हम लगा जायेंगे

हम धधकायेंगे।
मानो या मत मानो
आज तो चंद्र ही सविता है
पोस्टर ही कविता है।

'अंधेरे में' कविता क्या है जैसे एक स्वप्न शृंखला है, जिसमें एक के बाद एक अलग अलग दृश्य आते जाते हैं और इसी सिलसिले में कवि क्रान्तिकारी आन्दोलन, सैनिक शासन, गांधी जी, तालस्ताय आदि के संदर्भों को छूता हुआ आगे बढ़ता जाता है। समग्र रूप से कविता में क्रान्तिकारी परिस्थितियों के बीच अपने मन की कमजोरियों के विरुद्ध जूझते हुए एक कवि का बिम्ब हमारे सामने उभरता है।

'अंधेरे में' कविता कवि द्वारा अपनी 'परम अभिव्यक्ति,' अपनी काव्यगत पूर्णता की खोज की, उसके खतरों से भयभीत होकर बीच बीच में उससे कतराते हुए भी, उसे पाने के संकल्प की कविता है। उस परम अभिव्यक्ति को तिलस्मी खोह में दिखाई दिये एक व्यक्ति के रूप में रूपायित किया गया है :

ज़िन्दगी के
कमरों में अंधेरे
लगाता है चक्कर
कोई एक लगातार
आवाज़ पैरों की देती है सुनाई
बार-बार बार-बार
वह नहीं दीखता—नहीं ही दीखता
किन्तु वह रहा घूम
तिलस्मी खोह में गिरफ्तार कोई एक
भीत-पार आती हुई पास से
गहन, रहस्यमय अंधकार-ध्वनि सा
अस्तित्व जनाता
अनिवार्य कोई एक

अपनी इसी 'परम अभिव्यक्ति', 'आत्मा की प्रतिमा' और 'अपने पूर्ण के आविर्भाव' की खोज में कवि हर गली और हर सड़क पर जाते हुए प्रत्येक चेहरे को देखता है, हर आत्मा का इतिहास हर देश की राजनीतिक परिस्थिति, प्रत्येक मानवीय आदर्श, विवेक-प्रक्रिया, पठार-पहाड़, समुन्दर छानता है।

शमशेर ने इसे मुक्तिबोध की आधुनिक हिन्दी कविता को प्रमुख देन माना है। उनके शब्दों में "यह कविता देश के आधुनिक जन-इतिहास का, स्वतंत्रता पूर्व और पश्चात का एक दहकता इस्पाती दस्तावेज है। इसमे अजब और अद्भुत रूप से व्यक्ति और जन का एकीकरण है। देश की धरती, हवा, आकाश, देश की सच्ची मुक्ति की आकांक्षा इसकी नस नस में फड़क रही है।" डॉ. प्रभाकर माचवे का कहना है कि यह 'गुएर्निका इन वर्स' है: इसके बहुत से अंश पिकासो के विश्व प्रसिद्ध चित्र जैसा ही प्रभाव डालते हैं। 'अंधेरे में' मुक्तिबोध की एक ऐसी कविता है, जिसमें उनकी काव्यात्मक शक्ति के अनेक तत्व घुलमिल कर एक महान रचना की सृष्टि करते हैं, जो रोमानी होते हुए भी अत्यधिक यथार्थवादी और एकदम आधुनिक है। और किसी भी कसौटी पर उसे जांचा जाये, मैं कहूंगा कि वह आधुनिक युग की हिन्दी कविताओं में सर्वोपरि ठहरती है।

'एक भूतपूर्व विद्रोही का आत्मकथन' अन्याय के पुराने महल को गिराने की कोशिश मे उसी के तहखाने में कैद दफन हो जाने वाले अनाम बागियों के दर्द और बलिदान की उन्हीं की ओर से लिखी हुई एक सुन्दर कविता है। 'चकमक की चिनगारियां' भूख और शोषण की छाया में पीड़ित जनों से अपेक्षाकृत सुख-सुविधा-पूर्ण जीवन बिताने की अपराध भावना की और 'मुक्तिकामी लोक सेनाओं के अग्नि क्षोभी धूम' को अपने चेहरे पर वहन करने के संकल्प की कविता है। अधूरी और सतही जिन्दगी के रास्तों पर चलने के दर्द की सुन्दर अभिव्यक्ति इस कविता में हुई है:

अधूरी और सतही जिन्दगी के गर्म रास्तों पर,
अचानक सनसनी भौंचक
कि पैरों के तलों को काट खाती कौन सी यह आग?
जिससे नच रहा सा हूं
खड़ा भी हो नहीं सकता, न चल सकता -
भयानक हाय अंधा दौर
जिन्दा छातियों पर और चेहरों पर
कदम रख कर चले हैं पैर
अनगिन अग्निमय तन-मन व आत्माएं
व उनकी प्रश्न मुद्राएं
हृदय की द्युति प्रभाएं
जन समस्याएं
कुचलता चल निकलता हूं

एक ऐसे समाज में जहां लोग भूखों मर रहे हों, खा-पी लेना और उनसे निरपेक्ष हो कर जी लेना, किसी भी संवेदनशील कवि के हृदय में एक अपराध ग्रंथि बना देता है। यह अपराध-ग्रंथि उसकी मानवीयता का, उसकी व्यापक संवेदनशीलता का ही प्रमाण है।

समसामयिक संसार के लोक संघर्षों के संदर्भों—लुमुम्बा, लाओस और क्यूबा—को छूती हुई—वास्तव में सिर्फ छूती हुई ही—यह कविता भारत में क्रान्ति के भविष्य के विषय में चिन्तित है :

मेरे सामने है प्रश्न
क्या होगा, कहां किस भांति
मेरे देश भारत में
पुरानी हाय में से
किस तरह से आग भभकेगी

दूसरा वर्ग उन कविताओं का है, जो एक मानवीय राग-भावना से, एक रागात्मक मानववाद की मिठास से पूर्ण हैं। इन्हें मुक्तिबोध की रूमानी—व्यापक अर्थ में—कविताएं कहा जा सकता है। जैसे 'पता नहीं' और 'मुझे कदम कदम पर'। ये कविताएं न तो पहले वर्ग की अधिकांश कविताओं की तरह लम्बी है, और न उतनी जटिल ही, इनमें अन्तर्द्वन्द्व का वह बोझिल स्वर भी नहीं है, जो साधारणतया मुक्तिबोध की प्रतिनिधि कविताओं का मुख्य स्वर है। ये सरल स्पष्ट शैली में व्यक्त मानवीय रागानुभूतियों की कविताएं, मुक्तिबोध के हृदय के सहज और स्वस्थ पक्ष को उजागर करती है।

पता नहीं 'चिलचिलाते हुए फासलों के बीच' मानव के प्रति मानव के जी की अनन्य पुकार की कविता है :

यह सही कि चिलचिला रहे फासले
तेज दुपहरी भूरी
सब ओर गरम धार-सा रेंगता चला
काल बांका तिरछा
पर हाथ तुम्हारे में जब भी मित्र का हाथ
फैलेगी बरगद छांह वही
गहरी गहरी सपनीली सी
जिसमें खुलकर सामने दिखेगी उरस्-स्पृशा
स्वर्गीय ऊषा
लाखों आंखों से, गहरी अन्तःकरण तृषा

तुमको निहारती बैठेगी
आत्मीय और इतनी प्रसन्न
मानव के प्रति मानव के जी की पुकार
जितनी अनन्य !

एक सहज मानवीय रागात्मकता का कितना मर्म-स्पर्शी चित्र है ।

'मुझे कदम कदम पर' में कवि अपनी उस व्यापक संवेदनशील दृष्टि को प्रकट करता है, जिसके कारण उसे कदम कदम पर कविताओं और कहानियों के सैकड़ों विषय मिलते हैं । बाहर के संसार से निराश होकर अपने ही क्षुद्र अहं को 'प्लाट' की खोज में खोदने-कुरेदने वाले साहित्यकारों को कवि की यह व्यापक मानवीय दृष्टि रास्ता दिखा सकती है । कविता में व्यक्त इस संसार के प्रति, इसकी एक एक भंगिमा और मुद्रा के प्रति कवि का राग प्रभावित करता है ।

ऐसी ही मुक्तिबोध की एक और सुन्दर कविता है : 'एक मित्र के प्रति' । यह कविता **चाँद का मुँह टेढ़ा है** में नहीं, शिवदानसिंह चौहान द्वारा संपादित **काव्य धारा** में संकलित है । कविता में अपने किसी मित्र के पत्र पाने की अनुभूति को वीरेन्द्र कुमार जैन जैसी विराट कल्पना पूर्ण शैली में सुन्दर अभिव्यक्ति दी गयी है । सहज मानवीय राग—केवल एक पृथ्वी-पुत्र के गहन विश्वास-पूरम्पूर नाते—का पवित्र स्पर्श हृदय को गहराई से छूता है । अपने मित्र का पत्र आने पर कवि को लगता है :

तुम्हारा पत्र आया था कि तुम आये
हमारे श्याम घर की छत
हुई निस्सीम नीले व्योम सी उन्नत
कि उसका सांवला एकान्त
था यों प्रतिफलित पल भर
हमारी चार-दीवारी
क्षितिज से मिल गयी चल कर ।

और उसका यह सम्पर्क उसे शक्ति देता है :

तुम्हारा पत्र जीवन दान देता है
हमारे रात दिन के अनवरत संघर्ष में
उत्साह—नूतन प्राण देता है ।

तीसरे वर्ग में वे कविताएं आती हैं जिनमें व्यक्ति-मानस के यथार्थ और उसके अन्तर्द्वन्द्वों को वाणी दी गयी है । ऐसी कविताओं में 'एक स्वप्न कथा',

'शून्य', 'दिमागी गुहान्धकार का ओरांग उटांग', 'ब्रह्म राक्षस', 'चंबल की घाटी' आदि का नाम लिया जा सकता है।

इन कविताओं में कई जगह मुक्तिबोध ने मनुष्य मन की सुषुप्त पाशव विवेकहीनता (एन्टीरीज़न) के आतंक को अभिव्यक्ति दी है। प्रभाकर माचवे के अनुसार 'ब्रह्म राक्षस', 'ओरांग उटांग', 'घनी सिवार भरी अंधेरी बावड़ी की सीढ़ियां', 'बरगद के घने जटा जाल' आदि बिम्ब इसी आदिम विवेकहीनता के त्रास को संक्रमित करते हैं।[१]

'शून्य' में मनुष्य की इस आदिम विवेकहीनता को इन शब्दों में रूपायित किया गया है :

भीतर जो शून्य है
उसका एक जबड़ा है
जबड़े में मांस काट खाने के दांत हैं
उनको खा जाएंगे
तुमको खा जाएंगे
जबड़े के भीतर अंधेरी खाई में
खून का तालाब है।
ऐसा वह शून्य है
एकदम काला है, बर्बर है, नग्न है।

'ओरांग उटांग' हमारे भीतर की इन्हीं आदिम हिंस्र और स्वार्थी प्रवृत्तियों का प्रतीक है, जो हमारी सुसंस्कृत बहसों के बीच कभी-कभार उभर आता है और जिसे हम भीतरी प्रकोष्ठ में किसी मजबूत संदूक में बन्द कर सब लोगों की नजरों से दूर रखना चाहते हैं।

'ब्रह्मराक्षस' मानव मन की इस विवेकहीन, रहस्यपूर्ण सत्ता के दूसरे पक्ष को उजागर करने वाली, जीवन के उच्चतर और जटिलतर सत्यों के शोध में लगे एक गणितज्ञ के जीवन-सूत्र में गुंथी हुई कविता है। 'ब्रह्मराक्षस' बहुत कुछ स्वयं मुक्तिबोध के जीवन का प्रतीक बन गया है—वैसे वे स्वयं उसके शिष्य बन कर उसके अधूरे कार्य को 'संगत और पूर्ण निष्कर्षों' तक पहुंचाना भी चाहते थे। वातावरण निर्माण की दृष्टि से यह बहुत सफल कविता है—एक भय और रहस्य से पूर्ण वातावरण पूरी कविता पर छाया रहता है और पाठक को कविता की पंक्तियां भी, स्वयं कविता की शब्दावली में, ऐसी लगती हैं, जैसे

१. देखिए उनका मुक्तिबोध पर लेख, साप्ताहिक [...] ६४.

सीढ़ियां डूबी अनेकों
उस पुराने घिरे पानी में
समझ में आ न सकता हो कि जैसे
बात का आधार
लेकिन बात गहरी हो।

'ब्रह्मराक्षस' कविता को कई दृष्टियों से मुक्ति बोध की प्रतिनिधि कविता कहा जा सकता है, उनका व्यक्तित्व और काव्य-वैशिष्ट्य जैसा इस कविता में व्यक्त हुआ है, वैसा अन्य कविताओं में नहीं हुआ है। बावडी से उठती हुई ब्रह्मराक्षस की रहस्यपूर्ण और विचित्र ध्वनिया, जैसे बावड़ी में से नही, मुक्ति बोध की जटिल और गहरी कविताओं में से ही उभर रही हों :

ये गरजती, गूंजती, आन्दोलिता
गहराइयों से उठ रही ध्वनियां, अतः
उद्भ्रान्त शब्दों के नये आवर्त में
हर शब्द निज प्रति शब्द को भी काटता
वह रूप अपने बिम्ब से भी जूझ
विकृताकार कृति
है बन रहा
ध्वनि लड़ रही अपनी प्रतिध्वनि से यहां

मुक्तिबोध की अधिकाश लम्बी कविताओ की मूलभूत वास्तविकता को व्यक्त करने के लिए इनसे अच्छी पंक्तियां शायद ही कही और मिलें। यही नहीं ब्रह्मराक्षस की तरह मुक्तिबोध भी भीतरी और बाहरी दो कठिन पाटों के बीच पिसे हुए कवि हैं और

गहन किंचित सफलता
अति भव्य असफलता !
अतिरेकवादी पूर्णता
की ये व्यथाएं बहुत प्यारी हैं

क्या मुक्तिबोध स्वयं इस गहन किंचित सफलता, अतिभव्य असफलता और अतिरेकवादी पूर्णता की व्यथा के ही कवि नहीं हैं ? इस संदर्भ मे नामवर सिंह का यह कथन याद आता है कि मुक्तिबोध उन कवियों में से है जो अपने युग के सफल कवि नही, सार्थक कवि कहलाने के योग्य होते हैं।

'चम्बल की घाटी' मे चम्बल के बहेड़ो के डाकूग्रस्त वातावरण में कवि के

भयानक अन्तर्मंथन को वाणी देती है। वह टीला, जिस पर एक डाकू बैठा रहता है, वास्तव में एक विभाजित मनुष्य-मन का ही प्रतीक है और वह डाकू क्या है ?

अंधेरे में रहता था अब तक छिपा हुआ
जो निज संदर्भ
जो निज संबंध
जो गुप्त प्रक्रिया गहन निजात्मक
वह देह धर कर
दस्युरूप
बैठ गयी उर पर

कविता का अन्त टीले रूपी अहं के समर्पण और समाप्ति की भावना के साथ होता है, ताकि वह जन साधारण के काम आ सके।

मुक्ति बोध की इस वर्ग की कविताएं जहां मानव मन के अंधेरे क्षेत्र मे उनके साहसपूर्ण संतरण की द्योतक हैं और हिन्दी कविता में मानसिक यथार्थ के चित्रण का एक नया आयाम खोलती है, वहां वे उनके उत्कट व्यक्तिवादी सस्कारों की भी प्रमाण हैं। साथ ही यह मुक्तिबोध पर युंग और एडलर के विस्तृत अध्ययन का भी प्रभाव है।

इन वर्गों से बच रहने वाली कविताओं में से भी दो तीन विचारणीय हैं, जैसे 'एक अरूप शून्य के प्रति,' 'कल जो हमने चर्चा की थी' और 'ओ काव्यात्मन् फणिधर'।

'एक अरूप शून्य के प्रति' मे उन्होने ईश्वर के प्रति अपनी दार्शनिक और काव्यात्मक धारणा को व्यक्त किया है; न कुछ के इस रूपायन को खरी-खरी सुनाई है। एक हल्का व्यंगात्मक स्वर कविता को जानदार बना देता है :

मात्र अनस्तित्व का इतना बड़ा अस्तित्व
ऐसे घुप्प अंधेरे का इतना तेज उजाला...
सृजन के घर में तुम
मनोहर शक्तिशाली
विश्वात्मक फैंटेसी
दुर्जनों के भवन में
प्रचण्ड शौर्यवान अण्ट-सण्ट वरदान
खूब रंगदारी है

विपरीत दोनों दूर छोरों द्वारा पुजकर
स्वर्ग के पुल पर
चुंगी के नोकदार
भ्रष्टाचारी मजिस्ट्रेट रिश्वतखोर थानेदार !

'कल जो हमने चर्चा की थी' बातों के आनन्द को, एक मानवीय स्पर्श देकर, व्यक्त करती है। 'ओ काव्यात्मन फणिधर' एक लम्बी कविता है, जिसमें कवि अपनी कविताओं को संसार में अनेक क्षेत्रों में जाने और अपनी उपलब्धियों (मणियों) के प्रकाश से संसार को उस ब्रह्मा का भीषण मुख दिखाने के लिए कहता है, जिसकी छत्रछाया में धन के श्रीमुख अधिकाधिक दीप्त होते जा रहे हैं और निर्धन एक एक सीढ़ी नीचे गिरते जा रहे हैं। लम्बी कविताओं की केन्द्रापगामी प्रवृत्ति इसमें भी विद्यमान है।

चाँद का मुंह टेढ़ा है में संकलित मुक्तिबोध की कविताओं पर विचार कर लेने के बाद भी उनके कवि व्यक्तित्व का एक बड़ा हिस्सा विवेचन से छूट ही जाता है। क्योंकि पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित और सब तरह से अप्रकाशित उनकी कई कविताएं अभी संकलन रूप में सामने नहीं आयी है। फिर कभी कभी तो लगता है कि चाँद का मुंह टेढ़ा है के सम्पादकों ने जानबूझ कर इस संकलन के चयन के माध्यम से मुक्तिबोध के कवि रूप को कुछ अपना मनचीता सा मरोड़ देने की कोशिश की है, उनकी ऐसी कविताओं को जिनमें उनका एक स्पष्ट साम्यवादी विद्रोही का रूप प्रकट होता है, इस संकलन में नहीं लिया गया है।

मुक्तिबोध की ऐसी कविताओं मे से एक है, काव्य धारा में संकलित 'मेरा जवाब' कविता में पूजीवादी सफलता, उन्नति और प्रतिष्ठा को—जिस के क्षेत्रों में 'मानव की छाती की, आत्मा की प्राणों की सौंधी गन्ध' कहीं नहीं है, ठुकराने वाला एक साम्यवादी विद्रोही हमारे सामने उभर कर आता है। कविता में पूजीवादी व्यवस्था को एक विकराल बरगद के एक सार्थक बिम्ब में बड़े सुन्दर ढंग से रूपायित किया गया है :

पशुओं के राज्य में जो बियाबान जंगल है
उसमें खड़ा है घोर स्वार्थ का प्रमीमकाय
बरगद एक विकराल।
उसमें विद्रूप शत
शाखा-व्यूहों वृहत् पत्तों के
घनीभूत जाले हैं, जाले हैं
तले में अंधेरा है, अंधेरा है घनघोर
वृक्ष के तने से चिपट बैठा है, खड़ा है कोई

मरी हुई आत्मा का पिशाच एक जबरदस्त
यह तो रखवाला है
घुग्घू के, सियारों के, कुत्तों के स्वार्थों का
और उस जंगल में
बरगद के महाभीम भयानक शरीर पर
सफलता की, भद्रता की
श्रेय-प्रेय-सत्यं-शिवं-संस्कृति की
खिलखिलाती पूनों की चांदनी
खिली हुई फैली है।

और मुक्तिबोध अपने बरामदे में थोड़े से चमकदार विलायती फर्नीचर के लिए उस बरगद की शरण लेने के लिए तैयार नहीं है, उन्हे डर है :

कहीं मैं भी तो सफलता के चाँद की छाया मे
घुग्घू सियार या भूत न बन जाऊं कहीं

लेकिन जो इस बरगद मे शरण ले चुके हैं :

उनको डर लगता है, आशंका होती है
कि हम भी जब भूत हुए
घुग्घू या सियार बने
तो अभी तक यही व्यक्ति जिन्दा क्यों ?

कविता के अन्त में यद्यपि एक कुत्सित उपमान, उसके स्तर को थोड़ा घटा देता है, तथापि कविता का उद्दीप्त विद्रोही स्वर मन को छूता है।

मुक्तिबोध की प्रमुख कविताओं पर विचार कर लेने के बाद उनकी कविताओं की कुछ मुख्य सामान्य विशेषताओं की ओर संकेत किया जा सकता है।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है मुक्ति बोध [illegible] और बहिसंघर्ष के निर्मम प्रहारों से क्षत-[illegible] पर उनके विरुद्ध ए[illegible] कर फिर फिर

मनु के पुत्र पर विश्वास करना चाहता हूं,"[7] वाली अकुंठित आस्था और जन साधारण के दुःख दर्दों में सांझा बंटाने की व्याकुलता अन्त तक उनमें मिलती है।

किन्हीं रत्नों, किन्हीं अलभ्य नक्षत्र खंडों की, किसी गहरी गुफा में बन्द किसी सर्प-मणि की, खोज उनकी कई कविताओं का विषय है। वास्तव में वे जीवन और जगत के कुछ गहरे सत्यों की खोज में भटकने वाले एक अनुसंधित्सु कवि हैं, जो अपने रूपकों, प्रतीकों और बिम्बों की; अपने सपनों की दुनिया में सत्य के सूर्य का प्रकाश पाते हैं और उसे उपयुक्त अभिव्यक्ति देना चाहते हैं। एक सच्चे प्रयोगशील—एक सच्चे राहों के अन्वेषी कवि की आत्मा की कुल-बुलाहट और वेदना हमें उनकी कविताओं में मिलती है। उनकी कविताओं को पढ़ते हुए एक ऐसे राही का बिम्ब सामने आता है जो घने जंगलों, बीहड़पर्वत-घाटियों और बहेड़ों में भटकता हुआ, लहू-लुहान कदमों से किन्हीं महत्वपूर्ण सच्चाइयों या किन्हीं पूर्ण अभिव्यक्तियों की खोज कर रहा है। वास्तव में मुक्तिबोध का महत्व उनकी गहन अन्तर्दृष्टि और सूक्ष्म बौद्धिक आत्मानुभूति में निहित है।

मुक्तिबोध की एक बड़ी सफलता वातावरण—खास तौर से एक मायावी, भयानक या रहस्यपूर्ण वातावरण के निर्माण की उनकी क्षमता है। उनकी अधिकांश कविताओं में सैनिक क्रान्तियों और षडयंत्रों का आतंक और सन्देह-भरा वातावरण होता है; जेल, राइफल, कारतूस, युद्ध के नक्शे, भभकते हुए अक्षरों के हड़ताली पोस्टर उसे रूपायित करते हैं। ऐयारी और तिलस्मी तत्वों का प्रयोग जैसे पुराने महल, गुप्त ड्राअर, गद्दियों के अन्दर छिपाये हुए खून रंगे पत्र, समुद्री डाकू, डूबे हुए शहर, उसे और भी अधिक रहस्यपूर्ण तथा आतंकपूर्ण बना देता है। कभी कभी इस वातावरण का निर्माण वे लोक जीवन के अवि-वेकपूर्ण तत्वों : पौराणिक अन्धविश्वासों, दंतकथाओं आदि के संयोजन से भी करते हैं। बरगद, बावड़ी, एकान्त त्यक्त मंदिर, टूटे हुए खंडहरों के बुर्ज पर एक घुग्घू, ब्रह्मराक्षस, भूत-प्रेत, जादूगर, यक्ष ओरांग उटांग आदि बिम्ब उनकी कविताओं में कई बार आये हैं।

शमशेर ने उनकी कविताओं के शिल्प को एक ऊंची इमारत उठाने वाले मेमार का शिल्प कहा है और इमारत भी कोई महल या मंदिर या मकबरा नहीं, अनेक पुश्तों, चौकियों और बुर्जियों से सुदृढ़ किया हुआ एक छोटा-मोटा

---

७. तारसप्तक में उनकी कविता "दूरतारा"

मरी हुई आत्मा का पिशाच एक जबरदस्त
यह तो रखवाला है
घुग्घू के, सियारों के, कुत्तों के स्वार्थों का
और उस जंगल में
बरगद के महाभीम भयानक शरीर पर
सफलता की, भद्रता की
श्रेय-प्रेय-सत्यं-शिवं-संस्कृति की
खिलखिलाती पूनों की चांदनी
खिली हुई फैली है।

और मुक्तिबोध अपने बरामदे में थोड़े से चमकदार विलायती फर्नीचर के लिए उस बरगद की शरण लेने के लिए तैयार नहीं हैं, उन्हें डर है :

कहीं मैं भी तो सफलता के चाँद की छाया में
घुग्घू सियार या भूत न बन जाऊं कहीं

लेकिन जो इस बरगद में शरण ले चुके हैं :

उनको डर लगता है, आशंका होती है
कि हम भी जब भूत हुए
घुग्घू या सियार बने
तो अभी तक यही व्यक्ति जिन्दा क्यों ?

कविता के अन्त में यद्यपि एक कुत्सित उपमान, उसके स्तर को थोड़ा घटा देता है, तथापि कविता का उद्दीप्त विद्रोही स्वर मन को छूता है।

मुक्तिबोध की प्रमुख कविताओं पर विचार कर लेने के बाद उनकी कविताओं की कुछ मुख्य सामान्य विशेषताओं की ओर संकेत किया जा सकता है।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है मुक्ति बोध अन्तर्द्वन्द्व और बहिर्संघर्ष के निर्मम प्रहारों से क्षत-विक्षत, पर उनके विरुद्ध एक चुनौती बन कर फिर फिर उभरने वाले कवि हैं। यद्यपि द्वितीय महायुद्ध के बाद के मनुष्य की टूटन, घुटन और व्यथा के बिम्ब मुक्तिबोध की कविताओं में बहुत मिलते हैं और व्यथा के पर्याय शब्दों की उनकी शब्दावली में अधिकता है,[६] तथापि वे अपने समाज की निर्मम विषमता और अमानवीयता से निराश नहीं होते। 'प्रत्येक

६. देखिए विष्णुचन्द्र शर्मा : चाद का मुंह टेढ़ा है, आलोचना-३३, पृ. १६८.

मनु के पुत्र पर विश्वास करना चाहता हूं,"[७] वाली अकुंठित आस्था और जन साधारण के दुःख दर्दों में सांझा बंटाने की व्याकुलता अन्त तक उनमें मिलती है।

किन्हीं रत्नों, किन्हीं अलभ्य नक्षत्र खंडों की, किसी गहरी गुफा में बन्द किसी सर्प-मणि की, खोज उनकी कई कविताओं का विषय है। वास्तव में वे जीवन और जगत के कुछ गहरे सत्यों की खोज में भटकने वाले एक अनुसंधित्सु कवि हैं, जो अपने रूपकों, प्रतीकों और बिम्बों की; अपने सपनों की दुनिया में सत्य के सूर्य का प्रकाश पाते हैं और उसे उपयुक्त अभिव्यक्ति देना चाहते हैं। एक सच्चे प्रयोगशील—एक सच्चे राहों के अन्वेषी कवि की आत्मा की कुलबुलाहट और वेदना हमें उनकी कविताओं में मिलती है। उनकी कविताओं को पढ़ते हुए एक ऐसे राही का विम्ब सामने आता है जो घने जंगलों, बीहड़पर्वत-घाटियों और बहेड़ों में भटकता हुआ, लहू-लुहान कदमों से किन्हीं महत्वपूर्ण सच्चाइयों या किन्ही पूर्ण अभिव्यक्तियों की खोज कर रहा है। वास्तव में मुक्तिबोध का महत्व उनकी गहन अन्तर्दृष्टि और सूक्ष्म बौद्धिक आत्मानुभूति में निहित है।

मुक्तिबोध की एक बड़ी सफलता वातावरण—खास तौर से एक मायावी, भयानक या रहस्यपूर्ण वातावरण के निर्माण की उनकी क्षमता है। उनकी अधिकांश कविताओं में सैनिक क्रान्तियों और षडयंत्रों का आतंक और सन्देह-भरा वातावरण होता है; जेल, राइफल, कारतूस, युद्ध के नक्शे, भभकते हुए अक्षरों के हड़ताली पोस्टर उसे रूपायित करते हैं। ऐयारी और तिलस्मी तत्वों का प्रयोग जैसे पुराने महल, गुप्त ड्राअर, गद्दियों के अन्दर छिपाये हुए खून रंगे पत्र, समुद्री डाकू, डूबे हुए शहर, उसे और भी अधिक रहस्यपूर्ण तथा आतंकपूर्ण बना देता है। कभी कभी इस वातावरण का निर्माण वे लोक जीवन के अविवेकपूर्ण तत्वों : पौराणिक अन्धविश्वासों, दंतकथाओं आदि के संयोजन से भी करते हैं। बरगद, बावड़ी, एकान्त त्यक्त मंदिर, टूटे हुए खंडहरों के बुर्ज पर एक घुग्घू, ब्रह्मराक्षस, भूत-प्रेत, जादूगर, यक्ष ओरांग उटांग आदि बिम्ब उनकी कविताओं में कई बार आये हैं।

शमशेर ने उनकी कविताओं के शिल्प को एक ऊंची इमारत उठाने वाले मेमार का शिल्प कहा है और इमारत भी कोई महल या मंदिर या मकबरा नहीं, अनेक पुश्तों, चौकियों और बुर्जियों से सुदृढ़ किया हुआ एक छोटा-मोटा

७. तारसप्तक मे उनकी कविता "दूरतारा"

किला।[८] प्रभाकर माचवे ने कहा है कि उन्हें शिल्प के प्रति कोई मोह नही था, सीधे साधे एक रस, एक से छन्द में लिखे जाते थे। यह विशेषता मराठी के मढ़ेंकर और बंगला के जीवनानंद दास में भी मिलती है। पर उनके प्रलम्बित रूपक उनकी कविताओं में एक अद्‌भुत गुण का समावेश कर देते हैं। अक्सर वे जलते हुए गांव की, खान में दबे पिचे मजदूरों की, जमीन की तहों में चट्टानों के दवाव से बनने वाले रत्नकणों की, डाकुओं के हमले की और जुलूस पर गोलीबारी की ऐसी चित्रोपम इमेजेज देते हैं कि उनकी कम से कम शब्दों में बहुत बड़ा प्रभाव पैदा करने की शक्ति की दाद देनी पड़ती है। लेकिन उनके शिल्प की सबसे बड़ी कमजोरी, जैसा कि प्रारम्भ में भी संकेत किया जा चुका है, उसकी विशृंखलता है।

वास्तव में मुक्तिबोध न तो नरेश मेहता की तरह शिल्प-सजग हैं और न शमशेर की तरह शिल्पवादी। शिल्प पर उन्होंने बहुत कम ध्यान दिया है—उनकी कविता में जो भी शिल्पगत आकर्षण है वह सहज ही आया हुआ है। इस संदर्भ में शमशेर का यह कथन सही है कि मुक्तिबोध के सारे प्रयोग विषय वस्तु को लेकर ही हुए हैं, शिल्प में नये प्रयोग उन्होंने कम किये हैं। और जो किये हैं वे भी किसी निश्चित विषयवस्तुगत अनिर्वार आवश्यकता के वशीभूत होकर ही, प्रयोग के लिए प्रयोग की वृत्ति उनमें कहीं नही दिखायी देती।

मुक्तिबोध की कविताओं का कैन्वास बड़ा विशाल और विस्तृत होता है। शमशेर के शब्दों मे जो सामाजिक जीवन के कर्म क्षेत्र और व्यक्ति-चेतना की रंगभूमि को निरन्तर जोड़ते हुए समय के कई काल-क्षणों को प्रायः एक साथ आयामित करता है। प्रभाकर माचवे के अनुसार उनकी इहा नये ज्ञान विज्ञान के आविष्कारों से भी उसी मात्रा में ग्रहण करती है, जिसमे कि पुराणेतिहास और लोक-मानस में छाये अंधविश्वासों से।

मुक्तिबोध की कविताओ की एक बड़ी विशेषता उनकी विराट् कल्पना है। मुक्तिबोध की लम्बी कविताओं में जो विशाल पार्श्व चित्र उभरता है, उसमें एक विराट पुरुष, फेन्टेसी में धीरे-धीरे विकसित होता है और यह विराट पुरुष अक्सर कवि की विराट कल्पना की व्याख्या करता है :

मैं ही वह विराट पुरुष हूं
सर्व तंत्र, स्वतंत्र, सत्-चित्
मेरे इन अनाकार कंधों पर विराजमान

---

८. देखिए **चांद का मुंह टेढ़ा है** संकलन की भूमिका रूप में लिखा हुआ उनका लेख—एक विलक्षण प्रतिभा।

खड़ा है सुनील शून्य
रवि चन्द्र-तारा-द्युति-मंडलों के परे तक

—लकड़ी मे बना हुआ रावण, **चांद का मुंह टेढ़ा है**

शायद उनकी विराट कल्पना से ही प्रभावित होकर प्रभाकर माचवे ने कहा है कि वे एपिक ग्रेंजर के कवि थे और कि नयी कविता में महाकाव्य लिख सकने की उन्हीं में क्षमता थी।

एक प्रकार की दार्शनिकता उनकी कई कविताओं में मिलती है। उदाहरण के लिए 'एक अरूप शून्य के प्रति' और 'मुझे नही मालूम' कविताएं ली जा सकती है :

धरती व नक्षत्र
तारागण
रखते हैं निजनिज व्यक्तित्व
रखते हैं चुम्बकीय शक्ति, पर
स्वयं के अनुसार
गुरूत्व-आकर्षण-शक्ति का उपयोग
करने में असमर्थ
यह नहीं होता है उनसे कि जरा घूम घाम आयें
नभस् अपार में
यंत्र-बद्ध गतियों का मह-पथ त्याग कर
ब्रह्मान्द अखिल की सरहदें माप लें !

—मुझे नहीं मालूम, **चांद का मुंह टेढ़ा है**

मुक्तिबोध स्वयं यंत्र-बद्ध गतियों के विरुद्ध जरा घूम घाम आने की स्वतंत्रता के बहुत बड़े हिमायती थे।

शमशेर ने मुक्तिबोध की तुलना चट्टान से-एक ऊंची, सीधी चट्टान से की है। शिलाओं पर शिलाएं। झरने कहीं बिरले ही। केवल गहरी बावलियां, सूखे कुएं, झाड़-झंखाड़, ऊंची-नीची अनन्त पगडंडियां, जैसे मालवा के पठार और मध्य प्रदेश की ऊबड़ खाबड़ धरती—और इस धरती का आतंकमय, रहस्यमय इतिहास और उसके बीच लहू लुहान मानव।

वास्तव में यह बिम्ब मुक्तिबोध के कवि-व्यक्तित्व का काफी हद तक सही "वस्तुगत प्रतिरूप" है।

गिरिजाकुमार माथुर

डा. नगेन्द्र का यह कथन सही है कि गिरिजाकुमार जी के काव्य में छायावाद के बाद की तीनों प्रमुख काव्य-धाराओं—रूमानी, प्रगतिशील और प्रयोगवादी के तत्व सहज रूप मे विद्यमान हैं। उनका प्रारंभिक काव्य (मंजीर तथा नाश और निर्माण का अधिकांश) उस छायावादोत्तर रूमानी काव्य धारा का ही एक रूप प्रस्तुत करता है, जिसका विकास बच्चन, अंचल, नरेन्द्रशर्मा आदि कर रहे थे। हां इन संकलनों में कुछ कविताएं अवश्य ऐसी हैं जो उनकी कविता में आये हुए बाद के यथार्थवादी और प्रगतिशील स्वर की पृष्ठभूमि तैयार करती हैं। ऐसी कविताओं में मंजीर की 'सात सागर का महाविष' और नाश और निर्माण की 'मशीन का पुर्जा' का नाम लिया जा सकता है। 'सात सागर का महाविष' में कवि के 'कल के मृदुल प्राण' आज 'नाश में पागल' हो उठते हैं और वह राष्ट्रीय आन्दोलन की क्रान्ति की आग से खेलना चाहता है :

सात सागर का महाविष गीत में भर गा रहा हूं
मैं जमाने को जगाने सर कटाने जा रहा हूं

'मशीन का पुर्जा' आज के औद्योगिक जीवन की यान्त्रिकता में घिस घिस कर मशीन का एक पुर्जा ही बन जाने वाले, कागजों की दीवारों में अपना सूर्य डुबाने वाले एक क्लर्क की जिन्दगी का एक सम्वेदना से भरा चित्र प्रस्तुत करती है।

धूप के धान (५५) में मोटे तौर पर तीन तरह की कविताएं हैं : एक तो वे जिनमें प्रकृति के, खास तौर से ऋतुओं के विभिन्न चित्रों के सहारे रूप और प्रेम का रूमानी वातावरण में अंकन है, दूसरी वे जिनमें आंचलिक तत्वों के माध्यम से विशिष्ट क्षेत्रों के सामाजिक यथार्थ को अभिव्यक्ति दी गयी है और तीसरी वे जिनमें प्रकृति के या अन्य विषयों के सहारे, कवि के स्वस्थ मानववादी और संघर्षशील आस्थावादी दृष्टिकोण को स्पष्ट अभिव्यक्ति मिली है। पहले वर्ग की कविताओं में 'सावन के बादल', 'रात यह हेमन्त की', 'तीन ऋतु-चित्र' आदि, दूसरे वर्ग में 'मैनहैटन' और 'ढाकवनी' तथा तीसरे में संकलन की शेष अधिकांश कविताएं, जिनमें महत्वपूर्ण हैं : 'पहिये', 'प्रौढ़ रोमांस,' 'पन्द्रह अगस्त,' 'सैंतीसवीं वर्ष गांठ' और 'देह की आवाज,' आ जाती हैं।

आंचलिकता गिरिजाकुमार जी की कविताओं की एक प्रमुख प्रवृत्ति है। 'मैनहैटन' और 'ढाकवनी' दोनों अपने अपने क्षेत्र के विशिष्ट वातावरण को उभारने में सफल और प्रभावशाली कविताएं हैं। 'मैनहैटन' में अमेरिकी नागरिक जीवन की संकुलता और यांत्रिकता शब्द चयन और बिम्ब विधान से ही भली भांति व्यक्त हो जाता है :

यह सोने की दुनिया
यह कंचन लंका, पाताल
भरा का सारा सोना
खिंच आया इस नाग-लोक में
चलता है विज्ञान चरण विद्युत के रख कर
नये तिलस्मी रूप धार कर
जैसे चलते विद्युत-अक्षर

'ढाकवनी' में इसके एकदम विपरीत बुन्देलखंड के किसी पलाशवन के क्षेत्र को रूपायित किया गया है। इस कविता में आंचलिक वातावरण के निर्माण के लिए केवल आंचलिक शब्दों का ही प्रयोग नहीं किया गया, उपमान और प्रतीक भी आंचलिक ही लिये गये हैं। अंचल की दंत कथाओं के उपयोग ने उस वातावरण को और भी जीवन्तता से उभारा है। वातावरण निर्माण की दृष्टि से कविता की तुलना भवानी प्रसाद की 'सतपुड़ा के घने जंगल' से की जा सकती है :

सो रहा वन, ढूह सोते, ताल सोता, तीर सोते
प्रेत वाले पेड़ सोते, सात तल के नीर सोते
ऊंघती है रूंद, करवट ले रही है घास ऊंची
मौन, दम साधे पड़ी है, टौरियों की रास ऊंची
सांस लेता है बियाबां, डोल जाती सुन्न छांहें
हर तरफ गुपचुप खड़ी हैं जनपदों की आत्माएं

आदिवासियों के जीवन-यथार्थ को कितनी संक्षिप्ति, गठन, और कसाव के साथ अभिव्यक्ति दी गयी है :

बीच पेड़ों की कटन में हैं पड़े दो चार छप्पर
हांडियां, मचियां, कठौते, लट्ठ, गूदड़, चैल, बक्खर
राख, गोबर, चरी, औगंन, लेज, रस्सी, हल, कुल्हाड़ी
सूत की मोटी फतोही, चक्का, हंसिया और गाड़ी
धुंआ कण्डों का सुलगता, भौंकता कुत्ता शिकारी
है यहां की जिंदगी पर, शाप नल का स्याह भारी

नल के शाप की दन्त कथा से जोड़ कर इस चित्र को एक करुण प्रभावपूर्ण स्वर दे दिया गया है।

'पहिये' मानव विकास की कहानी को संक्षिप्त और काव्यात्मक ढंग से कहती है। 'प्रौढ़ रोमांस' रोमांस के प्रति प्रौढ़ और गम्भीर दृष्टिकोण को व्यक्त करती है। यद्यपि यह कहना कि सारा का सारा 'वेदान्त फलसफा', 'केवल शारीरिक', है, कुत्सित और संकीर्ण मनोविज्ञान है, तथापि इस कविता में प्यार, उसकी सफलता-असफलता को सम्पूर्ण जीवन-संघर्ष के परिप्रेक्ष्य मे रख कर देखा गया है, जो कि दृष्टि की स्वस्थता के लिए आवश्यक है। कवि अपने विरही युवा मित्र के सामने अपने जीवन का यह रूप रखता है :

हम को भी है ज्ञान विरह का और मिलन का
यह मत समझो बर्फ बन गया हृदय हमारा
या कालान्तर में पथराये भाव हमारे
या हमको है नहीं किसी की याद सताती
पर वह तुम से बहुत भिन्न है
हम मन में सुधि रख कर भी हैं कर्मशील
हैं संघर्षों मे डूबे भूले
हम डट कर जीवन से युद्ध कर रहे प्रतिपल !

'पन्द्रह अगस्त' एक सुन्दर गीत है, जिसमें भारतीय आजादी के प्रति सन्तुलित दृष्टि व्यक्त हुई है, इस 'जीत की रात' के स्वागत के साथ ही कवि कहता है :

ऊंची हुई मशाल हमारी आगे कठिन डगर है
शत्रु हट गया लेकिन उसकी छायाओं का डर है
शोषण से मृत है समाज, कमजोर हमारा घर है
किन्तु आ रही नयी जिन्दगी यह विश्वास अमर है
जनगंगा में ज्वार, लहर तुम प्रवहमान रहना
आज जीत की रात पहरुए सावधान रहना !

'तैंतीसवीं वर्षगांठ' में कवि का संघर्षशील व्यक्तित्व और अपनी प्रिया के प्रति उसका स्वस्थ दृष्टिकोण अनुकूल छन्द प्रवाह में व्यक्त हुआ है :

और भी ऊंची चढ़ाई सामने
और भी भारी लड़ाई सामने
सांस लेने मैं रुकूं तुम प्यार दो
मन, नयन, तन, अधर की रस धार दो

शक्ति दो मुझ को सलोनी प्यार से
लड़ सकूं मैं जुल्म के संसार से

कविता में अंकित आज के संसार में मनुष्य की स्थिति का एक यथार्थ चित्र उसे और भी महत्वपूर्ण बना देता है।

'देह की आवाज' रूप-रस-गंध के, इस नाम-रूपात्मक ससार के प्रति कवि के हृदय के गहरे राग को व्यक्त करती है। देह को वह सुख-सुपमा का एक मूलभूत आधार मानता है।

धूप के धान की तरह **शिलापंख चमकीले** (६१) का मूल स्वर भी प्रगतिशील है। पांच-सात गौण कविताओं-अकविताओं को (जैसे 'यानिशा सर्वभूताना', 'प्रयोग का प्रयोग', आदि) और दो एक शिल्पवादी कविताओं को छोड़ कर (जैसे 'नया नगर') शेष सभी कविताएं प्रगतिशील भावभूमि की है। संकलन की महत्वपूर्ण कविताओं में 'सूरज का पहिया', 'दियाधरी', 'माटी और मेघ', 'क्रानिक मरीज', 'खत', 'लौह मकडी का जाल', 'तूफान एक्सप्रेस की रात', 'बसन्तः एक प्रगीत स्थिति', 'हब्श देश', व्यक्तित्व का मध्यान्तर', 'नयी आग की खोज', और 'नया द्रष्टा कवि' का नाम लिया जा सकता है।

इनमें से 'दियाधरी' और 'हब्श देश' में आंचलिक रंग हैं। 'दियाधरी' में मालवा की लोक कथाओं के रंग से भरे, मालव भूमि के कुछ सुन्दर चित्र है। 'हब्श देश' सिर्फ अफ्रीका की भूमि का ही चित्र नही है, वहां की वदलती जिन्दगी की प्रभावक अभिव्यक्ति भी है। अफ्रीकी भूगोल, इतिहास और संस्कृति के रस से सिंची हुई इस कविता की तुलना सिर्फ नरेश मेहता की 'समय देवता' से ही की जा सकती है। अफ्रीका के विकराल भूगोल का यह चित्र देखिए :

मैं अफ्रीका
मुझ पर दुख के यम की घिरी सांवली छाया
युगों पुरानी गहरी छाया
इतनी गहरी
जैसी श्याम कोयले की हैं खाने मेरी
सांसें भरता मेरा जीवन
नयी भाप सी फैलाता है
जहां दैत्य कांगोनद भीषण

गरम सिमूम उगलता
रजतापित हरमैटन
कालाहारी पत्थर-मरु, हम्मदा पुराना
बरफ ढके किलिमंजारो का अग्नि दहाना
भूसुल सा वह पांडु सहारा
दुर्दम भीम जंगलों का अभिशप्त दुधारा

और साम्राज्यवादी शिकंजों में जकड़े हुए अफ्रीका का यह बिम्ब :

किन्तु जमें सोडे की झीलों सा
अब मेरा पीड़ित अन्तर—
एक ओर है मेरी सम्पति
एक ओर हैं कीचड़ के घर
एक ओर हब्शी गुलाम मैं
एक ओर कुंभोदर अजगर
मेरी भूमि कुबेर सरीखी
मैं हूं अब तक स्याह जानवर
महायातना की चट्टानों से
मैं जकड़ा हुआ प्रमीथस
गरम हृदय का मांस नोच कर
मनुज बाज खा रहे निरन्तर...

लेकिन यही सब कुछ नहीं है—एक नयी उषा का चित्र भी गिरिजाकुमार ने देखा है :

नयी उषा आ रही
शोकमय एक समूची आदि कौम पर
नयी उषा आ रही
सैकड़ों साल बाद इन पिरामिडों पर
शुतुरमुर्ग के श्वेत परों की
मुक्ति-धूप सांवर गांवों पर
जम्बेजी, नाइजर, फागेरा,
कांगोनद, बहर-एल-जेबल पर

महाजाति की मनुज चेतना
कीच-घरोंदो से अब उगती
अग्निहुतेप की भीष्म मूर्ति सी
भोर धुंध में सोकर उठती !

'माटी और मेघ' तथा 'पुरुष मेघ' कविताएं पारमाणिविक अस्त्रों की विभीषिका को चित्रित करती हैं। 'माटी और मेघ' प्रकृति के मनमोहक चित्रण से प्रारंभ होती है और उसके कन्ट्रास्ट में 'पृथ्वी को अणु-धूम बनाना चाह रहे इन्सान' का चित्र है। लेकिन कविता का अन्त आस्था से पूर्ण है—क्योंकि पृथ्वी पर सिर्फ उसे अणु-धूम बनाना चाहने वाले ही नहीं बसते। वे भी बसते हैं—जो अपनी अंगुलियों से 'अणु-दीपों की यमशिखा' को दबा कर ठण्डी कर देना चाहते हैं, वे जो मिट्टी से रस लेकर 'नूतन समाज की प्रतिमा' रचते जा रहे हैं। 'पुरुष मेघ' (पता नहीं कवि ने इसे पुरुष मेघ क्यों कहा है, क्या वह यह सोचता है कि स्त्रिया उस मेघ से बच जाएंगी ?) अणु विस्फोट की प्रतिक्रिया मे लिखी गयी कविता है—अणु विस्फोट का चित्र सुन्दर है।

संकलन की कई कविताएं जिसे आजकल 'नगर-बोध' कहा जाता है उसकी कविताएं हैं। इनमें नागरिक जीवन की विषमताओं, विसंगतियों और विद्रूपों को अभिव्यक्ति मिली है। ऐसी कविताओं में 'रात फुटपाथ और गीत', 'लौह मकड़ी जाल', आदि कविताएं आती हैं। 'रात फुटपाथ और गीत' में नागरिक जीवन की ऊब और खोखलेपन को अभिव्यक्ति दी गयी है। 'लौह मकड़ी जाल' वर्तमान व्यवस्था में घुटते हुए व्यक्ति की छटपटाहट को वाणी देती है :

तन के रोम रोम पर
लिपट गये हैं ये
अंधे, शून्यभाव, ठण्डे
चमकीले यम से
लाश के परम से
फैला रक्खा है अंधेर
तंतु जाल जिसने
वह छुपी रहस्यमयी
डोलती सी कालिमा,
बलि पर इकाइयों के
पलती, पनपती है

यह कालिमा और कोई नहीं वर्तमान व्यवस्था ही है। इन कविताओं से मिलती

जुलती कविताएं हैं 'क्रानिक मरीज' और 'व्यक्तित्व का मध्यांतर' जो आज के मध्यमवर्गीय अपाहिज जीवन के चित्र हैं :

ऊब, छटपटाहट
बेचैनी बोरियत
आशंका, भावुकता, चिन्ता, अनास्था
क्षणजीवी, त्वचा-सुखी
बदमिजाज, नुक्ता चीं
अपने में लीन
किन्तु आत्मविश्वासहीन...
तुच्छ क्षुद्र बातों पर
नियत बिगाड़ता है
ओछे बहाने कर
अपने ईमान का
दिवाला निकालता है

'व्यक्तित्व का मध्यांतर' मे इसी मध्यमवर्गीय जीवन की टूटन पराजय और निराशा को अभिव्यक्ति मिली है, पर प्रयोगवादियो की तरह कवि का स्वर इनके सामने समर्पण का नही, इनके विरुद्ध संघर्ष का है। कवि की ईमानदारी और सदिच्छा स्पष्ट है :

गति व्यर्थ गई, उपलब्धिहीन साधना रही
मन में लेकिन संध्या की लाली बाकी है
इस लाली का मैं तिलक करूं हर माथे पर
दूं उन सब को जो पीड़ित हैं मेरे समान
दुख दर्द अभाव भोग कर भी जो बुझे नहीं
जो अन्यायों से रहे जूझते वक्ष तान
जो सजा भोगते रहे सदा सच कहने की
जो प्रभुता-पद-आतंकों से नत हुए नहीं
जो विफल रहे पर झगा न मांगी घिघिया कर
जो किसी मूल्य पर भी शरणागत हुए नहीं

'सूरज का पहिया', 'नयी आग की खोज', और 'नया द्रष्टा कवि' प्रगतिशील जीवन दर्शन की कलात्मक अभिव्यक्तियां हैं। जीवन के प्रति दृढ़ आस्था का स्वर इनकी विशेपता है। इन कविताओं के अतिरिक्त इस संकलन में एक

सुन्दर प्रकृति-गीत है—'वसन्त : एक प्रगीत स्थिति'—और दो ऐसी कविताएं जो साधारण विषयों पर लिखी हुई होने पर भी मानवीय संवेदनाओं के संदर्भ में महत्वपूर्ण बन गयी हैं—'खत और तूफान', 'एक्सप्रेस की रात'। इन कविताओं में मानवीय भावनाओं के सूक्ष्म आयामों को छुआ गया है।

कविताओं के अतिरिक्त गिरिजाकुमार माथुर ने कई पद्य नाटक भी लिखे हैं। उनमें से प्रगतिशील दृष्टि से उल्लेखनीय हैं : 'कल्पान्तर', 'दंगा', 'व्यक्ति मुक्त' और 'पृथ्वीकल्प'। लगभग सभी नाटक समसामयिक जीवन की समस्याओं से संबंधित हैं।

'कल्पान्तर' अन्तरराष्ट्रीय पृष्ठभूमि पर अणु युद्ध की समस्या से संबंधित है। इसमें प्रतीक-पद्धति का प्रयोग किया गया है। पूंजीवादी शक्तियों का प्रतीक पात्र स्वर्ण-दैत्य है, जिसके अधीन समस्त भौतिक साधन, ज्ञान-विज्ञान, अस्त्र-शस्त्र हैं। ग्राम्य संस्कृति का प्रतीक पात्र कृषिकुमार और नागरिक संस्कृति का जगमोहन है। नाटक में स्वर्ण सभ्यता अपने अन्तर्विरोधों से स्वयं समाप्त हो जाती है और भविष्यत मानव का उदय होता है।

'दंगा' मे भारत विभाजन के समय के साम्प्रदायिक दंगों की पृष्ठभूमि में एक मध्यमवर्गीय परिवार पर इस सिलसिले मे आये हुए संकट का यथार्थवादी चित्रण किया गया है। नाटक मे साम्प्रदायिक समस्या को उसके पूरे सदर्भ में, उसकी राजनीति सहित देखा गया है। 'व्यक्ति मुक्त' भारतीय गणतंत्र की स्थापना से संबंधित समस्याओं पर आधारित है।

'पृथ्वी कल्प' जो एक प्रतीकात्मक नाट्य-काव्य है, उनकी एक महत्वपूर्ण कृति है। 'पृथ्वी कल्प' वस्तुतः पहला काव्य है जिसके माध्यम से हिन्दी कविता में वैज्ञानिक चेतना का सूत्रपात हुआ है।[९] इस सबंध में डाक्टर नगेन्द्र का कहना है कि काव्य वस्तु के अन्तर्गत नवीन विषयों का चयन कर गिरिजाकुमार जी ने आधुनिक जीवन की कलात्मक संभावनाओं का बड़े संयम के साथ उपयोग किया है। अणुयुग के वैज्ञानिक चमत्कारों को, अन्तरिक्ष विजय की नयी संभावनाओं को और उनके प्रकाश में मानवता के भविष्य की कल्पना को साकार करने के लिए कवि ने 'पृथ्वी कल्प' के रूप मे अत्यन्त साहसिक प्रयास किया है।[१०]

'पृथ्वी कल्प' का कथ्य यह है कि हमारे आज तक के मानव-मूल्य व्यक्ति-मुखी

---

९. कैलाश वाजपेयी : जीवनी, गिरिजाकुमार माथुर, आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि पुस्तक माला में, दिल्ली ६१.

१०. देखिए उनका लेख : गिरिजाकुमार माथुर, आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियां.

रहे हैं पर अब व्यक्ति का स्थान समूह और ईश्वर का स्थान विज्ञान ले रहा है। नाट्य काव्य में पात्रों के रूप में दिक्गीत, गाथाकार, गीतकार, सदियां, इतिहास, काव्य कन्या, अणुपति, स्वर्ण-दैत्य आदि को प्रस्तुत किया गया है। यह कृति न रंगमंच के लिए है और न रेडियो के लिए; यह वास्तव में एक पाठ्य नाट्य काव्य है।"[11]

समग्र रूप से कहा जा सकता है कि गिरिजाकुमार माथुर की कविताओं में आवेग, भावोच्छ्वास और आक्रोश और यहां तक कि व्यंग भी लगभग नहीं मिलता। इस दृष्टि से उनकी कविताएं अन्य प्रगतिशील कवियों की कविताओं से काफी अलग हैं। उनमें एक स्थिर, शान्त, गंभीर और प्रौढ़ वातावरण लगभग सर्वत्र दिखाई देता है। यही कारण है कि उनकी परवर्ती कविताएं कल्पनाप्रवण किशोरों और उद्दाम आवेग प्रिय नवयुवकों को अधिक आकर्षित नहीं कर पाती, वे अधिकतर प्रौढ़ों के कवि हैं। डा. नगेन्द्र के अनुसार उनकी प्रगति चेतना मध्यमवर्ग की प्रगति चेतना है और उन्होंने इसे किसी रूढ़ सिद्धान्तवाद के रूप में नही, एक व्यापक नैतिक धरातल पर ग्रहण किया है। फिर उनकी रचनाओं में मध्यवर्ग की कुंठाओं की कटुता भी नही है। इसका कारण उनके स्वभाव की मिठास है।"[12]

विषयवस्तु के अनुकूल वातावरण निर्माण की उनमें विशेष क्षमता है, चाहे विरह-मिलन की कविताएं हों, चाहे ऋतु-चित्र, या किसी विशेष अंचल को अंकित करना हो, वे उपयुक्त शब्दविधान और अप्रस्तुतविधान तथा अन्य उपकरणों से उसके अनुकूल वातावरण बना लेते हैं।

डा. नगेन्द्र गिरिजाकुमार की कविता को अज्ञेय से भी अधिक समृद्ध मानते हैं। क्योंकि एक तो उनका सौन्दर्य बोध पाश्चात्य विचारों से गढ़ कर तैयार किया हुआ नही है, नये उपकरणों का उपयोग उन्होंने नवीन जीवन चेतना के साथ अनाविल सौन्दर्य भावना को मूर्तित करने के लिए किया है, नये उपकरणों को जोड़ कर नयी सौन्दर्य-भावना को संगठित करने का कृत्रिम प्रयास नहीं किया और दूसरे संगीत का सहज ज्ञान होने के कारण उन्होंने नवीन स्वर-लय की अनेक सूक्ष्म व्यंजनाएं प्रस्तुत करने में अद्भुत सफलता प्राप्त की है।

भवानी प्रसाद मिश्र

'कवि मित्र' के अनुसार और कवि कविता लिखते हैं, भवानी प्रसाद कहते हैं। प्रचलित छंदों के पैटर्न पर ही ये बोलचाल का पैटर्न आरोपित कर देते हैं।

---

११. सिद्धनाथ कुमार : हिन्दी एकांकी की शिल्पविधि का विकास, पृ. १७७.
१२. वही लेख.

उनका आकर्षण उनकी निहायत बेतकल्लुफी में है, जो उनकी कविताओं को एक मधुर व्यक्ति-व्यंजकता से भर देती है। इसीलिए उनकी कविताओं में कहीं कहीं व्यक्ति-व्यंजक निबंधों का सा रस मिलता है।"[१३]

दूसरे सप्तक के उनके वक्तव्य से स्पष्ट है कि साधारणता उनके जीवन और काव्य दोनों की मूलभूत विशेषता है—इसी साधारण जिन्दगी को उन्होंने सहज शैली में अपनी कविताओं में व्यक्त किया है। वास्तव में वे साधारणता के असाधारण कवि हैं। उनका आदर्श है :

जिस तरह हम बोलते हैं उस तरह तू लिख
और उसके बाद भी हम से बड़ा तू दिख

हिन्दुस्तान के मामूली लोगों के मामूली रोजमर्रा के सुख-दुखों को उन्होंने अपनी ऐसी कविताओं मे व्यक्त किया है, जिनका एक शब्द भी किसी को समझाना नहीं पड़ता। वास्तव में उनकी सहजता आधुनिक हिन्दी कविता में अपने जैसी एक ही है। 'सहज अनुभूति को सहज भाषा में असाधारण अभिव्यक्ति प्रदान कर देना इनके कवि कर्म की प्रमुख विशेषता है'।[१४]

एक प्रेम पूर्ण, रागभीना मानववाद उनकी एक एक पंक्ति में बसा हुआ है, चाहे इसे गांधी दर्शन का प्रभाव कहिये या कुछ और। समष्टि के सामने समर्पण की भावना उनके काव्य में प्रबल है। अपने गीतों को कमल के फूलों की तरह वे मनुष्यता के आंचल में रख देना चाहते हैं :

फूल लाया हूं कमल के, क्या करूं इनका ?
पसारें आप आंचल, छोड़ दूं
हो जाय जी हलका !

यह राग-भावना उनकी कविताओं की केन्द्रीय विशेषता है। "उनका हृदय अत्यन्त स्नेहशील और अनुराग पूर्ण है। उनका यह अनुराग जड़ और चेतन तथा मानव और प्रकृति के प्रति समान रूप से है। एक ओर तो वे मानवतावादी और मानवमात्र के प्रेमी हैं और दूसरी ओर प्रकृति का सौन्दर्य उन्हें इतना प्रिय है कि वह उन्हें आत्मसात सा कर लेता है।"[१५]

प्रकृति का सौन्दर्य सबको प्रभावित करता है—सारे भेद मानवकृत ही हैं। वसन्त के यौवन और सौन्दर्य का वर्णन करता हुआ कवि कहता है :

---

१३ कविमित्र: भवानी प्रसाद मिश्र की कविताएं, कवि, सितम्बर, ५७, पृ. १४४.
१४ रवीन्द्र भ्रमर, पृ. २३०.
१५ ललित मोहन अवस्थी : आज के कवि, पृ. ५६.

क्षुद्र क्षुद्रता भूला अपनी
निज महत्व भूली महानता
किसे तुच्छ किसको विराट्
वह अनाहूत आनन्द मानता ?

प्रकृति सुन्दर तो है ही—उसकी सुन्दरता का वखान करते हुए कवि थकता नहीं है—वह दलितों और दुखियों को सहानुभूति भी देती है :

कितनी बार लगा है मेरे दुख के ये साथी हैं
रात रात भर इसीलिए तो जगने के आदी हैं
मै पृथ्वी का मानव हूं, ये आसमान के तारे
तो भी मेरे दुःख में साथी रहते हैं बेचारे

गांधीवाद से प्रभावित होते हुए भी अपनी कई कविताओं में उन्होंने क्रान्ति और उसके ध्वंसात्मक पक्ष के बिम्ब प्रस्तुत किये हैं :

एक दिन होगी प्रलय भी
मत रहेगी झोपड़ी, मिट जाएंगे नीलम निलय भी

और :

तुझे मुक्ति तो पाना ही है
पगडंडी पर क्षितिज चीरते हुए तुझे तो जाना ही है
अभय प्राण हे ! कंठ खोल कर
डमरू के स्वर बोल बोल कर
ज्वालाओं से दिशा सजा कर
अग्नि गान तो गाना ही है

उनका सदेश है :

माथे को फूल जैसा
अपने, चढ़ा दे जो
रुकती सी दुनियां को
आगे बढ़ा दे जो
मरना वही अच्छा है ।

गांधीवाद ने उन्हें एक साधना और उसके सद्परिणाम के प्रति एक गहरी आस्था का भाव दिया है :

भीतर की तकलीफ सृजन की माता है
और बहुत भोगने वाला बड़ा विधाता है

इसलिए प्राण मेरे भोगो फल निकलेगा
इन बड़ी बड़ी तकलीफ़ों का हल निकलेगा

—कवि, अक्टूबर; पृ. ५७.

मिश्र जी की भाषा शैली सहज सौन्दर्य से दीप्त है। बातचीत के लहजे की नाटकीयता इनकी बहुत सी कविताओं की जान है। इनकी रचना प्रक्रिया में शब्द फूलों की तरह झरते हैं :

शब्द टप टप टपकते हैं फूल से
सही हो जाते हैं मेरी भूल से

अर्थात् असावधानी से ही सही संदर्भों में खिल पड़ते हैं ।

वैसे तो लोक गीतों की धुनों और चेतना को आत्मसात करके उन्होंने कुछ सुन्दर गीत भी लिखे हैं (जैसे 'पी के फूटे') लेकिन उनके कृतित्व का अधिकांश मुक्त छन्द में ही है। हा तुक की प्रभावशीलता का उपयोग उन्होंने हमेशा कुशलता पूर्वक किया है ।

गीत फरोश (५६), चकित है दुःख (६८), अंधेरी कविताएं और बुनी हुई रस्सी (७२) उनके प्रकाशित संकलन हैं।

प्रकृति और मानव-जीवन के एक स्वस्थ प्रेमी कवि की भावनाएं और स्वर **गीत फरोश** का प्रमुख स्वर है। कवि का दृष्टिकोण संकलन की पहली ही कविता में स्पष्टता पूर्वक व्यक्त हुआ है :

कलम अपनी साध,
और मन की बात बिल्कुल ठीक कह एकाध ।
ये कि तेरी भर न हो तो कह
और बहते बने सादे ढंग से तो बह ।
जिस तरह हम बोलते हैं, उस तरह तू लिख
और इसके बाद भी हमसे बड़ा तू दिख ।
चीज ऐसी दे कि जिसका स्वाद सिर चढ़ जाय
बीज ऐसा बो कि जिसकी बेल बन बढ़ जाय
फल लगें ऐसे कि सुखरस, सार और समर्थ
प्राण-संचारी कि शोभा भर न जिनका अर्थ ।

—कवि, गीत फरोश

कवि के दृष्टिकोण के लगभग सभी आयाम—और कहना न होगा कि ये आयाम कविता के प्रति प्रगतिशील दृष्टिकोण का सही प्रतिनिधित्व करते

हैं—इन पंक्तियों में व्यक्त हो गये हैं। वह मन की बात ठीक-ठीक कहना चाहता है, पर ऐसी भाषा शैली में, जिसमें कि उसके पाठक बोलते हैं। वह सीधे सादे ढंग से कहना चाहता है। पर उसका उद्देश्य ऐसे बीज बोना है, जिनके फलों का अर्थ शोभा मात्र नहीं है। अपनी वाणी की सार्थकता पर उसके उद्देश्य पर कवि का आग्रह और भी कई जगह व्यक्त हुआ है :

मेरी इच्छा है दो जीभों वाली तू अपना रूप दिखा
हर अत्याचार सूख जाए छूकर तेरा विष-भरा लिखा
तेरी ज्वाला में पड़ते ही हर स्वेच्छाचार झुलस जाए
तेरी करुणा की बूंद पड़े, हर पत्थर में पानी आए।

—लेखनी से, गीत फरोश

एक विनम्रता के साथ संसार के काम आने की उनकी चाह इन पंक्तियों में व्यक्त हुई है :

कितने ही भवानी यहां आये हैं गये हैं मूर्ख
तेरे ही न दुनियां में गीत कुछ नये हैं मूर्ख...
गाने का स्वभाव किन्तु तेरा जब पड़ा ही है
दुनियां में आया, दुःख छाती में गड़ा ही है
तब तू स्वरों में अपने, ऐसा एक रस दे
जीवन की विरसता को तू तारों पर कस दे

—ऐसा करूं, गीत फरोश

फिर वह अपने शब्दों को अपने जीवन में भी उतारना चाहता है:

मैं उन्हें सिर्फ बरतूं नहीं,
उन्हें जिऊं—
बात कठिन है
लेकिन करना चाहिए।
शब्दकार को
अगर जरूरत पड़े
तो अपने शब्दों पर मरना चाहिए।

—भूमिका, गीत फरोश

संकलन की महत्वपूर्ण कविताओं में 'कवि', 'राजपथ', 'सन्नाटा', 'सतपुड़ा के जंगल', 'मधुमास', 'आशागीत', 'पहला पानी', 'घर की याद', 'त्योहार घटपटकन', 'दहन-पर्व', और 'गीत फरोश' के नाम लिये जा सकते हैं।

इनमें से 'कवि' और 'दहन-पर्व', ऊपर अन्य उद्धृत कविताओं की तरह ही उनकी काव्य के प्रति प्रगतिशील दृष्टि को अभिव्यक्ति देती हैं। 'राजपथ', 'सन्नाटा' और 'सतपुड़ा के घने जंगल' मिलती-जुलती शैली की तीन सुन्दर कविताएं हैं। पहली दोनों में राजपथ और सन्नाटे की आत्मकथा के सहारे सामाजिक यथार्थ को रूपायित किया गया है। ये कविताएं कवि की विकसित संवेदनशीलता की भी प्रमाण हैं, जिसके कारण वह एक सड़क और सन्नाटे को उसी दृष्टि से देखता है जिससे किसी सजग, सचेतन मनुष्य को देखा जाता है। दोनों कविताएं असफल प्रेम कहानियों के ताने-बाने से बुनी हुई हैं।

'सतपुड़ा के जंगल' भवानी प्रसाद मिश्र की ही नहीं, आधुनिक हिन्दी काव्य की भी, श्रेष्ठ रचनाओं में से एक है। एक अंचल विशेष के प्राकृतिक और सामाजिक यथार्थ का इतना प्रभावशाली रूपायन बहुत कम हिन्दी कविताओं में किया गया है। कविता की एक-एक पंक्ति कवि की वातावरण-निर्माण की क्षमता का प्रमाण है :

झाड़ ऊंचे और नीचे, चुप खड़े हैं आंख मीचे
घास चुप है, कास चुप है, मूक शाल पलाश चुप है
नींद में डूबे हुए से, ऊंघते अनमने जंगल
सतपुड़ा के घने जंगल !

और :

अजगरों से भरे जंगल, अगम गति से परे जंगल
सात सात पहाड़ वाले, बड़े छोटे झाड़ वाले
शेर वाले, बाघ वाले, गरज और दहाड़ वाले
कम्प से कनकने जंगल, सतपुड़ा के घने जंगल !

और इन जंगलों में रहने वाले लोग :

इन वनों के खूब भीतर, चार मुर्गे चार तीतर
पाल कर निश्चिंत बैठे, विजन वन के बीच पैठे
झोंपड़ी पर फूस डाले, गोंड तगड़े और काले
जब कि होली पास आती, सरसराती घास गाती
और महुए से लपकती, मत्त करती बास आती
गूंज उठते ढोल इनके, गीत इनके गोल इनके !

'आशा गीत' निराशा के खिलाफ और अपने समाज की विषमताओं के खिलाफ संघर्ष करते हुए एक कवि की मानसिक स्वस्थता को उभारती है।

कविता कुछ जरूरत से ज्यादा लम्बी हो गयी है, इसलिए इसका उतना अन्वित प्रभाव नहीं पड़ पाता।

'पहला पानी' भवानी प्रसाद मिश्र की प्रकृति संबंधी कविताओं का अच्छा प्रतिनिधित्व करती है। प्रकृति के प्रति आकर्षण कवि की अनुभूतियों की एक प्रमुख दिशा है। प्रकृति और उसमें भी वर्षा ऋतु की प्रकृति की अनेक आकर्षक मुद्राएं संकलन की कई कविताओं के विषय हैं। इन कविताओं में प्रकृति के कई सुन्दर, सादगी के साथ अंकित और प्रभावक चित्र मिलते हैं जो कवि के स्वस्थ मन और अकुण्ठ कल्पना के प्रमाण हैं। संकलन की लगभग दस कविताएं पावस-प्रकृति से ही संबंधित हैं।"[१६]

'घर की याद' बरसते पानी में उगते हुए गृह-स्नेह की एक सुन्दर अभिव्यक्ति है :

बहुत पानी गिर रहा है, घर नजर में तिर रहा है
घर कि मुझ से दूर है जो, घर खुशी का पूर है जो
घर कि घर में सब जुड़े हैं, सब कि इतने कब जुड़े हैं
चार भाई चार बहिने, भुजा भाई प्यार बहिने
और मां बिन पढ़ी मेरी, दुःख में वह गढ़ी मेरी
मां कि जिसकी स्नेह धारा का यहां तक है पसारा
उसे लिखना नहीं आता जो कि उसका पत्र पाता
और पानी गिर रहा है घर चतुर्दिक घिर रहा है
पिता जी भोले बहादुर, वज्रभुज नवनीत सा उर...
आज गीता पाठ करके, दण्ड दो सौ साठ करके
जब कि नीचे आये होंगे, नैन जल से छाये होंगे
हाय पानी गिर रहा है, घर नजर में तिर रहा है!

'मधुमास' और 'त्योहार घट-पटकन' क्रान्ति ओर नवीन समाज रचना की प्रतीकात्मक अभिव्यक्तियां हैं। एक ऐसे दिन की आहट :

छा जाए जिस रोज मलय वातास प्रकम्पित हास हर कहीं
बिखर जाय फूलों के दल सा आस-पास उल्लास हर कहीं
जिस दिन सपने सत्य और कवियों की वाणी धन्य हो उठे
जिस दिन की हर बात अनोखी अन्तिम और अनन्य हो उठे

---

१६ देखिये अषाढ़, मेघदूत, सुनो ए सावन हो! 'सावन' शीर्षक तीन कविताएं, असमय मेघ से, मेघ-मानव, पहला पानी, और घर की याद कविताएं.

क्लान्ति और अवसाद को चीर कर भी कवि के तरुण तीर पर आती रहती है और वह कहता है :

इस आहट के बल पर जोखम मुझे बहुत प्यारे लगते हैं
इस आहट को सुना कि मन में कितने नये प्राण जगते हैं

और वह चाहता है :

रोज लड़ रहे और बढ़ रहे, मानव की आशा को समझूं
जड़-चेतन में व्याप्त परम विश्वास मयी भाषा को समझूं

और 'घट-पटकन त्यौहार' में कवि उस दिन के जल्दी आने की कामना करता है, जब इस संसार सागर को गागर बना कर धरती पर पटक दिया जायेगा, और उसकी यह सारी 'व्यवस्था' ठीकरे की तरह बिखर जायेगी और नयी व्यवस्था की नींव रखी जायेगी।

'गीत फरोश' भी भवानी भाई की लोकप्रिय कविताओं में से एक है। बाजार की मांग के अनुसार गीत लिखने वालों—और बाजार की मांग को पूंजीवादी समाज में कितने गीतकार झुठला सकते हैं ?—पर यह एक सुन्दर और सूक्ष्म व्यंग है। स्मित हास्य का वातावरण उसे कटु कहीं नहीं बनने देता।

जी बहुत देर लग गयी हटाता हूं
गाहक की मर्जी अच्छा जाता हूं
या भीतर जाकर पूछ आइये आप
है गीत बेचना वैसे बिल्कुल पाप
क्या करूं मगर लाचार, हार कर गीत बेचता हूं
जी हां हुजूर मैं गीत बेचता हूं

कविता की ये अन्तिम पंक्तियां उस व्यंग को एक करुण स्पर्श दे जाती हैं। गीतों की जो किस्में कविता में गिनायी गयी हैं, वे बहुत ही मनोरंजक हैं। एक फेरीवाले की शैली का अच्छा निर्वाह पूरी कविता में किया गया है।

श्री रामदरश मिश्र के इन शब्दों में बहुत सच्चाई है कि 'भवानी प्रसाद मिश्र दृष्टिकोण से भले ही प्रगतिवादी न हों पर उनकी संवेदनाएं इतनी मानवीय हैं कि वे प्रगतिशील कविता के सम्पूर्ण वर्ण्य-विषय के क्षेत्र को घेर लेती हैं'।[१७] संवेदना की दृष्टि से ही नहीं, अपनी अभिव्यक्ति की सहजता की दृष्टि से भी उनकी कविताएं प्रगतिशील कविता के आदर्श का प्रतिनिधित्व करती हैं।

---

१७ साहित्य : संदर्भ और मूल्य, पृ. ४१.

शमशेर

शमशेर नई प्रगतिशील कविता के एक ऐसे कवि हैं, जो न केवल गिरिजा कुमार माथुर की तरह छायावादोत्तर रूमानियत से प्रभावित हैं बल्कि जो अपनी श्रेणी के अन्य सभी कवियों से अलग हट कर, पश्चिम की चित्रकला और वहां के साहित्य के विभिन्न आधुनिकतावादी शिल्पवादी आन्दोलनों से भी बुरी तरह प्रभावित हैं। डा. रघुवंश के अनुसार "फ्रांस के विभिन्न काव्यान्दोलनों के संदर्भ में अध्ययन किये जाने की सर्वाधिक अपेक्षा यदि कोई हिन्दी का कवि रखता है तो वह शमशेर हैं। उनके व्यक्तित्व में छायावादोत्तर हिन्दी कविता के तीनों रूप—उत्तर छायावादी रूमानियत, प्रगतिवाद और प्रयोगवाद, एक साथ देखे जा सकते हैं। रोमेंटिक आकांक्षा, ऐन्द्रिक सौन्दर्य-भावना, प्रणयजन्य निराशा, अवसाद और भावाकुलता, प्रगतिवादियों की सामाजिक दायित्व की भावना, शोषित वर्ग के पक्ष में उसके प्रति गहरी सहानुभूति, व्यक्तित्व का समर्पण तथा निहित स्वार्थों और स्थापित वर्ग के प्रति विद्रोह और साथ ही प्रयोगशील काव्य की व्यक्तित्व के प्रति जागरूकता, उसकी मुक्ति की आकांक्षा, यथार्थ को सीधे ग्रहण करने की चेतना और उसके लिए प्रयोग तथा अन्वेषण का मार्ग—इन सब को ये एक ऐन्द्रिजालिक प्रक्रिया से अपने काव्य में समाहित कर लेते हैं।"[१८]

शमशेर की संकलित कविताएं हम सबसे पहले दूसरा सप्तक में पाते हैं। वक्तव्य में शमशेर ने बताया है कि उनकी कविताओं पर पन्त, निराला, उर्दू गजलों 'उलझे हुए भावों को लिए हुए सपनों की सी चित्रकारी' (अर्थात सर रियलिस्ट चित्रकला) बातचीत के लहजों और वर्ले, लारेंस, इलियट, पाउंड, कमिंग्स, हॉपकिन्स, एडियसिट्वैल और डॉयलन टॉमस आदि की शैलियों का प्रभाव पड़ा है। वक्तव्य के अनुसार प्रगतिशील आन्दोलन के प्रभाव में वे ४०-४१ के दिनों में बनारस में रहते हुए शिवदान सिंह चौहान के सम्पर्क में आये। यहां वे मार्क्सवादी आदर्शों को अपने जीवन और काव्य के आदर्श घोषित करते हैं पर साथ ही यह भी स्वीकार करते हैं कि अभी वे इन आदर्शों के अनुकूल स्पष्ट और स्वस्थ कविताएं नहीं लिख पाये हैं। इस 'ऊंच रचि और मति' को अपनी कविताओं में न पकड़ पाने के उन्हें दो कारण लगते हैं : 'एक, जनता के हृदय से मेरी दूरी, दूसरा मार्क्सवाद का उथला ज्ञान, खासकर किसान-मजदूर के संघर्षों के इतिहास के ज्ञान की कमी।'[१९]

---

१८ साहित्य का नया परिप्रेक्ष्य, पृ. २७८.
१९ दूसरा सप्तक, पृ. ८४.

दूसरा सप्तक में संकलित उनकी कविताएं उनकी रूमानी शिल्पवादी रुचि और उनके मार्क्सवादी आदर्श, दोनों को व्यक्त करती है हालांकि आदर्श को व्यक्त करने वाली कविताएं अपेक्षाकृत कम हैं। ऐसी कविताओं में 'स्वतंत्रता-दिवस पर १९४०', 'भारती की आरती' और 'समय साम्यवादी' का नाम लिया जा सकता है। पहली कविता में वे अपनी 'बुर्जुआ भावों की गुमठी को काट कर', अपने 'विरह-मिलन के ताप' मजदूर-किसानों की आग में जला देने का आत्माह्वान करते हैं। 'भारती की आरती' भारतीय स्वाधीनता का स्वागत मात्र है, यह स्वाधीनता समाजवाद में बदले, इस शुभ कामना के साथ। 'समय साम्यवादी' शिल्प की कुछ उलझनों के बावजूद प्रवाहपूर्ण और प्रभावशाली रचना है। इतिहास की भावी गति की दिशा का ज्ञान और विश्वास इस कविता की शक्ति है :

वाम वाम वाम दिशा
समय-साम्यवादी

अपने समय के केन्द्रीय सत्य को शमशेर ने इस कविता में सशक्त अभिव्यक्ति दी है :

आगे-आगे चलती है
लाल-लाल
वज्र कठिन कमकर की मुट्ठी में
पथ प्रदर्शिका मशाल!

कुछ कविताएं (५७) और कुछ और कविताएं (६१) उनकी कविताओं के दो संकलन है। यद्यपि इन संकलनों की कई कविताएं काफी प्रभाव पूर्ण हैं, तथापि इनकी अधिकांश कविताओं का अमूर्त चित्रों की तरह ही, कोई सिर-पैर, अर्थ-भाव समझ मे नहीं आता। पूरी-पूरी कविताओ को कई-कई बार पढ़ने के बाद भी यह पल्ले नही पड़ता कि आखिर कवि कहना क्या चाहता है। एक उदाहरण लिया जाय, एक पूरी कविता है :

शिला का खून पीती थी
वह जड़
जो कि पत्थर थी स्वयं।
सीढ़ियां थीं बादलों की झूलती
टहनियों सी
और वह पक्का चबूतरा

ढाल में चिकना
सुतल था
आत्मा के कल्प-तरु का ?

—कुछ और कविताएं, पृ. ७५

ऐसी कई कविताएं उद्धृत की जा सकती हैं, जैसे 'होली', 'रंग और दिशाएं', 'ये लहरें घेर लेती हैं', 'सींग और नाखून' आदि। इन कविताओं में भी बिखरे हुए खण्ड चित्रों के सिवा, कुछ भी नहीं है।

यह शिल्पवाद उनकी अधिकांश कविताओं को अबूझ शब्दों, बिम्बों और संवेदनाओं का एक ढूह मात्र बना देती है, और किसी भी प्रबुद्ध पाठक को उस तथाकथित 'ऐन्द्रजालिक सम्मोहन' का कहीं भी अनुभव नहीं होता, जिसे डा. रघुवंश ने उनकी कविता की सबसे बड़ी विशेषता कहा है।[20] उनका यह इन्द्र-जाल असंस्कृत और अपरिपक्व मस्तिष्कों या आत्महीनता से ग्रस्त आधुनिकता-वादी रुचियों का पाखण्ड करने वाले ऐसे लोगों को ही आतंकित कर पाता है, जिनकी तुलना अकबर के उन दरबारियों से की जा सकती है, जिन्हें उनकी आत्म-हीनता की भावना का शोषण करते हुए बीरबल ने हवा में ही इन्द्र की अप्सराएं दिखा दी थीं।

शायद यही सब देख कर डा. रामविलास शर्मा ने लिखा है : "उनकी कविता भी कोंपल की तरह हैं, बहुत स्वाभाविक, लेकिन ऐसी कोंपल, जो बढ़ कर पत्ती बनना नहीं जानती। बहुत से सूक्ष्म इन्द्रियबोध, बहुत से कोमल भाव हैं, कहीं-कहीं रुई के फाहे से हल्के विचार, और छन्द, लय मूर्ति-विधान, सब कुछ अस्फुट, हवा में लहराता हुआ। उसे अनगढ़ सौन्दर्य भी नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि अनगढ़ वह जो गढ़ा जा सके। यहां गढ़ने लायक कुछ भी नहीं है, सब कुछ अस्फुट, असंगठित, रूप-अरूप के बीच, सृष्टि के पूर्व ब्रह्म जैसा। किसी कवि के अन्तर्मन में झांक कर देखना हो कि कविता बनने से पहले अव्यक्त भाव-रूप कैसा होता है, तो शमशेर बहादुर सिंह की कविताएं पढ़ लीजिए।"[21]

इन सब बातों के बावजूद शमशेर की कुछ कविताएं विशिष्ट प्रभाव अपने पाठकों पर डालने में समर्थ हैं। प्रकृति सम्बन्धी उनकी कुछ कविताओं की चित्रात्मक प्रभावकता की प्रशंसा की जा सकती है। उदाहरण के लिए उषा का यह चित्र निश्चय ही प्रभावशाली है :

---

२० देखिए साहित्य का नया परिप्रेक्ष्य में उनका शमशेर पर लेख, पृ. २७२.
२१ रामविलास शर्मा : शमशेर बहादुर सिंह, गहरे बीहड़ संस्कारों वाला भाव्य-व्यक्तित्व, धर्मयुग २७ जून, ६५ पृ. १६.

प्रांत नभ था बहुत नीला शंख जैसे
भोर का नभ
राख से लीपा हुआ चौका
(अभी गीला पड़ा है)
बहुत काली सिल जरा से लाल केसर से
कि जैसे धुल गई हो
स्लेट पर या लाल खड़िया चाक
मल दी हो किसी ने
नील जल में या किसी की
गौर झिलमिल देह
जैसे हिल रही हो !

—उषा, कुछ कविताएं

इसी तरह 'सागर-तट' और 'पूरा का पूरा आसमान' भी अच्छे शब्द-चित्र हैं।

शमशेर ने कुछ प्रभावपूर्ण कविताएं साम्यवादी आन्दोलनों से संबंधित विषयों पर भी लिखी हैं। इनमें 'य' शाम है', 'का. रुद्रदत्त भारद्वाज की शहादत की पहली बरसी पर', 'चीन', 'हमारे दिल सुलगते हैं, 'माई' आदि का नाम लिया जा सकता है।

'य' शाम' ग्वालियर की एक खूनी शाम का भावचित्र प्रस्तुत करने वाली एक सुन्दर प्रभाववादी कविता है। 'रोटियों-टंगे लाल झन्डे' लिए मजदूरों के जुलूस पर गोली चलने की एक घटना की यह स्वर स्मृति है —

ये शाम है
कि आसमान खेत है पके हुए अनाज का
लपक उठीं लहू भरी दरातियां
—कि आग है :
धुआं धुआं
सुलग रहा
ग्वालियर के मजूर का हृदय
कराहती धरा
कि हाय-मय विशाक्त वायु
धूम्रतिक्त आज

रिक्त आज
सोखती हृदय
गवालियर के मजूर का !
गरीब के हृदय
टंगे हुए
कि रोटियां लिए हुए निशान
लाल लाल
जा रहे
कि चल रहा
लहू भरे गवालियर के बजार में जलूस
जल रहा
धुआं धुआं
गवालियर के मजूर का हृदय

—कुछ कविताएं

भारद्वाज की शहादत पर लिखी हुई कविता में कुछ पौराणिक संदर्भों का उपयोग बड़ी कुशलता से किया गया है :

देखता है मौन अक्षय वट
क्रान्ति का एक बृहद कुंभ :
क्रान्तिमय निर्माण का एक बृहद पर्व
चमकती असिधार सी है धार गंगा की
हरहरा कर उठ रहा है
नव
जन महासागर।

'चीन' कविता में चीनी लिपि में लिखे हुए चीन देश के पूरे नाम के चित्राक्षरों के आकार के आधार पर कुछ बिम्ब खड़े किये गये हैं, कवि का वैचित्र्य मोह और शिल्पवाद यहां भी स्पष्ट है—यद्यपि कविता की गम्भीरता इससे कम नहीं होती।

इन प्रभाववादी कविताओं से अलग शमशेर की प्रगतिशील कविताओं में सबसे लम्बी और कदाचित् सबसे अधिक महत्वपूर्ण कविता है—'अमन का राग'।

विश्व फलक पर उभरती हुई नई-नई हकीकतों का एक 'विजन', विश्वशान्ति की एक अदम्य कामना और उस 'विजन' व कामना से उन्मुक्त हुए कवि हृदय का रस इस कविता की एक-एक पंक्ति में बसा हुआ है। उभर-उभर कर आती हुई हमारे समय की इस 'हकीकत' को देखिए :

देखो न हकीकत हमारे समय की कि जिसमें
होमर एक हिन्दी कवि सरदार जाफरी को
इशारे से अपने करीब बुला रहा है
कि जिसमें
फ़ैयाज खां बिथोविन के कान में कुछ कह रहा है
मैंने समझा कि संगीत की कोई अमर लता हिल उठी
मैं शेक्सपियर का ऊंचा माथा उज्जैन की
घाटियों में झलकता देख रहा हूँ
और कालिदास को वेमर के कुंजों में विहार करते हुए
और आज तो मेरा टैगोर, मेरा हाफ़िज,
मेरा तुलसी, मेरा गालिब
एक-एक मेरे दिल के पावर हाउस का कुशल आपरेटर है।

राष्ट्रों की सीमाओं को अतिक्रान्त करती हुई युग की इस सच्चाई का दर्शन कवि के हृदय को विराट् और उन्मुक्त कर जाता है :

ये पूरब पश्चिम मेरी आत्मा के ताने बाने हैं
मैंने एशिया की सतरंगी किरणों को
अपनी दिशाओं के इर्द-गिर्द लपेट लिया है।
और मैं योरप और अमरीका की नर्म आंच की धूपछांव पर
बहुत हौले-हौले नाच रहा हूं
सब संस्कृतियां मेरे सरगम में विभोर हैं
क्योंकि मैं हृदय की सच्ची सुख-शान्ति का राग हूं
बहुत आदिम, बहुत अभिनव।

और विश्व में स्थायी शान्ति का यह 'विजन' :

युद्ध के नक्शों को कैंची से काट कर कोरियाई बच्चों ने
झिलमिली फूल पत्तों की रौशन फ़ानूस बना ली है

और हथियारों का स्टील और लोहा
हजारों देशों को एक दूसरे से मिलाने वाली
रेलों के जाल में बिछ गया है।
और ये बच्चे उन पर दौड़ती हुई रेलों के
डिब्बों की खिड़कियों से
हमारी ओर झांक रहे हैं
वह फौलाद और लोहा
खिलौनों, मिठाइयों और किताबों से लदे
स्टीमरों के रूप में
नदियों की सार्थक सजावट बन गया है
या विशाल ट्रैक्टर-कम्बाइन और फैक्ट्री मशीनों के हृदय में
नवीन छन्द और लय के प्रयोग कर रहा है।

वास्तव में सुख का वह भविष्य केवल 'शान्ति की आंखों मे ही वर्तमान है'। ये आंखें हमारे इतिहास की वाणी और वास्तव में हमारी कला का सच्चा सपना हैं, ये हमारे माता-पिताओं की आत्मा और हमारे बच्चों का दिल हैं। कवितान्त एक मार्मिक पंक्ति के साथ होता है :

हम मनाते हैं कि हमारे नेता इनको देख रहे हों।

श्री विजयदेव नारायण साही ने शमशेर की काव्यानुभूति की बनावट पर विचार करते हुए कहा है कि पिछले पच्चीस वर्षों मे काव्य के आदर्शों को लेकर प्रगतिवाद बनाम प्रयोगवाद का जो संघर्ष चलता रहा है उसका शमशेर ने यह हल निकाला है कि वक्तव्य उन्होंने सारे प्रगतिवाद के पक्ष में दिये, और कविताएं उन्होने बराबर वे लिखी जो प्रगतिवाद की कसौटी पर खरी नही उतरतीं। और कि, उनकी अधिकांश ऐसी कविताओं का, जिन्हें प्रगतिवादी कहा जा सकता है, प्रगतिवाद उन कविताओं में उतना नही है, जितना उन कविताओं के साथ जुड़ी हुई टिप्पणियों मे है। 'यह निष्कर्ष निकालने का लोभ होता है कि शमशेर का प्रगतिवाद उनकी कविताओं के हाशिए तक सीमित रह गया है'।"

बात एक हद तक ठीक है, पर सिर्फ 'चीन', 'भाई' आदि के आधार पर ही।

---

२२ विजयदेव नारायण साही : 'शमशेर की काव्यानुभूति की बनावट', माध्यम, जुलाई १९६४।

'अमन का राग', 'ये शाम है' आदि कविताओं की पृष्ठभूमि ही नहीं, उनकी बनावट भी, प्रगतिशील है, इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता। वस्तु-स्थिति यह है कि यद्यपि शमशेर ने इनी गिनी ही प्रगतिशील कविताएं लिखी हैं—उनकी मुख्य रुझानें शिल्पवादी और रूमानी हैं—पर उनका मूल्य कम नहीं है। उनकी सूक्ष्म संवेदनशीलता, उनका कसाव और उनका बिम्बात्मक गठन उन्हें साधारणता के स्तर से बहुत ऊपर ले जाता है।

नरेश मेहता

नरेश मेहता की संकलित कविताएं पहले-पहल हमें दूसरा सप्तक (५१) में मिलती हैं। उनके परिचय में यहां कहा गया है कि वे प्रोलेतेरियत वर्ग के कहे जा सकने वाले पिता के घर में जन्मे और उन्होने लिखना १६३६ के आसपास शुरू किया। उनके तत्कालीन दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति परिचय की इन पंक्तियों में हो जाती है कि वे लिखना और 'आग लिखना' चाहते हैं और कि वे 'राजनीति और साहित्य को पर्यायवाची' मानते है। उनके वक्तव्य से यह सूचना भी मिल जाती है कि प्रारंभ में उन्होने छायावादी और रहस्यवादी ढंग की कविताएं लिखी थी और कि अब उन्हें वे कविताएं नहीं मानते। उनसे निकटतर परिचय प्राप्त लोगों का कहना है कि उन्होंने अपनी उन प्रारंभिक कविताओं को नष्ट भी कर दिया था।

सप्तक में संकलित उनकी कविताएं एक प्रकृति-प्रेमी प्रगतिशील कवि की नवीनतम शिल्प-शैली से सम्पन्न कविताएं कही जा सकती हैं। 'किरन धेनुएं' 'उषस्-३' और 'उषस्‌:अश्वकी वल्गा' प्रकृति-संबंधी कविताओं में महत्वपूर्ण हैं। इन कविताओं में वैदिक और लोक-जीवन से प्राप्त बिम्बों के सहारे प्रकृति का भावपूर्ण वर्णन किया गया है। किरणों को धेनुओं के रूप में कल्पना वास्तव में सुन्दर है :

उदयाचल से किरन धेनुएं
हांक रहा सूरज का ग्वाला

'किरन-धेनुएं' का पूरा वातावरण गायों और गाय चराने वाले ग्वालों के जीवन से परिपूर्ण है। 'उषस्-३, और 'उषस्‌:अश्व की वल्गा' में न केवल वैदिक बिम्बों का सुन्दर प्रयोग किया गया है बल्कि वैदिक-सी शब्दावली में ही शुभ-कामनाएं भी व्यक्त की गयी हैं।

दूसरा सप्तक में संकलित नरेश मेहता की सबसे सुन्दर—और सबसे लम्बी भी—कविता है : 'समय देवता'। इस एक ही कविता में उनकी तीनों प्रमुख

और हथियारों का स्टील और लोहा
हजारों देशों को एक दूसरे से मिलाने वाली
रेलों के जाल में बिछ गया है।
और ये बच्चे उन पर दौड़ती हुई रेलों के
डिब्बों की खिड़कियों से
हमारी ओर झांक रहे हैं
वह फौलाद और लोहा
खिलौनों, मिठाइयों और किताबों से लदे
स्टीमरों के रूप में
नदियों की सार्थक सजावट बन गया है
या विशाल ट्रैक्टर-कम्बाइन और फैक्ट्री मशीनों के हृदय में
नवीन छन्द और लय के प्रयोग कर रहा है।

वास्तव में सुख का वह भविष्य केवल 'शान्ति की आंखों मे ही वर्तमान है'। ये आंखें हमारे इतिहास की वाणी और वास्तव में हमारी कला का सच्चा सपना हैं, ये हमारे माता-पिताओं की आत्मा और हमारे बच्चों का दिल हैं। कवितान्त एक मार्मिक पंक्ति के साथ होता है :

हम मनाते हैं कि हमारे नेता इनको देख रहे हों।

श्री विजयदेव नारायण साही ने शमशेर की काव्यानुभूति की बनावट पर विचार करते हुए कहा है कि पिछले पच्चीस वर्षों मे काव्य के आदर्शों को लेकर प्रगतिवाद बनाम प्रयोगवाद का जो संघर्ष चलता रहा है उसका शमशेर ने यह हल निकाला है कि वक्तव्य उन्होंने सारे प्रगतिवाद के पक्ष मे दिये, और कविताएं उन्होंने बराबर वे लिखी जो प्रगतिवाद की कसौटी पर खरी नही उतरती। और कि, उनकी अधिकांश ऐसी कविताओं का, जिन्हें प्रगतिवादी कहा जा सकता है, प्रगतिवाद उन कविताओं में उतना नही है, जितना उन कविताओं के साथ जुड़ी हुई टिप्पणियों मे है। 'यह निष्कर्ष निकालने का लोभ होता है कि शमशेर का प्रगतिवाद उनकी कविताओं के हाशिए तक सीमित रह गया है'।"

बात एक हद तक ठीक है, पर सिर्फ 'चीन', 'माई' आदि के आधार पर ही।

२२ विजयदेव नारायण साही : 'शमशेर की काव्यानुभूति की बनावट', माध्यम, जुलाई १९६४।

धीमे बोलो समय देवता।
उसी पुरुष की यह समाधि है
अभी अभी जो कर्म-निरत था
अब आँखें आकाश मीच कर श्रम के सपने देख रही हैं।

और देखिये युद्ध से ध्वस्त मृतप्राय: चीनी धरती का यह चित्र :

वह जो पीली भूमि दिख रही देव
वही है पीत सूर्य की पीली वसुधा
जिसका होता कहवा मीठा
श्रमण चीन का पीला चीवर अल्ताई पर बिछा हुआ है।
वे अफीम के खेत उदुम्बर रंगों में डूबे सोये हैं...
किन्तु आज तो चीन देश की वसुधा माता
झुलसी हुई मृतप्राय है
वे विदेश पूंजी की कीलें जो छाती में ठुकी हुई थीं
तीस साल के बाद आज वे उखड़ रही हैं।

और मिलाइये इसे जापान के इस चित्र से :

दूर छिपकली सा वह छोटा टापू है जापान देश का
जो कि मर चुका एटम बम से।
डूब गयीं बूटों की टापें, सिसक रहा कोढ़ी सा जीवन
विज्ञान धुएं के अजगर सा है लील रह सब रंग रेशमी मनु-श्रद्धा का
हिरोशिमा में मनुज मर गया।...
दौड़ रही हैं गंधक और फासफोरस की पीली लपटें
जिनमें उस जापान देश का सदियों का संगीत जल गया।

और अमेरिका ?

डमरू जैसा देश दिख रहा अमरीका का
कोलम्बस के पोत लगे थे इसके तट पर, उपनिवेश औ शोषण के हित
गगन-विचुम्बित इन महलों की मनुज नींव है
जिनमें पैसे का निवास है।
एटम औ हाइड्रोजन बम हैं नभगामी महलों के कर में

रुझानें—प्रकृति-प्रेम, प्रगतिशीलता और शिल्प-चेतना—अपने परिपक्व रूप में एकाकार हो गयी हैं।

'समय देवता' अपने समकालीन विश्व के भूगोल और इतिहास का एक विराट चित्र है। सजग अलंकृति से सुसज्जित यह लम्बी कविता विश्व की प्राकृतिक संरचना का एक स्नेह-सिक्त चित्र ही नहीं, प्रकृति और वर्ग-स्वार्थों की बाधक शक्तियों के विरुद्ध जूझती हुई प्रगतिशील मनुष्यता की सशक्त वाणी भी है। भिन्न-भिन्न देशों की प्रकृति और लोक-जीवन का उदार लेकिन अनाविल मानववादी दृष्टि से किया हुआ यह भाव-भीना चित्रण हिंदी कविता में अभूतपूर्व है। इस कविता से कई उद्धरण देने का लोभ संवरण कर पाना काफी कठिन है। पहले, दूर से, घूमती हुई पृथ्वी का यह चित्र देखिये :

यूनानी मुनि प्लेटो की मुद्रा में बैठे समय सनातन
घूम रही मेरी धरती में आंख गड़ाए देख रहे क्या ?
बिछा हुआ है देव
तुम्हारी प्रलय-सृजन की आंखों का आकाश
हमारे देशान्तर जो अक्षांशों के इन लम्बे बांसों पर।

और फिर टुण्ड्रा के इस एस्कीमों की बात सुनिये :

सविता, वरुण जहां छः-छः माहों तक अतिथि बने बैठे रहते हैं
उस प्रदेश का मैं एस्कीमो
मेरी बांहों में बर्फ भरी
मैं सदा खींचता आया यह हड्डी की गाड़ी
असुर बर्फ के सीने पर।...

यौवन की भूमि सोवियत देश का यह चित्र देखिये :

यह यौवन की भूमि सोवियत
जहां मनुज की उसके श्रम की होती पूजा।
पूंजी जो साम्राज्यवाद की तोड़ बेड़ियां
हाथों में नव जीवन की उल्काएं लेकर
मनुज खड़ा है कुतुब सरीखा।...
सबसे पहले इसी भूमि पर श्रम की जयजयकार हुई थी
एक पुरुष लेनिन की वाणी शतकंठी हुंकार हुई थी

धीमे बोलो समय देवता !
उसी पुरुष की यह समाधि है
अभी अभी जो कर्म-निरत था
अब आंखें आकाश मींच कर श्रम के सपने देख रही हैं !

और देखिये युद्ध से ध्वस्त मृतप्रायः चीनी धरती का यह चित्र :

वह जो पीली भूमि दिख रही देव
वही है पीत सूर्य की पीली वसुधा
जिसका होता कहवा मीठा
श्रमण चीन का पीला चीवर अल्ताई पर बिछा हुआ है।
वे अफीम के खेत उदुम्बर रंगों में डूबे सोये हैं...
किन्तु आज तो चीन देश की वसुधा माता
झुलसी हुई मृतप्राय है
वे विदेश पूंजी की कीलें जो छाती में ठुकी हुई थीं
तीस साल के बाद आज वे उखड़ रही हैं।

और मिलाइये इसे जापान के इस चित्र से :

दूर छिपकली सा वह छोटा टापू है जापान देश का
जो कि मर चुका एटम बम से।
डूब गयीं बूटों की टापें, सिसक रहा कोढ़ी सा जीवन
विज्ञान धुएं के अजगर सा है लील रहा सब रंग रेशमी मनु-श्रद्धा का
हिरोशिमा में मनुज मर गया।...
दौड़ रही हैं गंधक और फासफोरस की पीली लपटें
जिनमें उस जापान देश का सदियों का संगीत जल गया।

और अमेरिका ?

डमरू जैसा देश दिख रहा अमरीका का
कोलम्बस के पोत लगे थे इसके तट पर, उपनिवेश औ शोषण के हित
गगन-चिचुम्बित इन महलों की मनुज नींव है
जिनमें पैसे का निवास है।
एटम औ हाइड्रोजन बम हैं नभगामी महलों के कर में

चाह रहे जो सृष्टि धरा को केवल हिरोशिमा कर देना
इसने पैसों की ईंटों से चाहा ऊंचे महल बनाना
किन्तु बन गये आज दैत्य वे, खड़े हुए हुंकार भर रहे
जिनकी अन्धकार की लम्बी परछाईं से
अतलान्तिक ओ महा पैसिफिक कांप रहे हैं।

कहां तक उद्धरण दिये जायं ? निस्संदेह सामयिक विश्व का इतने विशाल कैनवास पर इतना सुन्दर और भावपूर्ण पर साथ ही इतना अलंकृत और दृष्टि-सम्पन्न चित्रण हिन्दी की किसी और कविता में नहीं मिलता। कविता का अन्त बड़े ही आशावादी स्वरों के साथ हुआ है :

समय देवता ! आज विदा लो
किन्तु तुम्हारे रेशम के इस चमक वस्त्र में
मिट्टी का विश्वास बांध कर भेज रहा हूं
मेरी धरती पुष्पवती है
और मनुज की पेशानी के चारागाह पर
दौड़ रही हैं तूफानों की नयी हवाएं !

'समय देवता' से मिलती जुलती शैली में और उसकी तरह ही लम्बी कविता नरेश जी ने एक और लिखी है—'चीन : शान्ति के सभी योद्धाओं के नाम'। यह कविता उनके किसी संकलन में सम्मिलित नहीं की गयी है, और प्रकाशित भी अधूरे ही रूप में हुई है। चीन के इतिहास और भूगोल के संकेतों और संदर्भों के ताने-बाने से बुनी हुई यह कविता वास्तव में एक लम्बी शान्ति-कामना है। 'समय देवता' की तरह ही इसमें भी नयी उपमाओं और नये बिम्बों का—खासतौर से सांस्कृतिक बिम्बों का—सौन्दर्य है :

पीला चीवर धारण कर मक्षा के जैसा चीन सुशोभित
नये वेद के सामगान का पाठ कर रहा
बर्मा हिन्दचीन की शतशत जनता, लक्ष्मी जैसी
जीवन के देवाधिदेव के चरणों में नतमस्तक बैठी।
तीस वर्ष तक नयी सृष्टि हित मक्षा ने संघर्ष किया है
उनके नयनों में आलोक-लोक है
चमकीले पंखों के सूरज खेतों के हित
सृजन-कमण्डल में जलवाले मेघ हमारी नदियों के हित।

लेकिन इसकी शिल्प-शैली और भाव-भूमि 'समय देवता' से इतनी मिलती-जुलती है कि एक स्वतंत्र कविता के रूप में इसका महत्व काफी कम हो जाता है। चीन और भारत के बीच वर्तमान तनाव के और आज के विश्व रंगमंच पर चीन के एक युद्धवादी राष्ट्र के रूप में आगमन के संदर्भ में ही कवि ने इस शान्तिवादी कविता को अपने किसी संकलन में संकलित नहीं किया है।

वनपाखी सुनो! (५७) नरेश मेहता का पहला स्वतंत्र संकलन है। संकलन की अधिकांश कविताएं प्रकृति संबंधी हैं। कुछ में प्रकृति का सहारा लेकर रूमानी भावनाएं व्यक्त की गयी हैं। कवि की शिल्प-सजगता यहां भी मुखर है। अभी रोटियां बनेंगी, यह कहने के लिए कवि लिखता है :

आंच
माथे पर तवा रख रोटियों के फूल बेचेगी अभी।

प्रकृति-संबंधी कविताओं में 'मेघ मैं', 'पीले फूल कनेर के', 'मेघ पाहुन द्वार', और 'मालवी फाल्गुन' उल्लेखनीय हैं। मेघ नरेश मेहता की बहुत सी कविताओं का विषय है। 'मेघ मैं' में उसकी अनेकानेक मुद्राएं और भंगिमाएं चित्रित की गयी हैं। 'पीले फूल कनेर के' में लोकगीतों की शैली और शब्दावली का सुन्दर उपयोग किया गया है। 'मालवी फाल्गुन' जिसे आजकल नवगीत कहा जाता है, वैसी ही रचना है।

संकलन में तीन कविताएं प्रगतिशील भावभूमि की भी हैं : 'तीर्थजल', 'प्रार्थना' और 'वनघासें'। तीर्थजल जलधारा से बिछुड़ा हुआ, चट्टानों की कारा में बंदी, डार-छूटे हिरण सा जल है जो फिर शेष से जुड़ना चाहता है :

काटो ये काई के बन्धन
भांगो सुन्दर मेहराबों की पाथर कारा
नवजल के उत्सों की गति को छोड़
भटक आई जल धारा।

'तीर्थजल' का प्रतीक सीधे अज्ञेय के 'नदी के द्वीप' की याद दिलाता है। लेकिन इन दोनों प्रतीकों में अज्ञेय के और नरेश मेहता के जीवन-दर्शन का अन्तर है। अज्ञेय का 'नदी का द्वीप' नदी से अलग रहने को शाप नहीं, अपनी नियति मानता है, जबकि नरेश मेहता का 'तीर्थजल' शेष से जुड़ने के लिए बेताब है। 'प्रार्थना' कवि के जनवादी दृष्टिकोण को व्यक्त करती है। एक गीत वह ऐसा लिखना चाहता है जिसे जन-जन गाते रहें। लेकिन कविता की पदावली पर बंगला का इतना अधिक प्रभाव है कि उसे हिन्दी खींचतान कर ही कहा जा सकता है। वैसे कविता सुन्दर है :

जानी हमी कवि नही
जानी हमी ऋषि नही
हमी संगीतहारा, पथहारा
कोटिजन संगे पिसि गिये पूंजी-रथे
हमी एक जन विचारा
प्यास-हीन, डाक-हीन
बस प्रभु ! एक गान लिखी चाई
जन-जन जीके गाई

'वन घासें' साधारण और क्षुद्र लोग हैं, जो सब सखाहीनों की सखा हैं। वे धरती के उन नग्न जघनों को ढंकने के साधारण प्रयत्न हैं, जिन्हें बड़े लोगों ने बम गोलों से उघाड़ दिया है।

नरेश मेहता की कविता की एक बड़ी विशेषता है, एक विशेष प्रकार के सरल ग्राम्य प्राकृतिक वातावरण के निर्माण की क्षमता। इस क्षमता की बहुत कुछ जिम्मेदारी उनकी शब्दावली के कंधों पर है। पर अपरिचित नयी शब्दावली और बंगला पदावली का मोह उनमे इतना अधिक है कि हिन्दी के प्रबुद्ध पाठक के लिए भी कई बार उनकी कविताओं का आनन्द लेना कठिन हो जाता है। नये शब्दों का ही नहीं, पुराने शब्दों को एकदम नये अर्थों में प्रयुक्त करने का उनका मोह भी जगह-जगह व्यक्त हुआ है। जैसे पथभ्रष्ट के अर्थ में 'प्रव्रजावसित', सूर्य के अर्थ में 'उदयन', रात के अन्तिम प्रहर के अर्थ में 'पश्चिमेयामे' और हल-रेखा से युक्त के अर्थ में 'सीतापति'।

बोलने दो चीड़ को उनका दूसरा संकलन है। इस संकलन में भी कवि की मूल भावभूमि प्रकृति-प्रेमी और शिल्पवादी है। संकलन की तीन-चौथाई से भी अधिक कविताएं प्रकृति संबंधी हैं या उनके शिल्प में प्राकृतिक बिम्बों और प्रतीकों का प्रयोग किया गया है।

लेकिन एक बात है। शिल्पवादी रुझानों के बावजूद एक तो उनके प्रकृति-सौन्दर्यबोध और दूसरे उनकी सामाजिक चेतना ने उनके शिल्प में अधिक सुर्रीयलिस्ट ढंग की बिखराहट नही आने दी है। इस दृष्टि से शमशेर की अपेक्षा उनमें विक्षेप, बिखराहट और दुरूहता कम है। फिर भी कई कविताओं में उसे देखा जा सकता है। इस संकलन की 'हवा चली' ऐसी कविताओं का प्रतिनिधित्व करती है। पूरी कविता बिखरे हुए अपंग और एक-दूसरे के संदर्भ में असंगत बिम्बों का एक ढेर मात्र है, जिसका कहीं कोई मतलब या मकसद, कोई भाव या प्रभाव मालूम नही पड़ता।

प्रकृति-संबंधी कुछ सुन्दर कविताएं हमें इस संकलन में मिलती हैं : जैसे, 'कामना', 'माघ भूले', 'बोलने दो चीड़ को', और 'एक फाल्गुनी दिन'।

प्राकृतिक बिम्बों की उनकी कविताओं में बहुतायत है। यद्यपि इनमें से अधिकतर नयेपन और विचित्रता की भावना के अतिरिक्त और कोई राग जगाने में असफल रहते हैं, तथापि कुछ बिम्ब बहुत प्रभावशाली हैं और उनका कसाव (सांद्रता) प्रभावित करता है। सुन्दर बिम्बों के कुछ उदाहरण लिये जायं :

गोमती तट
दूर पेन्सिल-रेख सा वह बांस का झुरमुट
शरद-दोपहर के कपोलों पर उड़ी वह धूप की लट।
जल के नग्न ठण्डे बदन पर का झुका कुहरा
लहर पीना चाहता है।
सामने के शीत नभ में
आइरन ब्रिज की कमानी
बांह मस्जिद की खिंची है।

—चाहता मन

और

छांह बछड़ों सी
बंधी है गाछ से।

—संदर्भ भटकी यात्राएं

या

घाटियों के खिंचे मुख पर
घर लिखे हैं
मोड़ के उस पार से ही
गंध देते हैं।

—बोलने दो चीड़ को

और

मुझे हर एकान्त शिलालेख लगता है।

—एकान्त भविष्य लगता है

यह कसाव सिर्फ बिम्बों में ही नहीं है, नरेश मेहता की भाषा की यह एक

व्यापक विशेषता है। कम से कम शब्दों में अधिक बात कहने की कोशिश, भाषा की समाहार शक्ति उनमें लगभग हर जगह मिलती है। इस कोशिश के कारण कई जगह अस्पष्टता तक आ गयी है। कसाव के कुछ उदाहरण लिये जांय :

खड्ग यदि ध्वस्त हुआ
क्या हुआ—
साहस ?
अभी नहीं।

—किन्तु मैं लडूंगा ही

अन्तिम पंक्ति का कथ्य है : अभी ध्वस्त नहीं हुआ। लेकिन इसे सिर्फ दो ही शब्दों मे समेट दिया गया है। इसी तरह :

मैं इनमें हूं
लेकिन रेल की खिड़की से हूं
इन्हें छोड़ता हुआ—हूं !!

—विकल्प

इन पंक्तियों में इस पूरे भाव को भर दिया गया है कि यद्यपि मैं जो दृश्य देख रहा हूं, उनमें रमा हुआ हूं, तथापि उनमें नहीं हूँ, क्योकि उनमें मैं रेल की खिडकी के माध्यम से हूं, अर्थात उन दृश्यों में से होकर रेल में बैठा हुआ गुजर रहा हूं।

बोलने दो चीड़ को संकलन में कुछ कविताएं प्रगतिशील भावभूमि की भी है। 'किन्तु मैं लड़ूंगा ही', 'रक्त हस्ताक्षर', 'दूसरी सिम्फनी', 'अनुनय', 'एक फाल्गुनी दिन', 'बूढे मसूढो का जुलूस', और 'कोई इसे उत्सव कर दें' ऐसी ही कविताएं हैं।

'किन्तु मैं लड़ूंगा ही' विद्रोही और प्रतिश्रुत कवि की अदम्य आस्था और साहस की अभिव्यक्ति है। वह शस्त्र छिन जाने पर भुजाओं से, भुजाएं कट जाने पर दृष्टि से, दृष्टिहीन हो जाने पर वाणी से और वाणी छिन जाने पर भी अपनी 'ऋत्विज अशेष आस्था' से लड़ते रहना चाहता है। 'रक्त हस्ताक्षर' बीच-बीच में रूपाकारवादी रुझानों के कारण एक सुन्दर कविता बनते-बनते रह गयी है, फिर भी इसकी आस्था का स्वर प्रभावित करता है। 'दूसरी सिम्फनी' में कवि ने वर्तमान जीवन के वर्ग संघर्ष और साहित्य में शिल्पवादी (प्रयोगवाद जिसका एक रूप है) और प्रगतिवादी शिविरों के बीच के संघर्ष मे

अपनी नाजुक स्थिति की ओर संकेत किया है। वह अपने आप को अपने बन्धुओं के लिए समर्पित तो करता है, पर उसके शब्दों में उसका समर्पण वनस्पति के समर्पण की तरह एकान्त समर्पण है—मुखर पक्षग्रहण नहीं है :

मुझे
इन्हें
क्षमा करना
यदि ये तुम्हारे आग्रहों में
मात्र विदुर रहे
किसी पक्ष का मिथ्यात्व नहीं स्वीकारे।
दर्प ने नहीं
विनय ने इन्हें तटस्थ किया है।

लेकिन इस तटस्थता के बावजूद उसने असत्य को स्वीकार नहीं किया है और इसका प्रमाण है उसकी 'असम्मानित स्थिति' और लोगों की उसके प्रति 'संशयी दृष्टि'। इसी तटस्थता के कारण उसके अपने खेमे, प्रगतिशील खेमे, में उसे मान्यता नहीं मिल पायी—

तुम्हारे प्रार्थना घोषों में
उत्सव जयकारों में
समाचारों में
अमित्र ही रखे गये।

स्पष्ट रूप से पक्ष ग्रहण करने में अपनी असमर्थता की स्वीकृति के स्वर में कविता समाप्त होती है—

मुझे क्षमा करना
इन्हें क्षमा करना
ये एकान्तिक समर्पिता वनस्पतियां हैं
संभावित सिम्फनियां हैं।

'अनुनय' उस यान्त्रिक सामाजिकता का विरोध करती है, जो व्यक्तियों से उनका व्यक्तित्व ही छीन लेना चाहती है :

यहां वहां लोग ही लोग हैं
मैं कहां हूं

व्यापक विशेषता है। कम से कम शब्दों में अधिक बात कहने की कोशिश, भाषा की समाहार शक्ति उनमें लगभग हर जगह मिलती है। इस कोशिश के कारण कई जगह अस्पष्टता तक आ गयी है। कसाव के कुछ उदाहरण लिये जाय :

खड्ग यदि ध्वस्त हुआ
क्या हुआ—
साहस ?
अभी नहीं।

—किन्तु मैं लड़ूगा ही

अन्तिम पंक्ति का कथ्य है : अभी ध्वस्त नहीं हुआ। लेकिन इसे सिर्फ दो ही शब्दों में समेट दिया गया है। इसी तरह :

मैं इनमें हूं
लेकिन रेल की खिड़की से हूं
इन्हें छोड़ता हुआ—हूं !!

—विकल्प

इन पंक्तियों मे इस पूरे भाव को भर दिया गया है कि यद्यपि मैं जो दृश्य देख रहा हूं, उनमें रमा हुआ हूं, तथापि उनमें नहीं हूं, क्योंकि उनमें मैं रेल की खिडकी के माध्यम से हूं, अर्थात उन दृश्यों में से होकर रेल में बैठा हुआ गुजर रहा हूं।

बोलने दो चीड़ को संकलन मे कुछ कविताएं प्रगतिशील भावभूमि की भी हैं। 'किन्तु मैं लड़ूगा ही', 'रक्त हस्ताक्षर', 'दूसरी सिम्फनी', 'अनुनय', 'एक फाल्गुनी दिन', 'बूढ़े मसूढ़ों का जुलूस', और 'कोई इसे उत्सव कर दें' ऐसी ही कविताएं हैं।

'किन्तु मैं लड़ूगा ही' विद्रोही और प्रतिश्रुत कवि की अदम्य आस्था और साहस की अभिव्यक्ति है। वह शस्त्र छिन जाने पर भुजाओं से, भुजाएं कट जाने पर दृष्टि से, दृष्टिहीन हो जाने पर वाणी से और वाणी छिन जाने पर भी अपनी 'ऋत्विज अशेष आस्था' से लड़ते रहना चाहता है। 'रक्त हस्ताक्षर' बीच-बीच में रूपाकारवादी रुझानों के कारण एक सुन्दर कविता बनते-बनते रह गयी है, फिर भी इसकी आस्था का स्वर प्रभावित करता है। 'दूसरी सिम्फनी' में कवि ने वर्तमान जीवन के वर्ग संघर्ष और साहित्य में शिल्पवादी (प्रयोगवाद जिसका एक रूप है) और प्रगतिवादी शिविरों के बीच के संघर्ष में

अपनी नाजुक स्थिति की ओर संकेत किया है। वह अपने आप को अपने बन्धुओं के लिए समर्पित तो करता है, पर उसके शब्दों में उसका समर्पण वनस्पति के समर्पण की तरह एकान्त समर्पण है—मुखर पक्षग्रहण नहीं है :

मुझे
इन्हें
क्षमा करना
यदि ये तुम्हारे आग्रहों में
मात्र विदुर रहे
किसी पक्ष का मिथ्यात्व नहीं स्वीकारे।
दर्प ने नहीं
विनय ने इन्हें तटस्थ किया है।

लेकिन इस तटस्थता के बावजूद उसने असत्य को स्वीकार नहीं किया है और इसका प्रमाण है उसकी 'असम्मानित स्थिति' और लोगों की उसके प्रति 'सशयी दृष्टि'। इसी तटस्थता के कारण उसके अपने खेमे, प्रगतिशील खेमे, में उसे मान्यता नहीं मिल पायी—

तुम्हारे प्रार्थना घोषों में
उत्सव जयकारों में
समाचारों में
अमित्र ही रखे गये।

स्पष्ट रूप से पक्ष ग्रहण करने में अपनी असमर्थता की स्वीकृति के स्वर में कविता समाप्त होती है—

मुझे क्षमा करना
इन्हें क्षमा करना
ये एकान्तिक समर्पिता वनस्पतियां हैं
संभावित सिम्फनियां हैं।

'अनुनय' उस यान्त्रिक सामाजिकता का विरोध करती है, जो व्यक्तियों से उनका व्यक्तित्व ही छीन लेना चाहती है :

यहां वहां लोग ही लोग हैं
मैं कहां हूं

तुम्हारे पैरों के नीचे
मेरा नाम कहीं दब गया है
उठा लेने दो—
मेरे लिए मूल्य है वह।

'लोग' यानी भीड़, अविवेकपूर्ण आक्रामक सामाजिकता। और 'नाम' यानी व्यक्तित्व। जो कवि के लिए मूल्यवान है और जिसका भीड़ द्वारा कुचला जाना वह सह नहीं सकता। पर इसका मतलब यह भी नहीं है कि वह सामाजिकता को बुरा समझता है, उसे व्यक्ति के लिए शत्रु रूप में ही कल्पित करता है, नहीं, उसे 'लोगों की देहों से दुर्गंध नहीं आती'। वह अपने नाम के अतिरिक्त 'परिश्रम की गंध' को भी मूल्यवान समझता है। वह समाज-द्रोही व्यक्तिवादी नहीं है, व्यक्तित्व की रक्षा चाहने वाला समाजवादी है:

लोग होने का अर्थ
नामों को कुचलना नहीं होता

और इसीलिये वह कहता है:

आओ
हम सब अपने अपने नाम खोज निकालें
भीड़ों की असावधानियों से जो कुचल गये हैं
क्योंकि वे मूल्य हैं
अपने को जानने के लिये—कि
हम कब लोग होते हैं
और कब नहीं।

'एक फाल्गुनी दिन' में वही भावना नये और आधुनिक शिल्प में व्यक्त हुई है, जो पन्त ने इन सीधी-सादी पंक्तियों में की थी:

सुन्दर हैं विहग, सुमन सुन्दर
मानव तुम सबसे सुन्दरतम।

कवि प्रकृति के सौन्दर्य का प्यासा है, पर सिर्फ प्रकृति उसे पूरी तृप्ति नहीं दे पाती, वह प्राकृतिक सौन्दर्य को भी किसी मनुष्य के सामने समर्पित करना चाहता है। प्रकृति-सौन्दर्य का आनन्द भी हम सामाजिक संदर्भ में ही उठा सकते हैं, इसी सत्य को इस कविता में रूप दिया गया है:

एक स्तवक की तरह
टटके फूलों वाला धूप भरा दिन
हाथों में लिए चल रहा हूं
मैं इसे किसी के द्वार पर रख आना चाहता हूं
फाल्गुनी दिन, फूलों का यह स्तवक
किसी को समर्पित कर देना चाहता हूं।

'विकल्प' जीवन के एक गहरे प्रश्न 'वरण के विकल्प' के प्रश्न को छूती है। कवि रेलगाड़ी की खिडकी में से धान के खेतों को देखता है। और सोचता है कि जिस तरह अभी मैं खुले मैदानों को देख रहा हूं उसी तरह अगर उनमें खड़ा होता तो भागती हुई रेलगाड़ी को देखता होता। व्यक्ति की अलग-अलग स्थितियों से उसका परिप्रेक्ष्य कितना बदल जाता है। पर हर स्थिति से अपने को अलग भी तो नही रखा जा सकता :

पता नहीं हमें कहां होना चाहिए था
क्या खो कर क्या पाना चाहिये था
क्योंकि कहीं नहीं होकर ही हम कहीं होते हैं।

'बूढे मसूढ़ो का जुलूस' आज की आडम्बरपूर्ण सभ्यता पर व्यंग है। शिल्प-विधान वस्तु के अनुकूल है और नकली जीवन का अच्छा वातावरण तैयार करता है :

लोमड़ियों की तरह चालाक एक आकाश,
जूठे प्याले सा एक शहर,
फटे हुए विज्ञापन सी एक शाम।

'कोई इसे उत्सव कर दे' में अकेलेपन की ऊब को किसी के सम्पर्क से उत्सव बनाने की आकांक्षा व्यक्त हुई है। पर कवि की उदास पतझर की एक संध्या को न तो प्रकृति ही उत्सव कर सकती है और न धर्म ही। उसे तो कोई राग-पूर्ण मानवीय स्पर्श ही उत्सव बना सकता है, यही इस कविता की व्यंजना है।

सांस्कृतिक बिम्बों की बात ऊपर कही गयी है। नरेश मेहता के इस संकलन में भी वह विशेषता है। एक प्रकार की सांस्कृतिक पवित्रता के स्पर्श इन कविताओं में जगह जगह मिलते हैं। भिक्षु-भिक्षुणी, मोमबत्तियां, शिलालेख, उत्सव जैसे शब्दों के ही सहारे वे ऐसे स्पर्शों का सृजन करते हैं।

संशय की एक रात नरेश मेहता का एक खण्डकाव्य है। राम को यहा एक प्रश्नाकुल और विभाजित व्यक्तित्व राजकुमार के रूप में प्रस्तुत किया गया है, जो

सीता को वापस पाने के लिए किये जाने वाले युद्ध की उचितता-अनुचितता के द्वन्द्व में पड़ा हुआ है। वह सोचता है कि क्या बन्धुत्व, मानवीय एकता, धर्म आदि युद्ध के बिना सत्य नहीं हैं? क्या युद्ध के बिना शान्ति संभव नहीं है? राम की मूल कहानी इसमें ज्यों की त्यों ले ली गयी है। सिर्फ द्वितीय सर्ग मे हेमलेट के ढग पर दशरथ और जटायु की आत्माओं द्वारा राम के पथ-प्रदर्शन की योजना की गयी है। कहानी के मिथ तत्त्व तक को ज्यो का त्यों रक्खा गया है—स्वर्ण मृग और सौमित्र-रेखा ज्यों की त्यों है। हां राम के पारंपरिक दृढ़ चरित्र की जगह एक शकाकुल, करूं या न करूं के द्वंद्व में पड़ा हुआ, विभाजित व्यक्तित्व राम हमारे सामने आता है। और अन्त में बहुमत (सामन्तों के बहुमत) के सामने वह अपने विवेक को समर्पित कर देता है। विभीषण की इस बात को मान लेता है कि

उस वृद्ध ठण्डी शिला (अर्थात् इतिहास) पर
गिद्धवत बैठा हुआ
बहुमत
न्याय है, सत्य है
ऐतिहासिक नियति है
हर व्यक्ति की।

बहुमत के निर्णय और व्यक्ति के विवेक का यह द्वंद्व आज के युग की, जनतंत्र और समाजवाद की, मूलभूत समस्या है। नरेश मेहता के व्यक्तित्व की भी यह महत्वपूर्ण समस्या है। जनतन्त्र और समाजवाद का अन्तिम आधार ही बहुमत के सामने व्यक्तित्व का समर्पण है। पर क्या बहुमत का निर्णय हमेशा सत्य होता है? न्याय होता है? यही सवाल नरेश मेहता उठाना चाहते हैं, पर इस सवाल का जनतांत्रिक उत्तर हां के सिवा कुछ हो भी नहीं सकता। नरेश मेहता भी यही उत्तर देते हैं पर इसकी अधता उन्हें कचोटती भी है। और वे इसे एक निराश मे, एक नियतिबद्ध से, स्वर मे स्वीकार करते हैं:

या तो हम काम किया करते हैं
लेकिन जब काम नहीं होता है
तो संशय किया करते हैं
काम सामूहिक अंधता है
और संशय वैयक्तिक अंधता है।
मित्र!
इस अंधता से कोई भी मुक्ति नहीं।

संशय की एक रात का रूपाकार आधुनिक शिल्प-विधान से सज्जित है पर कई शब्दों की वर्तनी को बिगाड़ना और कई शब्दों के गलत प्रयोग—और वह भी हमेशा छन्द के आग्रह से नहीं—कविता के आनन्द में बाधा पहुंचाते हैं। उदाहरण के लिये चीखा करो, इतिहास, अभीयान, कृतज्ञित, अपात्री, अनासक्ती, अब होंगे न पराभव, आदि प्रयोग पाठक के भाषा-बोध को क्षुब्ध करते है।

मेरा समर्पित एकांत (६२) नरेश मेहता का अगला संकलन है। इसमें समय देवता के अतिरिक्त ६१-६२ की कई कविताए है। पिछले सकलन बोलने दो चीड़ को के संदर्भ में एक सांस्कृतिक वातावरण की बात मैंने कही थी। उसमें समष्टि के सामने व्यक्ति की समर्पण भावना भी मिलती है। इन दोनो विशेषताओं ने इस संकलन में आकर एक नयी दिशा में विकास पाया है। समर्पण भावना यहा और भी मुखर हो गयी है पर अब वह समष्टि के सामने कम किसी अज्ञात 'प्रभु' के सामने अधिक है। सांस्कृतिक वातावरण भी अब मात्र पवित्रता की सृष्टि न कर एक आध्यात्मिक और भक्तिभावपूर्ण परिवेश तैयार करने लगा है। मेरा समर्पित एकान्त की अधिकाश कविताएं रहस्यवादी-भक्तिवादी भावभूमि की हैं। उदाहरण के लिए 'प्रार्थना', 'एक कथा', 'मेरा सकल्प','ओ तप:पार', 'यह एकांत', 'वैश्वानर', 'वे नेत्र' इत्यादि कविताओं को देखा जा सकता है, भक्ति, योग और आध्यात्म की शब्दावली इस संकलन में बढती गयी है। भिक्षु-भिक्षुणियां तो खैर पहले भी थी, अब तो योगी, प्रणवघोष, कोस्तुभ, सन्यास, निर्माल्य, तप:पार आदि का प्रयोग भी धड़ल्ले से मिलने लगता है। संकलन में कई कविताएं ऐसी भी हैं, जो कविता के स्तर तक नही पहुंची है, मात्र काव्य-स्थितियां बन कर ही रह गयी है, जैसे, 'सूखी नदी का दुःख'।

संकलन की केवल दो ही कविताएं—'इतिहास के दावेदार' और 'कोई है' प्रगतिशील कही जा सकती है। पहली कविता मे साहित्य के क्षेत्र की उस राजनीति पर सुन्दर ढंग से प्रकाश डाला गया है, जो उखाड़-पछाड़ और अवसरवादी समझौतों के द्वारा साहित्य के इतिहास में अपना झंडा सुरक्षित गाड़ देना चाहती है। कविता के अन्त में कवि ने दूब को 'समझौतों के बल पर इतिहास में अपने आप को उगाने की कोशिश' और फूल को रचना का प्रतीक बना कर साहित्यिक राजनीति की बजाय रचना की महत्ता को स्थापित किया है। 'कोई है' में घर बना कर नाम-पट्टिकाएं जड़ने वालों और राजमार्ग बना कर असंग चले जाने वालों का कन्ट्रास्ट सुन्दर ढग से उभारा गया है। अन्त में—

कोई है ?
जो अपने घर का मोह छोड़ कर
इस राजमार्ग पर अंकित हो जाने को तत्पर हो

इस राजमार्ग को नाम नहीं
निष्ठा देनी है।

जैसा कि पहले संकेत किया जा चुका है नरेश मेहता प्रमुखतः एक प्रकृति-प्रेमी और रूपाकारवादी कवि है। पर उनकी कविता में अपने अहं से बाहर निकलने की चेतना सर्वत्र दिखायी पड़ती है। प्रारंभिक संकलनों की कविताओं में यह चेतना एक प्रखर सामाजिक चेतना बन कर आती है पर धीरे धीरे वह अमूर्त होती जाती है। मेरा समर्पित एकान्त तक पहुंचते पहुंचते वह आध्यात्मिक हो जाती है और रहस्यवादी से स्वरों में अभिव्यक्ति पाने लगती है। प्रकृति, सामाजिक चेतना और रहस्यभावना उनकी भावनाओं के तीन प्रमुख आयाम हैं। कहीं कहीं शिल्पवादी बिखरावों के बावजूद उनकी अधिकतर कविताएं प्रेषणीय हैं और एक ऐसी विशिष्ट शिल्पशैली में लिखी गयी हैं, जो विशिष्ट होते हुए भी कविता के शिल्प के क्षेत्र में हुई समसामयिक प्रगति की प्रतीक हैं।

भारत भूषण अग्रवाल

अपने काव्य-जीवन का प्रारंभ भारत भूषण जी ने एक रूमानी कवि के रूप मे किया, उनके पहले कविता-संकलन छवि के बंधन में उनके तरुण मन की रूमानी अनुभूतियां अभिव्यक्त हुई हैं। हां कहीं कहीं उस यथार्थवादी वृत्ति के भी दर्शन होते हैं, जिसका आगे चल कर परिपाक हुआ है। जागते रहो (४२) में वे एक प्रगतिवादी कवि के रूप मे सामने आते हैं। लेकिन जागते रहो का प्रगतिवाद कुल मिला कर कैशोर प्रगतिवाद ही है, उदाहरण के लिए संकलन की 'सुखिया उठी' कविता देखी जा सकती है। सकलन की अधिकांश कविताएं सीधा-सपाट सिद्धान्त-कथन हैं। 'अपने कवि से', 'पूंजीवाद की ऐतिहासिकता', 'वर्ग-हताश से' आदि कविताओं में यह देखा जा सकता है। द्वितीय विश्वयुद्ध और उसमें सोवियत संघ की भूमिका इस संकलन की कई कविताओं का विषय है। ऐसी कविताओं में 'हम चूर चूर कर देंगे शोषण की सत्ता' (लाल सेना का गीत) उल्लेखनीय है। कुल मिला कर जागते रहो की कविताएं साधारण स्तर की प्रगतिशील कविताएं हैं। जागते रहो के बाद मुक्ति मार्ग (४७) प्रकाशित हुआ। रवीन्द्र भ्रमर के अनुसार मुक्ति मार्ग में जहां भाषा शैली मे परिष्कार दिखाई देता है, वहां सामाजिक चेतना की प्रखरता मे कुछ कमी भी।"

ओ अप्रस्तुत मन (५८) की अधिकांश कविताएं असफल प्यार के दर्द और

२३. रवीन्द्र भ्रमर : हिन्दी के आधुनिक कवि, पृ. २४६.

राजनीतिक स्वप्न-भंग की मनस्थिति के इर्द गिर्द लिखी गयी हैं। संकलन की भूमिका में कवि ने अपनी पहले की प्रतिश्रुति और पक्षधरता का विरोध करते हुए यहां तक कह दिया है कि प्रतिश्रुत या पक्षधर कवि से अधिक दयनीय कोई दूसरा नही है। वास्तव में कवि सकीर्ण दृष्टि के प्रगतिवादी आलोचकों से, जिन्हें बाद मे कुत्सित समाजशास्त्री कहा गया, पीड़ित है, पर वह सिर्फ उनका विरोध करने की बजाय साम्यवाद और प्रगतिवाद के पूरे सिद्धान्त की ही मुखालिफत करता नजर आता है।[२४] गलत रास्ते जाने वालो का साथ देने में संकोच करना अच्छी बात है, पर इस कारण यह कहना कि "आज की सच्ची कविता केवल निषेध की ही कविता हो सकती है", एक आंशिक सत्य को परम सत्य मान लेना है। इस संकलन के कवि के मन मे प्रगतिवाद और प्रगतिशील साहित्य के प्रति उपेक्षा और आक्रोश का भाव है, पर फिर भी वह 'व्यक्तिवादी अहम्मन्यता की प्रतिष्ठा' करने वालों (प्रयोगवादियो) के साथ नही है। फिर उसका यह कथन भी लगभग सही है कि इन कविताओं मे एक साधारण मध्य-वर्गीय मन की सच्ची तस्वीरें ही नही हैं, उस मन की क्षुद्रता, स्वार्थपरता और अदूरदर्शिता पर निर्मम व्यंग भी है।

संकलन की महत्वपूर्ण कविताओं मे 'हृदय की गुहा', 'ओ अप्रस्तुत मन', 'बहुत बाकी है', 'दबा हुआ शहर', 'घृणा का डोज', 'सूखती संवेदना', 'ऊट का पक्ष', 'हम नही हैं द्वीप', 'कार्टूनों का जुलूस', 'सबसे छोटी कविता', 'देवता सावधान !', 'तुम : ओ मेरे पूर्वजो', और 'मूर्ति तो हटी' का नाम लिया जा सकता है।

इन कविताओं में निराशा, पराजय, आत्महीनता तथा एक निष्क्रिय कर देने वाली दुविधा है, पर इनमे इस दुविधा और पराजय के विरुद्ध संघर्ष का स्वर भी है, और वही इन कविताओं की सबसे बड़ी शक्ति है :

राह में लगी है आग
चलना है खेल नहीं
पर क्या सकोगे भाग
कर्म से बचोगे कहीं ?
बच्चों की भांति यों मत मचलो भीरु मन
चल दो
कि आ पहुंचा है चलने का क्षण !

२४. देखिये संकलन की 'आने वालों से एक सवाल' कविता

चल दो—
क्षुद्र इस जी की यह कमजोरी कुचल दो !
—ओ अप्रस्तुत मन

मध्यमवर्गीय व्यक्ति के मन के यथार्थ-चित्रण की दृष्टि से 'हृदय की गुहा' महत्वपूर्ण है। 'ओ अप्रस्तुत मन' और 'बहुत बाकी है' सब बातों के बावजूद कवि की स्वस्थ-मनस्कता और आस्था को व्यक्त करती हैं। 'दबा हुआ शहर' मन का ही प्रतीक है, आस्था का स्वर इसमें भी मुखर है। 'घृणा का डोज' अपने ही मन से सीधे साक्षात्कार करती है—इसकी आत्म-व्यंगपूर्ण शैली छूती है :

फरमाइये
क्या चाहिए
श्रीमान जी हे मन हमारे !
पहले कहा था आपने
हो पास में मेरे तनिक पैसा
वह मिल गया;
फिर कहा :
अवकाश भी मिलता रहे हो काम कुछ ऐसा !
वह भी मिला
अब आप कहते हैं कि पैसा हो मगर फिर भी न हो कुछ काम
सीधे कहें तो यह कि आखिर आप हैं पूरे नमक-हराम !

'चलते रहो' का व्यंग बिना सोचे-समझे नेताओं द्वारा निर्देशित पथ पर अन्धगति से चलते जाने की वृत्ति पर है। 'ऊंट का पक्ष' में कवि ने लोगों को सामाजिक चेतना देने वाले कवियों के साथ ही साथ उन कवियों को भी महत्व-पूर्ण माना है, जो अपनी सामाजिक चेतना की रक्षा करते हुए अपना जीवन बिता लेते हैं। स्पष्ट ही ऊट का पक्ष, स्वयं इस मुक्तक के कवि का भी पक्ष है :

मेघ भी कवि है कि जो बरसा सदा जलधार
तृषित धरती को दिया करता अमित उपहार
और कवि है ऊंट भी जो पेट में जल धार
तप्त रेगिस्तान को करता हमेशा पार !

'हम नहीं हैं द्वीप' अज्ञेय की 'हम नदी के द्वीप हैं' के उत्तर में लिखी हुई एक सुन्दर कविता है। वास्तव में यह असामाजिक व्यक्तिवाद को व्यक्तित्व-

सम्पन्न सामाजिकता का जवाब है। कविता में सामाजिकता की धारा से कटे हुए व्यक्तित्व के सरोवरों की 'समवाय के अभियान मे मिल एक होने की आकुलता' प्रभावक ढंग से व्यक्त की गयी है :

हम सरोवर हैं, नहीं है धार
यह नहीं है शाप अथवा नियति अपनी
किन्तु यह तो बस समय की बात,
क्षण-भंगुर परिस्थिति !
हम नदी के पुत्र हैं पाषाण-कारा में घिरे
दूर उसके क्रोड़ से, हम दूर उस स्रोतस्विनी से
तदपि उसके अंश हम वंशज उसी के
हो गये हों हम भले म्रियमाण
पर समवाय के अभियान में मिल
एक होने के लिए आकुल हमारे प्राण !

व्यक्ति की 'नदी के द्वीप' के रूप में अज्ञेय जी की अवधारणा की तुलना में उसकी 'नदी के सरोवर' के रूप में कल्पना निश्चय ही अधिक सुन्दर, वास्तविकता के अधिक नजदीक और अधिक सार्थक है।

'तुम : ओ मेरे पूर्वजो,' 'देवता सावधान' और 'मूर्ति तो हटी, परन्तु' समसामयिक साम्यवादी राजनीति से, प्रमुखतः 'अस्तालिनीकरण' की प्रक्रिया शुरू होने की स्थितियों से, सम्बद्ध कविताएं हैं। 'देवता सावधान' का देवता तो साम्यवाद है और पुजारी हैं पार्टी-नेता। देवता के लिए चढ़ाई गयी प्रतिभा और शक्ति का पुजारियों द्वारा बीच ही में उपयोग कर लिए जाने की विडम्बनापूर्ण स्थिति को इस कविता में सुन्दर अभिव्यक्ति मिली है। 'मूर्ति तो हटी' स्तालिनी व्यक्तिपूजा के विरुद्ध श्री ख्रुश्चेव के नेतृत्व में सोवियत साम्यवादी अभियान की प्रतिछाया है। 'व्यक्तिपूजा' के विकास की प्रक्रिया कविता मे सुन्दर ढंग से अंकित की गयी है :

तम में भटकती अनगिनती आंखों को
जिसने नयी दृष्टि दी
खोल दिये सम्मुख नये क्षितिज
नूतन आलोक से मंडित सारी भूमि
जन जन के मुक्तिदूत
उस देवता के प्रति
श्रद्धा से प्रेरित हो

समवेत जन ने
प्रतिमा प्रतिष्ठित की अपने सम्मुख विराट !

पर वह प्रतिमा दिन-दिन स्वमेव ही मानों बड़ी से और बड़ी होती गयी। वास्तव में पत्थर न अपने आप बढ़ता है, न घटता—

मूर्ति बड़ी होती जा रही थी
क्योंकि वे स्वयं छोटे होते जाते थे

और हुआ यह कि

मूर्ति की विराटता ने ढंक लिये वे क्षितिज
देवता ने एक एक कर जो खोले थे

यद्यपि कविता के अन्त में जनता द्वारा उस मूर्ति को तोडे जाने के बाद वास्तविकता का 'सहज प्रकाश' सहने में असमर्थ आखो के सामने 'मूद लें वे आँखें या कि प्रतिमा गढ़ें नयी' के जो विकल्प रखे गये हैं, वे दोनों ही गलत हैं; वास्तविक विकल्प है : आखो को नये प्रकाश का, मूर्तिहीनता की स्थिति का आदी बनाना; तथापि कविता मे जो सवाल उठाया गया है, वह गंभीर और गहरा है। कविता के मूल प्रगतिशील स्वर से इनकार नही किया जा सकता।

डॉ. विश्वभरनाथ उपाध्याय ने लिखा है कि भारत भूषण अग्रवाल के मन में निश्चय-अनिश्चय, आशा-दुराशा, उत्साह-अनुत्साह का एक द्वन्द्व दिखाई पडता है। लेकिन यह भी साफ प्रतीत होता है कि कवि अपने आप से लड़ कर मुक्ति पाने की तलाश में है, वह उस आन्तरिक सघर्ष को लक्ष्य नही, एक विवशता मानता है।"[२५] यह अन्तर्द्वन्द्व एक तरफ तो उनके सामाजिकतावादी विचारो और मध्यमवर्गीय सस्कारों के बीच के सघर्ष के रूप मे उभरता है और दूसरी तरफ संकीर्ण और फार्मूलेबाज प्रगतिवादियों के विरुद्ध उनके जटिल सामाजिकता-बोध के सघर्ष के रूप में। 'ओ अप्रस्तुत मन' इस दुतरफा संघर्ष का दर्पण है।

कागज के फूल भारत भूषण अग्रवाल के तुक्तको का संकलन है। पर हल्की-फुल्की चुहलबाजी के सिवा इसमें कुछ भी नही है। गंभीर व्यंग की बात तो छोड़िये, हास्य की दृष्टि से भी अधिकतर तुक्तक सफल नहीं कहे जा सकते। रवीन्द्र भ्रमर का उनके बारे में यह कथन बिल्कुल सही है कि "उनके व्यग प्रायः ऊपर-ऊपर से तैरते हुए निकल जाते हैं, अधिकतर उनका प्रयोजन स्पष्ट नही हो पाता।"[२६] इस संकलन का एक ही तुक्तक ऐसा है जो उल्लेखनीय है। गोमाता के चौपायेपन पर इस तुक्तक मे अच्छा परिहास-मिश्रित व्यग है :

---

२५. आधुनिक हिन्दी कविता : सिद्धान्त और समीक्षा, पृ. ५४८.
२६. रवीन्द्र भ्रमर : हिन्दी के आधुनिक कवि, पृ. २४८.

गाय बोली बैल से क्यों छेड़ते हो भाई
जानते हो ? कहते हैं सब मुझे माई
बैल बोला धत्त रे
मारूंगा दुलत्त रे
मैं भी हूं चौपाया और तू भी है चौपाई ।

एक उठा हुआ हाथ (१९७०) उनका नवीनतम संकलन है। इस संकलन की भी भूमिका में यद्यपि कवि ने भारतीय मार्क्सवादियों की सब समस्याओं के हल आनन-फानन में खोज लेने की वृत्ति पर व्यंग किया है और उनके सामने ऐसे दो-एक सवाल उठाये हैं जो गम्भीर समाज वैज्ञानिक विश्लेषण की अपेक्षा रखते हैं, तथापि संकलन में कवि प्रगतिवाद-ग्रंथि से बहुत कुछ मुक्त और स्वस्थ-मनस्क है।

घटनात्मक जगत से अपना आपेक्षिक कटाव उसे व्यथित करता है और वह उस जगत से जुड़ना, उसमें उतरना चाहता है :

नहीं ऐसे काम नहीं चलेगा—
जिन्दगी को अखबार बना कर पढ़ते रहना ।
कोई न कोई तो बता ही देगा वह रास्ता
जिस पर घटनाएं मिलती हैं ।

—अगति, **एक उठा हुआ हाथ**

यह तो अपने देश के जीवन के साथ जुड़ने की साधारण सुगबुगाहट है, पर भारत भूषण इस तमाशा-देखू स्तर तक ही उसमें रुचिशील नहीं हैं, उनकी सम्पृक्ति कहीं गहरी है।

प्रगतिशील दृष्टि से संकलन की महत्वपूर्ण कविताओं में 'एक उठा हुआ हाथ', 'परिदृश्य : १९६७' और 'हर बार यही होता है' प्रमुख हैं।

'एक उठा हुआ हाथ' तार सप्तक के अपने सहयोगी और सच्चे विद्रोही कवि 'मुक्तिबोध' को अर्पित की गयी भारत भूषण जी की एक श्रद्धांजलि है—

नाव तो हममें से किसी के पास नहीं थी
और सभी पार जाना चाहते थे
तैर कर ।...
कुछ की आंखें पीछे के स्फटिक पुलिन पर टिकी थीं
जहां चन्दन-नौकाएं हाथियों सी झूम रही थीं
और कुछ चाहते थे कि पहले संवाददाता और फोटोग्राफर आ लें

पीछे के स्फटिक-पुलिन यानी छायावादी भावबोध। उस पर नजरें टिकाने वाले निश्चय ही तार-सप्तक के कवियों में अज्ञेय हैं, जिन्हें इधर कुछ समीक्षकों ने 'नव छायावादी' कहना शुरू भी कर दिया है। वे चन्दन नौकाएं ही हैं, जिनमें न जाने 'कितनी बार' वे इधर से उधर गये हैं। पर संवाददाताओं और फोटो ग्राफरों की प्रतीक्षा करने वाले कौन हैं ? क्या प्रभाकर माचवे ?

तभी पानी में लीक बनी
और हमने विस्मय से देखा
तुम मंझधार में पहुंच गये हो
जहां लहरें फुंकार रही थीं
और भंवर मुंह फाड़ रहे थे।

मुक्तिबोध के 'काव्यात्मन् फणिधर' ने अपनी चरम अभिव्यक्ति की खोज में जिस तरह के खतरे उठाये, उसकी ओर सार्थक संकेत इस कविता मे किया गया है।

'परिदृश्य : १९६७' एक लम्बी यथार्थवादी कविता है, जिसमें अपने समय के यथार्थ को एक कालखंड की काट में विभिन्न कोणों से प्रभावक रूप में उभारा गया है :

क्या जरूरत है सब कुछ समझने की
समझना ही क्या सब कुछ है ?
कौन नहीं समझता है भूख
या सड़क
या त्रिभाषा-सूत्र ?
क्या फर्क है वेद पाठी और आर्मी कण्ट्रेक्टर में ?
दोनों की बेटियां 'ए' फिल्म देखती थीं
और दोनों भाग गयी हैं।
समझ का छाता तानने से क्या होता है
जब बरसात आसमान से नहीं
योजना-भवन से हो रही है !
जब घर आकर मेम सा'ब देखती हैं
महरी एफ. एल. धो रही है !

सामाजिक यथार्थ का एक चुभता हुआ विस्तृत चित्र इस कविता में सधे हुए

ढंग से प्रस्तुत किया गया है। आजकल तथाकथित यथार्थवादी लम्बी कविताओं में एक दूसरे से असंबद्ध और कभी कभी असंगत चित्रों, फिकरों और विचारों का जो जमघट खड़ा किया जाता है, वह यहा नहीं खड़ा किया गया है, बल्कि उन्हें एक संगत, सार्थक जमावट दी गयी है :

दो सौ रुपल्ली माहवार पर
बारह जनों का परिवार कैसे चलता है
समझ कर क्या करोगे ?
क्या करोगे समझ कर कि रात को दो बजे
मुहल्ले में किस की कार आती है !
उस समझ में क्या धरा है
जो रह रह कर छक्के छुड़ाती है ?

और विदेशी सहायता की विडम्बना को कितने सार्थक पौराणिक रूपक के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है :

बियाबान दोपहरी में
प्यास के मारे मां का बुरा हाल हो गया है
और युधिष्ठिर हैरान हैं :
जो भी भाई पानी लेने जाता है
वहीं क्यों अटक जाता है ?
'फारेन एड' से यक्ष का क्या नाता है ?

आजादी के इन बीस वर्षों में शब्दों का कितना अपव्यय हुआ है :

जनतंत्र की टंकी फट गयी है
और शब्दों का भयंकर रेला
अर्राता हुआ सबको निगलने आ रहा है
किताबों के फुहारे
अखबारों की बौछार
भाषणों के परनाले
बहसों की नदिया
सेमीनारों की नहरें
और विधान-सभाओं के पोखर—
सब उफन रहे हैं।

और लोग कानों तक डूब गये हैं
शब्दों के इस सैलाब में।

कविता में बीस साल के हमारे तरुण जनतंत्र के बड़े सटीक चित्र उभारे गये हैं : "खेतों से उठा कर किसान को हल बैल समेत विज्ञान-भवन की दीवार पर लटका दिया गया है। संसद-भवन में शहद का एक छत्ता लगा हुआ है, जिसकी मक्खियां फूलों से नही घावों से मधु चूसती है। और रानी मक्खी कुछ नही करती, बस मिंक कोट पहनती है। एक जंग-खायी कील निरन्तर चुभती रहती है, जिसका नाम है अन्तःकरण। राजनीतिक पार्टियां कनाट प्लेस के एक एक खंभे को बजा कर देखती हैं—नरसिंह किसमें से प्रकट होंगे! और प्रह्लाद स्वेतलाना का जाप कर रहा है।" उन्नीस सौ सतसठ के सामाजिक-राजनीतिक यथार्थ को वास्तव मे एक गहरे दर्द-भरे लेकिन फिर भी एक हल्के उपहासात्मक लहजे में सशक्त अभिव्यक्ति दी गयी है। राजनीतिक पार्टियों द्वारा कनाट प्लेस के एक एक खंभे को बजा कर देखना बहुत ही सटीक है।

'हर बार यही होता है' भी आज के भारतीय जीवन की असंगतियों और विडम्बनाओं को उभारती है : 'हर बार यही होता है। हर बार उम्मीदें बांधी *जाती हैं और वायदे किये जाते हैं। हर बार लगता है कि अब। हां, अब आ* गया वह ऐतिहासिक क्षण जो एक पुल बन जायगा और जिस पर सब लोग बिना अनुवाद के चल सकेंगे। पर फिर आखिर में हर बार यही होता है कि सारी उम्मीदें और सारे इरादे लाटरी के टिकिट बन जाते हैं।'

'इरादों का लाटरी के टिकिट बन जाना' और *'अन्तःकरण का एक जंगखाई हुई कील की तरह चुभना'* रूपकों की भाषा भारत भूषण अग्रवाल के लिए सहज भाषा हो गयी है।

अहमदाबाद और बम्बई मे शिवसेना जैसी फासिस्ट-साम्प्रदायिक शक्तियों द्वारा *अल्प संख्यकों के हत्याकांडो की ओर कितना सार्थक संकेत इन पंक्तियों में* किया गया है : "कितनी झूठ थी वह कहावत जो मैंने बचपन मे सुनी थी कि एक हाथ से ताली नही बजती। अहमदाबाद और बम्बई में एक एक हाथ की गड़गड़ाहट से कनाट प्लेस के होटलों में डांस करती मिस बी. यानी भविष्य कुमारी बेहोश हो गयी है।"

शब्दों की अर्थ छायाओं का बड़ा सजग और सार्थक प्रयोग भारतभूषण अग्रवाल की इन कविताओं मे कई जगह मिलता है। जैसे 'धर्म' और 'हल' का—

१. कितना आसान है *धर्म मार्ग पर चलना। अगर आप का घर चाणक्यपुरी में हो।*

२. कल रात नये साल के पत्र में जब समाजवाद नारों की पोटली बगल में दवाये हवाई जहाज से पालम पर उतरा तो मुझसे बोला : यह हल यहां क्यों पड़ा है, दोनों बैल कहां गये ? मैंने हंस कर उत्तर दिया : 'आपको भ्रम हुआ है। हल कोई भी कहां है हमारे यहां ? हां, एक ड्राफ्ट जरूर है, पर वह अभी फाइनेलाइज नही हो पाया है, क्योंकि सारे इंजीनियर जन्तर-मन्तर की ईंटें गिन रहे हैं।

भारत भूषण अग्रवाल का व्यंगकार उनके तुक्तकों में नहीं, इस संकलन में सार्थकतापूर्वक बोला है। आज के जटिल सामाजिक यथार्थ का आज की भाषा में अंकन इस कवि की प्रमुख उपलब्धि है, पर उसका यह अंकन न तो सतही है और न जड़ सूत्रात्मक ही; वह उस यथार्थ का 'आन्तरिकीकरण' करता चलता है, जो ऊंचे दर्जे की कविता के लिए बहुत जरूरी है। इस प्रक्रिया में वह अनायास ही मुक्तिबोध के नजदीक आ जाता है, वही अन्तर्द्वन्द्व की, स्वप्न कथा की, फेंटेसी की शैली और वैसा ही बेवाक आत्म-संघर्ष। इस 'चीर फाड़' में वह अपने कविकर्म तक को नही बख्शता :

फिर रूपक ?
मुझको यह क्या हो गया है
रूपक के बिना क्या मैं सोच भी नहीं पाऊंगा ?
लगता है रूपकों की नगरी में कैद
मैं खुद भी एक रूपक बन गया हूं।
क्या मुझे इससे कभी निजात मिलेगी ?
क्या मैं इन अनगिनत पर्तों को छीलकर
कभी अपना सच्चा मन नहीं देख पाऊंगा ?
बहुरुपिया बने रहना ही क्या मेरी नियति है ?
कब तक मैं प्यार को फूल, रोटी को खुशामद
और क्रान्ति को रेस्त्रां बनाता रहूंगा ?
कब तक मैं सुविधा की छत पर चढ़ा
कविता के बांस से
जिन्दगी की कटी पतंग फांसने का यत्न करता रहूंगा ?

दुष्यन्त कुमार

दुष्यन्त कुमार कदाचित प्रयोगशील रुझान के प्रगतिशील कवियों में सर्वाधिक सहज और बोधगम्य कवि हैं। इस दृष्टि से सिर्फ भवानी प्रसाद मिश्र

से ही उनकी तुलना की जा सकती है। पर भवानी में जहां सिर्फ एक ऐसी स्वस्थ सामाजिकता है, जिसे सहज प्रगतिशीलता कहा जा सकता है, वहां दुष्यन्त की कविताओं मे एक सजग और संघर्षशील प्रगतिशीलता का स्वर सर्वत्र सुनाई पड़ता है। प्रयोगशील रुझान के कवियों में से वे शायद सबसे कम शिल्पवादी भी हैं। शमशेर आदि के साथ तो खैर उनकी तुलना ही व्यर्थ है, पर गिरिजा-कुमार माथुर में भी उनकी अपेक्षा अधिक शिल्पवादी रुझानें मिलती हैं। शायद इसीलिए केदारनाथ सिंह ने उन्हें हिन्दी के नये कवियों मे सबसे कम व्याख्या-सापेक्ष कहा है।"

सूर्य का स्वागत (२७) उनका पहला संकलन है। जीवन के विभिन्न पक्षों, परिस्थितियों और मनस्थितियों के ईमानदार चित्रण के बावजूद एक दृढ़ आस्था का स्वस्थ स्वर इस सकलन की कविताओं की मूलभूत विशेषता है। संकलन की महत्वपूर्ण कविताओं में 'कुठा', 'शब्दों की पुकार', 'दिग्विजय का अश्व', 'दिन निकलने से पहले', 'गीत तेरा', 'प्रेरणा के नाम', 'अनुभवदान', 'तीन दोस्त' और 'सूर्य का स्वागत' के नाम लिये जा सकते है। इन कविताओं में कोई सूत्रात्मक आशावाद नही मिलता। जीवन को उसकी समग्रता और जटिलता के साथ स्वीकार किया गया है, इसलिए कहीं कही पराजय और निराशा के स्वर भी सुनाई पड़ते हैं, पर यह पराजय और निराशा भी स्वय कवि के ही शब्दों में 'और भी बड़े पैमाने पर उसके हृदय मे उबलते हुए असंतोष' का ही प्रमाण है।

'कुंठा' एक सुन्दर कविता है जिसमें पौराणिक गाथा का प्रतीकात्मक प्रयोग किया गया है :

मेरी कुंठा
रेशम के कीड़ों सी
ताने बाने बुनती
क्वांरी कुन्ती

'कर्ण' कुंठा का सृजन है—संभवतः कुंठित व्यक्तित्व का प्रतीक, जो जब जब महा-भारत—वर्ग संघर्ष—छिड़ता है, कौरव दल की ओर—शत्रुओं की ओर—हो जाता है। कवि अपनी कुठा के इस कर्ण को 'स्वर-निर्झर' में बहा देना चाहता है :

ओ स्वर निर्झर बहो कि तुम में
गर्भवती अपनी कुंठा का कर्ण बहा लूं

२७. देखिए 'कवि' (सं विष्णु चन्द्र शर्मा), सितम्बर ५७, पृ. १३१.

मुझको इसका मोह नहीं है
इसे विदा दूं!

'शब्दों की पुकार' के 'शब्द', 'नदी के द्वीप' की तरह व्यक्ति हैं, 'कविता' उनकी समष्टि है। 'शब्द' 'कविता' से अनुनय करते है कि वह उन्हें किसी छन्द में बांध कर कवच पहना दे, सार्थकता दे :

ओ कविता मां
लो हमको अब
किसी गीत में गूंथो
नश्वरता के तट से पार उतारो
और उबारो
एक रूप श्रृंखला बद्ध कर
अकर्मण्यता के दल दल से।

समष्टि के सामने व्यष्टि के समर्पण की यह कविता अज्ञेय की 'यह दीप अकेला' कविता की याद दिलाती है, तथापि इन दोनों के स्वर में बहुत अन्तर है। 'यह दीप अकेला' जितना 'गर्व भरा मदमाता' और अपने अहं के प्रति जितना 'चिर जागरूक' है उतने ही विनम्र और समर्पणशील हैं 'शब्दों की पुकार' के 'शब्द'।

'दिग्विजय का अश्व' पौराणिक संदर्भ के सहारे दलित-दमित जन की जागृति और शक्ति को वाणी देती है। 'दिन निकलने से पहले' सूर्योदय से पहले के वातावरण को, प्रस्तुत और अप्रस्तुत दोनों अर्थों में चित्रित करते हुए, नये सूर्योदय—क्रान्ति—से पहले के धुएं, घुटन और कराहों को उस सूर्योदय की पृष्ठभूमि बना कर प्रस्तुत करती है। 'गीत तेरा' और 'प्रेरणा के नाम' गीत और प्यार की शक्ति को वाणी देती है। 'अनुभव-दान' पराजयवादी-निराशावादी प्रवृत्तियों का विरोध करती है और कुंठित लोगों का अपने से बाहर निकल कर संसार को देखने के लिए आह्वान करती है। 'तीन दोस्त' शोषण और अन्याय के अंधेरे से लड़ते चलने वाले तीन दोस्तों के बारे में लिखी गयी है।

'सूर्य का स्वागत' कवि की अपनी पराजय और निराशा के बावजूद भावी पीढ़ी की संघर्ष क्षमता में आस्था व्यक्त करती है। सूर्य के साथ कवि का बात

चीत करने का लहजा मायकोव्स्की की एक ऐसी ही कविता की याद दिलाता है।[२८]

खुली खिड़की देख कर तुम तो चले आये
पर मैं अंधेरे का आदी
अकर्मण्य निराश
तुम्हारे आने का खो चुका था विश्वास।
पर तुम आए हो, स्वागत है
स्वागत! घर की इन काली दीवारों पर
और कहां?
हां मेरे बच्चे ने
खेल खेल में यहां काई खुरच दी थी
आओ—यहां बैठो
और मुझे मेरे अभद्र सत्कार के लिए क्षमा करो
देखो! मेरा बच्चा
तुम्हारा स्वागत करना सीख रहा है।

लेकिन 'सूर्य का स्वागत' में कुछ ऐसी कविताएं भी हैं जिनमें कवि पर अस्वस्थ कुंठावाद और एक हल्के, अगंभीर से दृष्टिकोण का प्रभाव दिखाई देता है। जिस मनस्थिति में उसे कोई मिल मालिक नहीं 'बिजली का सुन्दर और भड़कदार लट्टू' भी अपने फटे बिस्तर, टूटी चारपाई, कुम्हलाए बच्चों और अधनंगी बीवी पर व्यंग करता हुआ दिखाई देता है, उसे स्वस्थ नहीं कहा जा सकता। इसी तरह 'इनसे मिलिये' का आरम परिहासपूर्ण स्वर भी लक्ष्मीकान्त वर्मा के ही आत्मपरिचय[२९] की परंपरा की अगली कड़ी है। इस कविता में सिर्फ

---

२८. देखिए मायकोव्स्की : सलेक्टेड पोइट्री (मास्को) मे 'अॅन अमेजिंग अॅडवेंचर ऑफ व्लादीमीर मायकोव्स्की' कविता

२९. *लक्ष्मीकान्त*
बाल बिखरे
गाल पिचके
निस्प्रभ...क्लान्त
आदि से अन्त तक
केवल अतुकान्त।

अपना मजाक उड़ाने की प्रवृत्ति ही नहीं है, यह लेखक के सौन्दर्य बोध के स्तर पर भी निर्णय देती है। असल में लक्ष्मीकान्त वर्मा और दुष्यन्त कुमार दोनों की ये कविताएं टी. एस ईलियट की एक ऐसी ही कविता के अनुकरण पर लिखी गयी हैं।"[30]

आवाजों के घेरे (६३) दुष्यन्त कुमार का दूसरा संकलन है। इस संकलन में कवि सामाजिक प्रगति की शक्तियों के प्रति और भी दृढ़तापूर्वक प्रतिश्रुत मालूम पड़ता है। यहां उसका प्रगतिशील स्वर और भी अधिक मुखर है।

संकलन की उल्लेखनीय कविताओं में 'कौन सा पथ', 'आवाजों के घेरे', 'ओ मेरे प्यार के अजेय बोध', 'अच्छा बुरा', 'गीत का जन्म', 'एक आशीर्वाद', 'राह खोजेंगे', 'असमर्थता', 'प्रश्न दृष्टियां', और 'अभी तो' प्रमुख हैं। 'कौन सा पथ' में प्यार के प्रति प्रगतिशील दृष्टि की—प्यार की प्रेरणा शक्ति की—सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।

तुम्हारा चुम्बन
जभी तो जल रहा है भाल पर
दीपक सरीखा
मुझे बतलाओ
कौन सी दिशि में अंधेरा अधिक गहरा है!

'आवाजों के घेरे' में कवि अपने परिवेश के दुःख दर्दों से आक्रान्त है :

आवाजें
स्थूल रूप धर कर जो
गलियों, सड़कों में मंडराती हैं
मोटरों के आगे बिछ जाती हैं
दूकानों को देखती, ललचाती हैं
प्रश्न-चिन्ह बन कर अनायास आगे आ जाती हैं
आवाजें!

इन आवाजों के साये उसको सोते जागते सताते हैं, ये आवाजें उसकी कविता के अनजन्मे शब्दों और भावों में रम जाती हैं, और उसके पौरुष के चप्पे-चप्पे को घायल कर जाती हैं। इन्हीं आवाजों के कारण उसे लगता है कि उसकी वाणी में लपटें उतरने लगेंगी और उसके छन्दों में विद्रोही नक्शे दिखाई देने

---

३०. देखिए मोहन अवस्थी की टिप्पणी, 'गंधदीप-६३', पृ. २७८.

लगेंगे। इसलिए वह इन आवाजों को बदलने के लिए अपने मित्रों का आह्वान करता है।

'गीत का जन्म' एक सुन्दर कल्पना की कविता है। गीत के जन्म की वेदना-पूर्ण परिस्थिति की तुलना कवि उन लोगों की परिस्थितियों के साथ करता है, जो नया जीवन लाने के लिए संघर्षरत है। और वह कल्पना करता है कि क्या मालूम वे सब लोग किसी बृहद् और विशाल गीत के ही ऐसे बोल हों, जिन्हें कल जन्म लेकर पूरी धरती पर फैलना है।

'एक आशीर्वाद' आशीर्वाद की शैली में लिखा हुआ एक नया ही आशीर्वचन है:

जा, तेरे स्वप्न बड़े हों!
भावना की गोद से उतर कर
जल्द पृथ्वी पर चलना सीखें
चांद-तारों सी अप्राप्य सचाइयों के लिये
रूठना-मचलना सीखें
हंसे,
मुस्कराए
गाएं
हर दिये की रोशनी देखकर ललचाएं
उंगली जलाएं
अपने पांवों पर खड़े हों।
जा, तेरे स्वप्न बड़े हों!

ऊपर इस बात की ओर संकेत किया गया है कि दुष्यन्त कुमार ने केवल आशा और उल्लास की ही कविताएं नहीं लिखी हैं, जीवन की समग्रता और जटिलता को उन्होंने अपनी कविताओं में अभिव्यक्ति दी है। उनमें आशा और उल्लास है तो कहीं कहीं निराशा और पराजय भी। पर यह निराशा और पराजय उन नये कवियों के 'पराजयवाद' से अलग है, जिन्हें अपने परिवेश में कहीं कोई रोशनी की किरण नजर ही नहीं आती। यह निराशा और पराजय 'बन्द अन्धेरी गलियों' की संभावना हीन पराजय नहीं है। इसका एक सुन्दर उदाहरण उनकी 'असमर्थता' कविता है:

बढ़ती आती रात
चील सी पर फैलाए

और सिमटते जाते
विश्वासों के साये
तम का अपने सूरज पर विस्तार
और मैं देख रहा हूं !

लेकिन इस स्थिति को कवि ज्यों का त्यों स्वीकार नहीं कर लेता। अगली पंक्तियों की 'धिक्कार' इस बात का प्रमाण है :

धिक् मेरा कापुरुषत्व
कि जिसने टेका माथा
धिक् मेरा पुंसत्व
कि जिसकी कायर गाथा
ये अपने से ही अपने की हार
और मैं देख रहा हूं !

'राह खोजेंगे' में घोर निराशा और पराजय की स्थिति में भी एक आस्था का, एक प्रयत्न का आलोक है। कविता में एक खास तरह की मानवीय ऊष्मा हृदय को छूती है :

ये कराहें बन्द कर दो
बालकों को चुप कराओ
सब अंधेरे में सिमट आओ यहां नतशीश
हम यहां से राह खोजेंगे !
आह !
वातावरण में बेहद घुटन है
सब अंधेरे में सिमट आओ
और सट जाओ
और जितने आ सको उतने निकट आओ
हम यहां से राह खोजेंगे !

दुःखद और पराजित अवस्था में और भी निकट आकर एक दूसरे से सटने का आह्वान करने वाली यह ऊष्मा दुष्यन्त कुमार की कविताओं की एक बहुत बड़ी विशेषता है। घोर अंधेरी और निराशा पूर्ण परिस्थितियों में भी उभर उभर

आने वाली स्वस्थ विद्रोह-चेतना की इसी ऊष्मा के कारण उनकी कई कविताओं मे साधारण सी स्थिति और साधारण सा कथन भी असाधारण हो उठता है :

—रात के घने काले समय में
मेरी हथेली पर
तुमने बनाया है जो सूरज
—मेंहदी से
कहीं सुबह तक रचेगा
लाल होगा !
—यों उतावले मत हो
रचेगा जरूर
सूरज है
तुमने बनाया है !
—लेकिन प्रिय
अभी तो अंधेरा है
नमी है हथेली में
सुबह की प्रतीक्षा है

ऊपर सहजता की बात कही गयी है। यह सहजता कहीं कही भवानी प्रसाद मिश्र के मुहावरों की ऊंचाई को छूने लगती है। इस सकलन की 'अच्छा बुरा' कविता इसका उदाहरण है :

यह कि चुपचाप पिए जाएं
प्यास पर प्यास, जिए जाएं
काम हर एक किये जाएं
और फिर छिपाएं
यह जख्म जो हरा है
यह परम्परा है !
किन्तु इनकार अगर कर दें
दर्द को, बेबसी को स्वर दें
हाथ से रिक्त शून्य भर दें
खोलकर धर दें

यह जख्म जो हरा है
तो बहुत बुरा है!

कविताओं के इन दो संग्रहों के अतिरिक्त दुष्यन्त कुमार ने एक काव्य-नाटक भी लिखा है—एक कंठ विषपायी (६३)। धर्मवीर भारती के अन्धायुग की रचना से हिन्दी की समसामयिक कविता में पौराणिक कहानियों को आधुनिक अर्थ देकर काव्यनाटक या खंड काव्य लिखे जाने की एक प्रबल प्रवृत्ति चल पड़ी है। आधुनिक अर्थों को ग्रहण कर सकने वाली पौराणिक कथाओं की खोज जोरों से होने लगी। एक कंठ विषपायी में महादेव शंकर से संबंधित एक कहानी को आधार बनाया गया है। नाटक की कहानी संक्षेप में यह है कि प्रजापति दक्ष अपने यज्ञ में अपनी बेटी सती और अपने जामाता शंकर को आमंत्रित नहीं करते। क्योंकि सती का शंकर के साथ विवाह उनकी इच्छा के अनुसार नहीं हुआ था। लेकिन अनामंत्रित सती यज्ञमंडप में आ गयी और मर्यादा तोड़ कर अतिथि और आतिथेय सबको अपशब्द कहने लगी। यह समाचार सुन क्रुद्ध होकर प्रजापति दक्ष ज्योंही यज्ञमंडप में आये, त्योंही सती ने अपने आपको, अपनी ही आन्तरिक शक्ति द्वारा भस्म कर लिया। शंकर के गणों ने क्रुद्ध होकर यज्ञमंडप पर धावा बोल दिया और बड़ा उत्पात मचाया। इसी उत्पात से दक्ष का एक भृत्य सर्वहत विक्षिप्त हो गया। सर्वहत को दुष्यन्त कुमार ने आधुनिक शोषित और बुभुक्षित प्रजा का प्रतीक बनाया है और उसके मुह से बहुत सी खरी-खरी बातें कहलवाई हैं। सती की मृत्यु का समाचार जब शंकर के पास पहुंचा तो वे शोक और क्रोध से उन्मत्त हो उठे। उन्होंने सती का शव अपने कंधे पर उठा लिया और सन्तुलन खोकर अपने गणों सहित देवलोक पर आक्रमण कर दिया। देवराज इन्द्र युद्ध के लिए प्रस्तुत हुए और ब्रह्मा से युद्ध की अनुमति मांगने लगे। पर ब्रह्मा युद्ध से बचना चाहते थे। यहां युद्ध की समस्या पर भी थोड़ा विचार आधुनिक संदर्भों में किया गया है। अपने देश पर आक्रमण की बात जान कर देवलोक के नागरिक भी युद्धोन्माद में आ जाते हैं और 'ब्रह्मा कुर्सी छोड़ो' जैसे नारे लगाने लगते हैं। देवलोक पर प्रजातंत्र की यह थेगली प्रसंग को थोड़ा हास्यास्पद बना देती है। खैर, आखिर विष्णु हस्तक्षेप करते है, एक वाण चला कर वे शिव के कन्धे पर रखे हुए दुर्गंधपूर्ण शव को खंड-खंड कर बिखेर देते हैं और शिव का मोह टूट जाता है तथा उनकी सेनाएं लौट जाती हैं।

पुस्तक के 'आभार-कथन' से स्पष्ट है कि दुष्यन्त कुमार ने इस कथानक को यही सोच कर अपनाया है कि इसमें जर्जर रूढ़ियों और परम्परा के शव से चिपटे हुए लोगों के संदर्भ में प्रतीकात्मक रूप से आधुनिक पृष्ठभूमि और

नये मूल्यों को संकेतित करने का सामर्थ्य है। शव-लादे-हुए शंकर के मोह-भंग की कथा वास्तव में प्रतीकात्मक प्रयोग के उपयुक्त है, पर उसमें या तो इतने बड़े नाटक को वहन करने की शक्ति नहीं है, या ऐसी शक्ति दुष्यन्त कुमार उसे दे नहीं पाये है। इस मूल कथ्य के अतिरिक्त, जो काव्य नाटक के दो ही तीन पृष्ठों में आ गया है, शेष नाटक जबरदस्ती गढ़ा हुआ लगता है। यही कारण है कि नाटक पढ़ते हुए बार बार लगता है कि यह सब अगर मात्र एक साधारण आकार की सगुंफित कविता में कह दिया जाता तो कितना अच्छा होता। हां, सर्वहन के संवाद, अवश्य, बीच बीच में प्रभावशाली हैं। कुल मिला कर मृत परम्पराओं के खिलाफ 'नये' की स्थापना ही इस काव्य-नाटक का कथ्य है। और उसे वरुण और कुबेर का यह संवाद अच्छे ढंग से व्यक्त कर देता है :

वरुण :

किन्तु बताओ तो कुबेर
क्या मोह, ज्ञान को
इतना अन्धा कर देता है
जो कि मृत्यु को भी हम
सत्य नहीं कहते है
परिवर्तन पर रोते हैं
विक्षुब्ध हृदय में
सुन्दर और सनातन कह कर
शव से ही चिपके रहते है

कुबेर :

शायद ऐसा ही होता है
इसीलिए संभवतः जग में
जब परंपरा का खंडन कर
कोई नया मूल्य उठता है—
लोग उसे मिथ्या कहते हैं
और जहां तक जब तक संभव हो पाता है
मृत परंपरा के शव से चिपके रहते हैं।

इस प्रकार दुष्यन्त कुमार प्रयोगशील रुझान के प्रगतिशील कवियों मे

अपनी सहजता, स्पष्टता, एक सजग संघर्षी स्वर, और शिल्पवादी भटकावों से मुक्ति के कारण अपना एक विशिष्ट स्थान रखते हैं। यद्यपि उन्होंने जीवन को उसकी समग्रता में अपनी कविताओं में रूपायित किया है, तथापि उनकी कविताओं का मूलस्वर आस्थापूर्ण है। पर यह आस्था यांत्रिक या सूत्रात्मक आस्था नहीं है। रामस्वरूप चतुर्वेदी के इस कथन में काफी पानी है कि 'दुष्यन्त कुमार में आस्था सहज है, आस्था तथा भविष्य का वाद नहीं है।' दुष्यन्त कुमार की अधिकांश कविताएं कविताएं हैं। यह बात इस संदर्भ में महत्वपूर्ण हो जाती है कि उनकी पीढ़ी के अनेक कवियों ने कविताएं कम और 'अकविताएं' या मात्र 'काव्यात्मक स्थितियां' ज्यादा लिखी हैं।

रामदरश मिश्र

रामदरश मिश्र नयी कविता के उन कवियों में से एक हैं, जिन्होंने जीवन की स्वस्थ-स्वच्छ और सहज-सामान्य अनुभूतियों की निश्छल-सरल अभिव्यक्तियों से अपना काव्य-जीवन प्रारंभ किया और धीरे-धीरे आधुनिक जीवन की जटिलताओं और बिडम्बनाओं को प्रखर अभिव्यक्ति देने लगे। उनके प्रारंभिक दो संकलन **पथ के गीत** और **बैरंग बेनाम चिट्ठियां** (६२) में स्वस्थ-सामान्य जीवन के साधारण-अनैतिहासिक क्षणों की ऐसी ही तरल-सरल अभिव्यक्तियां संकलित हैं। हां, दूसरे संकलन की 'नींव के पत्थर' कविता बीज रूप में भावी विकसित होने वाली उनकी जटिल यथार्थवादी रुझान की संभावनाओं को रेखांकित करती है।

पक गयी है धूप (६९) उनका तीसरा संकलन है। भूमिका में उन्होंने लिखा है—"इस काव्य संग्रह के तीन खंड किये गये हैं। पहले खंड में होने न होने की अनुभूति की कविताएं है—अर्थात संक्रान्त अनुभवों की कविताएं। अनुभव अनुभव को काटते है और काट कर एक नया अनुभव देते है। पर्तों के भीतर पर्तें है और एक व्यक्तित्व इन पर्तों की आपसी टकराहट और कटाव का भी है। ...दूसरे खंड में गीत और गीतात्मक संवेदना की छोटी-छोटी कविताएं हैं। ये गीत या छोटी-छोटी कविताएं मूर्त वस्तुजगत की टकराहट से उत्पन्न मन की लौ या वस्तुजगत और मन के बीच के एक मधुर तनाव को व्यक्त करने का प्रयास करती हैं। तीसरा खंड **मेरा आकाश** है। इसमें प्रायः लम्बी कविताए हैं। इन कविताओं का फलक व्यापक है, इनमें अनुभूतियों और सामाजिक यथार्थ के कई-कई मोड़ उभरते चलते है और ये मोड़ कविता के संरचनात्मक रूप को अपने-अपने अनुरूप स्वतः गढ़ते चलते है, इसलिए एक ही कविता में बिम्ब, कथन, संवाद, व्यंग्य, आक्रोश, करुणा सभी जगह-जगह उभरते हैं।"

संकलन के पहले और दूसरे खड में, पहली कविता 'होने, न होने के बीच' को छोड कर, प्रकृति और महानगर की दिनचर्या के कुछ ताजे, और बहुत कुछ यथार्थवादी लेकिन आनुभूतिक ऊष्मा से सम्पन्न चित्र खींचे गये हैं। इन कविताओं में कवि का एक सहज-स्वस्थ-यथार्थवादी रूप ही अधिक सामने आता है कोई सजग प्रगतिशील रूप नही। तीसरे खंड मेरा आकाश में न केवल यह यथार्थवादी रुझान अधिक संश्लिष्ट हो उठती है, वरन कवि के मुहावरे में एक साठोत्तरी अन्दाजे-बयां भी दिखाई देने लगता है। प्रगतिशीलता और अनुभूति की संश्लिष्टता की दृष्टि से सकलन की 'होने, न होने के बीच', 'समय देवता' और 'फिर वही लोग' कविताए आम कविताओं से अपने आपको काफी अलग और विशिष्ट कर लेती है।

'होने और न होने के बीच' में आज के उस व्यक्ति के दर्द की मार्मिक अभिव्यक्ति है, जिस पर एक दूसरा ही 'मैं' पहना दिया गया है :

मैंने कितना जोर मारा था
कि फाड़ कर फेंक दूं इस 'मैं' को
और भीड़ में से गुजरूं तो हल्ला करूं
साथियो
यह 'मैं' मेरा नहीं है
यह कुछ खिताब बांटने वाले हाथों द्वारा पहनाया गया है
लेकिन यह कभी नहीं हो सका
बार बार लगा
कि पहनाने वाले हाथों का दबाव
मेरे खून तक, मेरी आवाजों तक कसा हुआ है!

नकली जिन्दगी जीने के लिए मजबूर लोगों के दर्द की कितनी सही अभिव्यक्ति है! पर विडम्बना तो यह है कि ऐसी जिन्दगी जीते रहने का अभ्यास करते हुए होता यह है कि धीरे धीरे ऊपर से पहनाए हुए व्यक्तित्व की कीलें हमारी हड्डियों के रस से भीग जाती हैं। गनीमत यह है कि :

किन्तु अब भी कभी कभी
जब कोई एकान्त
मेरे होने और न होने के द्वन्द्व को सुलगा जाता है
तब कीलें जोर जोर से चुभने लगती हैं

पहनाया गया 'मैं'
दूसरे के मैले वस्त्र की तरह गंधाने लगता है
और खून उछल उछल कर चाहता है
उखाड़ देना कीलों को

'समय देवता' एक लम्बी पर प्रभावशाली कविता है। साधारणतया माना जाता है कि समय सबसे बड़ा निर्णायक है, उसका न्याय बड़ा निष्पक्ष और निष्ठुर है इस कविता में इस धारणा का विरोध कर यह दिखाया गया है कि अब तक के इतिहास में समय का न्याय कभी निष्पक्ष नहीं रहा है :

तुम्हारे कांपते हाथों ने
तराजू का पलड़ा
हमेशा झुका दिया है उस ओर
जिस ओर गेंहुअन सांपों का समूह
कुंडली मारे बैठा होता है गड़े रत्नों पर
आराम से चूहों को पान की तरह चुभलाता हुआ
तुम्हारी दाढ़ों ने
खेतों में फैले पसीने के फूलों को निगला है
बखारों में या गोदामों में बन्द राशियों को नहीं
तिजोरियों और बैंकों में बन्द जड़ सिक्कों को नहीं

'समय देवता' यहां नियति का प्रतीक है। और नियतिवाद और भाग्यवाद के विरुद्ध एक आक्रोश का स्वर सम्पूर्ण कविता में व्याप्त है। साधारणतया जिसे 'वक्त की पुकार' कहा जाता है वह शोषक वर्गों के स्वार्थों की ही पुकार होती है, जिसे देश पर आया हुआ खतरा कहा जाता है, वह शोषकों की तिजोरियों पर आया हुआ खतरा ही होता है—इस सत्य को कविता में प्रभावक ढंग से अभिव्यक्ति मिली है। कुछ बहुत उपयुक्त उपमानों के रूप में आया हुआ बिम्ब विधान कविता के महत्व को और भी बढ़ा देता है :

जो भोगा हुआ हमारा सत्य है
वह तो क्वार की धूप-सा हमारी नंगी त्वचा में
चिनचिना रहा है युगों से।
और
अपना सारा तीखा धुंआ
झोंक देते हो झोपड़ियों की आंखों में—

संकलन के पहले और दूसरे खंड में, पहली कविता 'होने, न होने के बीच' को छोड़ कर, प्रकृति और महानगर की दिनचर्या के कुछ ताजे, और बहुत कुछ यथार्थवादी लेकिन आनुभूतिक ऊष्मा से सम्पन्न चित्र खींचे गये हैं। इन कविताओं में कवि का एक सहज-स्वस्थ-यथार्थवादी रूप ही अधिक सामने आता है कोई सजग प्रगतिशील रूप नहीं। तीसरे खंड मेरा आकाश में न केवल यह यथार्थवादी रुझान अधिक संश्लिष्ट हो उठती है, वरन कवि के मुहावरे में एक साठोत्तरी अन्दाजे-बयां भी दिखाई देने लगता है। प्रगतिशीलता और अनुभूति की संश्लिष्टता की दृष्टि से सकलन को 'होने, न होने के बीच', 'समय देवता' और 'फिर वही लोग' कविताएं आम कविताओ से अपने आपको काफी अलग और विशिष्ट कर लेती हैं।

'होने और न होने के बीच' में आज के उस व्यक्ति के दर्द की मार्मिक अभिव्यक्ति है, जिस पर एक दूसरा ही 'मैं' पहना दिया गया है :

मैंने कितना जोर मारा था
कि फाड़ कर फेंक दूं इस 'मैं' को
और भीड़ में से गुजरूं तो हल्ला करू
साथियो
यह 'मैं' मेरा नहीं है
यह कुछ खिताब बांटने वाले हाथों द्वारा पहनाया गया है
लेकिन यह कभी नहीं हो सका
बार बार लगा
कि पहनाने वाले हाथों का दबाव
मेरे खून तक, मेरी आवाजों तक कसा हुआ है।

नकली जिन्दगी जीने के लिए मजबूर लोगों के दर्द की कितनी सही अभिव्यक्ति है। पर विडम्बना तो यह है कि ऐसी जिन्दगी जीते रहने का अभ्यास करते हुए होता यह है कि धीरे धीरे ऊपर से पहनाए हुए व्यक्तित्व की कीलें हमारी हड्डियों के रस से भीग जाती हैं। गनीमत यह है कि :

किन्तु अब भी कभी कभी
जब कोई एकान्त
मेरे होने और न होने के द्वन्द्व को सुलगा जाता है
तब कीलें जोर जोर से चुभने लगती हैं

पहनाया गया 'मैं'
दूसरे के मैले वस्त्र की तरह गंधाने लगता है
और खून उछल उछल कर चाहता है
उखाड़ देना कीलों को

'समय देवता' एक लम्बी पर प्रभावशाली कविता है। साधारणतया माना जाता है कि समय सबसे बड़ा निर्णायक है, उसका न्याय बड़ा निष्पक्ष और निष्ठुर है इस कविता में इस धारणा का विरोध कर यह दिखाया गया है कि अब तक के इतिहास मे समय का न्याय कभी निष्पक्ष नहीं रहा है :

तुम्हारे कांपते हाथों ने
तराजू का पलड़ा
हमेशा झुका दिया है उस ओर
जिस ओर गेंहुवन सांपों का समूह
कुंडली मारे बैठा होता है गड़े रत्नों पर
आराम से चूहों को पान की तरह चुभलाता हुआ
तुम्हारी बाढ़ों ने
खेतों में फैले पसीने के फूलों को निगला है
बखारों में या गोदामों में बन्द राशियों को नहीं
तिजोरियों और बैंकों में बन्द जड़ सिक्कों को नहीं

'समय देवता' यहां नियति का प्रतीक है। और नियतिवाद और भाग्यवाद के विरुद्ध एक आक्रोश का स्वर सम्पूर्ण कविता मे व्याप्त है। साधारणतया जिसे 'वक्त की पुकार' कहा जाता है वह शोषक वर्गों के स्वार्थों की ही पुकार होती है, जिसे देश पर आया हुआ खतरा कहा जाता है, वह शोषकों की तिजोरियों पर आया हुआ खतरा ही होता है—इस सत्य को कविता में प्रभावक ढंग से अभिव्यक्ति मिली है। कुछ बहुत उपयुक्त उपमानों के रूप मे आया हुआ बिम्ब विधान कविता के महत्व को और भी बढ़ा देता है :

जो भोगा हुआ हमारा सत्य है
वह तो क्वार की धूप-सा हमारी नंगी त्वचा में
चिनचिना रहा है युगों से।

और

अपना सारा तीखा धुंआ
झोंक देते हो झोपड़ियों की आंखों में—

जिनमें जगमगाते सपने
मछली की तरह छटपटाकर दम तोड़ देते हैं।

'समय देवता' एक स्तर पर पन्त जी के 'निष्ठुर परिवर्तन' और नरेश मेहता की प्रसिद्ध कविता 'समय देवता' की प्रतिक्रिया भी है और प्रत्युत्तर भी। अपने ही समसामयिक एक कवि की किसी प्रसिद्ध कविता के शीर्षक को ज्यों का त्यों स्वीकारना उस शीर्षक के नये, विडम्बना पूर्ण, प्रयोग का ही प्रमाण है। 'निष्ठुर परिवर्तन' निष्ठुर होते हुए भी निष्पक्ष है, बल्कि पन्त जी 'उसकी निष्ठुरता को सम्पन्न वर्ग के संदर्भ मे ही अधिक उभारते है। नरेश मेहता का 'समय देवता' वास्तव में एक 'देवता' है, जिसके सामने वे युद्ध ध्वस्त संसार का एक रागपूर्ण चित्र प्रस्तुत करते हैं और उसके नवनिर्माण के प्रति अपनी अडिग आस्था व्यक्त करते है। लेकिन रामदरश मिश्र का 'समय देवता' एक बहुरुपिया पन्त है। उसकी तराजू का पलड़ा शोषकों—सत्ताधारियों की ओर झुका हुआ है :

तुम्हारी महामारियों ने
गरीब बस्तियों को कीड़ों की तरह मारा है
हवेलियों के चारों ओर तो तुम स्वयं खड़े रहे हो
'एण्टी-जर्म्स' छींटते हुए
इंजेक्शन देते हुए
तुम्हारी लड़ाइयों में मरे वे सिपाही
जो अन्धी माताओं और नव परिणीता बहुओं को छोड़कर
मोर्चे पर गये थे रोटी के लिए
वे बादशाह या नेता नहीं
लड़ाई जिनके लिए शौक थी
अंधी अभिव्यक्ति थी जिनके घृणा पूजक नृशंस अहं की।

निस्संदेह 'समय' का यह एक नया और पहले के बिम्बों से कहीं अधिक निर्मम यथार्थवादी बिम्ब है।

'फिर वही लोग' युद्ध के संदर्भ में और भी अधिक विस्तृत और ठोस-मूर्त फलक पर हमारे सम-सामयिक जीवन के यथार्थ को प्रस्तुत करती है। वर्दियां और झंडे बदल कर फिर फिर वही लोग एक जुलूस में सड़क पर से गुजर रहे हैं कल भी वे जनता की सेवा के लिए बेचैन थे, आज भी हैं। पूरा देश झंडों और जुलूसों से भर गया है। झंडे जो एक भाषा को दूसरी भाषा से, एक दर्द को दूसरे दर्द से, एक गीत को दूसरे गीत से बांटते हैं। एक गंदा काला नेता अपने

मशक जैसे मोटे पेट में भरी गंदी गैस निकालता है अपने बदबूदार घिनौने जबड़े से। आज फिर जुलूस जा रहा है, इसमें वे ही लोग शामिल हैं, जो कल दूसरे जुलूस में थे :

लगता है—
आज फिर कुछ होगा
फिर किसी कुर्सी के हिलते हुए पाये को
मजबूत करने के लिए
धूप का एक टुकड़ा वहां दफनाया जायेगा
फिर एक तिजौरी
अजगर की तरह मुंह फाड़ कर
अंधेरे में लटकेगी
और देश में फैलता जायेगा
एक ऊसर, एक अकाल
एक महामारी, एक बेकारी !

व्यक्ति, गांव, नगर, प्रदेश : एक धरती कितने टुकड़ों में बंट गयी है और हर टुकड़े को बारी बारी खा रहा है बड़े इतमीनान से एक अकाल, एक बाढ, एक मंहगाई, एक बेकारी। और जब टुकड़े चिल्लाते हैं और उनकी आवाजें मिलजुल कर आकाश को फाड़ने लगती है तब आकाश इशारा करता है सीमान्त की ओर—देखो सीमान्त सुलग रहा है, वहां लपटों की चहल पहल है, बारूदी गंध की छटपटाहट है—यह सब तुम्हारी ओर ही आ रहा है, तुम्हारी स्वाधीनता की ओर ही। और आकाश को फाड़ने वाली वे आवाजें धीरे धीरे सीमान्त की ओर सरकने लगती हैं और नीचे बिछे हुए टुकडों को फिर बडे इतमीनान के साथ खाने लगता है एक अकाल, एक मंहगाई, एक बेकारी। और उनके शिकार शव घायल-सीमान्त-छपे अखबारों को अपने नंगेपन पर ओढ लेते हैं—**तेरी खिदमत में जो तक लुटा देंगे हम, ए वतन, ए वतन।**

इन कविताओं को देखते हुए कवि का यह आत्मकथन बिल्कुल सही लगता है कि "मैंने अपनी इन कविताओं में अपने परिवेश को जी कर प्राप्त किये गये अनुभव-सत्यों को परिवेश के ही बिम्बों के माध्यम से व्यक्त किया है। मेरे अनुभवों की यात्रा अत्यन्त अन्तरंग स्व से लेकर बृहत्तर सामाजिक यथार्थ तक है, मन की एकान्त सौन्दर्य-प्रतीतियों से लेकर सामाजिक विघटन मूल्य-मूढता और मानव यातनाओं की उद्विग्नता तक है, धूप की तरह एक फूल से लेकर आकाश के आन्दोलित विस्तार तक है।"[३१]

---

३१. 'ये कविताएं', पक गयी है धूप, ज्ञानपीठ, १९६९.

केदारनाथ सिंह

हिन्दी कविता के मंच पर केदारनाथ सिंह एक सहज भावुक और सरस गीतकार की प्रतिभा लेकर आये। लोक गीतों जैसी सहज भावान्विति, ताजगी और मिठास के कारण इनके तरल रोमानी गीतों ने सहृदय जनों का ध्यान आकर्षित किया। लेकिन आगे चल कर इन्होंने गीतों की रचना प्रायः छोड़ दी पर फिर भी इनकी कविताओं में गीत की संवेदनसिक्त मिठास और कोमलता बनी हुई है।"

तीसरा सप्तक और अभी बिल्कुल अभी में संकलित उनकी कविताएं उनकी वर्तमान उपलब्धियों और भावी संभावनाओं को व्यक्त करती हैं।

संकलित कविताओं में से अधिकांश प्रकृति से संबंधित हैं तथा कुछ ताजे, प्रभावशाली बिम्बों का आकलन करती हैं। महत्वपूर्ण कविताओं में 'नये वर्ष के प्रति', 'दुपहरिया', 'धानों का गीत', 'शारद प्रात', 'टूटने दो', 'विदा गीत', 'कमरे का दानव', और 'निराकार की पुकार' (तीसरा सप्तक) तथा 'अपनी छोटी बच्ची के लिए एक नाम' और 'जीने के लिए कुछ शर्तें' (अभी बिल्कुल अभी) का नाम लिया जा सकता है।

प्रकृति और लोक जीवन के प्रति एक स्वस्थ राग और उस राग के प्रतीक ताजे और स्वस्थ बिम्ब केदारनाथ सिंह की कविताओं की मूलभूत विशेषता है।

'नये वर्ष के प्रति' में कवि नये वर्ष से पूछता है कि वह क्या क्या लायेगा और उत्तर में अपनी ओर से कुछ सुन्दर बिम्बों को प्रस्तुत करता है : गंध पहले बौरं की, फलों पर चढ़ते सुनहरे रंग, सर्द पानी सी निस्संग छुअन, बन्द कमरे, दरवाजों भरी दीवार, चिड़ियों के धूपगंधी पंख, निष्काम बंधती और खुलती हुई मुट्ठियां, नयी चा की प्यालियों में तैरता दिन, आदि आदि। इन बिम्बों में से कई काफी सुन्दर हैं। इस कविता में तो नहीं, पर कई अन्य कविताओं में (जैसे 'दीपदान' और 'शामें बेच दी हैं' में) कवि कविता के नाम पर कुछ अच्छे बिम्बों का ढेर मात्र खड़ा कर देता है। सुन्दर बिम्ब कविता का एक महत्वपूर्ण माध्यम है, अंग है, पर कविता मात्र बिम्बों का ढेर नहीं हो सकती। 'दीपदान' में कवि अपनी प्रिया से कहता है कि जाते जाते मेरे घर आंगन में जगह जगह दीपक रखती जाओ, एक दीप यहां, एक दीप वहां का एक लम्बा सिलसिला चल पड़ता है। जैसे द्विवेदी काल के कवि प्रकृति वर्णन में वस्तु परिगणन शैली अपनाते थे, वैसे ही इसे 'बिम्ब परिगणन शैली' कहा जा सकता है। 'शामें बेच दी हैं' में यह बात और भी अधिक अखरती है। कवि के पास कहने के लिए एक बात है कि उसने अपनी शाम बेच दी है। अब शाम कैसी कैसी है,

---

३२. रवीन्द्र भ्रमर : हिन्दी के आधुनिक कवि,

इसका एक अटूट क्रम कविता में चलता रहता है। जैसे भवानी प्रसाद मिश्र ने अपनी कविता गीत फरोश में गीतों की किस्मे गिनाई हैं वैसे ही 'शामें बेच दी हैं' में केदारनाथ सिंह ने शामों की किस्में गिना दी है। पर गीत फरोश में वह सब उस काव्यात्मक स्थिति के अनुकूल है, जबकि यहां कवि के बिम्बों के प्रति अत्यधिक असंतुलित आकर्षण के सिवा कुछ भी व्यक्त नहीं होता।

'दुपहरिया', दोपहर के वातावरण को सफलता से चित्रित करने वाला एक गीत है। 'सप्तक' के कई गीतों में लोकगीत शैली का प्रभाव है। जैसे 'पात नये आ गये', 'रात' और 'धानों का गीत'। इनमें 'धानों का गीत' एक सफल और सुन्दर रचना है। लोकगीत की शैली में लोक-जीवन का रागपूर्ण चित्रण इस गीत में किया गया है :

झीलों के पानी खजूर हिलेंगे
खेतों के पानी बबूल
मछुआ के हाथों में शाखें हिलेंगी
पुरवा के हाथों में फूल
आना जी बादल जरूर !
धान तुलेंगे कि प्रान तुलेंगे
तुलेंगे हमारे खेत में
आना जी बादल जरूर !

खेतों में धानों के तुलने के साथ प्राणों के तुलने में ग्रामीण जनों के शोषण की ओर एक सूक्ष्म सा सकेत प्रभावशाली ढंग से किया गया है।

इसी तरह का एक और सुन्दर गीत है—विदागीत। बिम्बों की सुघड़ता, भावना की तरलता और स्वच्छता तथा शिल्प के गठन की दृष्टि से यह गीत केदारनाथ सिंह की महत्वपूर्ण कविताओं में से एक है :

रुको आंचल में तुम्हारे
यह समीरन बांध दूं, यह टूटता प्रन बांध दूं
एक जो इन उंगलियों में
कहीं उलझा रह गया है
फूल सा वह कांपता क्षण बांध दूं

अन्तिम तीन पंक्तियों का बिम्ब वास्तव में बहुत ताजा और सुन्दर है।

'कमरे का दानव' अकेलेपन और उन समस्त अभावों और कटुताओं का प्रतीक है, जिनका अकेलेपन में साक्षात्कार होता है। शाम को थक कर कमरे

में आने के समय की अकेलेपन की स्थिति की 'बड़े बड़े डैने वाला कमरे का दानव' के रूप में कल्पना, एक उपयुक्त और सुन्दर कल्पना है।

'टूटने दो' में कवि का जीवन और जगत के प्रति प्रगतिशील दृष्टिकोण स्पष्ट अभिव्यक्ति पाता है :

अगर नहीं है मेरे स्वरों में तुम्हारे स्वर
अगर नहीं है मेरे हाथों में तुम्हारे हाथ
अगर नहीं है मेरे शब्दों में तुम्हारी आहट
अगर नहीं है मेरे गीतों में तुम्हारी बात
तो ओ मेरे भाई
मुझे पछाड़ खाये बादल की तरह
टूटने दो !

'निराकार की पुकार' में भविष्य के प्रति एक निष्ठापूर्ण मंगल कामना और कवि के आस्थापूर्ण दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति हुई है :

कल उगूंगा मैं
आज तो कुछ भी नहीं हूं
धूल, पत्ती, फूल, चिड़िया, घास, फुनगी—
आह ! कुछ भी तो नहीं हूं !
कल उगूंगा मैं !

'अपनी छोटी बच्ची के लिए एक नाम' बच्ची के प्रति उनके मानवीयराग से भीगी हुई कविता है। बच्ची के लिए प्रस्तुत बिम्ब बहुत प्रभावशाली है :

ओस भरे
कंपते गुलाब की टहनी पर
तितली के पंखों सी सटी हुई
धूप !
एक नाम है हल्का सा
मेरे बेस्वाद खुले होंठों पर तेरे लिए

'जीने के लिए कुछ शर्तें' एक संवेदनशील कवि की 'आवश्यकताओं' की ओर अच्छा संकेत करती है। उनमें से कुछ हैं :

जरूरी है
सरहदों पर कहीं हों अनुगूंज
जो अस्तित्व के हर तार से होकर
गुजरती रहें

कहीं हों परछाइयां जिनसे हवा में
खयालों के कोण बनते रहें
कहीं हो संभावना
जो हर थकन के बाद हम को
बोलने के लिये बातें
तोड़ने के लिये तिनके
बैठने के लिए थोड़ी सी जगह दे जाय
जरूरी है !

केदारनाथ सिंह की ये कविताएं उनके इस कथन को सत्य सिद्ध करती हैं कि उनमें समाज के प्रगतिशील तत्वों और मानव के उच्चतर मूल्यों के प्रति एक विश्वास, एक लालसा और एक लपट है।[३३]

अभी बिल्कुल अभी के बाद की उनकी पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित कविताएं उनके काव्य में आयी हुई एक अजीब-सी अमूर्तता को रेखांकित करती है, जो नये मुहावरे के कारण आकर्षक तो लगती है, पर साथ ही उनकी कविता के भीतर के मानवीय सत्य को अधिक धुंधला और अस्पष्ट कर देती है :

और हवा भी स्वतंत्र नहीं है
कुछ भी चुनने के लिये
सूरज खींच रहा है सारी चीजों को
धूप के अन्तःसंगीत में बुनने के लिए...
सिर्फ एक बच्चे की अकेली पतंग
बुन दिये जाने के विरुद्ध उड़ रही है
और अब उड़ने की दिशा
और बुनने की क्रिया में जरा सा अन्तर है

—एक छोटा सा मौन

यह अन्तर ही नहीं, सभी अन्तर उनकी कविता में घिस कर समाप्त होते नजर आते हैं :

क्योंकि इस समय
कितना मुश्किल है अलग कर पाना
प्रेमिका को अखबार से

---

३३. देखिए उनका वक्तव्य, तीसरा सप्तक, पृ. १८६.

और अखबार को
सुर्ख आंखों वाले किसी जंगली जानवर से

परिणाम यह होता है कि चीजों को उनके सही नामों से पुकारने की बजाय वे मूलभूत सवालों को साबुन की टिकियाओं और तौलियों के सवाल बना कर अमूर्तता के आकाश में उड़ा देते हैं :

कुछ चीजें हैं
जैसे साबुन का यह डिब्बा
जिसके बारे में तुम्हारी चुप्पी
सिर्फ उन ताकतों को लाभ पहुंचा सकती है
जो तुम्हें
तुम्हारे तौलिये के विरुद्ध इस्तेमाल करना चाहती हैं

—प्रतीक्षा के विरुद्ध कुछ पंक्तियां

केदारनाथ सिंह की कविता को नामवर जी ने प्रगतिवाद, प्रयोगवाद और छायावादोत्तर रूमानियत के लम्बे घात-प्रतिघात से हिन्दी कविता मे आये हुए उस नये स्तर के सन्तुलन की कविता कहा है, जिसे वास्तव में 'नयी कविता' कहा जा सकता है। नामवर जी के अनुसार ताजे चित्र (इमेज) उनकी सबसे बड़ी विशेषता है, बिम्बचयन और बिम्बरचना की वैसी क्षमता आज के और किसी कवि में देखने में नहीं आयी। "उनके बिम्बों में बन्द कमरा है, तो उसमें खिड़की है, घर है तो आंगन, बाहर निकले तो पगडंडी या खेत की दूर्वादल-ढकी मेड़; अधिकाश कविताओं की पृष्ठभूमि मे साझ की छाया या फिर भोर की हल्की उष्णता। कोहरा केदार के यहा अक्सर उठता है और कभी कभी दुहरा। चिड़ियों के गिरे पंख और फूल की झरी पखुरियां उन्हें ज्यादा प्रिय हैं। क्रिया-कलाप में हल्की छुअन, नाम लिखना, हांक लगाना, भटकना, अनागत की प्रतीक्षा, किसी अदेखे को ढूढ़ना इत्यादि। कुल मिला कर वे मद्धिम या हल्के संवेगों के कवि है, उनके यहा आवेश कहीं नहीं मिलता। संभवतः इसीलिए उनकी कविता का धरातल एकदम सम है, सभी कविताओं का स्तर प्रायः एक है। ऐसे कवि प्रायः औसत कोटि के ही रह जाते हैं।"[३४]

केदारनाथ सिंह की एक कविता है :

छत पर आकाश
आकाश में रखी हुई

---

३४. 'कवि', मई ५७, पृ. ६६-६९.

सतरंगे बांस की टेढ़ी-सी कुर्सी
कुर्सी में
मैं हूं।

इस कविता को उद्धृत करते हुए हिन्दी कविता के एक तरुण समीक्षक भगवान सिंह कहते हैं : "यही सब केदार की स्थिति है। अपने बड़े मोह से बनाये शिल्प के इन्द्रधनुष मे वे बन्द है। केदारनाथ सिंह दावा भले ही करे, पर हम उन्हें सात पर्तों के तले सोये मणि कण को, जिस पर हर नया इतिहास का दिन जन्म लेता है, सूघ कर पहचानते हुए नही पाते। यही क्यों, अपने सीने पर प्रहार करते हुए इतिहास की ओर भी उनकी दृष्टि नहीं उठती। हां, यदि इतिहास का अर्थ उस दूरगंधी तिथि, पहर, आलोक-क्षण को पहचानने तक सीमित हो, जब उनके पड़ोसी बकुल में फल आते है, यदि इतिहास का अर्थ केवल माली और बाग मे वर्तमान सौन्दर्य रेखाओं को पहचानने तक सीमित हो, तो निश्चय ही वह इसे किसी भी अन्य कवि की तुलना मे आसानी से पहचान लेते है। ऋतुओं के ताजे पदचिह्नों को अपनी ओस-भीगी क्यारियों में वह निश्चय ही देख लेते हैं।" उनके सकलन अभी बिल्कुल अभी से लेकर उनकी कविताओं में सन साठ के बाद आये हुए मोड पर विचार करते हुए वे इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि इस लम्बी काव्य यात्रा के बाद भी कवि की मूल समस्या वही है जो अभी बिल्कुल अभी में थी अर्थात अर्थ परिवर्तन की प्रक्रिया की समस्या। पर यह समस्या अब भी संदर्भ-हीन है। खूबसूरत मुहावरों में चक्कर काटता हुआ उनका संकट-बोध किसी दुःस्वप्न जैसी भयावहता को जगा नही पाता वह संकट का दिल-फरेब तिलस्म बन कर शेष हो जाता है[३५] :

और आदमी आज भी बाजार जाता है
पर साबुन या सेवन ओ क्लोक के लिए नहीं
सिर्फ उस नुक्ते की तलाश में
जो उसके सर के बालों को
टेलीफोन के तारों से अलग करता है।

प्रयोगशील रुझान के अन्य प्रगतिशील कवि

इस वर्ग के अन्य कवियों में नेमिचन्द्र जैन, अजित कुमार, राजेन्द्र यादव, मदन वात्स्यायन, विश्वनाथ त्रिपाठी, हरिनारायण व्यास, विष्णुचन्द्र शर्मा आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

---

३५. भगवान सिंह : केदारनाथ सिंह : इन्द्र धनु में बन्द एक कवि, सामयिक-३, मई १९७२.

संकलन में तीन हल्की फुल्की व्यंग कविताएं है—'एक विज्ञापन', 'एक विदेशी कविता' और 'कलाकारों का संयुक्त वक्तव्य'। विज्ञापन में गीतकारो के 'प्रोफेशनल' दृष्टिकोण पर व्यंग है; दूसरी में हिन्दी के पाठकों और साहित्यकारों की इस वृत्ति पर कि वे विदेशी चीजों को श्रेष्ठ समझते हैं और इसलिए यदि उन्हें किसी साधारण कवि की कविता भी किसी विदेशी कवि की कह कर सुना दी जाय तो वे उसकी खूब तारीफ करेंगे।

संकलन की अन्य उल्लेखनीय कविताओं में 'अपने देश का हाल', 'व्याकुलता' और 'नींद में डूबे योद्धा सुरक्षित है' के नाम लिये जा सकते हैं। 'अपने देश का हाल' में वे कहते हैं :

प्यार की बातें मना जिस देश में
प्यार के गाने वहां सबसे अधिक
जहां पर बंधन सामाजिक बहुत हैं
वहां के गायक सुकवि खासे रसिक
इश्किया अन्दाज में लिखते सभी
जहां होने चाहिए थे कवि श्रमिक !

उनका दूसरा संकलन उनके कवि के किसी विशेष परिवर्तन या विकास की साक्षी नहीं देता। हां, उनका तुक प्रेम अवश्य बढ़ गया है और कभी कभी वे एक तुक के लोभ में एक भाव-परिवर्तन तक को स्वीकार लेते है। फिर भी वे एक सरल-सहज कवि ही हैं।

राजेन्द्र यादव ने कहानियों और उपन्यासों के अतिरिक्त कविताए भी लिखी है, और अच्छी-खासी लिखी है। उनकी कविताओं का एकमात्र संकलन है—आवाज तेरी है। संकलन की महत्वपूर्ण कविताओं में 'आवाज तेरी है', 'अक्षर', 'नया कथ्य', 'युग युग का सत्य', 'दर्द और दीवार' तथा 'प्रतीक्षा' के नाम लिये जा सकते है।

'आवाज तेरी है' एक लम्बी और सुन्दर कविता है। यह आवाज सामाजिक चेतना की प्रतीक है, वह सामाजिक चेतना जो व्यक्ति को सब पारिस्थितिक भटकनों के बावजूद फिर अपनी राह पर बुला लेती है और भटकने से, राह पर पराजित होकर बैठ जाने से बचा लेती है। कविता में काफी गति और लय है, सचमुच जैसे एक स्वर पाठक को खींच ले जाता है :

यह तुम्हारा स्वर मुझे खींचे लिये जाता
—कि जैसे डोर बंसी की तड़पती मीन को खींचे

लेकिन तार सप्तक के बाद की उनकी कविताएं बताती हैं कि वे इस द्वन्द्व से न तो उबरे हैं और न इसे जीत ही पाये हैं :

कि मैं लांघना चाहता था अगम को
तड़प थी कि बौने करों को बढ़ा कर पकड़ लूं
अभी चांद सूरज
कि मैं चाहता था सभी कुछ
बहुत से बड़े स्वप्न थे इस हृदय में
नहीं थी, नहीं, शक्ति ही बस नहीं थी
उठे बाहुओं में
तड़प थी बहुत किन्तु क्षमता नहीं थी
इसी से गरुड़ के सभी पंख
टूटे हुए हैं !

—'सुनोगे' [रवीन्द्र कुमार की पुस्तक हिन्दी के आधुनिक कवि से उद्धृत, पृष्ठ २३६]

स्पष्ट है कि यद्यपि यहां कवि निराश होकर अपनी पराजय को स्वीकार कर रहा है, तथापि इस निराशा और पराजय के दर्द को उसने अच्छी अभिव्यक्ति दी है। ऐसे लोगों की तुलना में, जो अपनी अक्षमता को उन आदर्शों के प्रति अविश्वास की आड़ में या उनकी वरणीयता पर प्रश्न चिह्न लगा कर छिपाते हैं, कवि की यह ईमानदारी निश्चय ही प्रशंसनीय है।

अजित कुमार भवानी प्रसाद मिश्र की तरह के सहज प्रगतिशील कवि है, लेकिन उनसे कही साधारण स्तर के। **अकेले कंठ की पुकार** और **अंकित होने दो** उनके संकलन है। **अकेले कंठ की पुकार** में कवि इस सत्य के प्रति सचेत है कि 'नूतन जिन्दगी लाने / नयी दुनिया बसाने के लिए / मेरा अकेला कंठस्वर काफी नही है'। संकलन में कवि अपनी चित्रण क्षमता के कुछ अच्छे प्रमाण देता है :

सुबह चिड़ियों के मधुर स्वर गूंजते हैं
और पंडित जी नहा धोकर
बड़े ही मग्न होकर
लगा आसन भगवत गीता उठा कर
पाठ करते
कृष्ण राधा की कथा गाते हुए
अभिव्यक्ति विह्वल जान पड़ते हैं
और अपनी तान पर, लय पर
स्वयं ही ऊंघते हैं।

दृष्टिकोण उनकी कविताओं को किसी संजीदा स्तर तक पहुंचने नहीं देता, फिर भी उनकी विषय-वस्तु की नवीनता उन्हें एक विशिष्टता दे देती है। औद्योगिक जीवन और मशीनों के ससार को उन्होंने जिस हद तक अपनी कविता और काव्यसवेदना का विषय बनाया है, उस हद तक किसी नये कवि ने नही बनाया। इस दृष्टि से वे हिन्दी के अकेले कवि है।

तीसरा सप्तक में सकलित उनकी कविताओं में से तीन उल्लेखनीय कविताएं मशीन और मशीनी जीवन से ही सम्बद्ध है—'असुरपुरी में दस से छः', 'सरकारी कारखाने मे कर्मचारी की चिन्ता' और 'अपथगा'।

'अपथगा' दिनकर जी की 'विपथगा' की शैली में मशीन का स्फीत-फूत्कार-पूर्ण आत्म कथन है। 'असुरपुरी में दस से छः' मशीनों और आपरेटर के बीच का सवाद है, जिसमें मशीनें अपनी नियमित कर्तव्य-निष्ठता का बखान करती हुई कमकर मानव की लापरवाही और गैर जिम्मेदारी का मजाक उड़ाती हैं। हा-हा, छिः छिः, वाह-वाह, धक-धक, खच-खच से भरी हुई यह कविता अपनी नवीन विषय-वस्तु के बावजूद निर्वाह की लापरवाही के कारण कोई महत्वपूर्ण कविता नही बन पाती। हां, तीसरी कविता 'सरकारी कारखाने मे कर्मचारी की चिन्ता' जरूर एक महत्वपूर्ण कविता है, क्योंकि यह मशीनी जीवन के अतिरिक्त समसामयिक भारतीय प्रशासन-तंत्र और उसमें व्याप्त असंगतियों को भी बेनकाब करती है, और एक नया करुण रस भी इसमें व्याप्त है :

ओ मेरे अफ़सर!
तुमने मेरे हृदय में अन्धकार भर दिया
मेरी आंखों की उषा छीन ली
मेरा हंसमुख हृदय संध्या के रंगीन बादलों की तरह
धीरे-धीरे फीका पड़ता-पड़ता काला हो गया है।
मैं मर रहा हूं।
तुम्हारी एक लाइन ने मेरे बाग को निर्गन्ध कर दिया
मेरे रंगीन इन्द्र धनुष पर रोशनाई पोत दी।

अफसर का एक रिमार्क किस तरह सरकारी कर्मचारी की जिन्दगी के सब रस निचोड़ लेता है, इसे एक टटके बिम्ब विधान के माध्यम से सुन्दर अभिव्यक्ति दी गयी है :

ओ मेरे अफ़सर,
तुम सरकारी अफ़सर हो, तुम्हारा काटा पानी नही मांगता
कानून की दरार में से तुमने गोली चलाई

—कि जैसे ज्योति की रेखा, पथिक भ्रू वहीन को खींचे
—कि जैसे दीप की लौ को अरुण का सारथी टेरे
—कि जैसे इन्द्रजालिक मोहिनी से चेतना घेरे
सिसकती धार को जैसे कि सागर खींच लेता है—
लहर की बांह फैला कर

वह 'स्वर' जो कवि को खीचे लिये जा रहा है, उसकी जीवन-शक्ति है। कविता में कई रूपकों और प्रतीकों का प्रयोग हुआ है। रास्ते में जमी हुई पत्थर की मूर्तियां वे साधक है जो मार्ग मे ही हार गये। 'दुर्ग में कैद स्वप्न की रानी', 'सिंहलद्वीप की पद्मावती' वही जीवन-शक्ति है जिसकी ओर कवि बढ़े जा रहा है।

'अक्षर' अकेले व्यक्ति की निरर्थकता और समिष्ट में ही उसकी सार्थकता को प्रकट करती है। 'युग युग का सत्य' तथाकथित शाश्वततावादियों और 'नया कथ्य' प्रयोगवादियों पर व्यंग है। दूसरा व्यंग काफी प्रभावशाली है। 'दर्द और दीवारें' मध्यवर्गीय व्यक्ति की इस गलत धारणा पर प्रकाश डालती है कि वह अपने दुखःदर्द को मात्र वैयक्तिक मान कर अकेला ही घुटा करता है, उसे अन्य लोगों के दर्द से नही जोड़ता। 'प्रतीक्षा' में आज के मध्यवर्गीय जीवन के खोखलेपन को सुन्दर अभिव्यक्ति मिली है। अपनी वर्तमान निरर्थकता से पीड़ित हम लोग किसी भावी संभावना की प्रतीक्षा करते हुए दिन काटते रहते हैं :

एक पत्र आयेगा
रोज सुबह लगता है।
रोज सुबह लगता है
सहसा मिलेगा आज कोई एक परिचित
जो गुजरते कारवानों की
डूबती घंटियों और मिटती पग-छाया सा
जाने कहां छूटा था।
रोज सुबह लगता है
कुछ होगा अप्रत्याशित
जिसकी मुझे आशा है।

मदन वात्स्यायन 'तीसरा सप्तक' (५६) के कवि हैं। प्रभाकर माचवे की तरह की एक नितान्त प्रयोगवादी रुचि, भाषा और बिम्बों की ताजगी लेकिन भरपूर ऊबड़-खाबड़पन और कविता के प्रति एक [illegible], [illegible]

और मुझे चुपचाप सुला दिया
अपनी फाइलों के जंगल में ले जाकर तुमने मुझे कत्ल कर दिया।

मशीन के प्रति नये-नये नौकरी पर लगे हुए कर्मचारी की कल्पनाशील दृष्टि के माध्यम से मशीनों का एक राग-समृद्ध चित्र भी इस कविता की विशेषता और कवि की संवेदनाओं की विस्तृति का प्रमाण है :

कितना रंगीन था मेरा दिल जब मैं यहां आया था
प्लांट लगता था कामधेनु है,
भोंपा लगता था पांचजन्य है,
कारखाना लोहे की अलका था।
ओ मेरे अफसर,
पावर प्लांट को मैंने रसायन पीने वाले,
आग तापने वाले
जटा से जोगिनी निकालने वाले शिव कहा था
मिट्टी काटने वाली मशीन मुझे नन्दी बैल लगी थी—
मैं खिलखिला कर इस मशीन से, उस मशीन से
लिपटता फिरता था।

मशीन संबंधी इन कविताओं के अतिरिक्त मदन वात्स्यायन की **तीसरा सप्तक** में संकलित एक और कविता 'स्वस्ति, मेरी बेटी' भी एक सुन्दर और महत्वपूर्ण कविता है। बिल्कुल टटके हुए लेकिन फिर भी राग-भीने बिम्बों से सजी हुई यह कविता समसामयिक हिन्दी कविता में वात्सल्य भाव के एक नये ट्रीटमेंट की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण कविता है :

ऊनी रोएंदार लाल-पीले फूलों से
सर से पांव तक ढका हुआ
मेरी पत्नी की गोद में
छोटा सा एक गुलदस्ता है।

* *

बड़े दिनों में चित्त लेटी थी
होली में मेमने सी ठनमनाती थी
अब इस असाढ़ में तू खड़ी है—
बेटी, तू आदमी है या मालती की बेल है।

सातवें दशक के प्रगतिशील कवि

जैसा कि पहले कहा जा चुका है सन साठ के आते आते 'नयी कविता' का जादू उस समय कविता लिखना शुरू करने वाले अधिकांश तरुणों पर से हटने लगा और एक एक करके वे अपने कवि व्यक्तित्व को नयी कविता के दायरे से अलग स्थापित या घोषित करने लगे। इन कवियों ने नयी कविता की मनुष्य के मूलभूत आर्थिक-राजनीतिक संकट के प्रति तटस्थता और निष्क्रियता के विरुद्ध प्रबल प्रतिक्रियाएं की। नयी कविता की प्रतिक्रिया सातवें दशक की कविताओं में दो मुख्य रूपों में व्यक्त हुई : अकविता और उसमें जुड़े हुए रुग्णतावादी कविता के आन्दोलनों में और प्रतिश्रुत कविता, युयुत्सावादी कविता तथा आज की कविता जैसे प्रतिबद्ध आन्दोलनों में। दशक के पूर्वार्द्ध में रुग्णतावादी आन्दोलन अधिक मुखर दिखाई दिये, पर उत्तरार्द्ध के आते आते प्रतिश्रुति के आन्दोलन अपना वर्चस्व दिखाने लगे। परिणाम स्वरूप सातवें दशक के लगभग सारे लेखन में हमें एक स्पष्ट यथार्थवादी और वामपक्षी झुकाव दिखाई देता है। नयी कविता की अपक्षधरता और असम्पृक्ति की जगह पक्षधरता और सम्पृक्ति सातवें दशक की कविता के प्रतिमान बन गये। सातवें दशक की इस पक्षधर कविता ने प्रगतिवाद के प्रारंभिक दौर की राजनीतिक सक्रियता और निस्संकोच प्रतिबद्धता का वरण किया। इस दृष्टि से यह कविता अपनी मां 'नयी प्रगतिशील कविता' की अपेक्षा अपनी नानी 'प्रगतिवादी कविता' के कुछ गुणों से अधिक समन्वित है, फिर भी यह विलगता इतनी अधिक नहीं है कि परंपरा का सूत्र ही न दिखाई पड़े। नये प्रगतिशील कवियों में से सबसे अधिक तेजस्वी कवि मुक्तिबोध को सातवें दशक के लगभग सभी प्रगतिशील कवियों ने न केवल एक महत्वपूर्ण पूर्वज माना है, बल्कि बहुत हद तक उनकी विरासत को भी सम्मान के साथ स्वीकार किया है।

सातवें दशक के प्रमुख प्रगतिशील कवियों में राजीव सक्सेना, रमेश कुन्तल-मेघ, शलभ श्रीराम सिंह, रमेश गौड़, हरीश भादानी, हरिठाकुर, अजित पुष्कल, जुगमंदिर, मृत्युंजय उपाध्याय, धूमिल और वेणु गोपाल के नाम लिये जा सकते हैं।

राजीव सक्सेना

राजीव सक्सेना के संकलन आत्मनिर्वासन तथा अन्य कविताएं में उनकी बारह अपेक्षाकृत लम्बी कविताएं सकलित हैं। ये कविताएं आज के जीवन की

और मैं—

उबलता हुआ केतली का पानी
जिसे बन बन कर भाप आप खत्म होते रहना है।

उनकी एक और कविता 'कवि' भी अपने नये पर सही एप्रोच के कारण महत्व-पूर्ण है :

फूल में, मिट्टी में, सूरज में, चांद में
और हम सबके चेहरों में
लगातार एक लपट कांपती रहती है।
मैं उसी लपट से
शब्दों को सुलगाता रहता हूं।
...पहाड़ों, नदियों, सड़कों, भीड़ों
सबकी गोद में एक-एक शिशु चीखता है
मैं उनकी तनी हुई हथेलियों पर
एक नाम रख देता हूं
और वे चुप हो जाते हैं।

हरिनारायण व्यास दूसरे सप्तक के उन कवियों में से है, जिनका उससे बाहर कवि रूप में लगभग कोई अस्तित्व नही दिखाई देता। **दूसरा सप्तक** में संकलित उनकी कविताओं में उनके स्वस्थ प्रगतिशील दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति के अतिरिक्त कोई ऐसी विशेषता नही है, जिसके कारण वे याद रखे जांय। उनकी परवर्ती कविताओ में से **कल्पना** में प्रकाशित 'प्रताड़ित आत्मा का गीत' का उल्लेख उनकी एक साधारणतया अच्छी कविता के रूप में किया जा सकता है।

सातवें दशक के प्रगतिशील कवि

जैसा कि पहले कहा जा चुका है सन साठ के आते आते 'नयी कविता' का जादू उस समय कविता लिखना शुरू करने वाले अधिकांश तरुणों पर से हटने लगा और एक एक करके वे अपने कवि व्यक्तित्व को नयी कविता के दायरे से अलग स्थापित या घोषित करने लगे। इन कवियों ने नयी कविता की मनुष्य के मूलभूत आर्थिक-राजनीतिक सकट के प्रति तटस्थता और निष्क्रियता के विरुद्ध प्रबल प्रतिक्रियाएं की। नयी कविता की प्रतिक्रिया सातवें दशक की कविताओं में दो मुख्य रूपों में व्यक्त हुई : अकविता और उसमे जुड़े हुए रुग्णतावादी कविता के आन्दोलनों में और प्रतिश्रुत कविता, युयुत्सावादी कविता तथा आज की कविता जैसे प्रतिबद्ध आन्दोलनों में। दशक के पूर्वार्द्ध में रुग्णतावादी आन्दोलन अधिक मुखर दिखाई दिये, पर उत्तरार्द्ध के आते आते प्रतिश्रुति के आन्दोलन अपना वर्चस्व दिखाने लगे। परिणाम स्वरूप सातवें दशक के लगभग सारे लेखन में हमें एक स्पष्ट यथार्थवादी और वामपक्षी झुकाव दिखाई देता है। नयी कविता की अपक्षधरता और असम्पृक्ति की जगह पक्षधरता और सम्पृक्ति सातवे दशक की कविता के प्रतिमान बन गये। सातवें दशक की इस पक्षधर कविता ने प्रगतिवाद के प्रारम्भिक दौर की राजनीतिक सक्रियता और निस्संकोच प्रतिबद्धता का वरण किया। इस दृष्टि से यह कविता अपनी मां 'नयी प्रगतिशील कविता' की अपेक्षा अपनी नानी 'प्रगतिवादी कविता' के कुछ गुणों से अधिक समन्वित है, फिर भी यह विलगता इतनी अधिक नहीं है कि परंपरा का सूत्र ही न दिखाई पड़े। नये प्रगतिशील कवियों में से सबसे अधिक तेजस्वी कवि मुक्तिबोध को सातवें दशक के लगभग सभी प्रगतिशील कवियों ने न केवल एक महत्वपूर्ण पूर्वज माना है, बल्कि बहुत हद तक उनकी विरासत को भी सम्मान के साथ स्वीकार किया है।

सातवें दशक के प्रमुख प्रगतिशील कवियों में राजीव सक्सेना, रमेश कुन्तल-मेघ, शलभ श्रीराम सिंह, रमेश गौड़, हरीश भादानी, हरिठाकुर, अजित पुष्कल, जुगमंदिर, मृत्युंजय उपाध्याय, धूमिल और वेणु गोपाल के नाम लिये जा सकते हैं।

राजीव सक्सेना

राजीव सक्सेना के संकलन आत्मनिर्वासन तथा अन्य कविताएं में उनकी बारह अपेक्षाकृत लम्बी कविताएं संकलित हैं। ये कविताएं आज के जीवन की

बेहूदगियों को भोगते हुए, उनके खिलाफ संघर्ष करते हुए एक सक्रिय और असंतुष्ट कवि की कविताएं है। स्वयं कवि के शब्दों में सक्रियता, असंतोष और विद्रोह, एक बेचैनी, एक प्रतीक्षातुरता—यह मेरी रचना का प्रमुख स्वर है। उसको उस कसौटी पर नही आंका जा सकता जिस पर तथाकथित नयी कविता को आका जाता था। 'सवेदना या अनुभूति की प्रामाणिकता,' 'ईमानदारी', 'तटस्थता', 'असम्पृक्तता' जैसे शब्द मेरे लिए निष्क्रिय भावबोध, परिवेश के प्रति पुंसत्वहीन समर्पण, युगचेतना की सतही समझ और छिछली रोमांटिकता के पर्याय है।[1]

राजीव सक्सेना की कविताओं को दो तीन विशेषताएं उनकी पीढ़ी के अन्य कवियों से अलग करती हैं। एक तो यह कि उनका मुहावरा तुलनात्मक रूप से कही अधिक आधुनिक है। उनकी शब्दावली, और उनका बिम्ब-विधान पश्चिम के आधुनिकतावादियों के अध्ययन के संस्कार से युक्त है, यही कारण है कि इन संस्कारों मे अपरिचित पाठक के लिए कई बार वह दुरूह हो उठती हैं। न केवल उनकी भाषा पर रोमांटिक संस्कार बिल्कुल नहीं है, बल्कि उनकी दृष्टि पर भी एंटीरोमेंटिसिज्म के गहरे प्रभाव हैं।

दूसरे यह कि यद्यपि वे मूलतः नगर बोध के कवि हैं, तथापि उन्होंने नगर की कुत्सा और विक्षेप को ही अपनी विषय वस्तु नहीं बनाया है। उनके लिए नगर-चेतना अपने समस्त अन्तर्विरोधों के साथ, भीड़ और अकेलेपन के साथ, एक महज जीवन-स्थिति है।

तीसरी है उनका भविष्यवाद। यह भविष्यवाद ही उनको क्षण-जीवी होने से बचाता है :

मेरा माथा गर्म है और शरीर कांपता है ज्वर से
मैं एक निर्मम बम के पाजिटिव-निगेटिव तारों के
छोर लिए ठहरा हूँ चढ़ते समय की प्रतीक्षा में

—आत्मनिर्वासन

यह प्रतीक्षातुरता उनकी कविताओं का एक प्रतिनिधि स्वर है :

पेपर और पेंदर, राह की रेलिंग के सहारे
मैं खड़ा हूं, समय ठहरा है सितारों में
ठहरा रहेगा कब तक अपने स्वभाव के विपरीत।

—रात पहले पहर में

---

१. एटीनीज, एक नभारता, आत्मनिर्वासन और अन्य कविताएं, पृ. ६८.

आत्मनिर्वासन तथा अन्य कविताएं संकलन का महत्वपूर्ण कविताओं में 'अस्तित्व का गीत', 'लजारस', 'एक पुराने महल में', 'एक और दिन का गीत', 'एक सिलहुट', 'राहें चलती रहीं' और 'आत्मनिर्वासन' का उल्लेख किया जा सकता है।

'अस्तित्व का गीत' अस्तित्ववादियों द्वारा उठाये हुए सवालों का एक प्रगतिशील उत्तर है :

एक महाकाव्य सी दुनिया, और
शब्दों सा हमारा अस्तित्व
सार्थकता कहां रेखांकित करते हो ?
महत्ता है निरर्थक, महत्वहीनों के बिना।
वे जो नहीं रहे, उनके अभाव-सदर्भ में
नया अर्थ पाते हैं वे जो आज हैं
और फिर कल नया संदर्भ छोड़ जाएंगे।

अपने भीतर या अन्य लोगों को नर्क मानने वाले इलियट और सार्त्र को कवि का जवाब है :

नर्क न तो कोई अन्य है
और न नर्क है स्वयं अपने अन्दर
नर्क है वहां जहां लघुतम समापवर्तक
आकांक्षा से वर्जना तुली बैठी है
पलड़ा बराबर किये।
एक दमघोटूं नर्क है अस्तित्व में गतिरोध।

और इस स्वस्थ दृष्टि के कारण ही यह दुनिया उसे एक सार्थक, महत्वपूर्ण महाकाव्य सी लगती है :

हम सब शब्द हैं, संगत—असंगत
सार्थक-निरर्थक, सब अपनी गरिमा में
मस्तक उठाकर उद्यत हैं अपनी जगह पाने को
और इस काव्य को कोई नहीं रचता :
शब्द स्वयं संघर्ष या संधि कर
अपनी अपनी जगह बना लेते हैं जुट कर
और हर बार नयी नयी लगती है
आत्मांश सी प्रिय, एक महाकाव्य सी दुनिया।

बेहूदगियों को भोगते हुए, उनके खिलाफ संघर्ष करते हुए एक सक्रिय और असंतुष्ट कवि की कविताएं हैं। स्वयं कवि के शब्दों में सक्रियता, असंतोष और विद्रोह, एक बेचैनी, एक प्रतीक्षातुरता—यह मेरी रचना का प्रमुख स्वर है। उसको उस कसौटी पर नहीं आंका जा सकता जिस पर तथाकथित नयी कविता को आंका जाता था। 'संवेदना या अनुभूति की प्रामाणिकता,' 'ईमानदारी', 'तटस्थता', 'असम्पृक्तता' जैसे शब्द मेरे लिए निष्क्रिय भावबोध, परिवेश के प्रति पुंसत्वहीन समर्पण, युगचेतना की सतही समझ और छिछली रोमांटिकता के पर्याय हैं।[1]

राजीव सक्सेना की कविताओं को दो तीन विशेषताएं उनकी पीढ़ी के अन्य कवियों से अलग करती है। एक तो यह कि उनका मुहावरा तुलनात्मक रूप से कहीं अधिक आधुनिक है। उनकी शब्दावली, और उनका बिम्ब-विधान पश्चिम के आधुनिकतावादियों के अध्ययन के संस्कार से युक्त है, यही कारण है कि इन संस्कारों से अपरिचित पाठक के लिए कई बार वह दुरूह हो उठती हैं। न केवल उनकी भाषा पर रोमांटिक संस्कार बिल्कुल नहीं है, बल्कि उनकी दृष्टि पर भी एंटीरोमेंटिसिज्म के गहरे प्रभाव हैं।

दूसरे यह कि यद्यपि वे मूलतः नगर बोध के कवि है, तथापि उन्होंने नगर की कुत्सा और विक्षेप को ही अपनी विषय वस्तु नहीं बनाया है। उनके लिए नगर-चेतना अपने समस्त अन्तर्विरोधों के साथ, भीड़ और अकेलेपन के साथ, एक सहज जीवन-स्थिति है।

तीसरी है उनका भविष्यवाद। यह भविष्यवाद ही उनको क्षण-जीवी होने से बचाता है :

मेरा माथा गर्म है और शरीर कांपता है ज्वर से
मैं एक निर्मम बम के पाजिटिव-निगेटिव तारों के
छोर लिए ठहरा हूँ बढ़ते समय की प्रतीक्षा में
—आत्मनिर्वासन

यह प्रतीक्षातुरता उनकी कविताओं का एक प्रतिनिधि स्वर है :

बेघर और बेदर, राह की रेलिंग के सहारे
मैं खड़ा हूं, समय ठहरा है सितारों में
ठहरा रहेगा कब तक अपने स्वभाव के विपरीत।
—रात पहले पहर में

१. एंटीगीत, एक संभावना, आत्मनिर्वासन और अन्य कविताएं, पृ. ६८.

'आत्म निर्वासन' में समकालीन जीवन के संकट से साक्षात्कार किया गया है, जहां सत्ताधारी देश के लिए लोगों को स्वर्ग भेजने की कोशिशें कर रहे हैं :

उनकी देशभक्ति की बातें बघारते ही
मुझे लगता है
वे अभी छुरा भौंक देंगे
मेरे पलक मारते ही
मेरी मां पड़ी है मरणासन्न
यहीं किसी वार्ड में
वे किसी थैलीशाह की खूब खेली-खायी खूसट रखैल ले आते हैं
कहते हैं : ले पूज यह तेरी माता है
वे हर जेल को कहते हैं अस्पताल
और हर अस्पताल को घर
और हर घर पर वे स्वयं बैठे हैं काले मणिधर
और अपने ही घर में
मेरा अपना निर्वासन।

इस कविता में राजीव ने अपने देशभक्तिपूर्ण परिवेश की बेहूदगियों को एक क्षुब्ध स्वर में प्रभावशाली ढंग से उभारा है।

प्रतिश्रुत पीढ़ी में संकलित राजीव सक्सेना की नयी कविताओं में 'वियत-कांग' कविता अपना एक विशिष्ट स्थान रखती है। वियतकांग विद्रोहियों को यहां एक व्यापक फलक पर रख कर प्रस्तुत किया गया है, और कवि तथा गुरिल्ला के व्यक्तित्वों को घुला मिला कर एक समग्र विद्रोही कवि के व्यक्तित्व की रचना की गयी है :

लिखे देता हूं अपने लहू से एक कविता
एक चेतावनी यातनागृह की दीवारों पर
भाड़े के सिपाहियों और लिक्खाड़ों से निर्मित
मैं संसद की हर टेबिल पर
छोड़ आया हूं हैंड ग्रेनेड।...
सातवें बेड़े पर लाद कर सारा इतिहास
मैं डुबो दूंगा प्रशान्त महासागर में
और सारे अशान्त महासागरों के किनारे
जलते हुए जंगलों और पर्वतों में
फिर मेरा देश जन्मेगा।

'लजारस' में किसी ऐश्वर्यशाली के द्वार पर रिसते हुए घावों की असह्य पीड़ा भोगते हुए मरने वाले और चार दिन बाद प्रेम के मसीहा ईसा द्वारा कब्र से उठा कर जगा लिए जाने वाले गरीब लजारस को आज की ऐश्वर्यशाली औद्योगिक सभ्यता की सम्पन्नता के दरवाजे पर अभावों की मृतप्राय: जिन्दगी जीनेवाले लाखों-करोड़ों लोगों का प्रतीक बना कर प्रस्तुत किया गया है। नगर जीवन के एक दिन की यह कहानी सार्थक प्रतीकात्मकता का अच्छा उदाहरण है। 'एक पुराने महल में' का पुराना महल जीर्ण शीर्ण होती हुई पूंजीवादी व्यवस्था का प्रतीक है, जिसे उसमें बैठा कवि, बाहर निकल कर बारूदी सुरंगे बिछा कर उड़ा देना चाहता है। 'एक सिलहुट' आज के खोखले नागरिक जीवन के बीच प्यार की स्थिति पर, हमारे वर्तमान अस्तित्व की बेहूदगियों के परिवेश में प्यार की स्थिति पर प्रकाश डालती है।

'राहें चलती रहीं' सिद्धान्तो, वादों, पन्थों को साधन से साध्य बना कर उन पर चलने वाले लोगों को साधन बना देने की स्थिति की बेहूदगी को रेखांकित करती है :

राहें चलती रहीं हमारे कंधों पर चढ़ी हुई
हम ढोते रहे अपने होने का बोझ, हां राहें चलती रहीं।

लेकिन जब लोगों ने अपने कंधों से इन राहों को उतार फेका और वे स्वतंत्र हो गये, तब ?

हम सबने उतार कर फेंक दी हैं ये राहें
राहों के किनारे खड़े हम सब अब "मैं" हैं।
'मैं और मैं' के बीच दौड़ है, और इस होड़ में
हम नहीं जीतते हैं, जीतते हैं, वे जो सिक्का लगाते हैं
दांव पर उनका बस सिक्का है, हमारी जिन्दगी।
हम सिर्फ हारते हैं, थकते हैं, टूट कर गिरते हैं
राहें रेस कोर्स की रेस नहीं करतीं, केवल हम दौड़ते हैं
विजेता-पीठ थपथपा कर 'मैं' और 'मैं' का भेद बढ़ा जाते हैं
'मैं' हिन हिनाते हैं सगर्व
मेरी राह, मेरी राह... हम सभी चीखते हैं
और विजेता मोटर पर सवार चले जाते हैं।

इस स्थिति से बचाव तभी है, जब

राहें हमारे लिए होंगी... हम राहों के लिए नहीं।

कदा छपती रहती हैं। उनकी प्रारम्भिक कविताओं में सातवें दशक की कई विरोधी काव्य-प्रवृत्तियों के प्रभाव एक साथ दिखाई पड़ते हैं, पर दशक की समाप्ति के आसपास का उनका काव्य-सृजन अधिकाधिक मिलिटेन्ट और उग्र विद्रोही स्वरों को अभिव्यक्ति देता हुआ उनके कवि को एक निश्चित व्यक्तित्व प्रदान करता है। एक ईमानदार बुद्धिजीवी की तरह वे देश के नित्यप्रति बढ़ते हुए सामाजिक संकट से सीधा साक्षात्कार करते हुए उग्र से उग्रतर स्थितियों तक पहुंचते गये हैं।

कुन्तलमेघ की कविताओं में कहीं प्रकृति का समकालीन औद्योगिक जीवन से लिए गये बिम्बों से चित्रण है :

तूफ़ान, मेल, एक्सप्रेस गाड़ियों के एंजिनों का
भाप औ तुहिन औ धुंध भरा लोकोशेड
बन जाते हैं पहाड़ आधीरात में एक बजे—
जब चारों ओर, आगे-पीछे, दायें-बायें, ऊपर-नीचे
बल्ब औ न्योन रोशनियां
फबती हैं झिलमिला इलेक्ट्रोनिक चन्द्रमाओं-सी।

—वर्षा में मसूरी

तो कहीं समकालीन जीवन में कवियों के 'कमाऊ' बनते जाने की विडम्बना को सशक्त अभिव्यक्ति मिली है :

तभी मुझे लगा कि
कवि और कपि में, प्रेमी और पाखण्डी में, कविता और चेक में
केवल एक रहस्यपूर्ण गली का फ़र्क़ है
क्योंकि मुखौटे दुहरे व्यक्तित्व को दबा देते हैं

... ...

अच्छा ही हुआ कि वह अब कवि नहीं है
क्योंकि वह परिवर्तन का विराट् अस्वीकार चुका है
वह बीड़े-पीते मुक्तिबोध के ओरांग उटांग से भयभीत है
वह हीरामन के मुक़ाबले राजकपूर की दौलत से ललचाता है
वह चुनाव का चंदा देकर देश भक्त बनता है
और फेक्ट्री लगाकर राष्ट्र निर्माता हो जाता है
वह अवसरवाद को यथार्थवाद बतलाता है
इसीलिए वह मूल्यों को
पराजित स्वप्न द्रष्टाओं का कैंसर बताता है

ऊपर मैंने राजीव सक्सेना के आधुनिक मुहावरे की बात कही है। उनकी कुछ ऐसी अभिव्यक्तियां यहां रेखांकित की जा सकती है :

शोक समाचार के मोटे मोटे हाशियों से पेड़ गहराये
घिसे पिटे रस्मी संवेदना संदेशों सी हवाएं

... ...

किन्तु मौन बेयरे का प्लेट पर छोड़ जाना एक प्रश्न
और सहसा मेज की खामोशी

... ...

पहली नजर का प्यार : यह भी है चमत्कार
वैसा ही जैसे मध्य वर्ग से
पहली ही मांग पर वापस मिल जाय छोटा सा उधार।

—एक सिलहुट

और

एक बैंक की इमारत सा भव्य प्यार
राह पर खड़ा है, भुनभुनाकर पूछता है
क्या है भुनाने को।

—राहें चलती रहीं

पर इस आधुनिक मुहावरे के साथ ही साथ कभी कभी कुछ रुग्ण और कुत्सित बिम्ब भी, कुछ टुच्चे और नंगे शब्द भी, उनकी अभिव्यक्ति में आने लगे हैं।[२] यह उन पर उनके समानान्तर लिखी गयी कुत्सित और ऊल-जलूल कविता का असर है। पर उनका इधर का काव्यसृजन इस प्रकार के प्रभावों से अपनी मुक्ति को रेखांकित करता है, जो अकवितावादियों को अपने साथ ले लेने के झूठे मोह के कारण उन पर पड़ने लगे थे।

रमेश कुन्तलमेघ

अपनी विस्तृत अध्ययनशीलता के लिए प्रख्यात नये आलोचकों में एक महत्वपूर्ण हस्ताक्षर डॉ. रमेश कुन्तलमेघ, सातवें दशक के हिन्दी कवियों में भी अपना स्थान रखते हैं। यद्यपि उनका कोई कविता संकलन तो अभी प्रकाशित नहीं हुआ है, पर समसामयिक लघुपत्रिकाओं में उनकी कविताएं यदा

---

२. उदाहरण के लिए उनकी युयुत्सा (दिसम्बर ६६) में प्रकाशित कविताओं में।

वे सब केवल मांगते हैं राज
ताकि महात्मा गांधी का फूलेफले राम राज !

स्पष्ट ही कविता में नक्सलवाद का लेबल लगा कर व्यक्तिगत या संस्थागत विरोधियों पर किये जाने वाले नृशंस अत्याचार की समकालीन वीभत्सता को नंगा किया गया है। किसी भी ईमानदार बुद्धिजीवी की तरह कवि यह सब देखता है, क्षुब्ध होता है और भड़कता है :

चुन चुन कर हर तरह का सार्थक कत्ल हो रहा है
हर समवेत चीख को कुचलने का
महान प्रजातांत्रिक अभियान चल रहा है
केवल अकेला मैं
बेहद परेशान और चिड़चिड़ा
कायर और नायक, क्रूर और भावुक हो रहा हूं
जुल्म देख रहा हूं, गुमसुम सड़ रहा हूं।

ऐसे जुल्म देख कर कोई भी अपनी दृष्टि खो सकता है, जिघांसु और हिंस्र हो सकता है, पर कवि जानता है कि 'इस जख्म का इलाज कत्ल नही है' और न आत्महत्या ही है। इनके अतिरिक्त ही कुछ करना होगा।

शलभ श्रीराम सिंह

शलभ सातवें दशक के उन प्रतिबद्ध कवियों में से एक है, जिनकी प्रतिबद्धता मात्र अपने सीमित-विस्तृत, त्रासद-संभावनापूर्ण क्रूर-सह्य परिवेश के प्रति ही नहीं, सामाजिक-परिवर्तन और क्रान्ति के दुर्दान्त मानववादी आदर्शों के प्रति ही नही है; कविता और कविकर्म के प्रति भी पर्याप्त गहरी और आसक्तिपूर्ण है। कविकर्म उनके जीवन का एक गौण कार्य नही है, वे शब्द के गहरे अर्थों में 'कवि' हैं, मूलतः एक कवि !

सुनता हूं कभी वे बड़े सुन्दर गीत लिखा करते थे और कवि सम्मेलनों में उनके नाम की बड़ी धूम थी, कभी उन्होंने गजलों के माध्यम में प्रयोग किये तो सैकड़ों गजलें लिख डाली, पर जब समसामयिक ढंग की कविता के प्रति उनकी सम्पृक्ति हुई, उन्होंने अपने पहले के गीतकार और गजलगो को इस कदर दफना दिया कि उसका कोई नाम लेवा भी न रहे। समसामयिक कविता के दो आन्दोलनों—नवगीत और युयुत्सावाद—के साथ उनका नाम जुड़ा हुआ है। नवगीत के आन्दोलन को उन्होंने आगे बढ़ाया और बाद में उसे छोड़ कर युयुत्सावाद के आन्दोलन का एक तरह से प्रवर्तन ही किया।

इधर उनकी एक सशक्त कविता 'जख्म' मिथक नामक एक पैम्फलेट में छप कर आयी है। यह कविता उनके उग्र विद्रोही रूप का अच्छा प्रतिनिधित्व करती है :

इस जख्म का इलाज कत्ल नहीं है
इसका निदान चरक और सुश्रुत ने
नहीं किया आत्महत्या में
कानून में भी नहीं है इसका उपचार
(न एफीडेविट, न हेवियस कार्पस)
हर व्यवस्था का तामझाम इसे पैदा करता है
और कफन में खंजर छिपाता है
इस जख्म का इलाज कत्ल नहीं है।

पर उनके दिल पर लगा हुआ यह जख्म इतिहास का जख्म है सामाजिक नियति की द्वन्द्वात्मकता का जख्म है, व्यक्तिगत नही है :

यह व्यक्तिगत होता तो
मैं रेडियम के टयूबों से अपनी छाती सिकवाता
देशभक्त-क्लबों में बैठ कर भारत सुन्दरी का चुनाव देखता
कोठी और कार के लिए तुर्प चालें चलता
मगरमच्छों को आदि शंकराचार्य बताता

कविता की रग रग मे बसा हुआ विद्रोह अकवितावादियो और अप्रतिश्रुत कवियों के विद्रोह की तरह हवाई, अमूर्त या केवल लफ्फाजी से भरा विद्रोह नही है। वह ठीक अपने सामने घट रही क्रूरताओं से सीधा साक्षात्कार करता है और चीजों को उनके सही नाम से पुकारने का साहस दिखाता है :

परसों वे गिद्धों की तरह उस नौजवान पर झपटे
केशों के बल लटकाया, पट्टी बांध अंधाया
और दौड़ दौड़ कर हुमकते हुए लाठी मारते रहे आठ घंटे
उससे राज मांगते रहे बहत्तर घंटे
उससे एक दिन पहले वे उस बुद्धिजीवी को पकड़ कर ले गये
दो हजार वाट के बल्ब आंखों पर जलाते रहे
छः रातों जगाते रहे और अस्थाओं को
झूठा कबूलवाते रहे।

... ...

शलभ की कविताओं का संसार, जैसी कि, 'युयुत्सावाद' जैसे नाम के कारण आशंका हो सकती है, कोरा राजनीतिक या मात्र अराजक विद्रोही या सिर्फ लड़ाकू शब्दावली का सीमित संसार नहीं है, वह अपनी तमाम बीभत्सताओं और कुरूपताओं के साथ आज का जीता-जागता, धड़कता-कड़कता हुआ वास्तविक संसार है, जिसके प्रति शलभ कभी रागात्मक तो कभी बोधात्मक प्रतिक्रियाएं शक्तिमत्ता के साथ व्यक्त करते हैं।

संकलन में, और पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित उनकी सैकड़ों कविताओं में से दो-तीन विशिष्ट उल्लेखनीय कविताओं की चर्चा यहां करना अप्रसंगिक न होगा। ऐसी कविताओं में 'दर्पणों के बीच', 'कविता लिखने के जुर्म में', तथा 'हर बरस की तरह' के नाम लिये जा सकते हैं।

'दर्पणों के बीच' अपने गांव को छोड़ कर शहर के बेगाने परिवेश में जीने के लिए लाचार हृदय की रागात्मक सम्पृक्तियों को और उस बेगाने परिवेश में अपनेपन की तलाश को सशक्त अभिव्यक्ति देती है :

मैं किसी अजनबी शहर में आ गया हूं
जहां—नल पर नहाती सुबहें
फाइलों पर झुकी दोपहरें
और खांसती-बीमार रातें
एक पल भी चैन से जीने नहीं देतीं

और गांव में उसका जो कुछ छूट गया है, वह सब घिर-घिर आता है। क्या कुछ छूटा है उसका गांव में ?

वह धूपवाली एक टुकड़ा बदली : मां!
ईरानी गुलाब की शाख : पत्नी!
धानी पत्तियों वाली ईख : बहन!
नीम का नौधा पेड़ : भाई!

कितने सार्थक, स्वस्थ और प्रसन्न मनस्कता से उत्पन्न, सुन्दर और सुगठित बिम्बों के माध्यम से उसने अपने राग को अभिव्यक्ति दी है, सातवें दशक की आम युवा कविता ने अपने आपको इस भरे-पूरे संसार से तोड़ कर इसी रागात्मक ऐश्वर्य से वंचित कर लिया है।

इसी ग्राम्य, पारिवारिक, हरी-भरी रागात्मकता को एक तरल अभिव्यक्ति मिली है 'हर बरस की तरह' में :

हर बरस की तरह फिर इस साल
बन्द है पीले लिफाफे में—

फल सुबह होने से पहले (६६) उनका एकमात्र प्रकाशित संकलन है, पर अन्य अनेक समवेत संकलनों में उनकी कई कविताएं संकलित हैं, ऐसे संकलनों में प्रमुख हैं चन्द्रदेव सिंह और नवल द्वारा संपादित पांच जोड़ बांसुरी और अप्रस्तुत। फल सुबह होने से पहले में छपे कवि के परिचय में शलभ को 'नवगीत' या 'नयी कविता के गीत' के ऐसे कवि कहा गया है, जो अपने समय के साथ विवेकपूर्ण ढंग से जुड़ना चाहते हैं। यद्यपि इस सकलन में 'आग की खदान में उतरती शताब्दी' जैसी सामाजिक यथार्थवादी रुझान की भी कविताए है, तो भी अधिकाश मे इस संकलन का स्वर मुद्रित परिचय के अनुकूल ही है।

लेकिन समसामयिक कविता में शलभ का व्यक्तित्व एक युयुत्सावादी कवि के रूप में ही अधिक भास्वर हुआ है। 'युयुत्सावाद' नयी कविता की तटस्थतावादी-निष्क्रियतावादी परपरा से अपने को तोड़ने और एक नये सार्थक सिलसिले के साथ अपने को जोड़ने की युवा कवियो की उस मूलभूत तलाश की ही एक अभिव्यक्ति थी जो 'आज की कविता' और 'प्रतिश्रुत कविता' जैसे समानान्तर आन्दोलनो के रूप मे भी व्यक्त हुई। युयुत्सावाद का आन्दोलन स्वयं शलभ द्वारा संपादित युयुत्सा और स्वदेश भारतीय द्वारा संपादित रूपाम्बरा पत्रिकाओं के माध्यम से आगे बढ़ा, लेकिन स्वयं शलभ के अतिरिक्त किसी महत्वपूर्ण युवा हस्ताक्षर को उभार नही पाया। फिर भी उसने समसामयिक कविता मे वामपक्षी क्रान्ति-प्रतिश्रुत रुझान को पोषण दिया और मजबूत किया, इसमें संदेह नहीं। 'युयुत्सावाद' मूलतः एक स्वस्थ-विद्रोही और दृष्टिवान प्रगतिशील आन्दोलन था। युयुत्सा के सम्पादकीय की ये पक्तियां इसका प्रमाण हैं: "फैशन के नाम पर अधाधुध साहित्य लिखने वाले लेखकों की एक भीड़ अनजाने इस षड्‌यत्र की जड़ मजबूत करने में लगी हुई है। व्यक्तिगत स्थापना की लालसा इन लेखकों को मूल बिन्दु से हटा कर एक ऐसी आधुनिकता के समीप ले जा रही है, जहा जातीय बोध आधारहीनता की स्थिति को सहज ही प्राप्त होता जा रहा है। इसका एकमात्र और भयानक कारण यह है कि आज साहित्य और जनसाधारण के बीच एक तीसरा व्यक्ति आ गया है। ...आवश्यकता है गलत हाथों की पकड़ से यान्त्रिकता को मुक्त कराने के लिए सतुलित विद्रोह की।"[३] पर इसके अपरिपक्व समर्थकों ने आगे चल कर इसके मूल नक्शे को बहुत कुछ धुधला दिया और स्वयं शलभ को यह स्वीकार करना पड़ा कि 'हम स्वयं से अधिक बीटनिक दिखने लगे हैं'[४]। खैर।

---

३. युयुत्सा, अक्तूबर ६६.
४. युयुत्सा, जनवरी ६७.

रमेश का परवर्ती विद्रोही स्वर मिलता है : 'शताब्दी की टूटती हथेलियां' और 'क्रास पर चढ़ने से पूर्व कवि वक्तव्य' में। पहली कविता में वे अपनी चिथड़े-चिथड़े हो चुकी हथेलियों के लिए किसी सहानुभूति का मरहम नहीं चाहते, वरन चाहते हैं कि अन्य लोग भी उनकी तरह अंधेरे के कपाटों को पीटें। दूसरी में वे अपने मन-मस्तिष्क पर सील लगवा लेने, अधर सिलवा लेने और अपने सिद्धान्तों को क्रास पर चढ़ा लेने से पहले की रात पूरे कंठ से गाने, हर बन्द द्वार पर दस्तक लगाने और जरूरत हुई तो शोर मचाने की भी घोषणा करते हैं।

लेकिन निषेध में उनकी कई सशक्त कविताएं संकलित हैं। इन कविताओं में आज के जटिल और क्रूर सामाजिक परिवेश में जीने की विडम्बनाएं हैं, विरासत में मिली हुई सड़ी हुई परम्पराओं का सम्पूर्ण निषेध है, 'कहीं कुछ नहीं होता' का कुंठित निराशा का स्वर है, अपनी पीढ़ी और उसके संघर्षों की व्यर्थता का बोध है, पर एक नयी अभी अभी जन्मी परंपरा से अपने को जोड़ने का प्रयत्न भी है, इतिहास में अपने समसामयिक मानस-मैथुनरत बुद्धिजीवियों से अपने अलग गिने जाने की आकांक्षा भी है, और है अपनी शहादत के ढोल की आवाज में बदलता हुआ विद्रोह का स्वर भी।

राजीव सक्सेना का रमेश गौड़ को उन विद्रोही युवा कवियों की कतार में रखना उचित ही है, जो सोचते हैं कि आम-जनता की विद्रोह चेतना के असमान और धीमे विकास के कारण आज की विद्रोही पीढ़ी को हार कर एक कटुता के साथ ही अपनी मौत स्वीकार करनी होगी और शायद इतिहास में इसका जिक्र एक व्यर्थ खोई हुई पीढ़ी के रूप में ही हो। इसी संभावित व्यर्थता की निराशा ने इन कवियों के विद्रोही स्वर को अपनी शहादत के ढोल की आवाज में बदल दिया है।[५]

समकालीन क्रूरता के परिवेश में जीने की शर्तें और मजबूरी को 'शर्तें' और 'आत्म स्वीकृति' की इन प्रभावशाली पंक्तियों में वाणी दी गयी है :

मुझे खुद में अपने ही हाथों से चाबी भर
अपनी ही मेज पर खुद को नचाना है
(खुश होकर पीटती हैं तालियां)
चौराहे से चारों ओर फूटती सड़कों पर
मुझे एक साथ जाना है
और फिर (सब लोगों के होते हुए)

---

५. राजीव सक्सेना : रेवल्स इन हिन्दी पोइट्री, न्यू वेव, ११ जून १९७२.

एक नन्हा गीत
एक मीठी याद
एक चुटकी रंग और गुलाल

गांव की बिरहिन की व्यथा का एक मर्मस्पर्शी चित्र इस कविता मे खीचा गया है।

'कविता लिखने के जुर्म' में समकालीन भारतीय जीवन की एक भयावह बेहूदगी—साम्प्रदायिकता—के विरुद्ध शलभ के जागरूक मानवीय मन की रागात्मक-बोधात्मक प्रतिक्रियाएं व्यक्त हुई है। साम्प्रदायिकता की वीभत्सता को यहा मुहब्बत की उस सगीतिक पृष्ठभूमि पर रख कर चित्रित किया गया है, जो एक गैर मामूली और सर्वाधिक इन्सानी जज्बा है। और कविता के बीच समकालीन यथार्थ के एक अंग रूप में उभर आता है अकाल और आतंक का यह रंग :

फटी जमीन वाला ऐसा इलाका
जहां जिन्दगी की हिफाजत के लिए
पेड़ों की पत्तियों तक का इस्तेमाल कर लिया गया हो
और नंगी सूखी डालों पर
चिड़ियों की जगह
फड़फड़ा रही हो दहशत

रमेश गौड़

रमेश गौड़ की कविताओं का कोई स्वतंत्र संकलन अभी तक नही निकल सका है, और यह एक विडम्बना ही है कि वाणिज्यीकरण की चुनौतियों के बीच अपनी कविता की रक्षा के लिए उन्हे दो दो बार जगदीश चतुर्वेदी जैसे रुग्णतावादी-निषेधवादी कवि, पर प्रकाशन-सुविधा से सम्पन्न सम्पादक के सकलनों में अपनी कविताओं की सम्मिलिति सहनी पड़ी है। संकलित रूप मे उनकी कविताए प्रारम्भ (६३) और निषेध (७२) में देखी जा सकती है।

प्रारंभ मे, जैसा कि स्वाभाविक ही है, एक तो उनकी प्रारभिक कविताएं ही संकलित की गयी हैं और दूसरे, मेरा अनुमान है कि, उनके चयन में भी सपादक के व्यक्तित्व का दबाव अधिक रहा है, परिणाम स्वरूप इन कविताओं में रमेश को अपनी इकाई की चिन्ता, 'संदर्भहीन शब्द की तरह छिटक कर दूर पड़ी' अपनी स्थिति का बोध, 'अपने होने की अनुभूति से भय' तथा 'अपने होने की नियति' का भोक्तापन ही अधिक सताता है। दो ही कविताएं ऐसी हैं जिनमें

मुझे, हां सिर्फ मुझे ही चक्रव्यूह ढहाना है
—क्योंकि यह जीने की अनिवार्य शर्त है !

... ...

एक ही वक्त में
पहन कर उतारने पड़े हैं मुझे
कई एक आवरण
कई एक चेहरे
कई एक जिस्म
एक ही वक्त में पुकारा गया हूं मैं
इतने अलग अलग नामों से कि आज
मुझे अपना असली नाम भी (अगर कोई हो तो)
याद नहीं रहा है।

अपने विद्रोही स्वर और कलात्मक संश्लिष्टि के लिए उल्लेखनीय—रमेश गौड़ की कविताओं में 'मेरी पीढ़ी : एक आत्म स्वीकृति,' 'पिता के लिए एक कविता', 'बंदा वेल' और 'कहीं कुछ नहीं होता' के नाम लिये जा सकते हैं।

'मेरी पीढ़ी : एक आत्म स्वीकृति, में वे अपने समसामयिक अस्तित्ववादी कवियों की पीढ़ी के साथ तादात्म्य-सा स्थापित करते हुए मेरी पीढ़ी कह कर उसकी मूलभूत कमजोरियों का अच्छा उद्घाटन करते है। इसे वे एक ऐसी पीढ़ी कहते है जो काठ की खाली म्यानों को हवा में उछालने के ख्वाब देखती हैं, पर वास्तविकता यह है कि उसका मन किसी के साथ क्या अपने साथ भी कोई लगाव महसूस नही करता, उसकी राह के एक सिरे पर बिच्छू-घाटी है और दूसरे पर अंधी गुफा; उसने अगर आत्मघात नही किया तो सिर्फ इसलिए कि वह इन्तजार कर रही थी, इन्तजार : मुर्दों के टीले पर सूरज के जन्म का, सिले हुए ओठों पर अनजन्मे छन्द का, पर कुछ भी नही हुआ, कोई दर्द कोई दर्प कोई दुआ काम नही आयी, क्योंकि सूरज जिस हाथ की मुट्ठी मे बद था, उसे वह तकिये पर सिर के नीचे रखे सोती रही ! कविता का अन्त शहीदाना आशा-वादी है। पर पूरी कविता का भावबोध वही है जो 'नयी कविता' का था, और भी निश्चित रूप से कहा जाय तो 'हम सब के हाथों में टूटी तलवारों की मूठ' वाली परवर्ती नयी कविता का पराजित भावबोध।

'पिता के लिए एक कविता' परम्परा-विद्रोह की एक सशक्त अभिव्यक्ति है। 'पिता' यहां कवि के व्यक्तिगत पिता के लिए नही, उसके समवयस्कों की संपूर्ण पिता पीढ़ी के लिए संबोधित है, जिसने उसे टी. बी. के कीटाणुओं वाला

जिस्म और धर्म और जाति से गंधाता नाम' (रमेश गौड़) ही नही दिया, आपतकालीन स्थिति, डी. आई. आ.र., कर्ज में डूबा हुआ भविष्य, उड़ते हुए शान्ति कपोत, बरसते हुए नापाम बम, और उन्तालीस मंजिला इमारत (संयुक्त राष्ट्र संघ) से जारी किये जाने वाले ऐलान भी दिये हैं। कविता में कवि अपने देश की पिता-पीढ़ी के दाय का एक मूल्यांकन सा करता हुआ उसकी विरासत को नकारता है :

नहीं, यह मुझसे नहीं होगा
अब मैं टुकड़े टुकड़े होकर तुम्हारे किसी भगवान् के शेर का
भोजन बनने के लिए तैयार नहीं हूं
तैयार नहीं हूं तुम्हारी धर्म-रक्षा के लिए
अपने पुत्र का आधा कफन फाड़ देने
या जलते हुए डेक पर खड़े रहने को।

'वंश बेल' में वह इन पुराने आदर्शों और परंपराओं को ही नही नकारता, इनको अपने जीवन में आकार देने वाले अपने पूर्वजों को अपने पूर्वज मानने से ही इनकार कर देता है और एक नयी परंपरा के साथ अपने को जोडता है, कुछ अलग तरह के लोगों की विरासत को अपनी विरासत की तरह स्वीकार करता है :

हम उन अनाम सैनिकों की संतान है
जिनका नाम लिखा नहीं गया किसी कीर्ति स्तंभ पर
हमारा जन्म किन्हीं उन कोखों से हुआ है
जो एटम बम गिरने पर
फटे हुए गुब्बारे की खाल सी इधर उधर छितरा गयीं
हमारे माथों पर आशीष की तरह टिके हुए हैं आज भी
वे कटे हुए हाथ
जिनका गुनाह कोई ताजमहल गढ़ना था

'कहीं कुछ नही होता' का स्वर यद्यपि थोड़ा निराशावादी है, पर उसका यथार्थवाद मर्मस्पर्शी और प्रभावक है। बड़ी से बड़ी घटना से लोग अप्रभावित-असपृक्त जीते चले जाते हैं। अलस्सुबह हुई लुमुम्बा और हेमरशोल्ड, और केनेडी और मार्टिन लूथर किंग की हत्याएं और भाभा और गागारिन की दुर्घटनाएं नौ बजते बजते लिपट जाती हैं दफ्तर जानेवाली रोटियों पर और दोपहर तक पहुंच जाती हैं रद्दी की टोकरियो मे। अगर कोई परिवर्तन होता

है तो यही कि लाल टोपी पहन कर गया हुआ विधायक सफेद पहन कर लौट आता है। और कुछ भी नहीं बदलता, न स्वागत समारोह, न भाषण। भेड़ों का जुलूस राष्ट्रगान गा रहा है, सदन में विभीषणों का राजतिलक हो रहा है, राष्ट्रकवि बजट की प्रशंसा में कविता पढ रहे और भांड भारत-साम्राज्ञी के पुत्र की शादी पर सेहरा। कुछ नही होता। बस एक पागल अपने घायल नाखूनों से खंदकें खोदता है अपने छुपने के लिए।

एक सांस्कृतिक स्तर पर परंपरा-विद्रोह रमेश गौड़ की कविताओं की एक चारित्रिक विशेषता है। विद्रोह का यह आयाम इतने प्रखर रूप से सातवें दशक के किसी अन्य कवि मे नही मिलता। लहर मे प्रकाशित एक और कविता 'आश्वस्ति' में भी इस भावबोध को अच्छी अभिव्यक्ति मिली है। वृद्धो द्वारा परंपरा के नाम पर नव युवकों का नैतिक और भावात्मक शोषण उन्हें आक्रोश से भर देता है। पर उनका परंपरा-विद्रोह कैलाश वाजपेयी या अकवितावादियों की तरह का निहलिस्टिक या सर्वनाशवादी नही है, मृत परंपराओं के विरुद्ध खड़े होते हुए वे अपने आपको मानवीय अतीत की ही एक दूसरी जीवन्त और विद्रोही परंपरा के साथ अनायास ही जोड़ लेते है।

हरि ठाकुर

हरि ठाकुर सातवें दशक के एक ऐसे कवि है, जिन्होंने ऐन साठोत्तरी मुहावरे में, जो नयी कविता की बूर्ज्वा शिष्टता और शालीनता से बिल्कुल मुक्त है, लेकिन फिर भी 'अकवितावादी' कुत्सा नही उछालता, ठोस प्रगतिशील कविताएं लिखी हैं। उनका संकलन **लोहे का नगर** इस दृष्टि से इस दशक के महत्वपूर्ण संकलनों मे से एक है। हरि ठाकुर एक क्रुद्ध और युयुत्सु ही नही, एक क्षुब्ध और व्यंग-विद्रूप से भरे कवि भी हैं। अपने औद्योगिक-पूंजीवादी परिवेश की बेहूदगियां उनकी कविताओं का मुख्य विषय है। समसामयिक भारतीय जीवन का क्रूर यथार्थ उनकी एक एक कविता से झांकता है :

कोई भी निराला
डाला जा सकता है आले में
अथवा टाला जा सकता है
जब बंटती है खैरात पद्मश्री-पद्मभूषणों की।
अंधे सरदूषणों के हाथों बंटती रेवड़ी
झंडों और टोपियों के बदलते युग में
तमाम हुल्लड़बाज टिल्लू नेता

कुर्सियों की कामुक टांगों से लिपट गये हैं
सर्पों की तरह

कितनी मार्मिक है इस जीवन की यह विडम्बना कि :

लोग
अमरीकन गेहूं के लिए लड़ते हैं
वियतनाम की तरह राशन की दूकानों पर
बढ़ते हैं लेकर झोला
जैसे मोर्चे का सिपाही
लौटकर बीवी से बटोरते हैं वाहवाही

संकलन की महत्वपूर्ण कविताओं में 'वस्तुस्थिति', 'मैंने एक आदमी देखा', 'युग बोध,' 'लोहे का नगर,' 'नपुंसक व्यक्तित्व','पैसे की थूक चाटते हुए', 'जनतंत्र' और 'शीघ्र जन्म लेने वाले शिशु के प्रति' मुख्य हैं। इन कविताओं में आज के हमारे जीवन का यथार्थ कहीं बहुत ही उपयुक्त बिम्बों और कहीं बिल्कुल सटीक फिकरों में व्यक्त हुआ है। सटीक अभिव्यक्तियां इतनी प्रचुर है कि उद्धरण पर उद्धरण दिये जा सकते हैं। 'वस्तुस्थिति' को देखिए :

यह गलत है कि
पैसा हाथ का मैल हो गया है
सच यह है
कि आदमी पैसे का खेल हो गया है
गधा
चरने लगा है कुर्सियां
और सींग लगाकर बैल हो गया है।

आवेदन पत्र दे देकर एक आदमी की हालत यह हो गयी है :

मैंने एक आदमी देखा
जिसका चेहरा आवेदन पत्र था
माथे पर चस्पा था डाक-टिकिट
और पावों में दफ्तरों का चक्कर था...
मैंने देखा
वह बिल्कुल घिस चुका था
उसकी देह केवल झाड़ू के काम आ सकती थी
और वह कचरा ढो सकता था।

है तो यही कि लाल टोपी पहन कर गया हुआ विधायक सफेद पहन कर लौट आता है। और कुछ भी नही बदलता, न स्वागत समारोह, न भाषण। भेड़ों का जुलूस राष्ट्रगान गा रहा है, सदन में विभीषणो का राजतिलक हो रहा है, राष्ट्रकवि बजट की प्रशसा में कविता पढ़ रहे और भांड भारत-साम्राज्ञी के पुत्र की शादी पर सेहरा। कुछ नही होता। बस एक पागल अपने घायल नाखूनो से खंदकें खोदता है अपने छुपने के लिए।

एक सांस्कृतिक स्तर पर परपरा-विद्रोह रमेश गौड़ की कविताओं की एक चारित्रिक विशेषता है। विद्रोह का यह आयाम इतने प्रखर रूप से सातवें दशक के किसी अन्य कवि मे नहीं मिलता। लहर में प्रकाशित एक और कविता 'शाश्वस्ति' में भी इस भावबोध को अच्छी अभिव्यक्ति मिली है। वृद्धों द्वारा परंपरा के नाम पर नव युवकों का नैतिक और भावात्मक शोषण उन्हें आक्रोश से भर देता है। पर उनका परंपरा-विद्रोह कैलाश वाजपेयी या अकवितावादियो की तरह का निहलिस्टिक या सर्वनाशवादी नही है, मृत परंपराओं के विरुद्ध खडे होते हुए वे अपने आपको मानवीय अतीत की ही एक दूसरी जीवन्त और विद्रोही परंपरा के साथ अनायास ही जोड़ लेते हैं।

हरि ठाकुर

हरि ठाकुर सातवें दशक के एक ऐसे कवि हैं, जिन्होंने ऐन साठोत्तरी मुहावरे में, जो नयी कविता की बूर्ज्वा शिष्टता और शालीनता से बिल्कुल मुक्त है, लेकिन फिर भी 'अकवितावादी' कुत्सा नही उछालता, ठोस प्रगतिशील कविताएं लिखी हैं। उनका संकलन **लोहे का नगर** इस दृष्टि से इस दशक के महत्वपूर्ण संकलनों में से एक है। हरि ठाकुर एक क्रुद्ध और युयुत्सु ही नही, एक क्षुब्ध और व्यग-विद्रूप से भरे कवि भी हैं। अपने औद्योगिक-पूंजीवादी परिवेश की बेहूदगियां उनकी कविताओं का मुख्य विषय है। समसामयिक भारतीय जीवन का क्रूर यथार्थ उनकी एक एक कविता से झांकता है :

कोई भी निराला
डाला जा सकता है आले में
अथवा टाला जा सकता है
जब बंटती है खैरात पद्मश्री-पद्मभूषणों की।
अंधे खरदूषणों के हाथों बंटती रेवड़ी
सांडों और टोपियों के बदलते युग में
तमाम हुल्लड़बाज टिल्लू नेता

पढ़ाते हैं पहाड़ा सोलह दूनी आठ का
जनता को
और खुद सोलह दूनी चौसठ हो गये हैं।

हरीश भादानी

हरीश भादानी ने अपने कवि जीवन का प्रारंभ रूमानी गीतों से किया। उनके प्रारंभिक चार गीत संकलनों की अधिकाश रचनाएं प्रेम और सौन्दर्य की, मिलन और विरह की रूमानी अभिव्यक्तिया ही है। अपनी सन साठ के बाद की चुनी हुई कविताओ को उन्होंने 'सुलगते पिंड' (६६) शीर्षक से प्रकाशित किया है।

सुलगते पिंड गीत की ही लय मे लिखी हुई उनकी मुक्त, अधिकतर प्रगतिशील भावभूमि की, कविताओं का संकलन है। किसी कविता में वे विरासत में प्राप्त चादर की सीवनें उधेड़ कर देखना चाहते है कि उसमें कितने जोड़ और कितने सूत के धागे है कि वह हमारी नग्नता को सम्पूर्णता के साथ ढांप भी सकती है या नही, किसी में सब अपनो पर वे मुट्ठी भर भर विस्मृतियो की राख फेंकना और संक्रामक स्याही मे डुबो डुबो कर दूरी की कलम फेरना चाहते है, कही बूढ़े सूरज की नवेली सहचरी सध्या के जाये हुए कुछ अवैध सपनो का अग्नि संस्कार करना चाहते हैं कि उनकी लाशों की दुर्गन्ध कवि की सांसों को दुर्गन्धा न दे; कही उन्हें कच्ची मौसमी दीवार के उस पार जन्मने के लिए अकुला रही एक अरुणा-ज्योति दिखाई देती है, कही वे कहते हैं कि उनके काव्य मे अपनी और पराई पीड़ाए ऐसे एकाकार हो गयी हैं, जैसे सागर में नदियों के अलग अलग चेहरे बताना मुश्किल होता है, कही वे सुविधावादियों और समझौतावादियो को संबोधित करते हैं कि उनके लिए सुविधाई न्यौते और सुखछापी सिक्के नगण्य है, बौने हैं; कही कहते हैं कि मैंने अपना सब कुछ अपने-परायों को दे दिया है, सिर्फ एक ईमान ही अपने पास रख रक्खा है, कही दिन-ब-दिन बदतमीज होती जाती भूख उनकी कविता का विषय बनती है तो कही अधिक गंदी होती जाती हुई इस धरती को आग से धोने की उनकी इच्छा व्यक्त होती है। एक कविता में वे आदमी की संज्ञा से शापित शरीरो को, उजाले से डरे हुए अंधेरे के आसक्तों को, ताड़-पत्ती-पोथियों के पूजकों को ललकारते हैं कि वे आत्महत्या कर लें, वक्त रहते ही मर जायं और उन्हें विश्वास दिलाते हैं कि उनके शवों को उचित सम्मान दिया जायगा। एक अन्य कविता में वे अपने से ही गर्भस्थ भ्रूणों से, जन्म लेना चाहने वाले अपने ही हमरूपों से अनुरोध करते हैं कि वे अभी जन्म न लें, क्योंकि :

'नपुंसक व्यक्तित्व' आज के आम कामकाजी बुद्धिजीवी की दयनीय स्थिति को सामने रखता है, जो अपनी आंखों के सामने होने वाले हर अन्याय, हर ज्यादती को चुपचाप देख-सुन लेता है। 'पैसे की थूक' में साधारण बातचीत की भाषा में एक क्रूर सत्य को कहा गया है :

मेरे पास नहीं हैं पैसे
पैसे हराम खोरों के पास हैं
मैं हराम खोरों की घास हूं
वे मेरा जीवन चर रहे हैं
मैं सोलह घंटे खटता हूं
और चौबीस घंटे रटता हूं पैसा
किन्तु वह ऊंचाई पर चढ़ता है
चढ़ कर थूकता है
हम उसे चाटते हैं

और कभी कभार जब पैसा पास में होता है :

पैसा जब कभी मेरे पास से गुजरा
मेरा सिर कुतुब की तरह उभरा
अपनी मुट्ठी में एक दुनियां महसूसता हूँ
आंखों में बाजार, जेब में उजाला सा होता है
चेहरे पर पालिश चढ़ जाती है

और जनतंत्र पर कितनी उम्दा टिप्पणी है :

कितना अच्छा लगता है
किसी भी जनवरी का छब्बीस हो जाना
किसी तांत्रिक दिवस का तावीज हो जाना

चुस्त फिकरे और मुहावरे हरि ठाकुर की कविताओं की जान है। एक के बाद एक चले आते हैं। कहीं वे देखते हैं कि पुलिस के बूटों से बालिग होती हुई सड़कों की छातिया पिस गयी हैं, कही ईमानदारी उन्हे एक फटा हुआ जूता दिखाई देती है, जो अब आदमी के पहनने लायक नही रहा। कही भाषण रेंकता हुआ कोई नेता मिलता है तो कही योजनाएं थूकता हुआ कोई मंत्री और कही वे देखते है कि :

उल्लू के तमाम पट्ठे
इकट्ठे हो गये हैं

अजित पुष्कल

अजित पुष्कल का अपना कोई स्वतंत्र कविता-संकलन प्रकाशित नहीं हुआ है, उनकी दस कविताएं प्रतिश्रुत पीढ़ी में संकलित हैं। इनके अतिरिक्त सम-सामयिक पत्र-पत्रिकाओं में उनकी कई सुन्दर कविताएं प्रकाशित हुई हैं।

इन कविताओं में कवि की अपने समय की मूलभूत असगतियों की पहचान और उनके प्रति उसकी सक्रिय प्रतिक्रियाएं व्यक्त हुई हैं :

समय : कितना बड़ा अस्पताल है आज
जो निर्जन अंधेरे में
बीमारों को घेर
भुत की दीवार पर खड़ा है।
किसी की अंगुलियां जख्मी हैं
किसी का सिर अधकटा है
फिर भी मालूम नहीं
कहां किसकी दवा है
बस, वंचना की राहत है
वैसे सब आहत हैं।

—अभिव्यक्ति, प्रतिश्रुत पीढ़ी

यह है समय, जिसके लिए कहा जाता है कि वह सब घावपूर देता है। 'ईश्वर' के नाम पर किस तरह साम्प्रदायिक दंगे होते हैं, इसका एक विम्बात्मक आलेख देखिए :

उस अखंड तत्व का
एक एक टुकड़ा जबड़ों में दाबे
चौराहों पर लड़ते हैं लोग
कुत्तों की तरह उत्तेजित
भूंकते हैं धर्मयुद्ध का आह्वान।

—ईश्वर, प्रतिश्रुत पीढ़ी

एक कविता 'वक्तव्य' मे वे कहते हैं :

देश मेरे लिए वैसा नहीं है
जैसा प्रधान मंत्री के लिए है
जो कभी भी

सारी धरती दुखी हुई है नासूरों से
कुन्हा नासूरों से
और हमारा पांव पांव भीगा उठता है
रिस रिस बहती हुई पीप से...

और कि हम

हवा नहीं बदबू पीते हैं
रोटी नहीं भरम खाते हैं
और अतीत की राख लपेटा करते हैं
नंगे शरीर पर
खीझ कर क्षयरोग ग्रस्त हम लोग
खांसते हैं
फेंकते हैं खून—
कि कहीं कुछ सुर्ख तो दिखे
वर्षों से काले पड़े सूरज पर
कुछ लाल छींटें तो पड़ें !

अन्तिम पंक्तियां निश्चय ही काफी तुर्श और प्रभावशाली हैं।

सुलगते पिंड की सभी कविताएं यद्यपि हरीश भादानी की साठोत्तरी कविताएं हैं, पर उनकी अभिव्यक्ति पर कुछ गीतात्मक रूमानी संस्कार स्पष्ट ही दिखाई देते हैं : अब भी वे 'सलोने दर्द' को और 'अनागत के विश्वास' को संबोधित करते हैं; 'पनघटो' पर पायली झंकार', किसी 'चातकी मनुहार' और 'घटाओं से रिमझिम बरसते सावन' की बात करते हैं। क्रियाओं के सश्लिष्ट प्रयोग हरीश भादानी की अपनी विशेषता है : इसे 'विस्फोट' देना चाहते हैं, ओ सलोने दर्द खिलौने के लिए 'हठिया' नहीं, हमने सपने 'चितारे' 'निहोरती' सांझ के, जैसे प्रयोग उनके यहां बहुत हैं। रूपक उनकी अभिव्यक्ति का प्रमुख माध्यम है।

असल में हरीश भादानी का प्रखर विद्रोही रूप उनकी इस संकलन के भी बाद की, अभी तक असंकलित, कविताओं में अधिक उभरा है। पिछले दिनों उनकी एक लम्बी कविता, जिसके लिए मैंने 'समकालीन नरक की खंदकों से' नाम सुझाया था, सुनी। इस रंग की और साठोत्तरी मुहावरे की कदाचित वह हरीश भादानी की सर्वश्रेष्ठ कविता है। पर अभी अप्रकाशित होने के कारण उस पर यहां विचार करना संभव नहीं है।

और तुम' भी एक प्रखर कविता है, जो कवि की वहां के अवाम के साथ आन्तरिक सम्पृक्ति को व्यक्त करती है।

जुगमंदिर तायल

जुगमंदिर का पहला संकलन है—धूपभरी सुबह। इसकी अधिकांश कविताएं या तो प्रकृति के संबंध में लिखी गयी हैं या उनकी पृष्ठभूमि में प्रकृति है। कहीं कही सीधे प्रकृति से रागात्मक सबंध स्थापित किये गये हैं—प्रकृति की धारा में कुंठाओं को विसर्जित किया गया है :

मन-मन पर अवसाद घिरा
कुंठा ने की बन्द गिरा
गांठ खोल दो मानव मन की
मन के द्वारे बरसो मेघ !

कई कविताओं में प्रकृति के अलग अलग पक्षों का सामाजिक संघर्ष में रत अलग अलग शक्तियों के प्रतीकों के रूप मे प्रयोग किया गया है। जैसे 'काला अजगर', 'ज्योतिवाहक', 'उजाला टूटेगा' आदि कविताओं मे। सकलन की उल्लेखनीय कविताएं 'नवसंदर्भों से प्रतिश्रुत रक्त बीज' शीर्षक खंड में है, जिनमें रक्त बीज, वामन, राम, परशुराम, स्वर्ण-मृग, रावण आदि पौराणिक पात्रों को नये युग के संदर्भों से जोड़ कर, नयी प्रतीकात्मकता देकर, उनके माध्यम से वर्तमान युग की समस्याओं को चित्रित किया गया है। वामन को नयी प्रतीकात्मकता देने वाली ये पक्तियां उद्धृत की जा सकती हैं :

हम भी हैं अन्याय-बलि के विरुद्ध
हमारे अधिकारों की धरती जिसने छीनी है
शक्ति हमारी भी सीमित है
रूप हमारा भी वामन है
पर छल नहीं करेंगे हम
लड़ेंगे सम्मुख ही, प्रत्यक्ष हो
वामन था एक,
हम अनेक हैं।

सूरज सब देखता है जुगमदिर का दूसरा संकलन है। इस संकलन मे जुगमदिर प्रकृति के एक कुशल चितेरे के रूप मे हमारे सामने आते हैं। प्रकृति के विभिन्न रूपरंगों और उसकी अनेकानेक मुद्राओ को उन्होने सुन्दर बिम्बात्मक

धरती और समुद्र की छाती चीरता
अन्न की भीख मांगने
विदेश चला जाता है
और मैं यहां
जानी पहचानी आदिम गलियों में
अकेला...सिर्फ एक वोट का प्रतिनिधि
अपने निर्बल कंधों पर
दो 'सभाएं' लादे
सेब की जगह मुंह में जली रोटी दाबे
चटकते सूर्य की धूप में
पांव की बोझल जंजीरें घसीटता
समय का भार और गति मापता रह जाता हूं ।

'उपलब्धि' में वे गहरा व्यंग करते है : लोकतंत्र एक बुना हुआ जाल है, वैसे जिसमें न जल है न मछलियां, गाठों के मिथ्याभास में बस एक जाल है। है सब कुछ लेकिन कैसा है ? :

लक्ष्य है...संधान है
बांध फूटे हैं
और जल ?
मछलियां गुटक गयी हैं ।
योजनाएं हैं : ऐसी या वैसी
जगहें हैं : टूटी या फूटी
धरती है, समुद्र है, मैदान है
जय है, जवान है, किसान है
बेहोश गांव हैं
भूखे शहर हैं
चमक दमक रोशनी
भाषण, संभाषण
आकांक्षाएं हैं—
पलकों पर नाचती हैं कुर्सियां
(मगर देश कहीं नही है)

बंगलादेश के मुक्तिसंग्राम से संबद्ध उनकी एक कविता 'इतिहास का आवेदन

प्रकृति संबंधी इन कविताओं के अतिरिक्त सकलन में तीन कविताएं कविता की रचना प्रक्रिया से सम्बद्ध भी हैं। इनमें जुगमदिर का संश्लिष्ट भावबोध व्यक्त हुआ है। कविताए हैं: 'रचना से पूर्व', 'प्रक्रिया', और 'अस्तित्व' (रचना के बाद)। इन कविताओं में कविता की रचना प्रक्रिया को सुन्दर ढग से अभिव्यक्ति दी गयी है। रचना से पूर्व की कुछ पक्तियां है:

सीमाहीन समुद्र, पहाड़नुमा असंख्य नीली हरी लहरें
हर लहर दूसरी से टकराती
अलग अलग बढ़ती और लौट लौट टकराती
सब कुछ विच्छिन्न, मथित, अस्पष्ट, उलझा हुआ
और इस पर भी पारदर्शी लहरों में झलकते
बार बार छुपते और बार बार चमकते
नीलम, पुखराज, मूंगे, सुनहरी मछलियां
और जाल लिये लहर लहर पीछे दौड़ता
हांफता बेचैन मैं

प्रतिश्रुत पीढ़ी में संकलित जुगमदिर की कविताओं में कुछ ऐसी भी हैं जो इन दोनों संकलनो में नहीं आयी। ऐसी कविताओं में 'पलायन', 'लावा', 'कैक्टस-कथा' और 'युद्ध के बाद का शरद' उल्लेखनीय हैं।

'लावा' में छात्र आन्दोलन को उसके सही परिप्रेक्ष्य में रख कर प्रस्तुत किया गया है: कितने दिनों से लावा धरती की भीतरी दरारों मे भटक रहा है। इन दिनों लावे की एक पर्त बाहर फूट आयी है और उसे रास्ता देने के लिए सड़कें खाली हो गयी हैं, बाजारों ने आंखें बन्द कर ली हैं, सीमेन्ट की दीवारो ने जगह छोड़ दी है, लोहे के खम्भे काप उठे हैं। लेकिन वे लोग इस को किस दृष्टि से देख रहे हैं ?: वे लोग ऊची गद्देदार कुर्सियों पर बैठते हैं और काच की खिड़कियों से सारी दुनिया देखते हैं। उन्होंने कह दिया है कि यह महज कानून और व्यवस्था की समस्या है। लाठी के चन्द मजबूत हाथ, आंसू गैस के थोड़े से गोले और लोहे की नलियों से निकली शीशे की चन्द गोलिया सब ठीक कर देंगी और उन्होंने अपनी खिड़कियों के मोटे परदे गिरा लिये हैं।

'पलायन' में वास्तविकता के अधूरेपन को और कविता द्वारा उसको पूर्णता देने के सत्य को प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्ति दी गयी है। 'कैक्टस-कथा' मुक्तिबोध की जीवन प्रक्रिया को कैक्टस के माध्यम से प्रस्तुत करती है। 'युद्ध के बाद का शरद' युद्ध के 'पश्चात्प्रभाव' को संवेदना के साथ रूपायित करती है।

अभिव्यक्तियां दी हैं। केदार के बाद शायद ही किसी और प्रगतिशील कवि ने प्रकृति के प्रति इतनी रागात्मक सम्पृक्ति दिखाई हो, जितनी जुगमदिर ने दिखाई है। **सूरज सब देखता है** का काव्य ससार प्रकृति के रूपों, रंगों, गंधों का एक भरापूरा संसार है, जो अपने पाठकों को एक ताजगी और एक स्वस्थ मनस्कता देता है। प्रकृति की कितनी मुद्राएं जुगमंदिर ने अंकित की हैं इसका कुछ अन्दाज उनकी कविताओं के शीर्षकों से भी लग सकता है: वटवृक्ष, ऋतु संहार, सूर्य-संवत्सर, बादल-वर्ष, रगचक्र, धूप, आकाश, हवा, सुबह, प्रभाती, सुबह विभिन्न, वसन्तागम, गलीचे, पछुआ, बसन्त, पलाश, कोंपल, विधनवेलिया, रंग और गध, निदाघ, वर्षा की प्रतीक्षा, रात में वर्षा, वर्षा के बाद सुबह, वर्षा के बाद शहर, यात्रा, वर्षा के बाद सांझ, शरत की रात, उजली रात, हेमन्त की सुबह, सर्दी की सुबह सूरज, हेमन्त की दोपहर में यात्रा, धूप स्नान, आवारा हवा, शिशिर, शिशिर यात्रा चादनी में। यह ठीक है कि जुग मंदिर की अधिकांश कविताओं में प्रकृति का सादा, हल्के से रागात्मक स्पर्श से संयुक्त चित्रण ही मिलता है, पर कुछ कविताएं अपनी जटिल सवेदन शीलता और बिम्बों के टटकेपन के कारण साधारणता से काफी ऊपर भी उठ जाती हैं। एक कविता है 'कोंपल':

पीपल की
सूखी, बदरंग चटकी डालों में
धूप से चमकती हुई
हवा में नाचती हुई
नन्हीं हरी कोपलें
कि किसी बुड्ढे के
कांपते झुर्री-भरे हाथों में
पोती हंसती हो!

और बसन्त के आगमन को परोक्ष ढंग से यों प्रस्तुत किया गया है:

मैं कह नहीं सकता कि क्या होता है
कहीं से कोई एक हाथ आता है
सब कुछ बदल जाता है
यहां आम के पत्तों में बौरों के गुच्छ
वहां सेमल की डालों में लाल लाल फूल टांग जाता है
जब कि पलाश
सूखे-झुके कन्धों पर पतझड़ ढोता है।

इन कविताओं में एक ही बिम्ब के माध्यम से स्थितियों को सुन्दर ढंग से व्यंजित किया गया है। इसी तरह एक वेश्या का यह सुगठित चित्र कितना मर्म-स्पर्शी है :

सिन्दूर पर हजारों का नाम
होठ पर अठन्नी की चमक
गर्भ में अज्ञात पिता का अंश
फेफड़ों में टी. बी. की गमक
—एक रुपया
—नहीं, दो रुपया
कौन ?
...सीता ?
...सावित्री ?

यथार्थ जीवन के विभिन्न दृश्यों को सिर्फ बिम्ब रूप में प्रस्तुत कर देने से ही सदा कविता की रचना नहीं हो जाती, यह बात भी मृत्युंजय जानता है। एक सादे बिम्ब को सुन्दर कविता में ढाल देने का यह प्रयास देखिए :

वह जो
बादलों पर आंखें टिकाये
उदास बैठी है
मेरी पड़ोसिन है
दिन भर पापड़ बेलती है
बरामदे में लेटे बीमार बूढ़े से झगड़ती है
कोख को कोसती है
बहू को गालियां देती है
सपने देखती है, आधी रात गये:
आसमान साफ है।
सूरज चमक रहा है।
पापड़ सूख रहे हैं।

यहा एक यथार्थ खंड को सपनों के साथ जोड़ कर कितनी कुशलता से काव्यात्मक बना दिया गया है।

मृत्युंजय उपाध्याय

मृत्युंजय का एक छोटा सा संकलन किन्तु प्रकाशित हुआ है। कम से कम शब्दो मे अधिक से अधिक बात कह देना मृत्युंजय की विशेषता है। एक ही बिम्ब की छोटी कविताएं उसका प्रधान क्षेत्र है। मृत्युजय की अधिकांश कविताएं स्पष्टता, समुचित बिम्बविधान, सक्षिप्ति, तराश और व्यंजना से पूर्ण हैं। दो तीन ऐसी ही छोटी-छोटी कविताओं के उदाहरण लिये जांय :

व्यवस्था

रात।
पेट पर रख हाथ
गिन रहा तारे
यह यशस्वी देश।
सम्मुख खड़ी दर्पण के
व्यवस्था बे शरम
सुलझा रही है केश।

युग-मूर्ति

सिर सोने का
कोष्ठ चांदी का
दिल पीतल का
हाथ लोहे के
पांव पत्थर के
आंखें सीसे की
युग!
सच कहना, यह तुम हो!

युग-स्थिति

अंधों की धरती
बहरों का आकाश
दोनों के बीच
गूंगों की लाश!

अशोक वाजपेयी ने धूमिल को 'दूसरे प्रजातंत्र की तलाश के कवि' कहते हुए लिखा है : "धूमिल की कविता में भी 'लोग' और 'भीड़' है, लेकिन ज्यादातर युवा कवियों के 'लोग' और 'भीड़' की तरह वे सरलीकरण नहीं हैं—उनकी कविता में सामाजिक शक्तियों का टकराव साफ पहचान में आता है। यह महत्वपूर्ण है, क्योंकि सारे समाज और सामाजिक संघर्ष को सरलीकृत कर इधर बेचारगी और निरर्थकता की जो नयी दकियानूसी प्रतिष्ठित हुई है, धूमिल का स्वर उसमें शामिल नहीं है, बल्कि उसके आगे एक बड़ा प्रश्नचिह्न लगाता है। वह स्त्रियों के शारीरिक संसार तक सीमित नहीं रहता, बल्कि उस संसार को चरितार्थ करने की, पहचानने और चुनौती देने की कोशिश करता है, जो रोज-मर्रा आदमी का मरता-खपता और कभी-कभार मुट्ठी तानता संसार है।"[६]

धूमिल की, कविता, कविकर्म और भाषा के बारे में प्रखर जागरूकता भी एक उल्लेखनीय विशेषता है। 'संसद से सड़क तक' की पच्चीस में से पांच कविताएं भाषा और कविता के प्रति उनके सरोकारों को ही अपनी विषयवस्तु बनाती हैं—कविता, प्रौढ़ शिक्षा, कवि-१९७०, मुनासिब कारंवाई और भाषा की रात। 'राजकमल चौधरी के लिये' और 'मोचीराम' में भी वे कविता और कविकर्म के प्रति चिन्तित दिखाई देते हैं। उनके कई प्रसिद्ध सामान्यीकरण कविता के बारे में ही हैं।

धूमिल की अधिकांश अच्छी कविताओं की संरचना चुस्त फिकरेबाजी पर ही निर्भर है। यह फिकरेबाजी अधिकतर कुछ सुचिन्तित सामान्यीकरणों के रूप में होती है, जो धूमिल के अपने एक विशिष्ट से लगने वाले मुहावरे में प्रस्तुत किये जाते हैं। ये फिकरे उनकी कविताओं में इतने अधिक हैं कि चुस्त-बयानी को उनकी कविताओं की एक मूलभूत चारित्रिक विशेषता कहा जा सकता है।

'बीस साल बाद' में वे बीस साला आजादी का (६७ में) एक काव्यात्मक सा मूल्यांकन करते हुए ऐसे ही कुछ चुस्त और तीखे फिकरे पेश करते हैं :

बीस साल बाद
मैं अपने आपसे एक सवाल करता हूं
जानवर बनने के लिए कितने सब्र की जरूरत है ?
...अपने आपसे सवाल करता हूं
क्या आजादी सिर्फ तीन थके हुए रंगों का नाम है
जिन्हें एक पहिया ढोता है।
या इसका कोई खास मतलब होता है ?

---

६. अशोक वाजपेयी : तलाश के दो मुहावरे, फिलहाल, पृ. ३४.

धूमिल

धूमिल सातवें दशक के सर्वाधिक चर्चित युवा कवियों में से एक हैं। निश्चय ही उनकी कविता की कुछ सुनिश्चित चारित्रिक विशेषतायें है, जो उन्हें इस दशक का एक उपलब्धिपूर्ण और सार्थक कवि बनाती हैं।

संसद से सड़क तक (१९७२) नाम से उनका पहला संकलन अभी अभी प्रकाशित हुआ है। सकलन में उनकी लगभग सभी बहुचर्चित कविताएं शामिल हैं। यह संकलन धूमिल की कविताओं की मूल्यवत्ता और कमजोरियों—दोनों का अच्छा प्रतिनिधित्व करता है। जहा इसमें 'बीस साल बाद', 'अकाल दर्शन,' 'मोचीराम', 'कवि-१९७०,' 'कुत्ता', 'मुनासिब कार्रवाई', 'प्रौढ़ शिक्षा', 'मकान', 'भाषा की रात' और 'पटकथा' जैसी कविताएं संकलित है, जो सहज ही सातवे दशक की हिन्दी कविता की उपलब्धियां बन गयी हैं, वहां 'शहर का व्याकरण', 'सच्ची बात', 'हत्यारी संभावनाओं के बीच' जैसी कविताएं भी मौजूद हैं, जो तथाकथित साठोत्तरी मुहावरे की असफलता को रेखांकित करती हुई लीलाधर जगूड़ी की अधिकांश कविताओं की तरह निरर्थक शब्दाडम्बर या वाग्विलास या नये मुहावरे में कहा जाय तो एक बड़बोलेपन से भरी हुई चुस्तबयानी के दस्तावेज बनने के अतिरिक्त कुछ भी नही हो पाती।

धूमिल की महत्वपूर्ण कविताएं उनके व्यापक परिवेश की असंगतियों.और बेहूदगियों को एक नयी पहचान और एक बेलौस उग्रता के साथ उघाड़ती ही नही है, इन असंगतियों के पर्दे के पीछे कार्यरत 'सही शत्रु' के खिलाफ मुनासिब कार्रवाई की ओर भी ले जाती है। उन्होने अपने समसामयिक अकवितावादियों की तरह औरत या अमूर्त व्यवस्था के विरोध की रूढ़ियों में अपने को सीमित नही किया है, यही कारण है कि उनका परिवेश काफी व्यापक है और अपने समवयस्क कवियों की तुलना में उन्होंने समकालीन परिवेश के कुछ अछूते क्षेत्रों को अपनी कविता का विषय बनाया है। 'मोचीराम', 'मुनासिब कार्रवाई', 'प्रौढ़ शिक्षा', 'मकान', 'कुत्ता' आदि ऐसे ही अछूते क्षेत्रो की कविताएं हैं। परिणाम स्वरूप धूमिल का काव्य संसार महानगर के किसी गली-कूचे के किसी नुक्कड़ में दबे हुए किसी मध्यमवर्गीय मकान की संदर्भ-च्युत दुनियां नहीं, ठीक हमारे सामने के चौराहे पर जीते-जागते हुए और लड़ते हुए ठोस मानव चरित्रों की दुनियां है। वे जानते है कि उनके 'ढेर सारे दोस्तों का गुस्सा हाशिये पर चुटकुले बना रहा है' और इस जानकारी और समझदारी का ही परिणाम है कि उनकी कविताएं इसकी बजाय चौराहे पर बहस करते हुए आदमी के आक्रोश को वाणी देती हैं।

लेखपाल की भाषा के लम्बे सुनसान में
जहां पाली और बंजर का फ़र्क़ मिट चुका है
चंद खेत हथकड़ी पहने खड़े हैं

—नक्सलबाड़ी

उस लपलपाती हुई जीभ और हिलती हुई दुम के बीच
भूख का पालतूपन हरकत कर रहा है

—कुत्ता

दरअसल अपने यहां जनतंत्र एक ऐसा तमाशा है
जिसकी जान मदारी की भाषा है

—पटकथा

जनता क्या है ?
एक शब्द सिर्फ़ एक शब्द है :
कुहरे और कीचड़ और कांच से बना हुआ ।
एक भेड़ है
जो दूसरों की ठण्ड के लिए
अपनी पीठ पर ऊन की फ़सल ढो रही है

—पटकथा

मगर मैं जानता हूं कि मेरे देश का समाजवाद
मालगोदाम में लटकती हुई
उन बाल्टियों की तरह है; जिनपर 'आग' लिखा है
और उनमें बालू और पानी भरा है ।

—पटकथा

अपने यहां संसद तेली की वह घानी है
जिसमें आधा तेल और आधा पानी है

—पटकथा

तुम्हारे जिगरी दोस्त की कमर
वक़्त से पहले ही झुक गयी है
उसके लिये बढ़ई की आरी और बसूले से लड़ना फ़िज़ूल है
क्योंकि गलत होने की जड़ न घड़ीसाज़ की दुकान में है
न बढ़ई के बसूले में
और न आरी में है

ऐसी चुस्त सूक्तियों के, जो धूमिल के विस्तृत निरीक्षण और निष्कर्ष निकालने वाले गंभीर मनन की प्रमाण हैं, उनकी कविताओं से अनेक उदाहरण दिये जा सकते है :

मैंने पहली बार यह महसूस किया है
कि नंगापन
अंधा होने के खिलाफ
एक सख्त कार्रवाई है।

—उस औरत की बगल में लेट कर

असल बात तो यह है कि जिन्दा रहने के पीछे
अगर सही तर्क नहीं है
तो रामनामी बेच कर या रंडियों की दलाली करके
रोजी कमाने में कोई फर्क नहीं है

—मोचीराम

मगर चालाक 'सुराजिये'
आजादी के बाद के अंधेरे में
अपने पुरखों का रंगीन बलगम
और गलत इरादों का मौसम जी रहे थे
अपने अपने दराजों की भाषा में बैठ कर
गर्म कुत्ता खा रहे थे, सफ़ेद घोड़ा पी रहे थे।

—प्रौढ़ शिक्षा

डरे हुए पेड़ के इशारे पर हरियाली
भूंकते हुए अंधड़ के सामने
कुछ तिनके फेंक कर
वक्त की साजिश में शरीक हो जाती है

—पतझड़

हां हां मैं कवि हूं
कवि—यानी भाषा में भदेस हूं
इस कदर कायर हूं
कि उत्तर प्रदेश हूं।

—कवि–१९७०

एक की नींद और दूसरे की नफ़रत से
लड़ रहा है

सतही तौर पर इन पंक्तियों की शब्दावली बड़ी मिलिटेन्ट लगती है—यहाँ नफ़रत है, मोर्चा है, लड़ाई है—पर ज्योंही गंभीरता से इस भाषा की जड़ में छिपी सच्चाई को पहचानने की कोशिश की जाती है, हाथ में एक अमूर्त हवाई परिस्थिति के सिवा कुछ भी नहीं आता। फ़िकरेबाजी के लोभ में गैरजिम्मेदारी से किये गये दैत्याकार सरलीकरणों ने ऐसी अनेक पंक्तियों को जन्म दिया है :

सिर कटे मुर्गे की तरह फड़कते हुए जनतंत्र में
सुबह
सिर्फ़ चमकते हुए रंगों की चालबाजी है।
\+ + +
कविता
घेराव में किसी बौखलाये हुए आदमी का
संक्षिप्त एकालाप है

भारतीय जनतंत्र के बारे में सातवें दशक के आम कवियों की गैरजिम्मेदाराना अचिन्तित फ़िकरेबाजी सचमुच चिन्ता का विषय है। अकवितावादियों के छद्म और अमूर्त व्यवस्था-विरोध में से जन्म लेने वाली इस रूढ़ि के शिकार कई प्रतिश्रुत कवि भी हो गये हैं। यह ठीक है कि भारत में जनतंत्र के प्रयोग की कुछ भयानक सीमाएं हैं, पर सातवें दशक के अधिकतर कवियों ने उन सीमाओं पर नहीं, सीधे जनतंत्र और जनतंत्री मूल्यों पर ही प्रहार किये हैं, वे इस सच्चाई को भूल गये हैं कि भारत के सभी पड़ोसी एशियाई और मिश्र अफ्रीकी देशों की अपेक्षा जनतंत्र का प्रयोग भारत में, अपनी भयानक सीमाओं के बावजूद, एक ऐतिहासिक और सार्थक प्रयोग है। जनतंत्र द्वारा दी गयी स्वतंत्रताओं का सर्वाधिक उपयोग करने वाले समसामयिक कवियों की इस अचिन्तित-अगंभीर फ़िकरेबाजी को अशोक वाजपेयी की शब्दावली में उनकी 'नैतिक काहिली' ही का प्रमाण माना जा सकता है।

धूमिल की फ़िकरेबाजी के मोह का एक अंग उनकी तुकबाजी भी है। श्रीकान्त वर्मा के दूषित प्रभाव ने सातवें दशक के कई अच्छे-खासे कवियों को इस रूढ़ि से बाधा है। धूमिल में कई बार जो अचिन्तित सरलीकरण दिखाई देते हैं, वे मूलतः तुकान्त मोह में से ही जन्म लेते हैं :

लहलहाती हुई फ़सलें
बहती हुई नदी

बल्कि यह इस समझदारी में है
कि वित्तमंत्री की ऐनक का कौन-सा शीशा मोटा है
और विपक्ष की बेंच पर बैठे नेता के भाइयों के नाम
सस्ते गल्ले की कितनी दूकानों का कोटा है।

—मुनासिब कार्रवाई

'कविता क्या है ? कोई पहनावा है ? कुर्ता-पाजामा है ?'
'ना भाई ना, कविता शब्दों की अदालत में मुजरिम के कटघरे में
खड़े बेकसूर आदमी का हलफ़नामा है।'
'क्या वह व्यक्तित्व बनाने की
चरित्र चमकाने की, खाने-कमाने की चीज है ?'
'ना भाई ना, कविता
भाषा में आदमी होने की तमीज है।'

—मुनासिब कार्रवाई

इन संश्लिष्ट काव्यात्मक सूक्तियों में कहीं जीवन के किसी गहरे सत्य को मार्मिक अभिव्यक्ति दी गयी है, कहीं परिवेश की बेहूदगियों के प्रति कवि की आक्रोशपूर्ण प्रतिक्रिया है, कहीं जवानदराजी है, कहीं एक सार्थक नयी उपमा या रूपक के माध्यम से शब्दों की समाहार शक्ति के साथ किसी महत्वपूर्ण तथ्य की अभिव्यक्ति है, कहीं भाषा के साथ सार्थक खिलवाड़ है ('गर्म कुत्ता' खा रहे थे, 'सफेद घोड़ा' पी रहे थे), और अनेक स्थलों पर वस्तुओं और स्थितियों को अपने तई परिभाषित करने की ईमानदार कोशिश है।

यह ठीक है कि कविता के जिस लहजे को साठोत्तरी मुहावरा कहा जाता है, उसे गढ़ने में धूमिल की हिस्सेदारी कम नहीं है, पर यही हिस्सेदारी धूमिल के लिए एक हद तक दुर्भाग्यपूर्ण भी साबित हुई है। यह ठीक है कि आमतौर पर धूमिल की समझदारी उनकी कविताओं में धूमिल नहीं हुई है पर इस मुहावरे की लफ्फाजी और फिकरेबाजी में पड़ कर वे कई बार न केवल अपने परिवेश की ठोस संघर्षरत शक्तियों को अमूर्त बना कर सारी वास्तविकता को धुएं में उड़ाते हुए ही प्रतीत होते हैं, बल्कि कई बार तो बड़े गंभीर मसलों पर अपने अचिन्तित पर चुस्त फिकरे कसने के लोभ में अकवितावादियों के से दैत्याकार सरलीकरण करने लगते हैं। अमूर्तिकरण का एक उदाहरण लें :

और तुम महसूसते रहोगे कि जरूरतों के
हर मोर्चे पर तुम्हारा शक

'सच्ची बात' और 'हत्यारी संभावनाओं के बीच' जैसी कविताओं में शब्दों के इस तरह के संदर्भ-च्युत और अर्थहीन संयोजन के काफी उदाहरण मिल जाते हैं।

अशोक वाजपेयी का यह कहना ठीक है कि धूमिल स्त्री की भयावह समकालीन रूढ़ि से मुक्त हैं और स्त्री-संबंधी उनकी कविता आत्मप्रदर्शन से, जो इस ढंग की युवा कविताओं की चारित्रिक विशेषता है, मुक्त है; लेकिन यह आत्मप्रदर्शन और बड़बोलापन उनकी 'राजकमल चौधरी के लिए' कविता में राजकमल चौधरी के लिए है : 'उसका मर जाना पतियों के लिए अपनी पत्नियों के पतिव्रता होने की गारंटी है', हालांकि यह कविता राजकमल के संबंध में और उसकी मौत के प्रति उसके मित्र समकालीन कवियों की रुझान की कई सच्चाइयां सही ढंग से पेश करती है : "अचानक सड़कें इश्तहारों के रोजनामचे में बदल जाती हैं, 'सिरोसिस' की गांठ समकालीन कवियों की आख बन जाती है, नफरत के अन्धे कुहराम में सैंकड़ों कविताएं कत्ल कर दी जाती हैं", लेकिन यह फिर न केवल एक गलत सरलीकरण ही है, उसके लिए बड़बोलापन भी है :

जीभ और जांघ के चालू भूगोल से
अलग हट कर उसकी कविता
एक ऐसी भाषा है जिसमें कहीं भी
'लेकिन', 'शायद', 'अगर' नहीं है।

जीभ के भूगोल से उसकी कविता अलग हो तो हो, पर जांघ के भूगोल से वह न केवल अलग हट कर नहीं है, बल्कि लगभग उसी तक सीमित है। दरअसल यह कहना सच्चाई के और ज्यादा नजदीक होगा कि जांघ के भूगोल के क्षितिज समकालीन कविता में सबसे पहले उसी ने फैलाये हैं।

धूमिल का अपना एक मुहावरा है, जो यद्यपि अधिकतर अमूर्तीकरण पर आधारित है और कई बार मात्र मनोरंजक रह जाने के बावजूद बहुत बार काफी प्रभावक और कभी कभी मार्मिक भी बन जाता है। राजनीतिक और मिलिटेन्ट शब्दावली उसका प्रमुख अंग है। मसलन यह लेख लिखते हुए मैं सोच रहा हूं कि मुझे बाजार से सब्जी लानी है और बाल कटवाने है, पर यदि एक बार उठ गया तो यह लेख आज अधूरा ही रह जायगा। अपनी इस मनस्थिति को धूमिल के मुहावरे में कहने की कोशिश करूं तो कहूंगा : सब्जी का हरापन और नाई की दुकान का खुलापन वह साजिश है, जो तुम्हें धूमिल की कविताओं के खिलाफ भड़काने के लिये तुम्हारा ही दाहिना हाथ नगर के चौराहे पर कर रहा है।

उड़ती हुई चिड़ियां
यह सब तुम्हें गूंगा रखने की चाल है।

'प्रौढ़ शिक्षा' की ये पंक्तियां यद्यपि संकरी दृष्टि से देख कर किया गया एक काफी चौड़ा सरलीकरण हैं, तथापि एक सार्थक और चुस्त फिकरे का निर्माण करती हुई प्रतीत होती है, पर तुकान्त मोह कवि को और आगे खींचता है :

क्या तुमने कभी सोचा है कि तुम्हारा
यह जो बुरा हाल है
इसकी वजह क्या है ?
इसकी वजह वह खेत है जो तुम्हारी भूख का दलाल है।

सतही दृष्टि से शब्दों का यह संयोजन भी आकर्षक ही लगता है। पर इसका क्या मतलब है ? क्या किसान के बुरे हाल का कारण उसका खेत है ? या खेत का न होना, या 'कम होना' या 'बहुत कम उसका होना' ? फिर खेत उसकी भूख का दलाल कैसे है ? सिवा इसके कि चाल और हाल की तुक में यह एक नया मिलिटेन्ट शब्द है। इस तुकान्त-मोह को कई जगह धूमिल ने अच्छी-खासी छद्‌म दार्शनिकता तक दे दी है :

दृष्टियों की धार में बहती नैतिकता का
कितना भद्दा मजाक है
कि हमारे चेहरों पर
आंख के ठीक नीचे ही नाक है।

—सच्ची बात

यह वृत्ति जहां और आगे बढ़ जाती है वहां धूमिल और लीलाधर जगूड़ी के बीच की सीमा रेखाए मिटने लगती हैं और वे भी जगूडी की तरह दनदनाते हुए शब्दों के खोखले और निरर्थक लेकिन बड़बोले संयोजन तैयार करने लगते हैं :

बूढ़ों को बीते हुए का दर्प और बच्चों को विरोधी
चमड़े का मुहावरा सिखा रहा हूं
गिद्धों की आंखों के खूनी कोलाहल और ठण्डे लोगों की
आत्मीयता से बचकर
मैकमोहन रेखा एक मुर्दे की बगल में-सो रही है
और मैं दुनियां के शान्तिदूतों और जूतों को
परम्परा की पालिश से चमका रहा हूं
अपनी आंखों में सभ्यता के गर्भाशय की दीवारों का
सुरमा लगा रहा हूं

मैंने कहा—यह तुम्हारे रास्ते में है
वह फिर चौंका। थोड़ी देर चुप रहा
फिर बोला रास्ते की बात ही गलत है।
यह मेरा देश या समाज या घर है,
कोई ग्रांड ट्रंक रोड थोड़े ही है।
मैंने कहा—तुम समझे नहीं,
दरअसल तुम कैद हो।
वह तीसरी बार चौंका। फिर उसके चेहरे पर
आचार्य रजनीश विराजमान हो गये।
बोला—मानव मात्र कैद है और हमें इस
कठोर किन्तु शाश्वत सत्य को मुस्कुरा कर
स्वीकार करना चाहिए।

यही वह सच्ची 'सपाट बयानी' है जिसे अशोक वाजपेयी और नामवर सिंह ने सातवें दशक की कविता के एक नये प्रतिमान के रूप में मान्यता दी है—सीधा गद्यसुलभ जीवन्त वाक्य विन्यास। कोई लफ्फाजी नहीं, कोई फिकरे बाजी नहीं, कोई शब्दों या वाक्यों का 'रचनात्मक विन्यास' नहीं। सीधासादा बातचीत का लहजा और उस बातचीत की जड़ों में से अनायास उत्पन्न होती हुई कविता।

बिन्दु में छपी दूसरी कविता में अखबार मे छपी खबरों की अमूर्तता-अभिजातता पर एक हल्का सा पर प्रभावशाली व्यंग किया गया है :

भारत प्रति दिन प्रगति कर रहा है।
कैसे मालूम ?
अखबार में छपा है।
हिन्दुस्तान दिन-ब-दिन पिछड़ता जा रहा है।
कैसे मालूम ?
अखबार में छपा है।

"और भी बहुत कुछ छपा रहता है अखबार में, जैसे इन्दिरा गांधी स्त्री भी है और प्रधानमंत्री भी, कि इससे सिद्ध होता है कि समाजवाद का मतलब गांधी-वाद भी होता है और नक्सलवाद भी। लेकिन उसमें यह नहीं छपा रहता कि हमारा पड़ोसी श्यामू कल से बुखार में तप रहा है और बेचारे के पास दवा तक के पैसे नहीं हैं, पर अगर वह किसी का खून कर दे या डकैती या बलात्कार, तो जरूर यह अखबार में छप जायगा।"

'तैयारी' में यह जान लेने के बाद कि सब रास्ते एक ही जगह पहुंचाते हैं,

वेणु गोपाल

पिछले दिनों एकाएक हैदराबाद के एक तरुण कवि का नाम काफी महत्वपूर्ण हो गया, पत्र पत्रिकाओं में वह चर्चित होने लगा, अपनी कविताओं के लिए पुलिस की हिरासत और जेल में भेजे जाने के कारण। वह नाम था वेणु गोपाल। हैदराबाद के इस मामूली अध्यापक और हिन्दी के कवि को इस कारण पुलिस की महमान-नवाजी का शिकार बनना पड़ा, क्योंकि पुलिस की नजरों में उसकी कविताएं बेहद खतरनाक थी और आंध्र प्रदेश सरकार की आन्तरिक सुरक्षा को चुनौती दे रही थीं। वेणु गोपाल की गिरफ्तारी पर नद चतुर्वेदी ने अपने त्रैमासिक 'बिन्दु' में एक ईमानदार-साहसिक और जोरदार टिप्पणी की : 'धीरे-धीरे यह बात मेरे मन में बैठती जा रही है कि हर प्रजातंत्र की मौत का सिलसिला पुलिस वालों के काव्य-पारखी होने से शुरू होता है। प्रजातंत्र तब पूरी तरह गड़बड़ा जाता है जब प्रबुद्धों का काम पुलिस और पुलिस का काम प्रबुद्ध करने लगते हैं। मुझे हिन्दुस्तान की आबोहवा में प्रबुद्धो और पुलिस के बीच काम-काज की यह तब्दीली नजर आने लगी है, और इसलिए मुझे भय है कि कुछ ही दिनों में प्रजातंत्र महज एक मुहावरे की तरह काम में आने लगेगा।'

वेणु गोपाल उन तरुण कवियों में से है जिनकी कविताओं में आज की सामाजिक-राजनीतिक बेहूदगियों की गहरी पहचान के साथ साथ, उनके प्रति एक दुस्साहसिकता की हदतक पहुंची हुई उग्र चुनौती भी है। पर उनमें न तो वैयक्तिक शहादत की कोई ऊर्ज्वसित मुद्रा ही है, न क्रान्तिकारी लफ्फाजी और न धूमिल की तरह की अमूर्तिकरण मूलक मुहावरे-बाजी।

पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित वेणु गोपाल की कविताओ में से बिन्दु (मार्च ७१) मे प्रकाशित दो कविताएं तथा ओर (अप्रेल ७२) में प्रकाशित 'तैयारी' और 'जिम्मेदार' कविताओं का उल्लेख किया जा सकता है।

'बिन्दु' की पहली कविता हमारे जीवन की इस विडम्बना को बहुत सीधे और सहज पर फिर भी प्रभावशाली ढंग से उघाड़ती है कि आम हिन्दुस्तानी न केवल गुलाम है, वह अपनी गुलामी के अहसास से भी मुक्त है :

मैंने कहा—दीवार
तो वह चौंका। बोला—कितनी खूबसूरत है!
मुझे नीला या पीला या सफेद पेंट
बहुत अच्छा लगता है।

डॉ. रामदरश मिश्र ने भी कुमारेन्द्र की कविताओं की भीतरी जटिल बुनावट की ओर संकेत किया है। उनके अनुसार कुमारेन्द्र की कविताएं आज के कटे फटे जीवन के टुकड़ों को अधिक गहराई से पहचानती और व्यक्त करती है। वास्तव में इन टुकड़ों का अलग अलग सत्य एक जगह इकट्ठा होकर इन्हें कविता बना देता है। पूरी कविता जैसे एक अन्विति से अनुशासित न होकर जीवन के विघटित क्षेत्रों से उठा कर रखे गये टुकड़ो का समूह मालूम होती है। कुमारेन्द्र की कविता में प्रतिवद्धता यथार्थ की पर्तों को खोलने और उसके प्रति व्यंगात्मक मुद्रा अपनाने के ही अर्थ में है, किसी प्रकार के भावी विश्वास या रूमानी आशा या सामाजिक प्रगति के प्रति निष्ठा के अर्थ में नही।[८]

श्री हर्ष ने पहले हरीश भादानी के साथ 'आज की कविता' के आन्दोलन को आगे वढाया था, पर शीघ्र ही कलकत्ता-वास ने उन्हें हिन्दी की दृष्टि से 'कल की कविता' की देहरी पर ले जाकर खड़ा कर दिया, वे वहुत तुर्श लिखने लगे। संकलित रूप में उनकी कविताएं नवल द्वारा संपादित अप्रस्तुत मे प्रकाशित हैं। इन कविताओं में एक शहीदाना आवेश दिखाई देता है जो हर उस विद्रोही कवि की मजबूरी है, जो अन्य लोगों को अपने विद्रोह के तटस्थ द्रष्टा मात्र पाता है :

मेरी रगों में दौड़ते रक्त को जवानों के नाम निकाल
वेचा जायगा ऊंचे दामों पर
और मुझे दिया जायगा कंट्री-लिकर
मेरे हाथ पांवों के हिलने की आशंका पर ठोक दी जायेंगी कीलें
और मैं ईसा से ७२ वर्ष पूर्व
रोम के राज-मार्ग पर झूलती ६४७२ गुलाम लाशों में से
एक लाश वन जाऊंगा
जिसकी दुर्गन्ध परेशान करेगी सारे मुहल्लों को !

अपनी इधर की एक कविता 'षड्यंत्र' में वे परिवेश की असगतियों को एक तल्खी के साथ उघाड़ते हैं :

पूर्व के आंगन में किसी अंगीठी के सुलगने के पहले ही
कई लाख पांवों के दौड़ने की रफ्तार
मुझे फेंक देती है राशन की दुकान पर
जहां लाइन में खड़े हर आदमी के कंधे पर

---

८. मधुमति, अप्रैल ७१.

मतलब समन्दर तक, वे समुद्र यात्रा के लिए अपने आप को पूरी तरह तैयार करना चाहते हैं—खुद को नावनुमा बना कर हाथों को चप्पुओं की तरह और आंखों को कुतुबनमा की तरह काम करने का प्रशिक्षण देना चाहते हैं। दांतों को इस कदर तीखे और मजबूत बनाना चाहते हैं कि उस भावी यात्रा में मौका पड़े तो मगर की पीठ में उन्हें गड़ाया जा सके। और 'जिम्मेदार' में वे अपनी इस समझदारी को व्यक्त करते हैं कि जब तक आदमी खुद संसार की घटनाओं के प्रति जिम्मेदारी नहीं महसूस करता, तब तक वह सवाल ही पूछता रहता है, उनके होने या न होने में कोई भूमिका नहीं अदा कर सकता :

मासूम हरी पत्तियां
इसीलिए झड़ती रहीं। नदियों ने बहना इसीलिए बन्द कर दिया
और किनारे इसीलिए रेत में तब्दील होते रहे
कि मैं
कि मैं गैर जिम्मेदार था—उनकी ओर से।

सातवें दशक के अन्य प्रगतिशील कवि

इस दशक के अन्य प्रगतिशील कवियों में कुमारेन्द्र पारसनाथ सिंह, श्री हर्ष, विजेन्द्र, श्यामसुन्दर घोष, कृष्णमुरारी, वीर सक्सेना, निरंजन महावर, दिनकर सोनवलकर, डॉ. माहेश्वर, हरिहर द्विवेदी, उग्रसेन, तड़ित कुमार और कुमार विकल के नाम लिये जा सकते हैं।

कुमारेन्द्र पारसनाथ सिंह की अपनी अलग शैली है : जैसे कोई अपनी दिनचर्या या किसी देखे हुए सपने की चर्चा करे। आज जब अधिकांश कविता गद्य शैली में लिखी जाने लगी है, तब जबरदस्ती उसे छोटी-बड़ी पंक्तियों में काट कर पद्य की तरह दिखाने का ढोंग उन्हें पसंद नहीं है, वे उसे सीधे गद्य की तरह निरन्तर वाक्यों में लिखना और छपाना पसन्द करते हैं। डॉ. विश्वम्भर नाथ उपाध्याय ने उनकी **प्रतिश्रुत पीढ़ी** में संकलित कविताओं के *मर्मभरे गद्य की प्रशंसा करते हुए कहा है कि उनकी अनुभूति में सघनता है* और उनकी सादाबयानी भीतर की एक जटिल बुनावट की ओर इशारा करती है। वास्तविक 'अकविता' यही है। इसमें यह नहीं लगता कि कविता हो रही है, न कवि-भाषा का प्रयोग ही है लेकिन इस तरह की भरमी रचनाओं की पृष्ठभूमि में कवि की गोताखोरी और उलझी हुई बात को सुलझे तेवर देने की ताकत छिपी हुई है।[७]

---

७. वातायन, मई-जून ६९.

भाषा के सूत्र लगभग वही होते हुए भी कृष्ण मुरारी अपने तीखे और बेलौस परिवेश-बोध से अपनी कविताओं की बुनावट को नयी कविता की बुनावट से काफी अलग ले जाते हैं। अपनी वैयक्तिक परिस्थितियों के कारण उनमें भी रमेश गौड़ का सा 'पितृ-द्रोह' कहीं कहीं और भी कटु होकर उभरा है। कई बार यह कटुता सार्थक व्यंग बन कर भी उभरती है। रमेश गौड़ वाला विलुप्त पीढ़ी की सदस्यता का शहीद-भाव भी कृष्ण मुरारी में है :

संभवतः टूट जाएगी पीढ़ी की पीढ़ी नामहीन
छोड़कर शिला पर अपने प्रयासों की अपरिमेय छाप।

लेकिन यह समझदारी उन्हें हताश या तटस्थ नहीं बनाती :

चलो हम बेईमान इतिहास को अनदेखा कर
नामहीन टूटन को सौंप कर अपना अस्तित्व।
करते रहें प्रहार
उस बेशर्म शिला पर
जो अड़ी हुई है हमारे रास्ते में बन कर व्यवस्था।

कृष्ण मुरारी की कविताएं संकलित रूप मे अभी कहीं प्रकाशित नहीं हुई हैं—छिट पुट पत्रिकाओं मे प्रकाशित उनकी कविताओ में 'पथावरोधी शिला', 'लेटी हुई भीड़' और 'जयकार' अपने को अन्य कविताओं की अपेक्षा विशिष्ट और महत्वपूर्ण बना लेती हैं। 'लेटी हुई भीड़' में समकालीन व्यवस्था के आतंक को और उसके सामने आम जनता की निष्क्रियता-असम्पृक्ति को बहुत प्रभावशाली अभिव्यक्ति मिली है। 'जयकार' में नागार्जुन के 'मंत्र' की तरह वे एक परिहास के से स्वर में अपने समाज की बेहूदगियों का मजाक, शब्दों के साथ थोड़ी सी सार्थक खिलवाड़ करते हुए, उड़ाते हैं।

वीर सक्सेना में यह शहीदाना अन्दाज इतना मुखर हुआ है कि लगभग उनकी कविताओं की एक चारित्रिक विशेषता ही बन गया है। कहीं कहीं तो, जैसे बिन्दु में प्रकाशित उनकी एक कविता में, यह बड़बोलेपन की एक मुद्रा मात्र बन कर रह जाता है, और शहादत की त्रासद-गंभीरता को तोड़ने लगता है। वीर सक्सेना ने गीत की भूमि पर और उससे हट कर भी कई अच्छी विद्रोही कविताएं लिखी हैं, जिनमें 'सुर्ख हस्ताक्षर' और 'देह विराम' का उल्लेख किया जा सकता है। लेकिन उनके विद्रोह में जो नितान्त अकेलापन है, आम लोगों के दुख दर्दों के साथ जो एक तरह का अलगाव-सा है, वह कहीं उनके विद्रोह के रूमानी उत्सों की ओर संकेत करता है। पिछले दिनों सीमान्त गांधी के भारत-आगमन की घटना से प्रेरित होकर वीर सक्सेना ने एक सुन्दर कविता 'अनाम यात्री' की रचना की है।

उतर आती है शाम
लोग खाली थैलों में आक्रोश भर कर लौटते हैं घर
और इन्हीं लोगों के घरों पर
लिख दिया जाता है—'नक्सलवाड़ी'।

विजेन्द्र मे विद्रोही कवियों का बड़बोलापन और स्फीति विल्कुल नही है, एक प्रकार का अण्डर स्टेटमेंट है और उनकी भाषा देशज तथा आंचलिक शब्दों के प्रयोग से एक ऐसे भदेसपन का आभास देती है, जो उनको शहर के ही नहीं, गांव के भी आम आदमी से जोड़ता प्रतीत होता है। लेकिन उनकी कविता में भी कई बार तार्किक और कलात्मक अन्विति का एक ऐसा अभाव मिलता है, जो उनके मुहावरे को अकविता के मुहावरे के नजदीक ले जाता है। 'त्रास' मे उनकी कविताए साधारणता से ऊपर नही उठ पातीं, पर इधर के कुछ वर्षों में उनकी कविताओं मे एक व्यक्तित्व के नक्श उभरते दिखाई देते हैं। इधर की उनकी महत्वपूर्ण कविताओं में सम्प्रेषण मे प्रकाशित 'मुहावरा' और आकंठ में प्रकाशित 'बहरहाल' का उल्लेख किया जा सकता है। पहली कविता में सर्दी में ठिठुरते हुए लोगो का एक प्रभावक चित्र खीच कर एक सार्थक प्रश्न को कलात्मक संश्लिष्टि के साथ प्रस्तुत किया गया है कि 'समाजवाद आखिर किस के लिए है?' दूसरी में कवि की सामाजिक यथार्थ और भाषा पर पकड़ के सवाल को उठाया गया है। वे अपनी गिरफ्त को विस्तृत करना चाहते है ताकि कविता सिर्फ मेज का गुलदस्ता ही न बनी रहे।

श्यामसुन्दर घोष गीतात्मक अनुभूतियों के स्वस्थ-मनस्क कवि हैं। मूलतः सुरूप और सुन्दर को वाणी देने वाले और उनकी सहजता इस बात मे है कि उन्होंने जबरदस्ती अपने पर सामाजिक विरूपताओं के उद्घाटन का जिम्मा नही ओढ़ा और स्वस्थ-स्वच्छ विम्बो के माध्यम से जीवन के प्रति एक धनात्मक-आशावादी प्रगतिशील दृष्टिकोण व्यक्त करते हुए सतोष कर लिया। उनकी कविताएं 'नये शिशु का जन्म' और कुछ चुनी हुई कविताएं प्रतिश्रुत पीढ़ी में संकलित है। उनकी एक इधर की कविता 'एक बीज का स्वगत-कथन' इस दृष्टि से उल्लेखनीय है कि उसमें श्यामसुन्दर घोष की अपनी शैली अपनी चरम सार्थकता के सीमान्त छूती प्रतीत होती है। निस्सदेह यह उनकी सर्वश्रेष्ठ कविता है।

खास तौर से अब, घोष की काव्य भाषा की एक बड़ी सीमा यह लगती है कि उसकी बुनावट मूलतः 'नयी कविता' की ही बुनावट है, सन साठ के बाद इधर की कविता में जो नया डिक्शन और नया मुहावरा आया है, उससे उनकी कविता अब भी लगभग अछूती है।

विद्रोही नकार प्रगतिशील कविता के इतिहास के सर्वाधिक राजनीतिक दौर (४५-५०) में भी नहीं मिलता। सामाजिक क्रान्ति के उद्देश्य के लिए की गयी वैयक्तिक हिंसा को भी इन कवियों ने गौरवान्वित किया है। हरिहर द्विवेदी अपनी कविता 'हां मैंने हत्या की है' में स्थिति को इस तरह तर्कीकृत करते हैं :

तुम्हें दो चार की खुशी के लिए
प्यारा है हजारों की मौत का कानून
और हमें लाखों करोड़ों की खुशी के लिए
प्यारा है दो चार का खून
मैं हत्यारा हूं
कबूल है मुझको यह इल्जाम'
हिम्मत हो तो मिलाओ विशाल जनता से
अपनी पवित्तर गंगा-जमुनी आंखें
तुम्हारे अस्पष्ट हस्ताक्षर के बदले
कर रहा हूं साफ साफ दस्तखत
हरिहर द्विवेदी बकलम खुद
पहली फरवरी उन्नीस सौ सत्तर।

उग्रसेन सिंह शासक वर्ग के ढोंग का पर्दाफाश करते हुए कहते हैं :

बदलने के नाम पर सिर्फ नाम बदला है
किवाड़ों की पालिश बदल देने भर से
कैसे आलोकित होगा किसी बन्द गुफा का भीतरी भाग
यह तो सरासर चालाकी है
कि वर्तमान की तरह भविष्य भी भोगता रहे
अनन्त काल तक उम्र कैद
नहीं अब जरूरी हो गया है ले लेना निर्णय
कि सांस लेने भर की राहत के लिए भी
हमें यह सारी सख्त चट्टानें तोड़नी होंगी।

तड़ित कुमार में इन दोनों की सी प्रखर विद्रोह चेतना के साथ अपने परिवेश का गहरा असंगतिबोध भी है, और है विद्रोह को एक जटिल और पूर्ण परिप्रेक्ष्य देने का प्रयत्न भी :

हमने नहीं चाहा था कि
हमारे चार पैर हों

निरंजन महावर ने मुक्तिबोध की फेंटेसी-शैली और उसी तरह के मुक्त छन्द का अच्छा उपयोग किया हैं। डॉ. उपाध्याय के अनुसार उनमें तीव्र असंगतिबोध है, लेकिन उनकी रचनाओं में लाघव कम, स्फीति अधिक है। डॉ. रामदरश मिश्र ने भी इनकी कविताओं की लम्बाई और सपाटता की चर्चा करते हुए सवाल उठाया है कि प्रतिश्रुति का तात्पर्य यदि अपने देश और समाज को एक सरल मध्यमवर्गीय जीवन मूल्य से रूमानी ढंग से जोड़ देना है तो सोचना पड़ेगा कि प्रतिश्रुति कितनी मूल्यवान हो सकती है। 'वियतनाम', 'इतना ही जीवन' जैसी कविताओं में इसी प्रकार की जीवन लालसा व्यक्त की गयी है।[१]

दिनकर सोनवलकर के दो कविता-संकलन प्रकाशित हुए हैं : **अंकुर की कृतज्ञता** और **पीढ़ियों का दर्शक** (६८)। दिनकर सोनवलकर सातवें दशक के उन कवियों में से हैं जिन्होंने साधारण जीवन के साधारण-साधारण अनुभवों को ही अपनी स्वस्थ और आस्थापूर्ण दृष्टि से साधारण-साधारण कविताओं में अभिव्यक्ति दी है। यही कारण है कि उनके ट्रीटमेंट में एक सतहीपन और उनकी अभिव्यक्ति में एक सपाटता, प्रोजेकनेस और अधिकतर वक्तव्यता रहती है, जो उनकी किसी कविता को विशिष्ट नहीं बनने देती। सभवतः यह उनके जीवन में किसी गहरे आत्मिक संकट या उद्वेलन या संघर्ष की कमी के कारण हो। फिर भी उनकी नार्मेलिटी और आस्थावानता, इस कुत्सा, विक्षेप और मूल्य-मूढ़ता के दौर में, भली लगती है। **अंकुर की कृतज्ञता और पीढ़ियों का दर्शक** की उल्लेखनीय कविताओं में 'साहित्यिक बिजनेस', 'कलम वह मेरी है', 'अपरिचित को प्रणाम', 'गलत जिन्दगी', 'अनुभव', 'स्थिति बोध', 'अराजक स्थिति', एवं 'तब तक', 'कवि बंधुओं को परामर्श', 'बोध', 'आस्था' आदि कविताओं के नाम लिये जा सकते हैं।

अपने विद्रोह को एक दुस्साहसिकता पूर्ण गुरिल्ला संघर्ष में परिणति देने वाले सातवें दशक के कुछ अन्य युवा हस्ताक्षर है : डॉ. माहेश्वर, हरिहर द्विवेदी उग्रसेन, तड़ित कुमार तथा कुमार विकल।

प्रथम चार कवि श्री हसराज रहबर की प्रस्तावना और डॉ. माहेश्वर के संपादन में संयोजित संकलन **शुरूआत** (७०) में संकलित किये गये हैं। इन कवियों ने, अखबारी भाषा में जिसे 'नक्सलवाद' कहा जाता है, को अपनी कविताओं में बिना लाग-लपेट के अभिव्यक्ति दी है। हिंसा के उत्तर में हिंसा और खून के बदले खून का इन कविताओं में खुला आह्वान है। अपने वर्ग-शत्रुओं के प्रति इस तरह की अनाविल घृणा और वर्तमान व्यवस्था का इस तरह का सम्पूर्ण

१. मधुमती, अप्रेल ७१.

की तरह घासपात, मवेशी, बच्चे और आदमी निगलने लगती है तब कहीं कुछ नहीं होता, सिर्फ संसद में उठे हुए कुछ सवालों के सिवा। न कोई कुर्सी कांपती है, न कोई शराब खाना या मीना बाजार उदास होता है। सिर्फ खद्दर की रेशमी साड़ी का सिरा लपेटे एक लम्बी नाक जिन्दगी की बदबू से बचती है। पर सहनशक्ति की सीमा सिर्फ 'नाइन्टीथ पेरेलल' के आसपास ही नहीं आ गयी है। हमारे आसपास भी आ गयी है और आ गयी है अंकिल टाम के केबिन में भी। न्यूयार्क और वाशिंगटन के जंगलों में भी 'काले तेन्दुए' दिखाई देने लगे हैं।

शुरूआत की विद्रोही कविताओं की एक विशेषता यह है कि यद्यपि ये कविताएं व्यक्तिगत हिंसा तक का समर्थन करती नजर आती हैं, तथापि इनमें कवि बहुत कम ही जगहों पर 'मैं' है, ज्यादातर वे 'हम' हैं और उनमें वह अकेले शहीद होने वाली अतिरंजनापूर्ण मुद्रा कहीं नहीं है, जो सातवें दशक के कई अन्य कवियों के विद्रोह की प्रमुख मुद्रा है। फिर इन कवियों का विद्रोह जागृत सर्वहारा के विद्रोह के साथ नख और मांस की तरह जुड़ा हुआ है, अलग-थलग कुछ आतंकवादियों के विद्रोह जैसा, कम से कम इन कविताओं में, नहीं लगता। पर इन कवियों के विद्रोह को श्री हंसराज रहबर ने जो 'सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य' दिया है, उस संबंध में अनेक सवालों के साथ एक सवाल यह भी उठता है कि संसार भर के दलितों-पीड़ितों के विद्रोहों को चीनी कम्युनिस्ट पार्टी और उसके नेता माओ-त्से-तुंग के नेतृत्व में होते हुए देखने की सीमित दृष्टि और उससे जुड़ा हुआ आत्म-विश्वासहीन, परावलम्बी नारा 'चाइनाज पार्टी इज आवर पार्टी, चाइनाज चेयरमेन इज आवर चेयरमेन' आमतौर पर किसी भी प्रबुद्ध व्यक्ति को और विशेषतौर पर कवि जैसे सहृदय प्रबुद्ध को कैसे स्वीकार्य हो सकता है?

यद्यपि कुमार विकल भी उसी सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य से जुड़े हुए दिखाई देते हैं, जिससे शुरूआत के कवि, तथापि उनमें विद्रोह का वह प्रखर स्वर नहीं है। कम से कम उनकी निषेध में संकलित कविताओं में तो बिल्कुल नहीं है। इन कविताओं में अधिकतर वे मध्यमवर्गीय-दफ्तरी परिवेश के विरुद्ध प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए ही दिखाई देते हैं। एक ही कविता 'दीवार के इस पार, उस पार' में उनकी 'उस पार' के गुरिल्लों के प्रति प्रतिश्रुति व्यक्त होती है, पर इस कविता में भी वे अपने आप को ऐसे काव्य नायक के रूप में प्रस्तुत करते हैं, जिसकी मौत पर उस पार के गुरिल्ले यह छोटा सा प्रस्ताव पास करेंगे कि 'सुरक्षा की एक छोटी सी चाहत का जहर सबसे अधिक घातक होता है'। एक अन्य कविता में वे आने वाली क्रान्ति को सेमुअल बेकेट के नायक गोदो के रूप में प्रस्तुत करते हैं, जिसका इंतजार सब को है, पर जो कभी नहीं आता।

इन नामों के अतिरिक्त भी कुछ और नाम हैं, जिन्होंने सातवें दशक की

लेकिन तुमने हमें जरूरत के आगे
झुकने पर मजबूर कर दिया
और हमारे हाथ भी पैर बन गये।

लेकिन मनुष्य के पाशवीकरण की इसी प्रक्रिया ने उसके अगले हाथों मे भयानक नाखून भी उगा दिये हैं। कवि का विकसित यथार्थबोध बूर्ज्वा समाज द्वारा दी हुई परिभाषाओं की धज्जियां उड़ाता हुआ वस्तुओं को अपने तईं नये सिरे से परिभाषित करता है :

नहीं!
देश न तो मां होता है
और न वेश्या
देश महज एक दायरा होता है
जिसके भीतर रहने वालों का खून
कानून पुलिस और सेना के सहारे तुम
आखिरी कतरे तक चूस सकते हो।

डॉ माहेश्वर की कविताए उनकी विद्रोही विषयवस्तु के साथ ही उनके विकसित शिल्पबोध को भी प्रमाणित करती है। 'बदले हुए संदर्भ' कविता में वे सातवें दशक के उन कवियों को एक सशक्त उत्तर देते हैं जिन्होने भाषा के बारे में यह भ्रम फैला रखा है कि अब 'प्यार' शब्द की जगह 'सड़क' भी लिख दिया जाय तो कोई फर्क नहीं पड़ता। शुरूआत की कविताओं में 'अपना देश' कथ्य और शिल्प के कलात्मक संतुलन की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण कविता है। समसामयिक यथार्थ को अपने अन्तर्राष्ट्रीय आयामों के साथ यहा कुछ सुगठित बिम्बों के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। अंधकार यहा मसनद के सहारे पल्थी मारे बैठा है और रोशनी सरेआम लेम्पपोस्टो पर लटका दी गयी है। पूरा देश एक विशाल कोल्ड स्टोरेज बना दिया गया है, जहा मरी हुई परंपराओ और सस्कृतियों को सुरक्षित रखा जा रहा है। खून पीने वालो के मुंह से अभी भी फूल झड़ते हुए दिखाये जाते हैं। और बच्चे अगर कभी खेलखेल में पुलिस के खिलाफ नाकाबंदी कर लेते हैं तो ढेलों का जवाब देती है थ्री नाट थ्री। पचास करोड़ में से मुट्ठीभर आदमी जब थोड़े से राशन के लिए डेढ़ मील लम्बी कतार में खड़े होने से इनकार कर देते हैं, और दार्जिलिंग के जंगलों में हजारों के पेट के खिलाफ तने हुए गिनती के सिर काट दिये जाते हैं तो क्यों मिलिट्री स्पेशलें छूटती हैं दिल्ली से सिलीगुड़ी और सिलीगुड़ी से दिल्ली। आखिर क्यों? जबकि धांय धाय करती हुई बलुही जमीन जब अजदहों

और अन्त में

छपी हुई पुस्तक पढ़ते हुए लग रहा है कि कुछ बातें हैं, जो पुस्तक में ही कहीं कह दी जानी चाहिए थी, पर रह गयी हैं।

पहली तो यह कि प्रस्तावना को जितनी विनम्रतापूर्ण मैं बनाना चाहता था और जितनी वह जरूरी थी, उतनी बन नहीं सकी। गौण कवियों के प्रसंग ने उस विनम्रता को विघटित कर दिया, जो उस समय मेरे मन में घुमड़ रही थी। तो इन पंक्तियों में सबसे पहले उसी दरार को पूर लूं। यह पुस्तक लिखते हुए और अब छपी हुई पढ़ते हुए बार-बार मेरे मन में आया है कि इसे लिख कर जैसे मैंने उस प्रगतिशील काव्य-धारा का, जिसने मेरे लेखक-व्यक्तित्व को गढ़ने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है, ऋणशोध ही किया है; अपने आप में अलग से कोई विशेष उपलब्धि इसकी मुझे नजर नहीं आती। क्योंकि हिन्दी के प्रगतिशील कवियों पर समग्र रूप से कोई पुस्तक नहीं लिखी गयी है, इसलिए मुझे यह काम करना पड़ा, किन्हीं अधिक अधिकारी अंगुलियों और प्रतिभाशाली कलम से यह लिखी जाती तो ज्यादा अच्छा होता।

पुस्तक की पूर्वपीठिका और पहला अध्याय, ये दोनों अंश मेरे शोध प्रबंध 'हिन्दी की प्रगतिशील कविता' से ही, थोड़े संशोधन और परिवर्धन के बाद, ले लिये गये हैं। इसकी सूचना इन अंशों के साथ ही पाद टिप्पणी के रूप में देना चाहता था, पर बात ध्यान से निकल गयी। यह सामग्री इस पुस्तक के मूल कथ्य को एक सम्यक् पृष्ठभूमि देने के लिए ही, पिछली पुस्तक का अंश होते हुए भी, इस पुस्तक में दी गयी है।

थोड़ी क्षमा उन सुसंस्कृत पाठकों से चाहता हूं, जिनके पठनानन्द को अरबी-फारसी से आये शब्दों की नुक्ता-विहीन वर्तनी अवश्य ही चोट पहुंचाएगी। उन्हें विश्वास दिलाता हूं कि यह वर्तनी मुझे भी कम नहीं अखरी है, पर क्या किया जाय, प्रकाशकों ने जो टाइप मूल सामग्री के लिए प्रयुक्त किया है, उसमें नुक्तों वाले अक्षर हैं ही नहीं।

पुस्तक की पाडुलिपि तैयार करने मे मेरी प्रिया छात्रा सुधा माहेश्वरी ने जो सहयोग दिया है उसके लिए अगर उसे धन्यवाद दूगा तो वह बुरा मानेगी, पर इस तथ्य का उल्लेख अवश्य उसे सुखद लगेगा, यही सोचकर कर रहा हूं।

—रणजीत

१५ मार्च, १९७३.

प्रगतिशील कविता के निर्माण में कुछ न कुछ योग दिया है या दे रहे हैं। ऐसे नामों में आग्नेय, सव्यसाची, श्रीराम तिवारी, आलोक धन्वा, नीलाभ, नीलकान्त, भक्त विनायक, अजीतसिंह और मणिमधुकर का उल्लेख किया जा सकता है। मणिमधुकर अब तक अपनी अप्रतिबद्ध रचनाओं के लिए ही जाने जाते रहे हैं, पर पिछले ही दिनों उनके दृष्टिकोण में परिवर्तन आया है और 'घास का घराना' नामक उनकी लम्बी कविता उनके इस नये, प्रतिश्रुत और विद्रोही रूप को रेखांकित करती है।

●

नामानुक्रमणिका

समवेत

साहित्य, कला एवम् सांस्कृतिक चेतना का न्यास

मान्यवर,

राजस्थान के जाने-पहचाने वरिष्ठ हिन्दी कवि श्री लालचंद "भावुक" पंच दशकीय रचना यात्रा की प्रतिनिधि रचनाओं का काव्यपाठ प्रस्तुत करेंगे, आप साक्षी बनें, इसी अपेक्षा के साथ सादर निमंत्रण स्वीकारें.

स्थान:- लालीमाई पार्क, नत्थूसर गेट के बाहर, बीकानेर
समय:- रात्रि ८ बजे
दिवस:- २३ मई २००७, बुधवार,

विनयी

सरल विशारद
अध्यक्ष

श्रीलाल जोशी
सचिव